The Original Idol of Lord Mahavir in Main Vedi

Biggest Marble manufacturer in India

- Quality
- Quantity
- Reliability
- Finishing
- Range
- Economy

R.K. MARBLES LTD.

Manufacturers of Quality Marble Blocks, Slabs & Tiles

- PLANT & H.O. Makrana Road Madanganj Kishangarh 305801 Distt. Ajmer (Raj)
  Ph. 0091 1463 42501 (3 lines) Fax 0091 1463 42555 Gram MARBLEKING
- MINE Near Village Morwad Distt. Rajsamand (Raj.)
  Ph. 0091 2952 30111 30222 Fax 0091 2952 30777 Gram MARBLEKING
- UDAIPUR OFFICE Old Fatehpura Near Sai Mandir Udaipur
  Ph. 0091 294 526127 Fax 0091 294 561281 Gram MARBLEKING

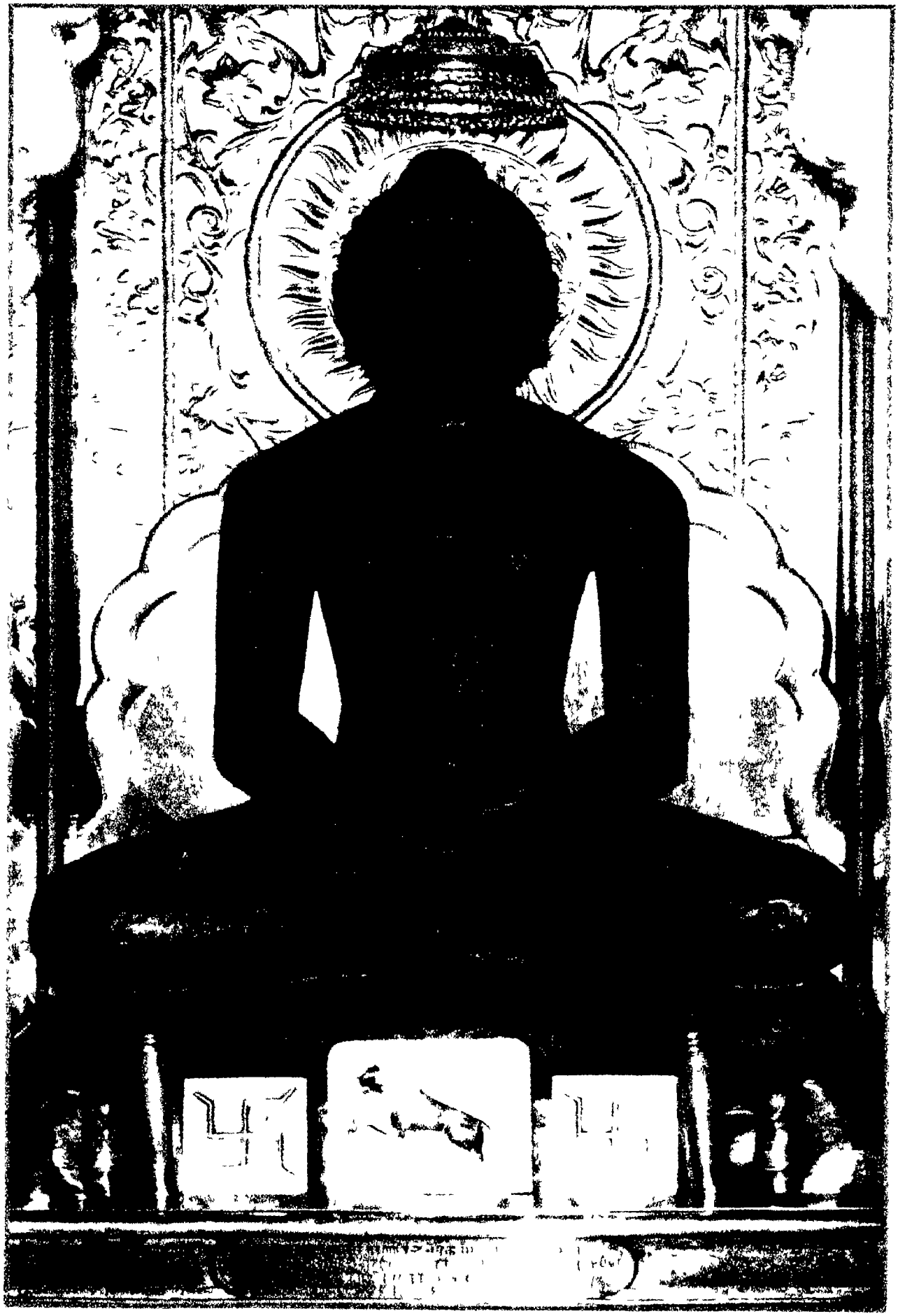

मूलनायक प्रतिमा भगवान महावीर

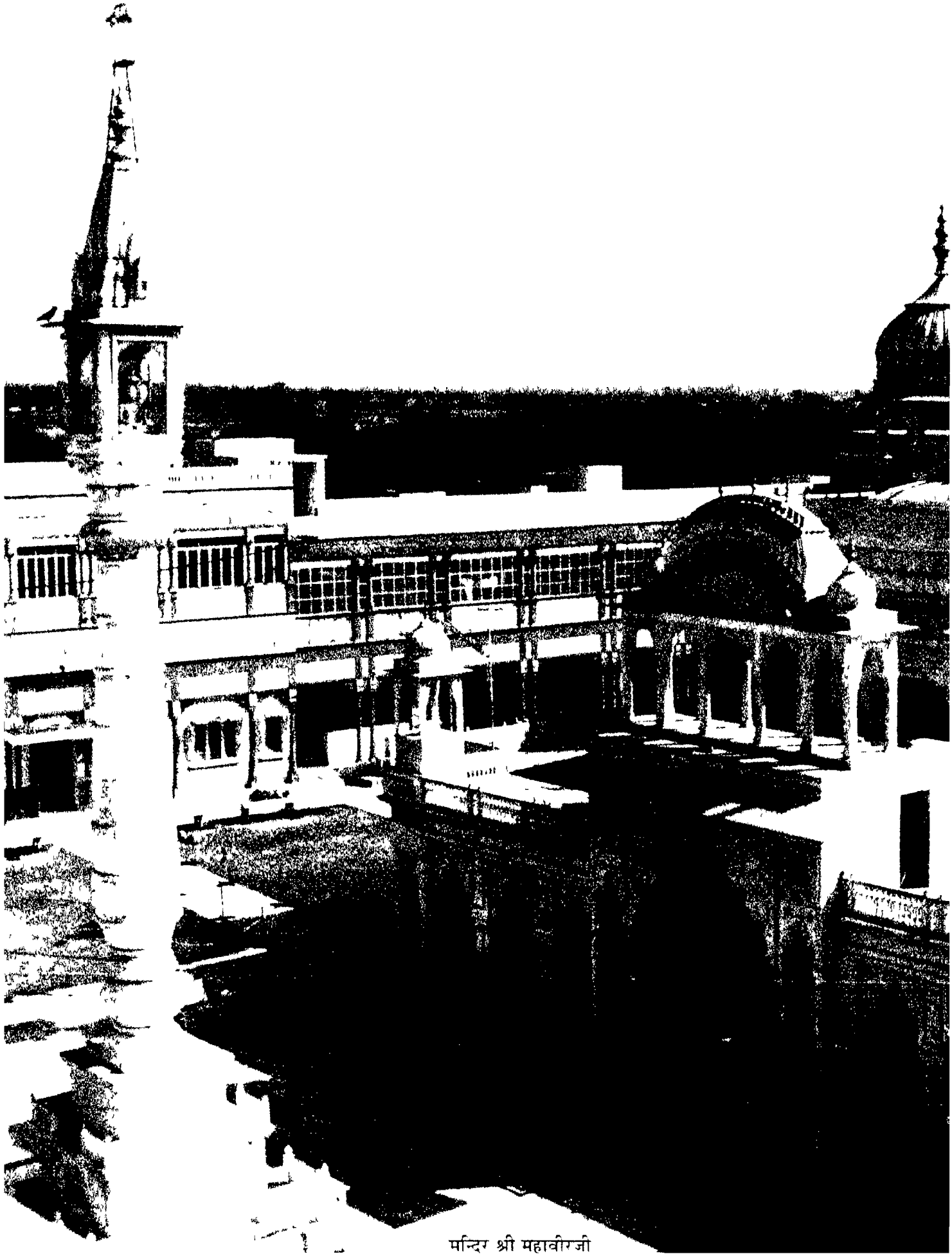

मन्दिर श्री महावीरजी

मुख्य मन्दिर के शिखर

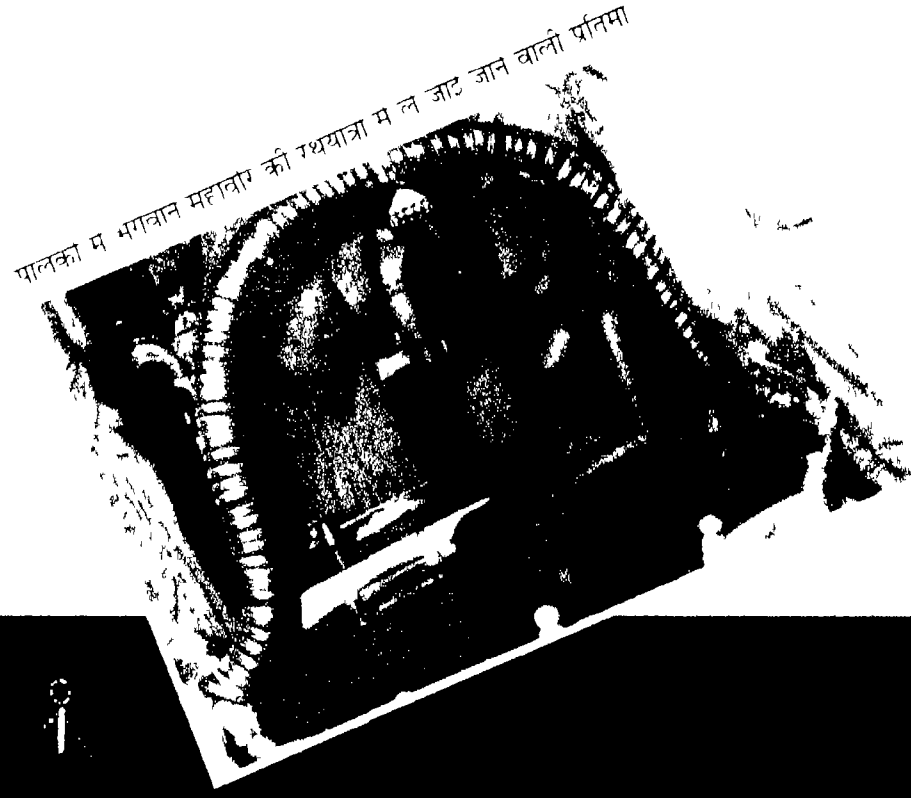

पालकी म भगवान महावीर की रथयात्रा म ल जाए जान वाली प्रतिमा

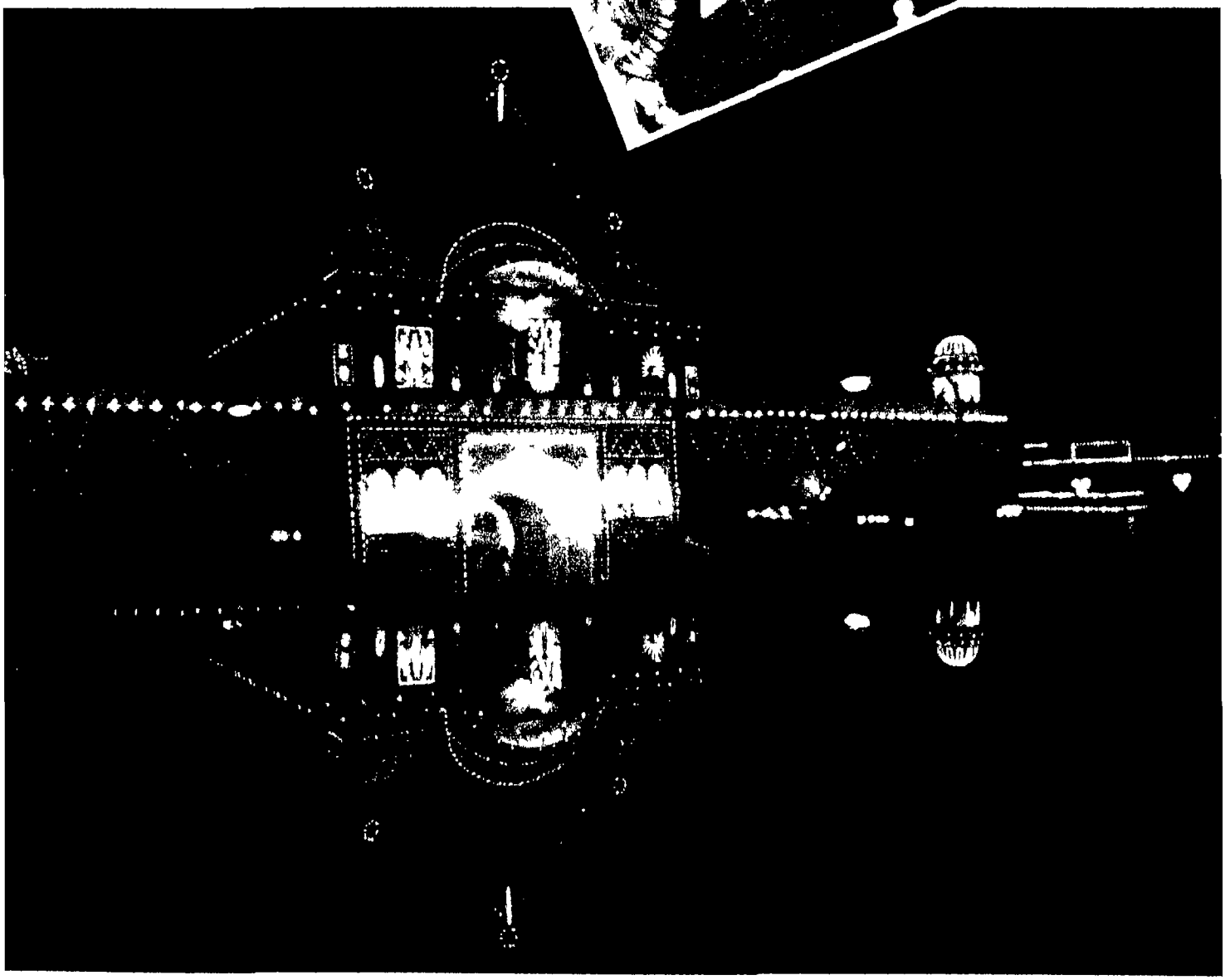

रात्रि प्रकाश म आलोकित कटल का बाहरी दृश्य

छाया चित्रागदा शमा

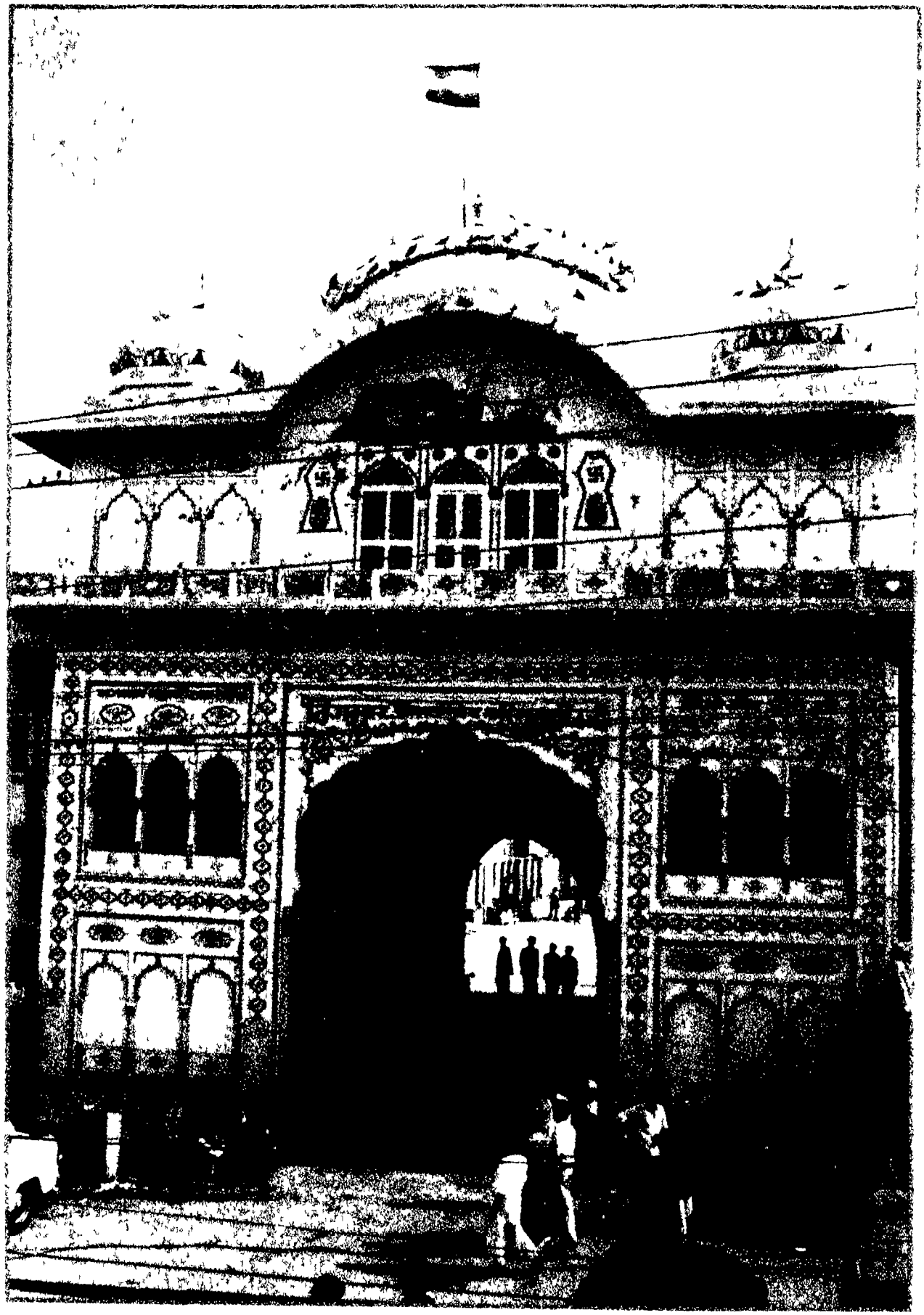

कटल का मुख्य द्वार

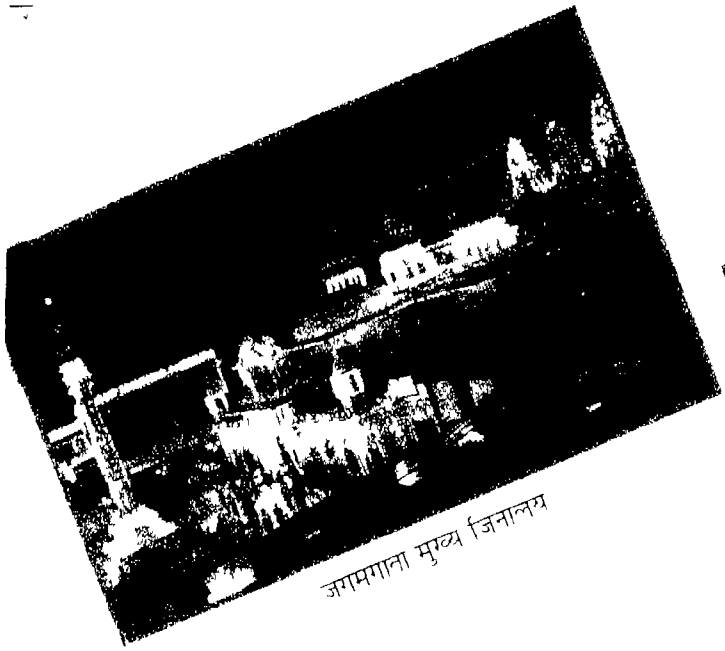

जगमगाता मुख्य जिनालय

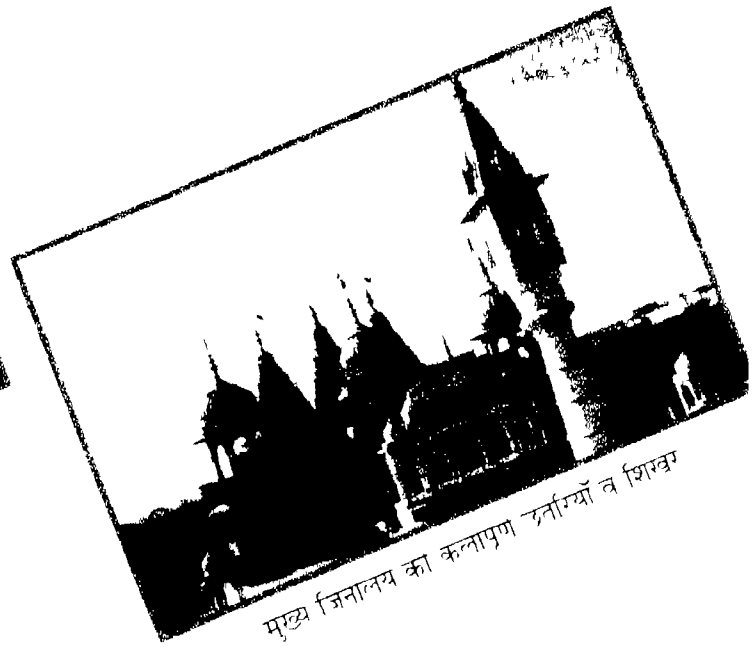

मुख्य जिनालय की कलापूर्ण छतरियाँ व शिखर

मन्दिर की बाह्य वेदी

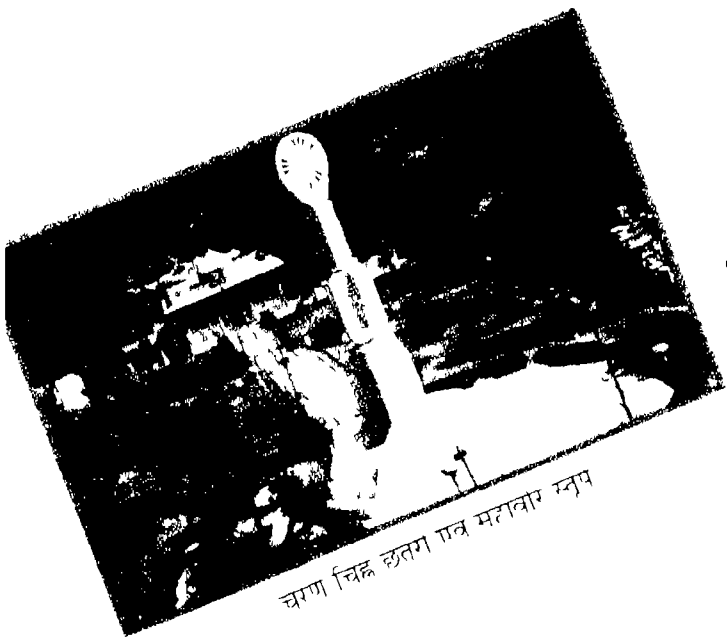

चरण चिह्न छतरी एवं महावीर स्तूप

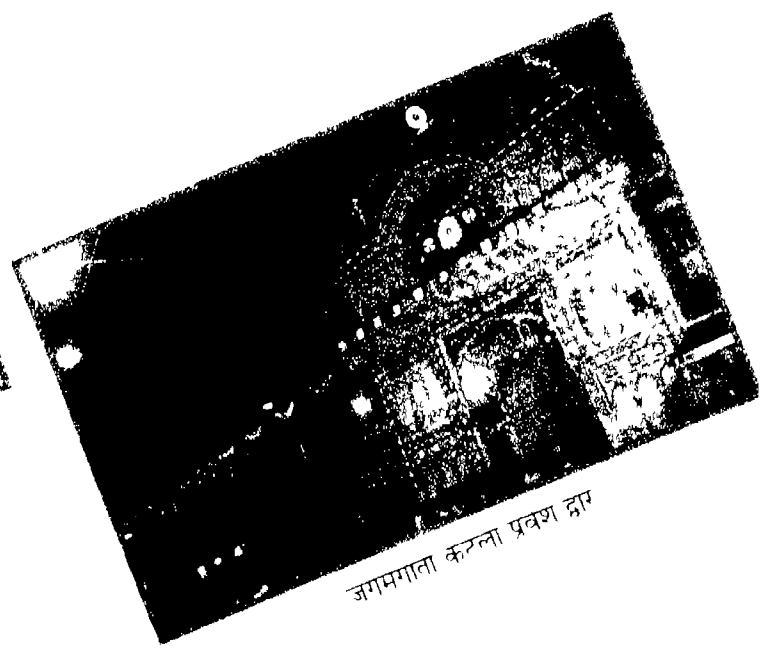

जगमगाता कटला प्रवेश द्वार

दीप दर्शन

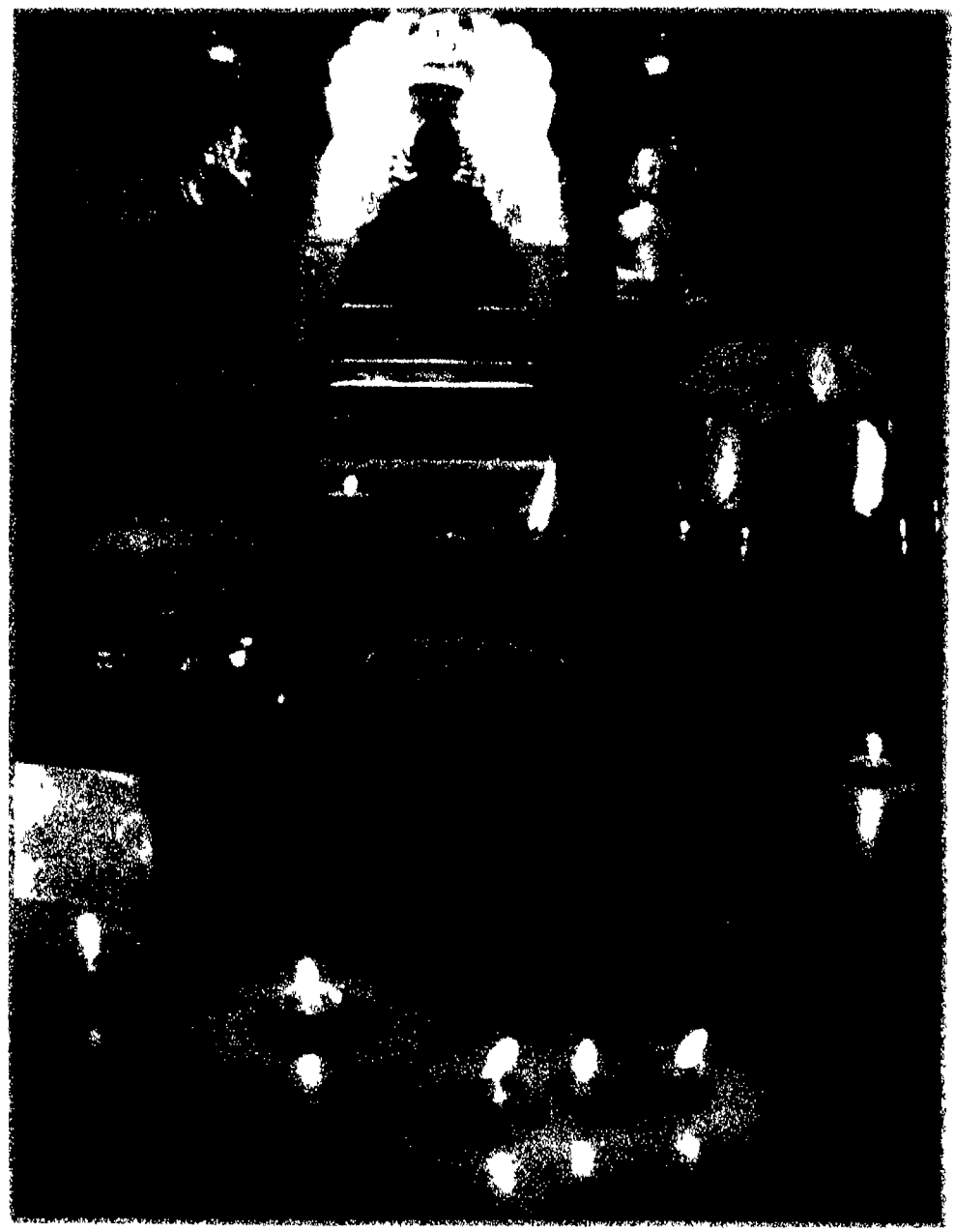

छाया राज मिस्त्री अहमदाबाद

मन्दिरजी में स्वर्ण चित्रकारी युक्त भाव

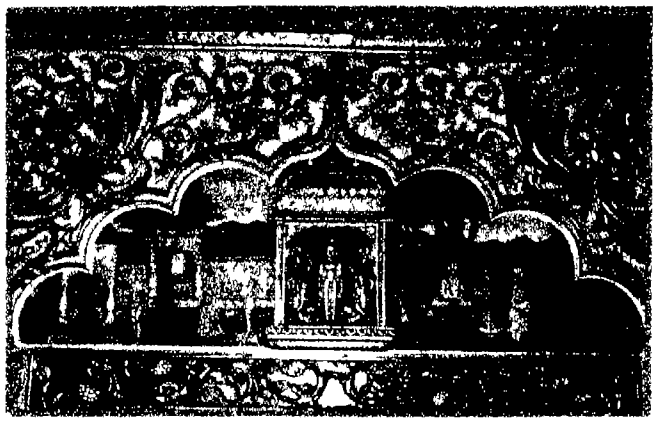

मुख्य प्रवेश द्वार के ऊपर आकर्षक स्वर्ण चित्रकारी

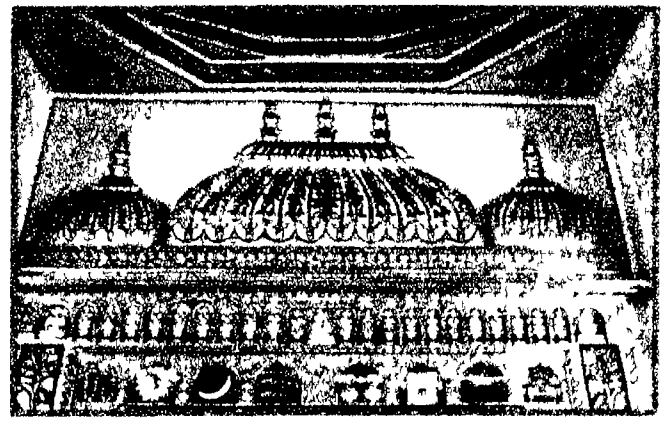

गुम्बज पर स्वर्ण चित्रकारी

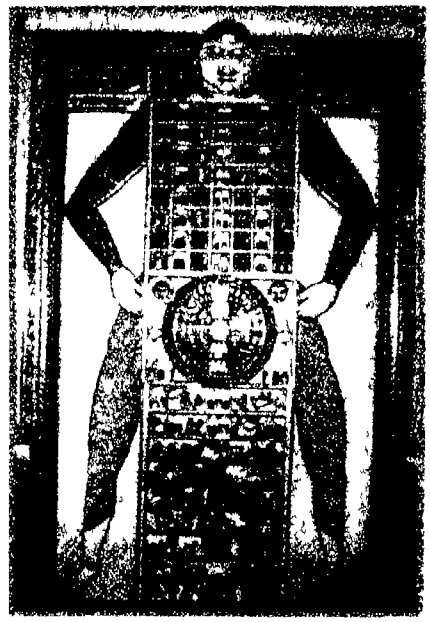

तीन लोक का वर्णन

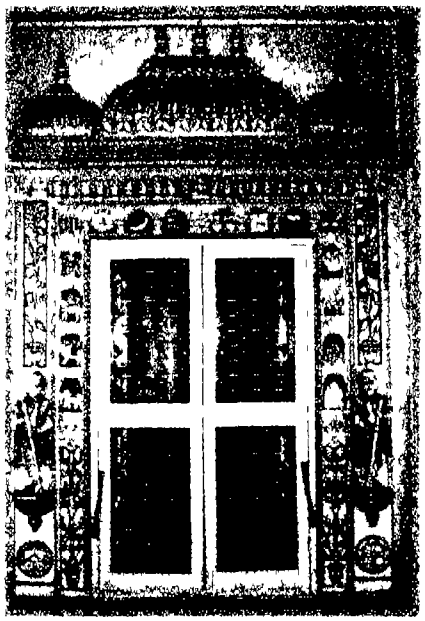

मंदिर का बाह्य मुख्य प्रवेश द्वार

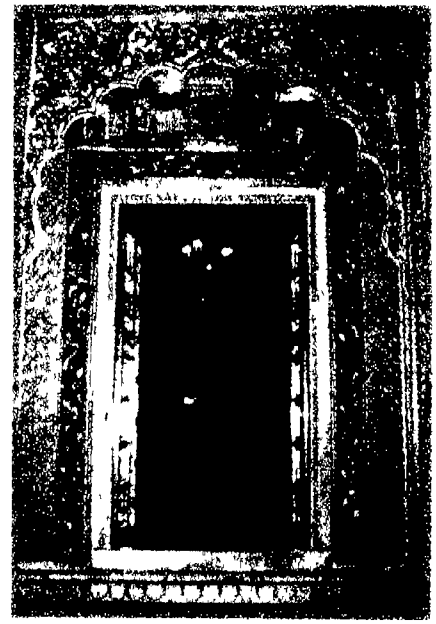

निज मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार

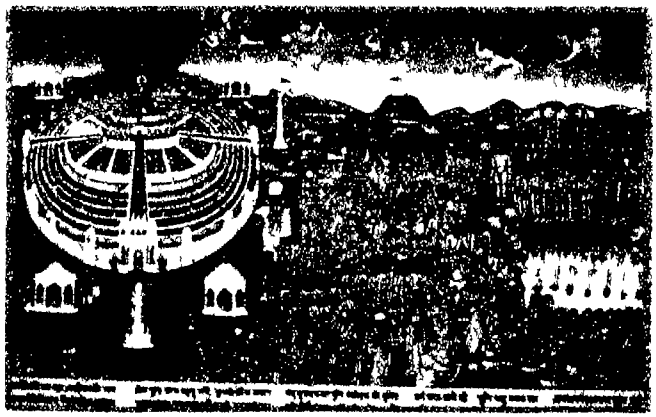

उत्कीर्ण भाव समोशरण

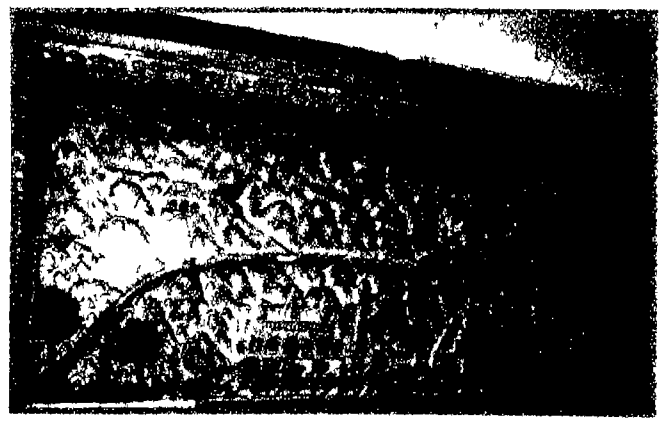

उत्कीर्ण भाव तीर्थराज सम्मेदशिखर

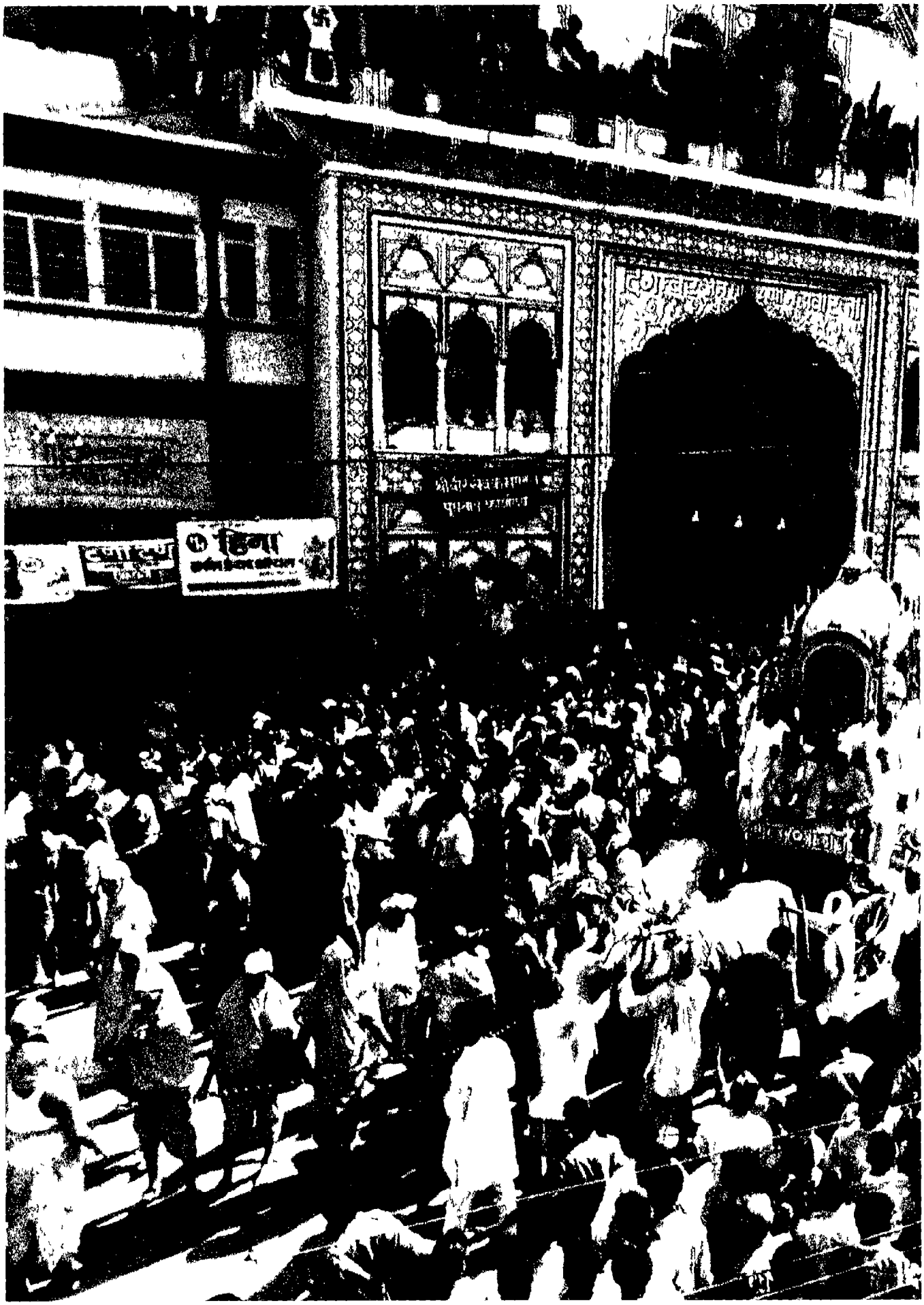

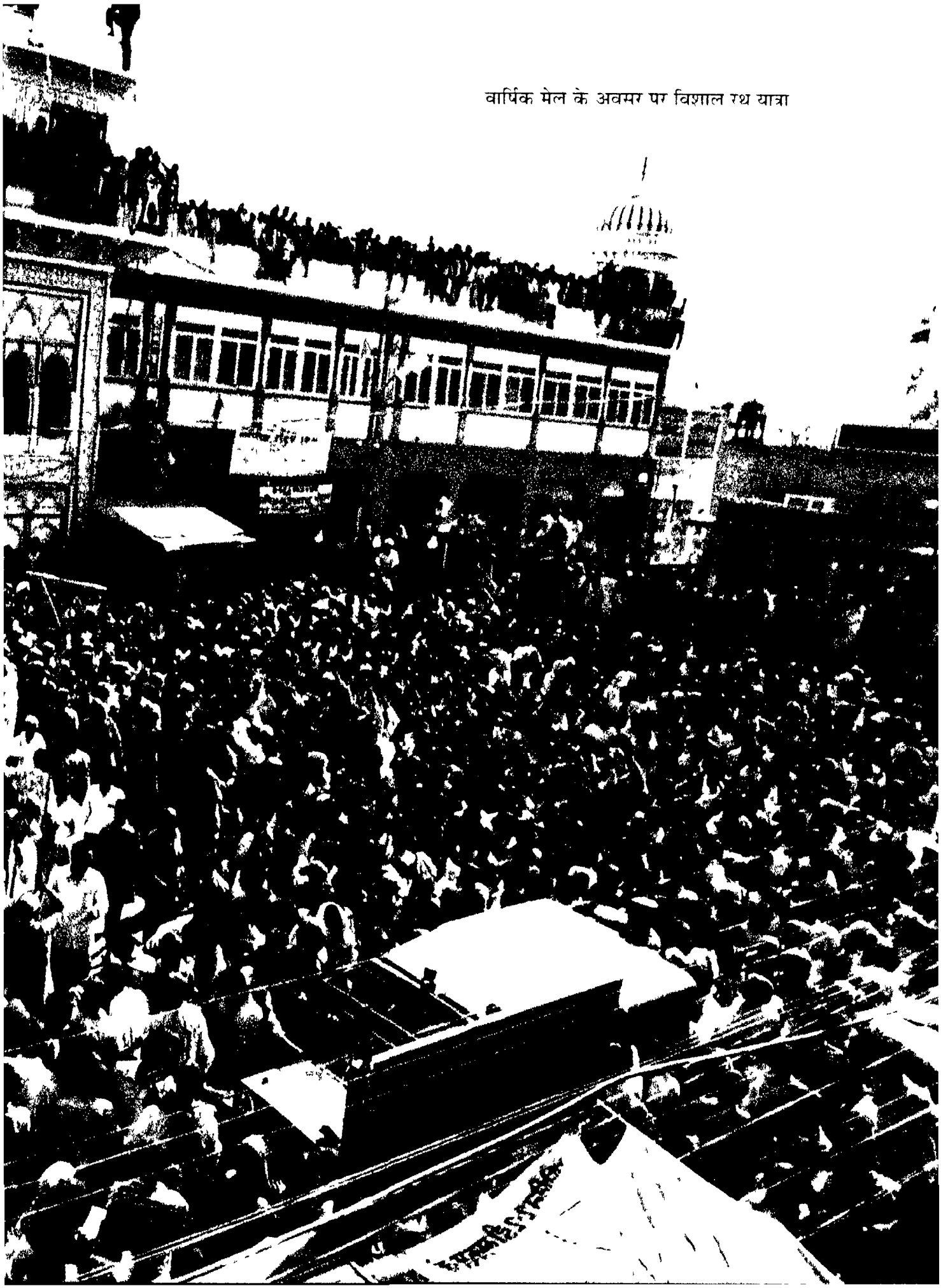

वार्षिक मेल के अवसर पर विशाल रथ यात्रा

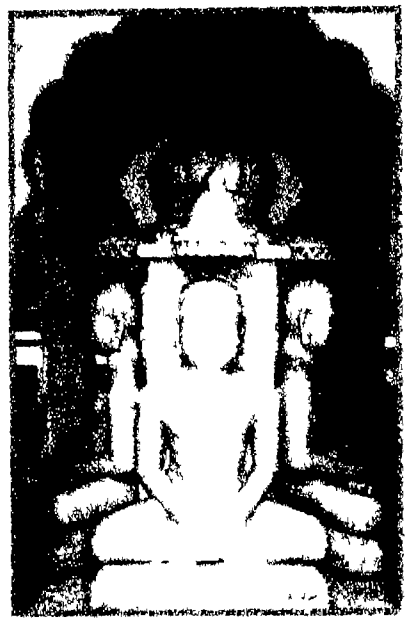

बड़ा मानस्तम्भ

कलात्मक वेदियाँ

यात्री सुविधाएँ

यात्रियों को स्टेशन लाने ले जाने हेतु बस

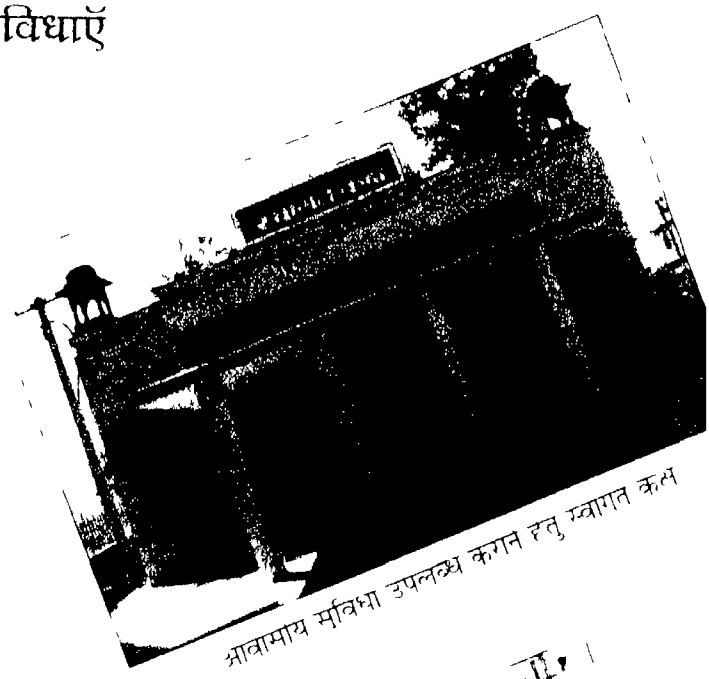

आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने हेतु स्वागत कक्ष

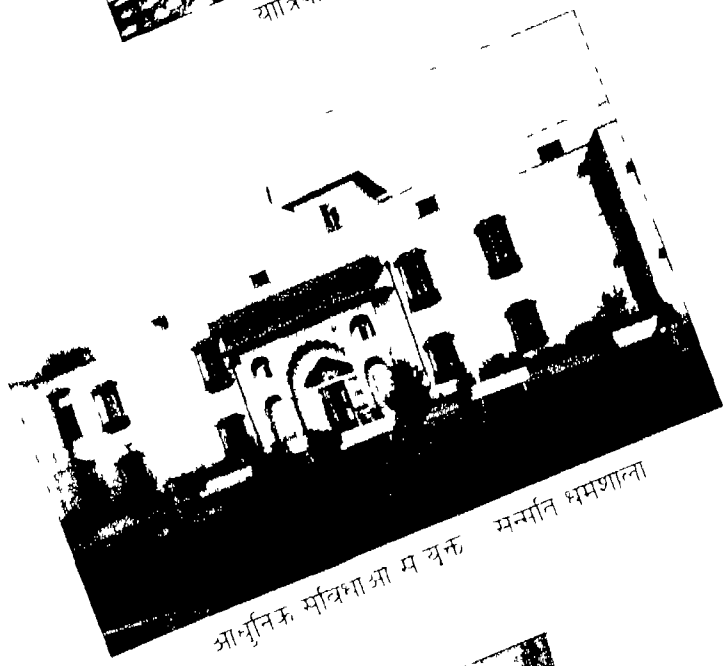

आधुनिक सुविधाओं से युक्त सन्मति धर्मशाला

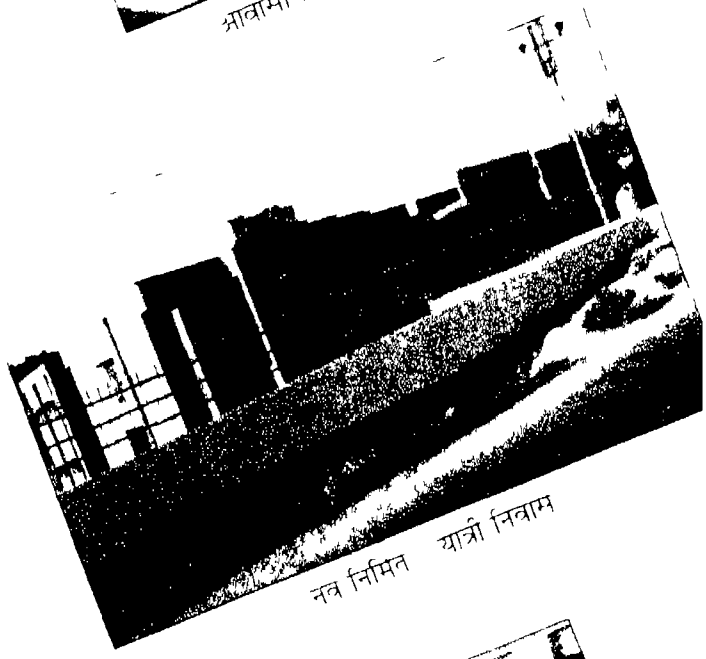

नव निर्मित यात्री निवास

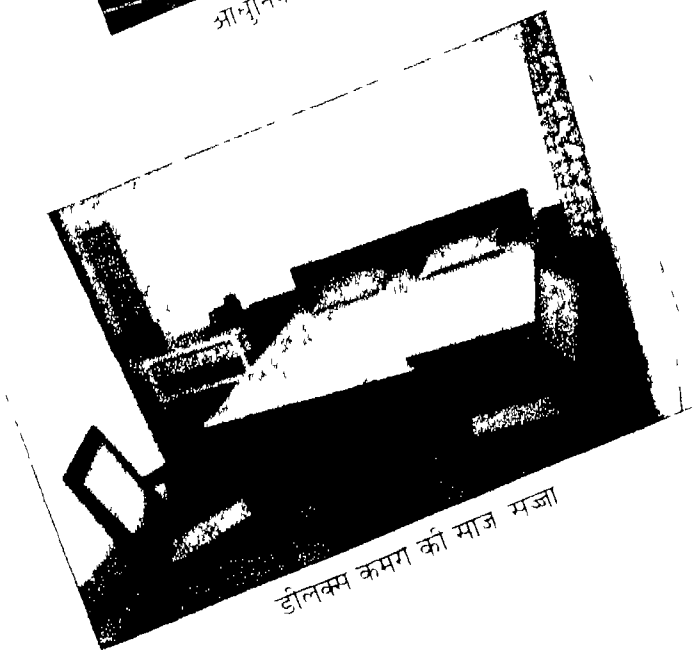

डीलक्स कमरों की साज सज्जा

अन्नपूर्णा में भोजन लेते यात्रीगण

1433

पुस्तकालय

अभिषेक

ज्ञानचन्द खिन्दूका
ज्ञानचन्द चिल्टावाला
रतनलाल छाबड़ा

नवीन कुमार बज

वल्लभ कुमार जैन

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह समिति
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
श्री महावीरजी 322 220, जिला करौली, राजस्थान

ऋग्वेद

अभिषेक स्मारिका

श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह, 1998
श्री महावीरजी के सन्दर्भ मे प्रकाशित

नवीन कुमार बज
(एसोसियेट प्रोफेसर, समाज शास्त्र,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)
प्रधान सम्पादक

बलभद्र कुमार जैन
मत्री
श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह समिति 1998 द्वारा प्रकाशित

इस स्मारिका मे प्रकाशित अधिकतर फोटोग्राफ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के सग्रह से लिये गये है। जिनके छायाकार श्री सजय जैन है। जहाँ तक सम्भव हुआ छायाकारो के नाम दिये गये है। अज्ञात स्रोतो से प्राप्त हुए चित्रो के लिये सम्पादक कृतज्ञता अभिव्यक्त करते है।

लेखो में व्यक्त विचारो से प्रधान सम्पादक/सम्पादक मण्डल प्रबन्ध समिति दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी एव समागह समिति का सहमत होना आवश्यक नही है।

आवरण
पारस भंसाली

मुद्रक
जयपुर प्रिन्टर्स प्रा लि
एम आई रोड, जयपुर

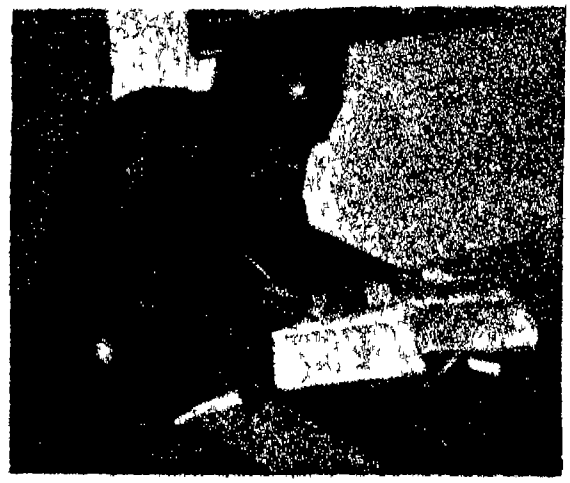

आशीर्वाद

तीर्थंकरो की श्रमण परम्परा मे तीर्थंकर महावीर चौबीसवे तीर्थंकर है। वैशाली गणराज्य मे जन्मे महावीर न जन मानस म अहिसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के सामाजिक मूल्यो की प्रतिष्ठापना कर प्राणीमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। ओजस्वी बचपन और तपस्वी यौवन के फलस्वरूप महावीर समता की भूमिका पर आरूढ़ होकर सामाजिक क्रान्ति के तेजस्वी अग्रदूत बने। प्रजातान्त्रिक दृष्टि के पोषक महावीर ने लोक को समुन्नत करने क लिए लोक भाषा प्राकृत का प्रयोग धर्म प्रचार क निमित्त किया। यह नही भूलना चाहिए कि भाषा सस्कृति का आधार होती है। भाषा को भूलना सस्कृति को भूलना होता है। महावीर की सूक्ष्म दृष्टि ने लोक भाषा के महत्व को उजागर कर विश्व इतिहास की धारा मे एक अपूर्व चिन्तन प्रस्तुत किया है। इस तरह महावीर सर्वोदय के प्रणेता है।

मुझे लिखते हुए हर्ष है कि बिहार प्रान्त के तिलक महावीर राजस्थान के श्री महावीरजी मे प्रकट हुए प्रतीत होते है। महावीर की अनेकान्त और समतामयी दृष्टि का प्रतीक श्री महावीरजी आज देश मे सामाजिक समता का ज्वलन्त उदाहरण है। तीर्थंकर महावीर की अतिशयपूर्ण प्रतिमा श्रीमहावीरजी मे आकर्षण का केन्द्र है। भूगर्भ स प्राप्त यह प्रतिमा एक हजार वर्ष प्राचीन घोषित है। इसी अलौकिक प्रतिमा को निमित्त बनाकर श्रीमहावीरजी सहस्राब्दी समारोह का आयोजन 1 जनवरी से 8 फरवरी, 1998 तक किया जा रहा है।

इस अवसर पर महावीर के जीवन-दर्शन की प्रभावना के लिए सहस्राब्दी समारोह समिति द्वारा 'अभिषेक' नामक ग्रन्थ प्रकाशित करना समयोचित है। मेरा इसके लिए शुभाशीर्वाद है।

आचार्य विद्यानन्द

(आचार्य विद्यानन्द मुनिराज)

20 दिसम्बर, 1997

ग आ. कुन्थुसागरजी

मंगल आशीर्वाद

श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र का नाम सारे जगत के अन्दर है। चादनपुर के बाबा भगवान महावीर को कौन नही जानता, जैन-जैनेतरो के अन्दर भी नाम है। सब कोई नाम लेता है। यह मूर्ति भगवान महावीर की है। जैन धर्म के अनुसार अन्तिम तीर्थकर है, महावीरजी के नाम से प्रसिद्ध है। इस मूर्ति का निर्माण 1000 वर्ष पहले हुआ, ऐसा पुरातत्व विभाग वालो का कहना है। यह मूर्ति भूगर्भ से प्राप्त हुई। मन्दिर बनाया गया, उसके बाद इस क्षेत्र की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गयी और यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जनता की अनेक मनोकामनाएँ पूरी होने लगी जैन-जैनेतर सब ही आने लगे और भगवान की भक्ति करने लगे और पुण्य कमाने लगे। इस क्षेत्र पर और भी बहुत मन्दिर बने आश्रम बने, धर्मशालाएँ बनी आदि। अभी तो यह क्षेत्र महान उन्नति पर है और विशेष उन्नति हो उसके लिये इस क्षेत्र की तरफ से भक्तो की विशेष भक्ति को देखते हुये सहस्राब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य सेठ-साहूकार इस कार्य मे रत है। महावीरजी क्षेत्र के कर्मठ कार्यकर्ता ट्रस्टीगण विशेष कार्यरत है। लोग तन, मन, धन से सेवा करने वाले है, इस सहस्राब्दी महोत्सव के सयोजना के लिये विशेष धर्म प्रभावक आचार्य विद्यानन्दजी महाराज है उनके विशेष परामर्श और सान्निध्य मे यह महोत्सव होने वाला है। लाखो की भीड़ उपस्थित होने वाली है गोमटेश सहस्राब्दी महोत्सव की तरह ही यह महोत्सव होने वाला है। दिनाक 1 फरवरी से 8 फरवरी 1998 तक यह महोत्सव होगा। जोर-शोर से प्रचार चालू है इस महोत्सव मे मूलनायक भगवान महावीर की मूर्ति का 1008 कलशो से अभिषेक होने वाला है। अनेक कार्यक्रम होंगे। इन सबको लेकर एक स्मारिका भी निकाली जा रही है बड़ी प्रसन्नता की बात है। इन सब कारणो से दिगम्बर जैन धर्म की विशेष प्रभावना होगी। यह कार्य निर्विघ्न समाप्त हो उसके लिए मेरी मगल प्रार्थना है। जिनेन्द्रदेव के चरणो मे शासन देवो द्वारा यह कार्य विशेष प्रभावनापूर्वक समाप्त होगा। जहाँ भगवान महावीर हों और धर्म के विशेष प्रभावक दिगम्बराचार्य विद्यानन्दजी महाराज हों वहा कोई विघ्न आ ही नही सकता। मेरी तो पूर्ण मगल कामना है, यह कार्य निर्विघ्न हो। स्मारिका निकालना बहुत अच्छी बात है अवश्य निकालना ही चाहिए जिससे क्षेत्र के कार्यभार व उत्सव मे हुए कार्यक्रम समाज के सामने आवें। इस स्मारिका मे अच्छे-अच्छे लेख होगे, जिससे समाज का सुधार हो, ज्ञानवृद्धि हो। इस स्मारिका के लिये मेरा मगल आशीर्वाद है।

ग. आ. कुन्थुसागर

(ग आ कुन्थुसागर)

आचार्य वर्धमान सागरजी

6 जनवरी, 1998

मंगल शुभाशीर्वाद

'जीओ और जीने दो' के प्रतिष्ठापक अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने अहिसा, अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे उदात्त सिद्धान्तों को समग्र विश्व के हितार्थ प्रतिपादन किया। सभी के परमाराध्य भगवान महावीर की मनोहारी प्रतिमा का भूगर्भ से उद्भव लगभग चार शतक पूर्व गम्भीर नदी के किनारे एक टीले से (वर्तमान प्रसिद्ध तीर्थ श्री महावीरजी के सन्निकट) एक भक्त कृषक के हाथो हुआ था। अतिशयपूर्ण रीति से प्रकट प्रभु की अनन्य श्रद्धा से प्रभावित बसवा निवासी दिगम्बर जैन श्री अमरचन्दजी बिलाला ने वैभवपूर्ण त्रिशिखर युक्त मन्दिर निर्मित कराया। आज यह मन्दिर और अतिशय क्षेत्र समस्त देशभर मे प्रसिद्धि को प्राप्त होता हुआ अपने विकसित रूप मे जन-जन का श्रद्धाभाजन बना है।

प पू १०८ आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज की दीर्घदर्शिता से समय समय पर जैन सस्कृति के प्रभावनापूर्ण उन्नयन मे निमित्तभूत अनेक विध कार्यक्रम उनकी चिन्तनधारा स प्रसवित होकर राष्ट्रीय स्तर पर साकार हुए है। उसी शृखला मे 'भक्तजन मनहारी अतिशय सम्पन्न प्रतिमा की प्रतिष्ठा को एक सहस्र वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो चुका है। उसी मगलमय अवसर पर आचार्यश्री के ही पावन सान्निध्य मे भगवान महावीर की प्रतिमा का 'सहस्राब्दी महोत्सव' कुशल मार्गदर्शन मे सम्पन्न हो रहा है, यह अत्यन्त प्रसन्नता का पावन प्रसग है। इस महोत्सव से समग्र विश्व म दिगम्बर जैन सस्कृति की प्रभावना का प्रकाश मिलेगा। और उन मनहारी प्रभु के अभिषेक स कई वर्षो स वचित भक्तजनो को अभिषेक करने का मगलमय अवसर प्राप्त होगा। हम महोत्सव समिति को निश्चित साफल्य का मगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए महोत्सव की सम्पन्नता की मगलकामना के साथ यह भावना भाते है कि इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली यह स्मारिका जैन सस्कृति के पुरातत्त्वीय-ऐतिहासिक एव सास्कृतिक वैभव का परिचय समस्त विश्व को कराने मे सक्षम हो।

आ वर्धमान सागर

(आ वर्धमान सागर)

श्री जैनमठ, शुक्रवार पेठ, कोल्हापुर
(महाराष्ट्र) भारत

31 दिसम्बर, 1997

जगद्गुरु पट्टाचार्य स्वस्तिश्री
लक्ष्मीसेन महास्वामी

मंगल शुभाशीर्वाद

विश्व प्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी म विराजमान भगवान श्री महावीर की अलौकिक प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज के पावन सान्निध्य मे दिनाक 1 फरवरी से 8 फरवरी 1998 तक विशाल एव भव्य रूप मे कर रहे है। यह गौरव की बात है।

इस समाराह के समय जो स्मारिका प्रकाशित कर रहे है, यह प्रशसनीय कार्य है। यह कार्य निर्विघ्न होने हेतु हमारा मगल आशीर्वाद एव शुभकामना है।

वर्धता जिनशासनम
इति भद्र भूयात

(महास्वामी लक्ष्मीसेन)

डी वीरेन्द्र हेग्गडे

श्री क्षेत्र धर्मस्थल
कर्नाटक

शुभकामना

यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रसन्त परमपूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी के पावन सान्निध्य मे, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मे 'श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह' आयोजित किया जा रहा है।

इसमे कोई सन्देश नही कि ऐसे धार्मिक समारोह और उत्सव समाज बन्धुओ और लोगो मे सास्कृतिक चेतना जगाने मे सहायक है।

मेरी कामना है कि इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली बृहत् स्मारिका मे विश्ववद्य भगवान महावीरजी क मानवीय धर्म के आदर्शों पर प्रकाश डालकर नई पीढी के युवा लोक का मार्गदर्शन करने वाले लेख समाविष्ट हो।

आशा है, श्री क्षेत्र धर्मस्थल के देवता श्री मजुनाथ स्वामी और श्री चन्द्रनाथ स्वामी की कृपा से यह समारोह पूर्णरूप से सफल होगा।

डी वीरेन्द्र हेग्गडे

स्तुति

(अपभ्रंश भाषा)

जय तुहुँ गइ तुहुँ मइ तुहुँ सरणु ।
तुहुँ माय वप्पु तुहुँ वन्धु-जणु ॥
तुहुँ परम-पक्खु परमत्ति-हरु ।
तुहुँ सव्वहुँ परहुँ पराहिपरु ॥

तुहुँ दसणें णाणें चरित्ते थिउ ।
तुहुँ मयल-सुरासुरेहिं णमिउ ॥
सिद्धन्तें मन्तें तुहुँ वायरणें ।
सज्झाएँ झाणें तुहुँ तवचरणें ॥

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरि हरु वि तुहुँ अण्णाण-तमाह-रिउ ।
तुहुँ सुहुमु णिरञ्जणु परमपउ तुहुँ रवि वम्भु सयम्भु सिउ ॥

– महाकवि स्वयम्भू

जय हो, तुम (मेरी) गति हो, तुम (मेरी) बुद्धि हो, तुम (मेरे) रक्षक हो, तुम (मेरे) माँ-बाप हो तुम बंधुजन हो। तुम परमपक्ष (तर्क के परम आधार) हो, तुम दुर्मति को दूर करनेवाले हो। तुम सब अन्यों से (भिन्न हो), तुम परम आत्मा हो।

तुम दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित हो। सकल सुर-असुर तुम्हें नमन करते हैं। सिद्धान्त, मन्त्र व्याकरण स्वाध्याय ध्यान और तपश्चरण में तुम हो।

अरिहन्त बुद्ध तुम हो, विष्णु और महादेव तुम हो, अज्ञानरूपी अंधकार के शत्रु तुम हो। तुम सूक्ष्म, निरंजन और मोक्ष हो, तुम सूर्य, ब्रह्मा, स्वयंभू और शिव हो।

के आर नारायणन्
राष्ट्रपति

राष्ट्रपति सचिवालय
राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली

3 फरवरी, 1998

सन्देश

महामहिम राष्ट्रपति, श्री के. आर. नारायणन्‌जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री महावीरजी समारोह समिति, राजस्थान 1 से 8 फरवरी, 1998 तक विश्व प्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे विराजमान भगवान महावीरजी की मूलनायक अलौकिक प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह' आयोजित कर रही है तथा इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी कर रही है।

राष्ट्रपतिजी इस आयोजन तथा सदर्भित प्रकाशन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करते है।

(पी पी कौशिक)
विशेष कार्य अधिकारी (हिन्दी)

अभिषेक पाठ

अर्हद्भ्यो नम. सिद्धेभ्यो नम
सुरिभ्यो नम पाठकेभ्यो नम: सर्वसाधुभ्यो नम ।
अतीतानागत वर्तमान त्रिकालगोचरानन्त
द्रव्यगुण पर्यायात्मक वस्तुपरिच्छेदक
सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्रकाद्यनेक गुणगणाधार
पच परमेष्ठिभ्यो नम ।

पुण्याह-पुण्याह प्रीयन्ता-प्रीयन्ता-प्रीयन्ता माल्य-माल्य।
ऋषभादि महित महावीर वर्धमान पर्यन्त परम तीर्थंकर देव
तत्समय पालिन्यो प्रतिहत चक्रचक्रेश्वरी प्रभृति चतुविशति शासन देवता ।
गोमुख प्रभृति-चतुविशति यक्षा
ऋष्यार्यिका श्रावक श्राविका यष्टि याजक
राजमत्रि पुरोहित सामन्तात्मरक्षक प्रभृति समस्त लोक-समूहस्य
शान्ति-वृद्धि-पुष्टि-तुष्टि-क्षेत्र-कल्याण स्वायुरारोग्यप्रदा भवन्तु
सर्व सौख्य प्रदाश्च सन्तु,
देश राष्ट्र-पुरेषु च सर्वदेव चौरारिमारीति दुर्भिक्ष विग्रह विप्लोष
दुष्टग्रह भूत शाकिनी प्रभृति शेषान्यनिष्टानि विलय यान्तु।
राजा विजयी भवतु।
प्रजा सौख्य भवतु।
राजप्रभृति सर्वलोका सतत जिनधर्म वत्सल-
पूजा दान व्रतशील महामहोत्सव पूजोद्यता भवन्तु।
चिरकाल मानन्दन्तु
यत्र स्थिता भव्य प्राणिन ससार-सागर लीलयोत्तीर्मानुसर्षं
सिद्धि सौख्यमनन्तकालमनुभवन्तु
तथा शेष प्राणिगण शरण भूत जिन शासन नन्दवित्वति स्वाहा॥

- गुणभद्र देव

इस अभिषेक मत्र मे पचपरमेष्ठी को नमस्कार करके ऋषभदेव स महावीर तक चौबीसो तीर्थंकर भगवन्ता को नमन किया गया है। सभी शासन दवताओ तथा जैन शासन के प्रति विनय रखन वाले नवग्रहो आदि की ओर स मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका चतुर्विध सघ के लिए, तथा लोक के समस्त प्राणी समूह के लिये, शान्ति, पुष्टि-तुष्टि, कल्याण दीर्घायु और आरोग्य तथा सर्व-सौख्य की कामना की गई है।

इस महामत्र मे जनपद, देश और राष्ट्र को रोगा, दुर्भिक्षो तथा हर प्रकार के विघ्ना मे मुक्ति की भावना व्यक्त की गई है। इसमे कहा गया है कि शासक जयवन्त रह, प्रजा सुखी रहे, राजा सहित सारी जनता का आचरण धर्ममय हो और लोग पूजा, दान, व्रतशील, आदि महोत्सवो म सलग्न रहे। सब सदाकाल आनन्द का अनुभव करें।

(शान्तिधारा से साभार)

कृष्णकान्त
उप राष्ट्रपति

भारत के उप-राष्ट्रपति के सचिव
नई दिल्ली

30 दिसम्बर, 1997

सन्देश

महामहिम उपराष्ट्रपतिजी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे विराजमान भगवान महावीर की प्रतिमा के फरवरी, 1998 के प्रथम सप्ताह मे आयोजित 'सहस्राब्दी समारोह' के शुभ अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

उपराष्ट्रपतिजी इस हेतु अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करते हैं।

ए. एन. तिवारी

(ए. एन तिवारी)

इन्द्रकुमार गुजराल

प्रधान मंत्री
नई दिल्ली

8 जनवरी, 1998

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे स्थित भगवान महावीर की अलौकिक प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह' दिनाक 1 फरवरी से 8 फरवरी, 1998 तक आयोजित किया जा रहा है।

भगवान महावीर ने सम्पूर्ण मानव जाति को सत्य, अहिंसा, करुणा, मानवता की सेवा और सहिष्णुता का मार्ग दिखाया। राष्ट्रीय एकता, सौहार्द एव भाईचारे की भावना को पुष्ट करने के लिए उनके सदेश आज के युग मे अत्यन्त ही प्रासगिक हैं।

मै इस समारोह की सफलता की कामना करता हूँ तथा इस अवसर पर अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

(इन्द्रकुमार गुजराल)

बलिराम भगत

राज्यपाल
राज भवन, जयपुर

2 जनवरी, 1998

सन्देश

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह समिति द्वारा 1 से 8 फरवरी, 1998 तक दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में विराजमान भगवान महावीर की अलौकिक प्रतिमा का सहस्राब्दी समारोह आचार्य श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य मे आयोजन का सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

भगवान श्री महावीर के सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह की शिक्षा एव उपदेश वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव के सुखमय जीवन के लिए बहुत उपयोगी हैं। हमें इन पर अमल कर जीवन मे आत्मसात् करना चाहिये।

मुझे विश्वास है कि समिति द्वारा इस मौके पर प्रकाश्य स्मारिका में भगवान महावीर के जीवन दर्शन पर आधारित उपयोगी सामग्री प्रकाशित की जायेगी।

मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाये।

(बलिराम भगत)

भैरोंसिंह शेखावत

मुख्य मंत्री
राजस्थान, जयपुर

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह का 1 से 8 फरवरी, 1998 को दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी मे आचार्य श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य में आयोजन एवं इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

समाज में अध्यात्म के प्रति चेतना जागृत करने मे इस प्रकार के आयोजन महत्वपूर्ण है तथा इससे हमारी दार्शनिक धारा को व्यापक बनाने का मार्ग प्रशस्त होता है। यह शुभ है कि सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर मानस्तम्भ मे प्रतिमा मस्तकाभिषेक, सहस्राष्ट-घटाभिषेक, ध्यान कन्द्र का लोकार्पण आदि आध्यात्मिक एव सास्कृतिक अनुष्ठान के आयोजन सम्मिलित है।

मुझे विश्वास है कि आयोज्य समस्त अनुष्ठान आध्यात्मिक आस्था को व्यापक बनाने मे सहायक होगे।

मै आचार्यश्री को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए आयोज्य अनुष्ठानो की सफलता के लिए शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(भैरोंसिंह शेखावत)

हरिशंकर भाभड़ा

उप मुख्य मंत्री
राजस्थान जयपुर

24 दिसम्बर 1997

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य मे 1 से 8 फरवरी, 1998 तक दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे भगवान महावीर की प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह' का आयोजन तथा इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

भगवान श्री महावीर के बताये सिद्धान्त एवं आदर्श आज सामयिक है। जन-जन की आस्था के केन्द्र श्री महावीरजी मे आयोजित इस समारोह के माध्यम से निश्चित रूप से भगवान श्री महावीर के जीवन दर्शन एव आदर्शो तथा अहिंसा के सिद्धान्त को अंगीकार करने का मार्ग प्रशस्त होगा।

मुझे विश्वास है कि इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका उपयोगी, शिक्षाप्रद एव उद्देश्यपूर्ण सामग्री से युक्त एक संग्रहणीय ग्रन्थ साबित होगी।

स्मारिका प्रकाशन एव समारोह के सफल आयोजन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(हरिशंकर भाभड़ा)

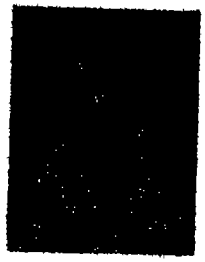

भँवरलाल शर्मा

मंत्री स्वायत्त शासन, नगरीय विकास एवं
आवासन जन स्वा अभियांत्रिकी एवं
खेलकूद व भूजल विभाग
राजस्थान, जयपुर

26 दिसम्बर, 1997

सन्देश

यह बड़े गौरव की बात है कि अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में विराजमान भगवान महावीर की मूल नायक अलौकिक प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह' आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज के सान्निध्य में आयोजित किया जा रहा है।

वस्तुत भगवान महावीर के पाँच महाव्रत और स्याद्वाद जैसे सिद्धान्त आज भी न केवल प्रासंगिक है अपितु मानव जाति के कल्याण के लिए परमहितकारी भी है। यदि हम उनके बताये जीवनादर्शों पर चले तो अनेक कष्टों से मुक्ति मिल सकती है।

मुझे इस बात की भी हार्दिक प्रसन्नता है कि आपने भगवान महावीर के जीवन दर्शन, भगवान महावीर की प्रतिमा का भूगर्भ से प्राकट्य तथा अतिशय क्षेत्र की गतिविधियों को रेखांकित करने के अतिरिक्त समाज एवं संस्कृति, पुरातत्व एवं इतिहास तथा साहित्य और कला-विषयक सामग्री देने के लिए एक स्मारिका प्रकाशित करने का निर्णय भी लिया है। जन-जन को हमारी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराने का आपका यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय है।

मैं आपके आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

(भँवरलाल शर्मा)

ललित किशोर चतुर्वेदी

मन्त्री
सार्वजनिक निर्माण विभाग
राजस्थान जयपुर

13 जनवरी, 1998

सन्देश

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि श्री महावीरजी मे विराजमान भगवान महावीर की मूलनायक आलौकिक प्रतिमा का 'सहस्राब्दी समारोह' 1 फरवरी से 8 फरवरी, 1998 तक राज्य के पूर्वांचल मे दिगम्बर अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे किया जा रहा है। जैन मत एव दर्शन का राजस्थान पर व्यापक प्रभाव रहा है और दीर्घकाल से राजस्थान के विकास मे जैन मतावलम्बियो-बंधुओ ने अपना योगदान किया है। यहाँ की सस्कृति, जीवन-शैली, स्थापत्य सभी मे विभिन्न तीर्थंकरो की विचारधाराये परिलक्षित होती हैं। भगवान श्री महावीर के अतिशय क्षेत्र मे सहस्राब्दी के अवसर पर जो स्मारिका प्रकाशित की जा रही है वह इस अवसर के अनुकूल होगी और देश व समाज को परस्पर स्नेह और समता मे आबद्ध करने वाली होगी। इस भावना के साथ आपके इस कार्यक्रम एव इस अवसर पर प्रकाशित की जाने वाली स्मारिका की मै हृदय के अन्त स्थल से शुभकामना करता हूँ।

(ललित किशोर चतुर्वेदी)

साहू अशोककुमार जैन

अध्यक्ष
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी
नई दिल्ली

सन्देश

सर्वप्रथम मैं परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के चरणों में अपनी विनयाजलि अर्पित करते हुए नमोऽस्तु करता हूँ कि उनकी दिव्यदृष्टि ने एक बार फिर राष्ट्रीय स्तर पर श्रमण-संस्कृति की प्रभावना का महान उपक्रम किया है। भगवान महावीर का 25 सौवाँ निर्वाण महोत्सव, श्रवणबेलगोला में भगवान गोमटेश्वर की मूर्ति के निर्माण का सहस्राब्दी समारोह, बावनगजा में भगवान आदिनाथ की विशाल प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक, गोम्मटगिरी में प्रतिष्ठा महोत्सव और अब विख्यात अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में भगवान महावीर की अत्यन्त मनोज्ञ मूर्ति के निर्माण को एक हजार वर्ष पूर्ण होने का महामहोत्सव। श्रमण-संस्कृति की धारा अजस्र रूप से उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक न केवल भारत भूमि को आप्लावित करती रही अपितु उसके पीयूष प्रवाह से विश्व भी सिंचित हो इसी उद्देश्य को लेकर आचार्यश्री ने इस आयोजन की प्रेरणा दी। मैं उन्हें शत-शत वन्दन करता हूँ।

भगवान महावीर के सिद्धान्त कालजयी है। आज भी विश्व हिंसा, आतंकवाद और जर्जरित होते मूल्यों के जिस झंझावात में फँसा है, उससे मुक्ति पानी है तो विश्व को भगवान महावीर की शरण में जाना पड़ेगा। ऐसे समय में इस महोत्सव की अपनी उपादेयता और महत्ता है। मैं श्री महावीरजी तीर्थक्षेत्र कमेटी के पदाधिकारियों, कार्यकर्त्ताओं और भावक बन्धुओं को हार्दिक बधाई देता हूँ जो आचार्यश्री के सान्निध्य में उनकी परिकल्पना को साकार कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली यह स्मारिका भगवान महावीर की वाणी जन-जन तक प्रसारित करने वाली सिद्ध होगी। इस सहस्राब्दी समारोह की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

परमपूज्य गुरुदेव के चरणों में पुनः विनयाजलि एवं नमोऽस्तु।

कृते (अशोककुमार जैन)

सम्पादकीय

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर यह स्मारिका 'अभिषेक' पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यन्त हर्ष है। आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज की प्रेरणा एव मार्गदर्शन मे सफल हो रहे सहस्राब्दी समारोह के आयोजन की भाँति 'अभिषेक' का यह प्रकाशन भी उन्हीं के आशीर्वाद का सुफल है।

चाँदनपुर के महावीर का 1008 कलशो से अभिषेक करने और देखने का सौभाग्य इस समारोह मे जनता को मिल रहा है। यह जन-जन के महान पुण्योदय का ही परिणाम है एव तन-मन को निर्मल कर जीवन मे अभ्युदय का द्वार खोलने वाला है। चाँदनपुर के शान्त, तेजोमूर्ति, दिगम्बर 'बाबा' का दर्शन ही भक्त के मन को बाँध लेता है और वह घन्टो टकटकी लगाये उस आनन्द मे खो जाता है, बरबस आँखो से आनन्दाश्रु बहने लगते है, अग-अग रोमाचित हो उठता है, तो अभिषेक करने और देखने का आनन्द तो वर्णनातीत है ही।

आगम ग्रन्थो मे नन्दीश्वर, पचमरू आदि के अकृत्रिम जिनबिम्बो का विद्याधर आदि द्वारा अभिषेक, पूजन करने का वर्णन है। हम सामान्यजन कृत्रिम जिनबिम्बो का अभिषेक-पूजन कर उपासक/श्रावक धर्म के एक आवश्यक पक्ष का पालन करते है। दूसरा पक्ष जिनवाणी का श्रवण-मनन अध्ययन है। इस हेतु देव, मनुष्य, तीर्थंकरो के समवसरण मे जाकर भगवान की दिव्यध्वनि का श्रवण करते है और अपने तन मन को ज्ञान के आलोक मे अभिषिक्त करते है अपना अज्ञान अधकार मिटाते है। समवसरण म भगवान का अभिषेक नही होता उपस्थित जन-समुदाय उनकी स्याद्वाद गगा मे नहाता है। मानव निर्मित मन्दिर, अकृत्रिम चैत्यालय और समवसरण दोनो के लाभ को अपने म समेटकर अभिषेक, पूजन और जिनवाणी के श्रवण पठन का अवसर मानव को प्रदान करते है।

अस्तु, श्री महावीरजी के सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर भगवान महावीर के अभिषेक के साथ जिनवाणी के श्रवण मनन हेतु आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के प्रवचन, विशिष्ट विद्वानो के भाषण आदि के साथ 'अभिषेक' स्मारिका के प्रकाशन की भी उपादेयता स्पष्ट है।

इस स्मारिका म हमने पाठकगण के सम्मुख अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के विकास, विस्तार के परिचय के साथ जैनविद्या के आधुनिक सदर्भ मे महत्वपूर्ण पक्षो की एक झलक अधिकारी विद्वानो से लेखादि प्राप्त कर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। प्रकाशित सामग्री को 6 खण्डो मे विभक्त किया गया है (1) भगवान श्री महावीर जीवन सिद्धान्त एव अतिशय (2) जिनमन्दिर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एव प्रभावना (3) धर्म दर्शन एव परम्परा (4) पुराण, इतिहास एव पुरातत्व (5) भाषा साहित्य एव अन्य (6) Mahavir Life and Philosophy।

जिनेन्द्र की वाणी बीजाक्षर रूप होती है। जैसे भूमि मे बीज का वपन होता है और परिणामत पेड खडा हो जाता है, उसी प्रकार उस बीजाक्षर रूप/सूत्र रूप वाणी को दिन मे सुनकर रात्रि मे गौतम गणधर को 11 अग 14 पूर्व का सकल श्रुतज्ञान उद्घाटित हो गया था, वे श्रुत केवली हो गये थे। यह सकल श्रुत बीजाक्षरो मे गर्भित था, स्वाति नक्षत्र की बूँद सीप म गिर कर मोती बन जाती है वैसे ही पात्र गौतम को हृदयगम हो सूत्ररूप वाणी ने सकल श्रुत रूप परिणति को प्राप्त किया था। आचार्य अमृतचन्द्र अपने लघुतत्त्व स्फोट ग्रन्थ मे कहते है "निश्चय मे अपने आत्म वैभव से अपरिचित तेज वाले पशु को जो आप है वह ही प्रतिभासित होते हैं, परन्तु किसी विज्ञान घन की दृष्टि म आप एक होकर भी अनन्तता धारण करते हैं।" प्रश्न यह है कि क्या 'अभिषेक' के विभिन्न लेखो म सूत्ररूप मे आगमी चर्चा हमारे लिये उतनी मात्र ही रहती है या हम म गहराई और विस्तार पाती है, हमे ज्ञान तेज से आलोकित करती है रत्नत्रय मे सुवासित करती है। आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज कहते है कि दीपक को कहने की आवश्यकता नही कि मै दीपक हूँ मुझमे प्रकाश है, उसकी प्रकाशमयता के जड-चेतन सभी साक्षी बनते है, स्वीकार करते है, प्रभावित होते है ('स्व-पर का ज्ञान समता की खान' निर्ग्रन्थ प्रवचन) इसी प्रकार ज्ञानमय हमारे हो जाने पर स्वत चारो ओर तदनुरूप उसकी स्वीकृति/प्रभाव क्यो न होगा/ दीपकपन का नाटक दीपक नही करता, वह अन्दर तक पूर्णरूप से प्रकाशमय होता है, प्रकाश को मात्र ऊपर से नही ओढता। पर बहिमुखी मानव ज्ञानचर्चा को परोपदेश तक सीमित कर लेता है और स्वय उससे तन्मय नही होता। पर से उपदेश पाने और पर को उपदेश देने की इस बाह्य मात्र चेष्टा को आचार्य पूज्यपाद समाधितंत्र के 29वे पद मे उन्मत्त की चेष्टा कहते है। परिणामत अज्ञान जनित कषाय क्लेश वह भोगता रहता है, पापो से विरत नहीं हो पाता। उसकी देह ही उसकी इस अज्ञानमयता की साक्षी जरा-जीर्ण, रोग ग्रसित होकर देती रहती है, बाह्य प्रतिकूलताओ के

काँटे उसके जीवन-पथ पर उसी अज्ञानमयता की साक्षी बनते है और चतुर्गति भ्रमण की विकरालता भी भवान्तर मे उसके लिये मुँह बाये खड़ी रहती है। ऐसे अज्ञानमय बने मानव के द्वारा परोपदेश रूप मे मुख से उच्चारित जिनवाणी के सूत्र शब्द मात्र रह जाते हैं अर्थ खो देते है। पर ज्ञानमयता मे तन्मय हुए के मुख से अनुच्चारित भी, अशब्द ही व वातावरण मे तरगायित हो जड-चेतन को नया जीवन प्राप्त करने मे सहायक बनते रहते है। उनके प्रभाव क्षेत्र मे जन्मजात बैरी साँप और नेवला भी बैर छोड शाति के साथ-साथ बैठ जाते है।

आज देश और दुनिया हिसा एव घृणा की आग से जल रहे है। जिनवाणी ही इसका एक मात्र उपचार है। पर, मानव हृदय के रूपान्तरण पर ही उसकी कारगरता अवलम्बित है। मुद्रित अक्षरो और वाणी से बोली गयी जिनवाणी तो द्रव्य जिनवाणी है और अवलम्बन मात्र है। मानव हृदय मे भाव जिनवाणी का नित्यवास है इसके उद्घाटन से ही जड चेतन मे सम्यक जीवन का स्फुरण सहज होने का वस्तु विधान है।

अज्ञानमय बने मानव की मति कुमति होती है। सदासुखजी कहते है कि कुमति बिना सिखाये ही पशुओ के ताडन, मारण के यत्र बनाने मे कुशल होती है। आज मानव देह हेतु पशु हिसा एव लोभादि के वशीभूत हो मानव की हिसा अनर्गल हो कर रहा है। सुमति होते यह सब करने की आवश्यकता ही नही है। इसकी उपस्थिति मे देह के आरोग्य का ही सहज नियम है, चारो ओर अनुपद्रव ही जीवन का विधान है। जिनवाणी 'सन्मति' की वाणी है। इसे सुनकर समझकर हम कुमति द्वारा चारो ओर व्यापक बनाये जा रहे इस वर्तमान हिसक विद्रूपता से अपने को उबार सके और दु ख दुर्गतियो से स्वय को बचा सके, अन्यो के बचने मे निमित्त बन सके 'अभिषेक' इस हेतु ही प्रकाशित है।

अभिषेक अकृत्रिम निर्दोष जिनबिम्बो की विधा है, मुक्त होने वाले तथा मुक्ति का मार्ग बताने वाले तीर्थंकरो के जन्माभिषेक की विधा है तथा केवलज्ञान होने पर अकम्प/अविचलित उपयोगवान अरहतो और अरागी सिद्धो का उनके अनन्त ज्ञानादि गुणो द्वारा धारा-प्रवाह अभिषेक की तात्विक विधा है और है यह धर्म अधर्म आकाश काल तथा जगत के अणु-अणु की अपने गुण वैभव की नित्य धारा मे बहते रहने नहाते रहने की अद्भुत विधा जिसमे अन्तर्दृष्टि प्राप्त होने पर मानव आचार्य कुन्दकुन्द के साथ कह उठता है 'सव्वत्थ सुन्दरा लोए' लोक मे सब कुछ सुन्दर है। राग शोक अभाव की कलुषता रूप कर्म काट का मानव रचना न करे प्रकरण रूप रह रहा उसमे ऊपर उठकर इस नित्य सुन्दर स्व पर रूप मुक्त जगत के दर्शन अवलोकन और उसमे होने वाले सुख सवर्द्धन से मानव सत्पाद हो सके साधक जीवन जी सके यह ही 'अभिषेक' स्मारिका का एव सकल जिनवाणी का प्रयोजन है।

जगत के वस्तु विधान मे यह कुछ अटपटा ही है कि धर्म अधर्म, आकाश काल-अरूपी द्रव्य तो सदा शुद्ध है और अपने शुद्ध गुण वैभव से अकम्प रह निरन्तर अभिषिक्त हो रहे है और जीव भी उसी अरूपी जाति का होकर भी ससार की दु ख दुर्गतियो की आग मे झुलस रहा है। वे जड है यह चेतन है। जड होने से यदि आकाशादि अशुद्ध भी होते तो उन्हे उनकी अशुद्धि पीडादायक नही होती। पर जीव चेतन होने से अशुद्धि की चतुर्गति पचपरावर्तन की कारा मे छटपटाता है, भारी त्रास पाता है उससे छूटना चाहता है। अपने गुणो मे आये विकार अर्थात् दुर्गुणो की धारासार बरसती लपटो से, आग मे वह झुलस रहा है। इस बरसने को कोइ रोक नही सकता। या तो ज्ञान-दर्शन के उजालो मे नहाओ अथवा अज्ञान अदर्शन के अँधेरो मे घुटो, या तो अनन्त बल-वीर्य के उद्भव से पुलकित रहो अथवा दुर्बलता से जीना दूभर कर लो। चेतनावान जीव को चुनाव करना होगा ज्ञान धारा और कर्म धारा मे गुण वैभव से अभिषिक्त होने और दुर्गुण, गुणाल्पता मे जलने-घुटने मे। प्रथम तो अकृत्रिम सहज है उतना ही सहज जितना आकाश के लिये आकाशपना। द्वितीय असहज कृत्रिम है, अपनी चेतन सामर्थ्य के दुरुपयोग से ज्ञानावरणादि अजीव कर्म कारा खडी कर जीव उसकी रचना करता है और फिर छटपटाता है।

जड आकाश को उपदेश की आवश्यकता नहीं है कि अपने आकाशत्व से हटो मत उसी मे डटे रहो। पर जीव को राग-द्वेष, चिन्ता भय हिसा-परिग्रह आदि भाँति-भाँति के कृत्रिम अजीवत्व से अपने को बाहर निकाल अकृत्रिम ज्ञानादि गुण वैभव से परिपूर्ण नित्य जीवत्व को लौट चलने और उसी मे स्थिर हो जमने का तीर्थंकरो का उद्घोष है आगम की पुकार है और 'अभिषेक' स्मारिका का अँगुली निर्देश है।

ज्ञानचन्द खिन्दूका **रतनलाल छाबड़ा** **ज्ञानचन्द बिल्टीवाला**
सम्पादक मण्डल

नवीनकुमार बज
प्रधान सम्पादक

आभार

परम् पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज के पावन सान्निध्य मे आयोजित ''श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह'' की स्मृति को चिरस्मरणीय रखने व भगवान महावीर के उपदेशो को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से प्रकाशित स्मारिका 'अभिषेक' का यह पुष्प आपको समर्पित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है। यह चाँदनपुर वाले बाबा की असीम कृपा व आचार्यश्री की उत्साहवर्द्धक प्रेरणा व मार्गदर्शन का ही प्रतिफल है कि 'अभिषेक' का यह अंक समय पर प्रकाशित हो सका है।

'अभिषेक' के विभिन्न खण्डो मे प्रकाशित सामग्री ही इस अंक का सर्वस्व है, जिसका श्रेय हमारे सभी मूर्धन्य विद्वानों एवं लेखकों को जाता है, जिन्होंने अल्प समय की सूचना पर अपनी अमूल्य मौलिक रचनाएँ प्रकाशनार्थ उपलब्ध कराकर हमे उपकृत किया है। मै उन सबके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। कतिपय लेखको की रचनाएँ स्मारिका मे स्थानाभाव एवं समय की सीमाओ के कारण सम्मिलित नहीं की जा सकी, जिसका हमे खेद है।

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह समिति के सभी सदस्यगण तथा विशेष रूप से समिति के कार्याध्यक्ष व समारोह के प्रमुख सूत्रधार श्री नरेश कुमार सेठी का मै विशेष आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिनके सकारात्मक सुझावो व मार्गदर्शन बिना 'अभिषेक' के लिये आवश्यक सामग्री जुटा पाना सम्भव नही था। दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के सभी पदाधिकारीगणो व सदस्यगणो का भी धन्यवाद ज्ञापन करना अपना कर्तव्य मानता हूँ जिन्होंने श्री महावीरजी क्षेत्र के सम्बन्ध मे सामग्री उपलब्ध कराने मे सहयोग प्रदान किया है। सदस्यो के चित्र प्राप्त करने मे क्षेत्र कमेटी के उपाध्यक्ष श्री भँवरलाल अजमेरा द्वारा की गई पहल के लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

जयपुर प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड के श्री प्रमोद जैन का भी मै विशेष आभारी हूँ जिनकी पूरी निष्ठा व श्रम से अल्पसमय मे स्मारिका का समय पर प्रकाशन सम्भव हो पाया है।

सभी विज्ञापनदाताओ द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग के लिये स्मारिका समिति अपना आभार व्यक्त करती है। वे सभी साथी विशेष रूप मे श्री बलभद्र कुमार जैन, श्री नानगराम जैन, श्री महेन्द्रकुमार पाटनी तथा श्री पदम सेठी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने विज्ञापन संकलन मे सहयोग प्रदान किया है।

सम्पादक मण्डल के मेरे सहयोगी वरिष्ठ विद्वान् श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका, श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला व श्री रतनलाल छाबड़ा के प्रति आभार व्यक्त करना मेरे लिये मात्र औपचारिकता होगी क्योंकि उनके सक्रिय सहयोग व मार्गदर्शन के बिना तो इस अंक का प्रकाशन कदापि सम्भव नहीं था। वे सभी साधुवाद के पात्र है।

अन्त मे उन सभी सहयोगियो, अधिकारियो व कर्मचारियो के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनका मुझे सहयोग मिला है पर स्थानाभाव के कारण उनका यहाँ नामोल्लेख करना सभव नही है।

जय महावीर !

नवीन कुमार बज

(नवीन कुमार बज)
प्रधान सम्पादक

श्री महावीरजी
सहस्राब्दी समारोह

कार्याध्यक्ष की कलम से

साम्प्रदायिक समन्वय एवं धार्मिक सहिष्णुता के वास्तविक प्रतीक के रूप मे राजस्थान के करौली जिले के हिण्डौन उपखण्ड मे श्री महावीरजी एक ऐसा पावन तीर्थ-स्थल है जहाँ लगभग 400 वर्ष पूर्व भू-गर्भ से प्रकट हुई भगवान महावीर की मूँगावर्णीय दिगम्बर जैन प्रतिमा विराजित है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज का जब सन् 1991 मे श्री महावीरजी मे मगल आगमन हुआ तब उन्होने अपने उद्बोधन मे यह भाव व्यक्त किए थे कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे जो चार शताब्दियो से विश्व के कौने-कौने मे तीर्थंकर भगवान महावीर के सदेश को पहुँचाने मे प्रभावी कार्य कर रहा है और जो देश के धर्मानुयायियो को एकता व अखण्डता के सूत्र मे निर्बाध रूप से बाँधे हुए है, तीर्थंकर भगवान महावीर की अतिशयकारी प्रतिमा का अखिल भारतीय स्तर पर कोई ऐसा भव्य समारोह आयोजित किया जाना चाहिए जो आगे आने वाली सहस्त्रो शताब्दियो तक श्रमण सस्कृति का अक्षुण्ण बनाय रख सके।

आचार्यश्री के इस प्रेरणास्पद उद्बोधन पर अतिशय क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी ने गम्भीरता से विचार किया और इस प्रतिमा के निर्माण काल की जानकारी विशेषज्ञो से प्राप्त की। आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के डायरक्टर जनरल डॉ एम सी जोशी ने पूर्ण वैज्ञानिक ढग से जाँच करने के उपरान्त भगवान महावीर की अतिशयकारी प्रतिमा को 11वी शताब्दी का होना बताया। ऐसा प्रमाण-पत्र प्राप्त होने पर आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज से प्रेरणा एव आशीर्वाद प्राप्त कर प्रबन्धकारिणी कमेटी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी ने भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमा का सहस्त्राब्दी समारोह दिनाक 1 फरवरी से 8 फरवरी 1998 तक आयोजित करने का निर्णय लिया। श्रावक समाज मे मूलनायक प्रतिमा के अभिषेक की प्रबल भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए विशेषज्ञो की राय प्राप्त कर बहुत ही सीमित एव नियन्त्रित रूप मे केवल सहस्त्राब्दी समारोह की अवधि मे कुल 1008 कलशो से अभिषेक का भी निर्णय लिया गया। सहस्त्राब्दी समारोह की अवधि मे भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमा का अभिषेक कर धर्मलाभ अर्जित करने का श्रावक समाज के लिए यह दुर्लभ अवसर होगा।

समारोह अवधि मे धार्मिक अनुष्ठानो के साथ साथ अनेक सामाजिक एव सास्कृतिक कार्यक्रमो के आयोजन भी किये जा रहे है। श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह समिति ने सहस्त्राब्दी समारोह के शुभावसर पर 'अभिषेक' नामक एक स्मारिका प्रकाशित करने का निर्णय लिया है, जिसमे सहस्त्राब्दी समारोह तथा दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी के साथ-साथ जैनधर्म दर्शन और सस्कृति एव इतिहास की ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जा रही है जो पाठक वृन्द को भौतिकवादी आकर्षणो से दूर रखकर भगवान महावीर के बताये सत्य एव अहिंसा के मार्ग पर चलने का मार्ग प्रशस्त करेगी।

इस उद्देश्य की पूर्ति मे आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज के शुभाशीर्वाद से राजस्थान विश्वविद्यालय मे समाज शास्त्र के एसोसियेट प्रोफेसर श्री नवीनकुमार बज के प्रधान सम्पादकत्व मे श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका, श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला एव श्री रतनलाल छाबडा का एक सम्पादक मण्डल गठित कर कार्य प्रारम्भ कराया गया। स्मारिका प्रकाशन एक अत्यन्त श्रम साध्य कार्य है। श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह की पावन स्मृति को चिर-स्मरणीय बनाने के लिए स्मारिका मे भगवान महावीर की अलौकिक प्रतिमा एव दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के सम्बन्ध मे बहुमूल्य सामग्री के साथ साथ भगवान महावीर के जीवन-दर्शन, समाज व सस्कृति, इतिहास एव साहित्य आदि विषयो पर देश के सुप्रसिद्ध विद्वानो, मनीषियो एव लेखको के शोधपूर्ण

लेख एव रचनाएँ सम्मिलित की गई है। यह पहला अवसर है कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभी सदस्यो के चित्र एव क्षेत्र की गतिविधियो का विशद् विवरण स्मारिका मे सम्मिलित किया गया है। इस सम्पूर्ण कार्य के लिए 'अभिषेक' के प्रधान सम्पादक प्रो नवीनकुमार बज एव सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यगण साधुवाद के पात्र है। स्मारिका प्रकाशन के गुरुतर भार को वहन करने के लिए स्मारिका समिति के सदस्यो का जितना आभार प्रकट किया जावे, कम है। मैं स्मारिका के प्रधान सम्पादक प्रो नवीनकुमार बज का विशेष आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होने स्मारिका सम्पादन अवधि मे अपनी माताश्री के देहावसान के असीमित दु ख को भूलकर इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्भालते हुए पूर्ण निष्ठा के साथ उन्हे सौपे गये कार्य को सम्पन्न कराने मे सफलता प्राप्त की। स्मारिका के सभी सहयोगियो का, विज्ञापनदाताओ का, विद्वान् लेखको व कवियो का भी मै हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने इस कार्य के लिए अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

अपनी कलम को विराम देने से पूर्व मैं उन सभी महानुभावो का, जिन्होने सहस्राब्दी समारोह के विभिन्न कार्यक्रमो मे मुझे प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप म सहयाग दिया है हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

भगवान महावीर का सदेश जन-जन तक पहुँचाने मे स्मारिका के प्रकाशन का प्रयास सफल हो पावे, इसी अपेक्षा के साथ।

जय महावीर।

नरेश कुमार सेठी
कार्याध्यक्ष
श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह समिति

वीर सेवा मंदिर पु...

श्री महावीराष्टकं स्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचित ।
सम भाति ध्रौव्य-व्यय-जनिलसन्तोऽन्तरहिता ॥
जगत्साक्षी मार्गप्रगटनपरो भानुरिव यो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न (मे)॥ 1 ॥

अताम्र यच्चक्षु कमलयुगल स्पन्दरहित।
जनान् कोपापाय प्रकटयति व्याभ्यन्तरमपि॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 2 ॥

नमन्नाकेद्राली मुकुटमणिभाजालजटिल।
लसत्पादाभोजद्वयमीह यदीयं तनुभृता॥
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जल वा स्मृतमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 3 ॥

यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह।
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्ध. सुखनिधि ॥
लभते सद्भक्ता शिवमुखसमाज किमु तदा।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 4 ॥

कनतस्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनय ॥
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगति ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 5 ॥

यदिया वाग्गगा विविधनयकल्लोलविमला।
वृहज्ज्ञानाभोभिर्जगति जनता या स्नपयति॥
इदानीमप्येषा बुधजनमरालै -परिचिता।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 6 ॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी काममुभट।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजित ॥
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिन ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न ॥ 7 ॥

महामोहातक-प्रशमनपरा-कस्मिक भिषड्।
निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमा मङ्गलकर ॥
शरण्य साधुना भवभयभृतामुत्तमगुणो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न॥ 8 ॥

महावीराष्टक स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतं।
य पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमा गतिम्॥

महावीराष्टक स्तोत्र (भाषा)

भागचन्दजी कृत

चेतन अचेतन तत्त्व जेते, है अनन्त जहान में।
उत्पाद व्यय ध्रुवमय मुकुरवत्, लसत जाके ज्ञान में।
जो जगतदर्शी जगत में सन्मार्ग दर्शक रवि मनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो॥ 1॥

टिमिकार बिन युग कमल लोचन, लालिमा ते रहित है।
बाह्य अन्तर की क्षमाको, भविजनों से कहत है।
अति परम पावन शान्तिमुद्रा, जासु तन उज्ज्वल घनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 2॥

जिहिं स्वर्गवासी विपुल सुरपति नम्र तन वह नमत है।
तिन मुकुटमणि के प्रभा मंडल पद्म पद में लसत है।
जिन मात्र समरनरूप जल में, हने भव आतप घनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 3॥

मन मुदित है, मेंडक ने प्रभु पूजवे मनसा करी।
ततछन लही सुर सम्पदा, बहुऋद्धि गुणनिधि सो भरी॥
जिहि भक्ति सों सद्भक्तजन लहें मुक्तिपुर को सुख घनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 4॥

कंचन तपतवत ज्ञाननिधि है, तदपि ज्ञान वर्जित रहे।
जो है अनेक तथापि इक, सिद्धार्थ सुत भव रहित है।
जो वीतरागी गति रहित है, तदपि अद्भुत गतिपनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो॥ 5॥

जिनकी वचन मय अमल सरसरि, विविध नय लहरें धरें।
जो पूर्ण ज्ञान स्वरूप जल में न्हवन भविजन को करे॥
तामें अजों लगि घने पंडित हंस ही सोहत मनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 6॥

जाने जगत की जेत जनता, करी स्ववश तमाम है।
है वेग जाको अमिट गेगो, विकट अतिभट काम है॥
ताको स्वबल से प्रौढवय में शान्ति शासन हित हनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 7॥

भयभीत भव में साधुजन को शरण उत्तम गुण भरे।
निःस्वार्थ के ही जगत बाँधव, विदित यश मंगल करे॥
जो मोह रूपी रोग हनिवे वैद्यवर अद्भुत मनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो॥ 8॥

दोहा – महावीर अष्टक रच्यो, भागचन्द रुचि ठान।
पढ़ै सुनै जो भाव सों, ते पावै निरवान॥

अनुक्रमणिका

पावन दिगम्बर जैनतीर्थ — श्री महावीरजी

• रतनलाल छाबड़ा
जयपुर

क्षेत्र परिचय

तीर्थंकर महावीर की परम् दिगम्बर मूगावर्णीय अतिशय युक्त प्रतिमा के उद्‌भव स्थल पर भारत का एक पावन, पवित्र एव शान्त तीर्थ विद्यमान है, जो 'दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी' क नाम से प्रसिद्ध है। यह अतिशय क्षेत्र दिगम्बर जैनियो की अपूर्व श्रद्धा का केन्द्र ही नही है बल्कि यह सभी धर्मों व वर्गों के लोगो की आस्था का केन्द्र है और भावनात्मक एकता का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मूर्ति का उद्‌भव

इस तीर्थ क्षत्र क प्रादुर्भाव की एक चमत्कारी जनश्रुति है। बताया जाता है कि लगभग 400 वर्ष पूर्व चाँदन गाँव मे विचरण करनेवाली एक गाय का दूध प्रतिदिन गभीर नदी के तट के पास एक टीले पर स्वत ही झर जाता था। गाय कई दिनो तक बिना दूध के घर लौटने लगी तो गाय के मालिक चर्मकार को अनेक आशकाओ एव विकल्पो ने आ घेरा। एक रात उसको स्वप्न आया कि जिस टीले पर गाय जाती है उस स्थान पर अत्यन्त चमत्कारी प्रतिमा भगवान महावीर की दबी हुई है, यह गाय अपना दूध उन्हे अर्पित करती है। जिज्ञासावश चर्मकार ने इस दृश्य को परखा और देखा। दृश्य को देखने पर टीला खोदने की उत्कठा हुई। टीला खोदा गया तो स्वप्न मे आई भगवान महावीर की यह परम दिगम्बर पद्‌मासन प्रतिमा निकली। महावीर बाबा की जयघोष करते हुय टीले मे एक छप्पर के नीचे पाषाण खण्ड पर प्रतिमा को विराजित कर दिया गया। आस-पास के इलाके मे यह खबर तेजी से फैली। हिण्डौन क सरावगीयान ने इस मूर्ति को ले जाना चाहा परन्तु वे इसमे सफल न हो सके। लाचार होकर वही उन लागो ने प्रतिमा को विराजमान करने का निश्चय किया। मूर्ति के अतिशय की खबर पाकर जैन-अजैन भारी सख्या मे दूर-दूर से दर्शनार्थ आने लगे।

भगवान महावीर की प्रतिमा का भूगर्भ से उद्‌भव (एक काल्पनिक चित्र)

उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं - क्षेत्र मगलमय हो उठा। बसवा निवासी श्री अमरचन्द बिलाला भी दर्शनार्थ आये, प्रतिमा के अतिशय से प्रभावित होकर उन्होने वहाँ मदिर का निर्माण कराया। अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण होने पर कई दानी महानुभावो ने समय-समय पर मदिर मे तथा आने वाले दर्शनार्थियो के ठहरने हतु मदिर के चारो ओर कमरो का निर्माण कराया जिसे आज ''कटला'' नाम से पुकारा जाता है। कटले मे क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी का प्रशासकीय कार्यालय, भण्डार, स्नानगृह पूजा सामग्री-स्थल है।

मुख्य जिनालय

मुख्य मदिर कटले के मध्य स्थित है। भगवान महावीर की अतिशयकारी प्रतिमा के दर्शनार्थ आसपास से ही नही, दूर-दराज से भी श्रद्धालुजन भारी सख्या मे आने लगे। मदिर की महिमा उत्तरोत्तर बढने लगी। श्रद्धालुओ की बढती संख्या देखकर मदिर का विकास हुआ। पार्श्ववेदी मे मूलनायक के रूप मे भूगर्भ से प्राप्त हुई भगवान महावीर की प्रतिमा विराजित की गई तथा दायें और बाये ओर तीर्थंकर पुष्पदत एव आदिनाथ की प्रतिमाएँ विराजित की गईं। अनेको कलात्मक वेदियो का निर्माण कराया जाकर

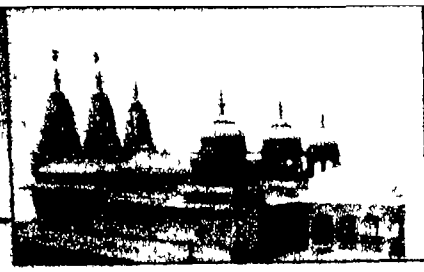

मूर्तियाँ विराजित की गई। दानदातारों व श्रद्धालुओं के सहयोग से **मंदिर की** बनावट सुन्दरता एवं विशालता में पर्याप्त प्रगति हुई। **मंदिर के** गगनचुम्बी शिखरों का निर्माण हुआ। मंदिर के भीतरी और बाहरी प्रकोष्ठों में संगमरमरी दीवारों पर बारीक खुदाई में तथा स्वर्णिम भित्ति चित्रांकन कराकर मंदिर की छटा को आकर्षक व प्रभावशाली स्वरूप दिया गया। मंदिर की बाह्य परिक्रमा में कलात्मक भाव उत्कीर्ण किये गये जिससे परिक्रमा की महिमा और बढ़ गई। मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार की सीढ़ियों को बहुत ही आकर्षक स्वरूप दिया गया। आज भी शनै शनै क्षेत्र विकसित हो रहा है, स्वरूप निखर रहा है।

मंदिरजी के मुख्य द्वार के सम्मुख संगमरमर से निर्मित 52 फीट ऊँचा आकर्षक मानस्तम्भ है, जिसके शीर्ष पर तीर्थंकरों की चार मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनका अभिषेक प्राय: तीन वर्ष में एक बार होता है।

चरणचिह्न छत्री

भगवान महावीर की प्रतिमा के उद्भव स्थल पर एक कलात्मक छत्री निर्मित है जिसमें भगवान के चरणचिह्न प्रतिष्ठित हैं। आज भी यहाँ दुग्धाभिषेक करने की होड़-सी लगी रहती है। यहाँ चढ़ने वाली सामग्री - द्रव्य राशि आज भी उसी चमकार वंशज को जाती है जिसने प्रतिमाजी को भूमि से खोदकर निकालने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस छतरी के चारों ओर एक सुन्दर आकर्षक उद्यान विकसित किया गया है।

इस उद्यान में चरणचिन्ह छतरी के सामने वाले भाग में 29 फीट ऊँचा "**महावीर स्तूप**" है जिसके फलकों पर भगवान महावीर के उपदेश अंकित हैं और शीर्ष पर आकर्षक धर्मचक्र निर्मित है। यह स्तूप भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव के पावन उपलक्ष में निर्मित किया गया था।

चरणचिह्न छतरी के पीछे वाले भाग के उद्यान को एक विकसित 'बाल वाटिका' का स्वरूप दिया गया है। इसमें एक आकर्षक बारहदरी भी बनाई गई है। समस्त उद्यान के मार्ग में करजी जड़वाकर चरणचिन्ह छतरी व उद्यान को सुरम्य और आकर्षक बनाया हुआ है।

श्री महावीरजी क्षेत्र

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी राजस्थान प्रदेश के करौली जिले के हिण्डौन उपखण्ड में गंभीर नदी के पश्चिमी तट पर चाँदनगाँव, जिसे सवाई जयसिंहपुरा उर्फ आलमगीरपुरा नौरंगाबाद भी कहा जाता था, में अवस्थित है। भगवान महावीर की अतिशय युक्त प्रतिमा के कारण यह स्थान 'श्री महावीरजी' के नाम से आज सुविख्यात है।

प्रारंभ में यह ग्राम एक ढाणी का स्वरूप लिये हुये था। न बिजली थी न नलों की व्यवस्था थी - आवागमन हेतु सड़क नहीं थी - मोटर आदि आती ही नहीं थी। बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था। वर्षा ऋतु में गंभीरी नदी में पानी की आवक अधिक हो जाने पर आवागमन रुका रहता था। प्रतिमा के प्रगट होने पर दर्शनार्थियों के आवागमन से क्षेत्र का विकास प्रारंभ हुआ - प्रबंधकारिणी कमेटी के गठन के पश्चात् क्षेत्र का चहुँमुखी विकास प्रारंभ हुआ। रास्तों को सड़कों का निर्माण, मार्ग पर बिजली व्यवस्था, पेयजल के लिए सार्वजनिक नल, नालियों, फुटपाथों का निर्माण आदि कार्य कराये गये। यात्रियों की बढ़ती संख्या को देखकर रेल मार्ग व सड़क मार्ग में विकास हुआ। आज यह क्षेत्र एक कस्बे का रूप लिये हुए है।

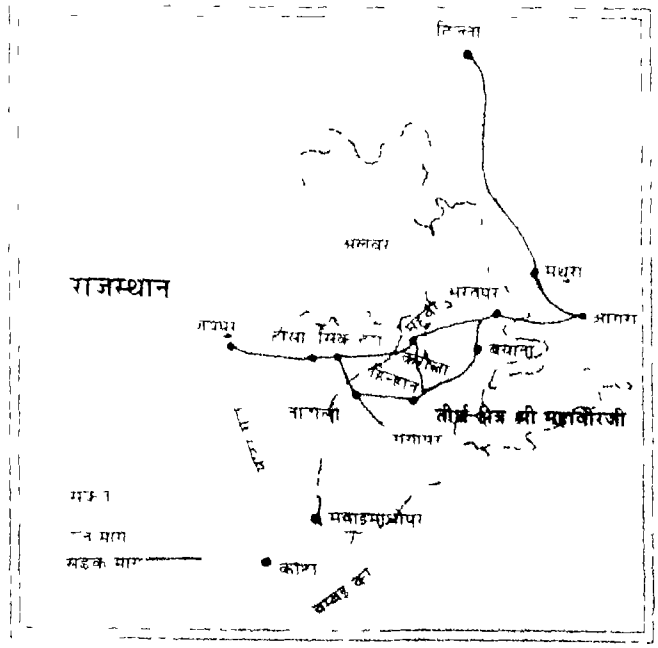

आवागमन के साधन

रेल मार्ग

''श्री महावीरजी'' पश्चिमी रलवे के बम्बई-दिल्ली मार्ग पर गगापुर व हिण्डौन के मध्य रेलवे स्टेशन है जो पहले 'पटूँदा महावीर रोड' के नाम म जाना जाता था। यहाँ प्राय सभी प्रमुख रेलगाडियाँ ठहरती हैं। यहाँ मे सीटो क आरक्षण का कोटा भी निर्धारित है। रेलवे स्टेशन क प्लेटफार्म पर कत्थई रग के ग्रेनाइट पत्थर से बन अत्यन्त मनोहर, कलापूर्ण ओर आकर्षक 'महावीर दर्शन' स्तम्भ के बीच क्रिकल ग्लाम से जडित भगवान महावीर का चित्र शोभित है, जिसके दर्शन यात्रिया को चलती गाडी म से हो जात हैं। स्टेशन पर यात्रियो की सुविधा हेतु विश्राम कक्ष है तथा एक धर्मशाला भी है। प्रत्यक रलगाडी के आगमन व प्रस्थान के समय स्टेशन स मदिर यात्रियो को लान-लेजाने हेतु क्षेत्र कमेटी की ओर से नि शुल्क बस की व्यवस्था की हुई है। क्षत्र रलव स्टशन से 7 कि मी दूर है।

सड़क मार्ग

सडक मार्ग स यह क्षत्र उत्तर भारत क सभी प्रमुख प्रान्तो मे जुडा हुआ ह। दिल्ली, हरियाणा, मध्यप्रदश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान राज्य क अनेक स्थानो से राज्य परिवहन की बसे यात्रिया को लेकर नित्य यहाँ आती है। यह क्षत्र अनक तीर्थक्षेत्रो, जैस - हस्तिनापुर, सोनागिरी, चौरासी मथुरा, अलवर-तिजारा, पदमपुरा चाँदखडी लूणवा-नागौर पुष्कर आदि मे बसो के नियमित आवागमन के कारण जुडा हुआ है। क्षेत्र देश की राजधानी दिल्ली से 300 किलोमीटर, आगरा से 175 किलोमीटर, जयपुर स 140 किलोमीटर तथा महुआ से 60 किलामीटर की दूरी पर स्थित है।

सिकन्दरा से नादोती होते हुये श्री महावीरजी के लिये सडक बन जाने व हिण्डौन की ओर से श्री महावीरजी आने वाले यात्रियों को गभीर नदी पर पुल बन जाने से बडी सुगमता हुई है। इससे सडक मार्ग से आने वाले यात्रियो की सख्या बढी है।

पानी-रोशनी

ग्रामीण क्षेत्र होने के कारण श्री महावीरजी में प्राय· बिजली का अभाव बना रहता था। क्षेत्र कमेटी द्वारा जनरेटिंग सेट्स लगाकर इस अभाव को दूर करने का प्रयास किया गया है। अब यहाँ सरकार की ओर से 132 के वी का एक पृथक फीडर डाला जा चुका है जिससे सामान्यतया क्षेत्र की आवश्यकतानुसार बिजली की उपलब्धता म अपेक्षित सुधार हुआ है।

पानी व्यवस्था

नदी तट पर स्थित बड़ बगीचे की बडी काठा (बड़ा कुआँ) मे पम्पिग सेट लगाकर कटल क सामन दो विशाल टकिया का निर्माण कराया गया है। स्थान-स्थान पर पाइप लाइन बिछवाकर पानी की व्यवस्था की गई है - गाँव वालो को भी रोशना की व्यवस्था क साथ-साथ पानी की भी व्यवस्था सुलभ करवाई हुई है। करोली के पास नदी पर पाँचना बाँध बन जाने से नदी मे पानी की आवक कम हो जाने के कारण कुआ मे पानी का स्तर नीचे गिर जाने से भी पानी सप्लाई मे अवरोध उत्पन्न हुआ। सरकार न इस कमी को महसूस कर पयजल के लिए ट्यूब वेल खुदवाये और पानी की लाइन डालकर पानी उपलब्ध करवाया हुआ है।

गम्भीर नदी

डाकघर, तारघर एवं एस टी डी व्यवस्था

प्रारभ मे डाक वितरण प्रणाली के आधार पर यह कार्य शुरू हुआ। बढ़ते कार्य को देखकर तथा श्री महावीरजी रहने वाला एव दर्शनार्थ आने वाले लोगो मे इसकी आवश्यकता को ध्यान मे रखकर यहाँ डाकघर स्थापित किया गया, जिसमे डाकघर सम्बन्धी सभी सुविधाएँ उपलब्ध है। वर्ष 1953 मे टेलीफोन पब्लिक कॉल

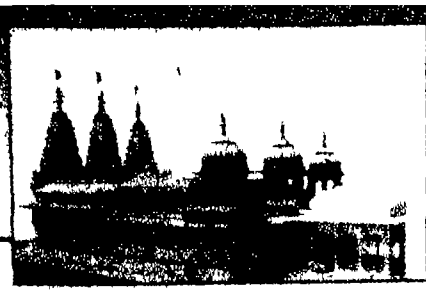

ऑफिस स्थापित किया गया तथा तारघर प्रारम्भ किया गया। **श्री महावीरजी** में देश के हर भाग से यात्री आते हैं और वे समय-**समय पर** अपने परिवारजनों से सम्पर्क साधना चाहते हैं। **टेलीफोनों** पर घण्टों प्रतीक्षा करनी होती थी। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से श्री महावीरजी को एस टी डी सेवा से जोड़ दिया गया। इस सुविधा को सुदृढ करने हेतु अब यहाँ माइक्रोवेव टावर स्थापित किया जा रहा है।

बैंक सेवा

ग्रामवासियों एवं यात्रियों की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा पूर्ण सुविधाओं सहित अपनी शाखा यहाँ स्थापित की हुई है।

विकसित बाजार

प्रारम्भ में जब कटले के बाहर कोई इमारत नहीं थी तब दुकानें भी कटले के भीतर ही थीं। निश्चित समय के बाद कटले का दरवाजा बन्द हो जाता था तो दुकानें भी बन्द हो जाती थीं। यात्रियों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ उन्हें समुचित आवास की सुविधायें उपलब्ध कराने हेतु और भविष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये कटले के नीचे बाहर की ओर दुकानें बनवाई गईं। इसी प्रकार कटले के सामने सड़क के दूसरी ओर दुकानों का निर्माण कराकर उन पर आवासीय फ्लेट व कमरे बनवाये गये। इस तरह एक सुन्दर बाजार का स्वरूप विकसित हो गया। देखते ही देखते सभी आवश्यक वस्तुओं का बाजार लग गया। आज इस बाजार के कारण देर रात तक अच्छी खासी चहल-पहल रहती है जिसका अपना आकर्षण है। समूचा क्षेत्र एक कस्बा-सा लगता है।

अतिशय

भू-गर्भ से प्रतिमा के प्रकट होते ही अनेक अद्भुत विलक्षण और चमत्कारिक घटनाएँ घटी, जिन्हें देख सुन भक्तगण दूर-दराज से आने लगे। यहाँ के अतिशय से प्रभावित होकर जयपुर राज्य के नरेशों ने भी पूजा, दीप-धूप आदि खर्च के लिए भेट-स्वरूप आलमगीरपुर-नौरंगाबाद गाँव अर्पण किया, जो मंदिर की जागीर में रहा। अनेकों श्रेष्ठियों के सहयोग से क्षेत्र कमेटी द्वारा बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनवाई गईं। यात्रियों की सुविधा के साधन जुटाये गये। चान्दनपुरवाले बाबा की भक्ति श्रद्धालुजन मीलों दूर स्थान स्थान से गाते-बजाते कनक दण्डवत करते पैदल चलकर आने लगे। पिछले अनेक वर्षों से भारी संख्या में अनेक पैदल यात्रा संघ भी आने लगे हैं जिनमें युवाओं के अतिरिक्त वृद्ध, बालक व महिलायें भी भारी संख्या में आती हैं। इन पैदल यात्रियों का क्षेत्र में प्रवेश का जुलूस बड़ा ही मनोहर एवं भक्तिमय होता है – समूचा क्षेत्र चाँदन के बाबा की जयघोष से गूँज उठता है। आने वाले संघों में जयपुर के दिगम्बर जैन पदयात्रा संघ, महावीर दिगम्बर जैन पदयात्रा संघ, महावीरजी पदमपुरा पैदल यात्रा संघ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त दौसा जिले से लवाण, बाँदीकुई छारेडा, पापड़दा, सिकन्दरा व दौसा, टोंक जिले से निवाई, कटवाड़ नासिरदा बनेठा, लावा, उनियारा व टोंक, सवाईमाधोपुर जिले से बौंली, गंगापुर, गुढाचन्द्रजी व सवाईमाधोपुर, अलवर जिले से राजगढ खेड़ली व अलवर सीकर जोबनेर मोजमाबाद, सांगानेर आदि स्थानों से यात्रा संघ भक्ति भावना से गाते-बजाते आकर भगवान महावीर को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। स्थानीय ग्रामीण भी बड़ी संख्या में विभिन्न आयोजनों पर आत्मविभोर होकर नाच-गान करते चाँदन के बाबा को श्रद्धावश दूध रोटी दाल राबड़ी अर्पित करते हैं। दृश्य देखते बनता है। यहाँ सदैव मेले जैसा माहौल बना ही रहता है।

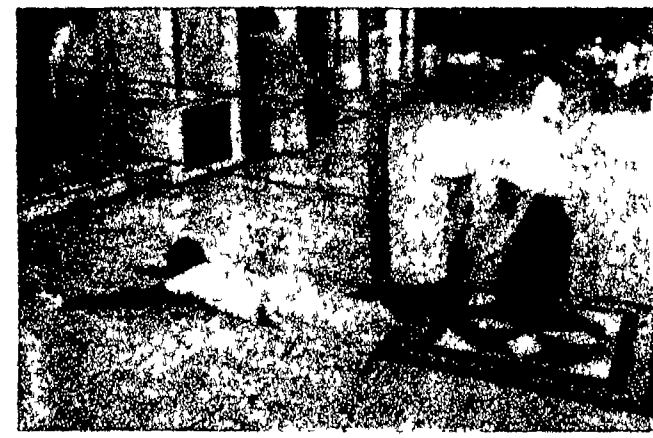

कनक दण्डवत करते श्रद्धालुजन

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

प्रबन्धकारिणी कमेटी के पूर्व पदाधिकारी एवं सदस्य

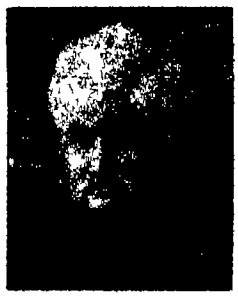

स्व श्री मुन्शी प्यारेलालजी
कासलीवाल

स्व श्री बख्शी
किस्तूरचन्दजी छाबड़ा

स्व श्री दरोगा
मोतीलालजी पाटनी
(खिन्दूका)

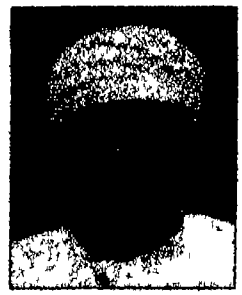

स्व. श्री सेठ
गोपीचन्दजी ठोलिया

स्व श्री जमनालालजी
साह

स्व श्री मुन्शी
सूरजनारायणजी सेठी

स्व श्री बधीचन्दजी
गंगवाल

स्व श्री फतेहलालजी
कटारिया

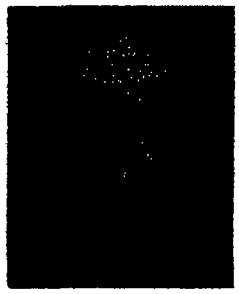

स्व श्री कपूरचन्दजी
पाटनी

स्व श्री गैंदीलालजी
काला

स्व. श्री गुलाबचन्दजी
छाबड़ा

स्व श्री रामचन्द्रजी
खिन्दूका

स्व श्री गुलाबचन्दजी
बख्शी

स्व श्री सूरजमलजी
गोधा

स्व श्री केशरलालजी
बख्शी

स्व श्री केशरलालजी
अजमेरा

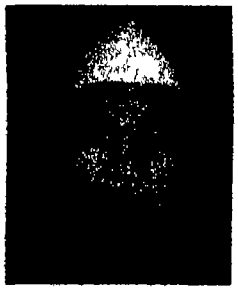

स्व श्री सोहनलालजी
सोगानी

स्व. श्री मालीलालजी
कासलीवाल

स्व श्री कपूरचन्दजी
संघी

स्व श्री गुलाबचन्दजी
कासलीवाल

स्व. श्री मोहनलालजी
काला

स्व श्री रूपचन्दजी
सौगानी

स्व श्री सुन्दरलालजी
ठोलिया

स्व श्री मुन्शी
फूलचन्दजी सोनी

स्व श्री गैंदीलालजी
गंगवाल

स्व. प्रो सुल्तानसिंहजी

स्व श्री मोहनलालजी
सोनी

स्व साहू
श्री श्रेयासप्रसादजी जैन

स्व श्री चिरंजीलालजी
काला

स्व श्री प्रकाशचन्दजी
कासलीवाल

स्व डॉ राजमलजी
कासलीवाल

स्व. श्री जगदीशप्रसादजी जैन

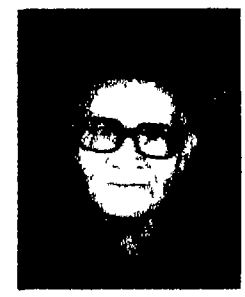

स्व श्री (मुन्शी)
गैंदीलालजी साह

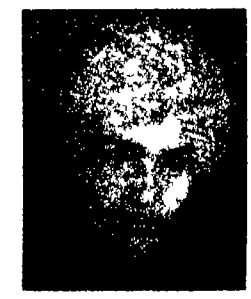

स्व श्री घीसींलालजी
चौधरी

स्व श्री जयकुमारजी
छाबड़ा

स्व साहू
श्री शान्तिप्रसादजी जैन

स्व श्री ताराचन्दजी
ठोलिया

स्व श्री फूलचन्दजी जैन

स्व श्री कपूरचन्दजी
पाटनी

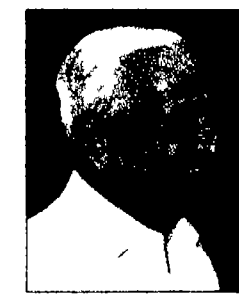

स्व श्री फूलचन्दजी
छाबड़ा

स्व. श्री प्रेमचन्दजी जैन

श्री रतनलालजी छाबड़ा

अन्य पूर्व सदस्य जिनके चित्र उपलब्ध नहीं हो सके

स्व श्री फूलचन्दजी कासलीवाल
स्व. श्री नेमीचन्दजी मथुरावाले
स्व श्री किस्तूरचन्दजी लुहाड़िया
स्व श्री सर्वसुखदासजी खजांची
स्व श्री गुलाबचन्दजी मुशरफ
स्व श्री झूमरलालजी गोदीका
स्व श्री जमनालालजी गोधा
स्व श्री लूणकरणजी गोधा
स्व श्री बाजूलालजी गोधा
स्व श्री फूलचन्दजी बांकीवाला
स्व श्री दुलीचन्दजी साह
स्व. श्री जमनालालजी दीवान
स्व श्री आनन्दीलालजी बज
स्व श्री गप्पूलालजी जैन
डॉ जगतप्रकाशजी सेठी
स्व श्री चांदमलजी पाड्या
स्व राय सा श्री घेवरचन्दजी गोधा

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

वर्तमान प्रबन्धकारिणी कमेटी

पदाधिकारीगण

अध्यक्ष

नरेशकुमार सेठी
आई ए एस (से नि)

उपाध्यक्ष

श्री विजयचन्द जैन
समाज सेवी एव पूर्व सचिव
राजस्थान वित्त निगम

उपाध्यक्ष

श्री भवरलाल अजमेरा
चार्टर्ड अकाउन्टेट

मयुक्त मत्री

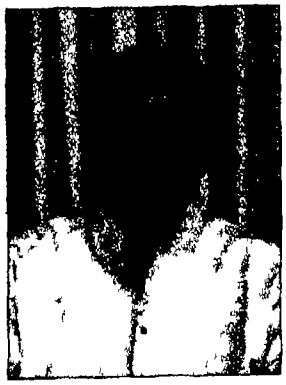

श्री बलभद्रकुमार जैन
समाज सेवी एव व्यवसायी

कोषाध्यक्ष

श्री नानगराम जैन
जौहरी

सदस्यगण

श्री सुभद्रकुमार पाटनी
समाज सेवी

श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका
जौहरी

श्री रामचन्द्र कासलीवाल
एडवोकेट

श्री जमनादास जैन
इंजीनियर

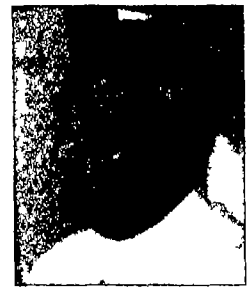

श्री तेजकरण डडिया
शिक्षाविद्

डॉ गोपीचन्द पाटनी
पूर्व डीन, विज्ञान संकाय
राजस्थान विश्वविद्यालय

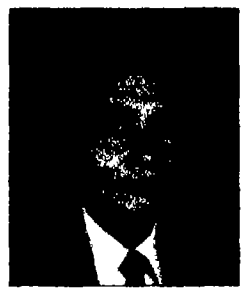

श्री राजकुमार काला
एडवोकेट

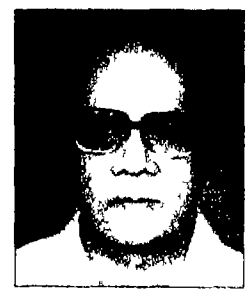

श्री पदमचन्द तोतूका
जौहरी

श्री सूरजमल वैद
समाज सेवा

साहू अशोककुमार जैन
अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिग
जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी
उद्योगपति

श्री ताराचन्द जैन
एडवोकेट

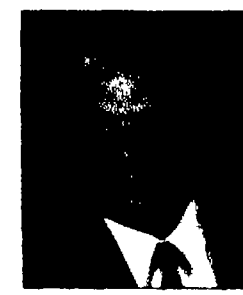

श्री नवीनकुमार बज
एसोसियेट प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय

सदस्यगण

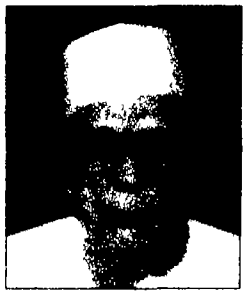

श्री हरकचन्द सरावगी
उद्योगपति

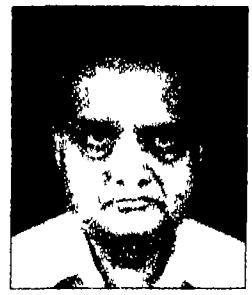

श्री कैलाशचन्द कासलीवाल
पूर्व मुख्य अभियन्ता एव
तकनीकी सदस्य
राज राज्य विद्युत मण्डल

श्री मिलापचन्द जैन
पूर्व मुख्य न्यायाधीश
दिल्ली उच्च न्यायालय

श्री पूनमचन्द शाह
एडवोकेट

श्री प्रकाशचन्द जैन
आई ए एस (से नि)

श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
पूर्व उपनिदेशक
उद्योग विभाग

डॉ कमलचन्द सौगानी
पूर्व प्रोफेसर दर्शनशास्त्र
सुखाडिया विश्वविद्यालय

श्री नगेन्द्रकुमार जैन
न्यायाधीश
राजस्थान उच्च न्यायालय

श्री ललितकुमार जैन
उद्योगपति

डॉ हुकमचन्द सेठी
सीनियर सर्जन
सवाई मानसिह अस्पताल

श्री हेमन्त सोगानी
एडवाकेट

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

कार्यरत अधिकारीगण

मेजर एम एस भटनागर

श्री के सी कसल

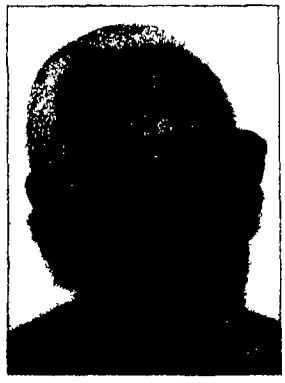

श्री तेजप्रकाश काला

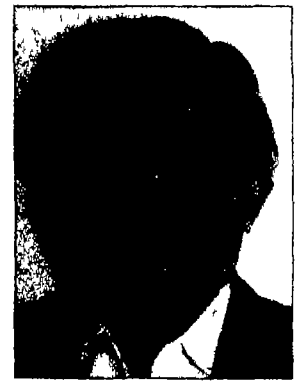

श्री वीरेन्द्र काला

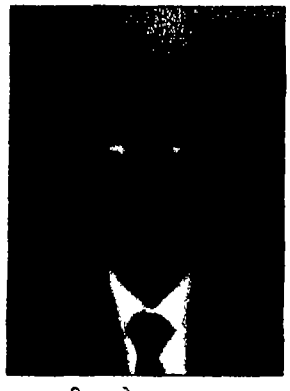

श्री ए के भटनागर

श्री अनूपचन्द गंगवाल

श्री लालाराम

इस स्थान का अनेक प्राचीन भजनो एव कविताओ मे अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से वर्णन मिलता है। एक कवि की भक्ति व श्रद्धा इन पक्तियो से स्पष्ट होती है

''कचन नगरी सी सौहे गभीर नदी के तीर
चंदन मेर गाँव की माटी प्रकट भये महावीर
या माटी शीश धरूँ भैया या माटी शीश धरूँ''

भक्ति और श्रद्धा की शक्ति द्वारा यहाँ के रजकणो मे ऐसे पावन तत्व सन्निविष्ट हो गय है कि यहाँ की रज को मस्तक पर लगाने मात्र से पाप नष्ट हो जाते है।

प्रबन्ध व्यवस्था एव विकास

श्री महावीर क्षेत्र का प्रबन्ध जयपुर दिगम्बर जैन पचायत एव उसके मुकर्रर करदा प्रबन्धको, भट्टारको आदि द्वारा होता था। वर्ष 1918 मे भट्टारक श्री महेन्द्र कीर्तिजी का आकस्मिक निधन हो जाने पर भट्टारक श्री चन्द्रकीर्तिजी को गद्दी पर बिठाया गया। वर्ष 1923 मे जब गाँव की जमा वसूली मे कठिनाइयाँ आई तब दिगम्बर जैन जयपुर पचायत ने राज्य से सहायता माँगी और पचायत क आवेदन पर राज्य ने कोर्ट ऑफ वार्ड्स का प्रबन्ध बिठा दिया। शनै शनै स्थितियो मे सुधार आया। वर्ष 1930 मे पुन दिगम्बर जैन पचायत, जयपुर न राज्य सरकार से निवेदन कर कोट ऑफ वार्ड्स का प्रबन्ध हटवाकर कर्मठ व अनुभवी दिगम्बर जैन व्यक्तियो की एक प्रबन्धकारिणी कमेटी का गठन कर इस क्षेत्र का प्रबन्ध सँभाला।

तब स आज तक प्रबन्धकारिणी कमटी ही समस्त कार्यभार सँभाल हुये है। स्व मुन्शी प्यारेलालजी कासलीवाल एव स्व रामचन्द्रजी खिन्दूका इस प्रबन्धकारिणी कमेटी के क्रमश प्रथम अध्यक्ष व मत्री बने। क्षेत्र क प्रति इनकी सेवाये बहुत ही उल्लेखनीय रही।

इस कमेटी मे दिगम्बर जैन समाज के सुप्रतिष्ठित व गणमान्य समाजसेवी सदस्य रहते आए हैं जिनमे व्यवसायी, उद्योगपति, वकील, राज्याधिकारी, न्यायाधिकारी, चिकित्सक, तथा शिक्षाविद् हैं। इस कमेटी का कार्यकाल सर्वतोमुखी उन्नति के लिहाज से बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। इस अतिशय क्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था सम्पूर्ण भारत मे विख्यात है। इस कारण यह देश का सुप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र बना हुआ है।

वर्तमान मे यह दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र राजस्थान सार्वजनिक प्रन्यास अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड प्रन्यास है और प्रबन्धकारिणी कमेटी सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अन्तर्गत पजीकृत सस्था है। प्रबन्धकारिणी कमेटी सम्पूर्ण क्षेत्र के स्वामित्व व उसकी सम्पत्ति के रक्षार्थ और विकासार्थ पूर्णतया सचेष्ट है।

क्षेत्र के लेखा का प्रतिवर्ष चार्टर्ड लेखाकार द्वारा ऑडिट किया जाता है। क्षेत्र का प्रतिवर्ष विधिवत् बजट बनाया जाता है तथा वार्षिक आय-व्यय का विवरण प्रकाशित किया जाता है।

सचालित इकाइयाँ

गतिविधियाँ एवं लोकोपकारी कार्य

क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी की गतिविधियाँ मदिर व्यवस्था, पूजा-आराधना, यात्रियो की सुविधाये जुटाने, मेला व पर्वों के आयाजनो तक ही सीमित नही है अपितु वह समाजोपयोगी एव लोकोपकारी कार्यो का भी कर रही है। समूचे ग्राम के विकास मे भी अपना सक्रिय योगदान कर रही है। इसी का परिणाम है आज यह ग्राम एक आदर्श गाम की श्रणी म ह। ग्राम ने एक कस्बे का रूप लिया हुआ है।

शिक्षा-प्रसार, छात्रवृत्ति एव असमर्थ सहायता

शिक्षा-प्रसार श्री महावीरजी व उसके आसपास के ग्रामा का कोई निवासी अशिक्षित न रहने पावे, इस उद्देश्य से प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा रलवे स्टेशन श्री महावीरजी पर ''श्री महावीर दिगम्बर जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय'' के नाम से एक विद्यालय चलाया जाता है जहाँ नि:शुल्क शिक्षा के साथ नाश्ता, पढाई की पुस्तके, ड्रेस आदि उपलब्ध कराई जाती है। श्री महावीरजी मे राज्य की ओर से सीनियर हायर सैकेण्डरी विद्यालय सचालित है उसमे भी क्षेत्र कमेटी का पूर्ण योगदान है। महिला शिक्षा के क्षेत्र मे श्री महावीरजी बहुत आगे है। ब्र कमलाबाईजी द्वारा महिलाओ का सीनियर हायर सैकण्डरी

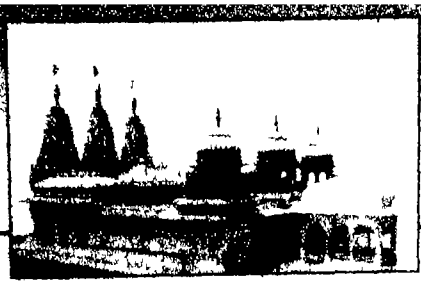

विद्यालय, बी एड कॉलेज के साथ महिला कालेज चलाया जा रहा है। इसके लिये भी प्रबन्धकारिणी कमेटी ने भूमि उपलब्ध कराई है। पृथक् से लड़कियों का हास्टल भी स्थापित किया हुआ है। ब्र. कमलाबाईजी का महिला शिक्षा क्षेत्र में योगदान स्तुत्य है।

असमर्थ सहायता एवं छात्रवृत्ति क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी प्रतिवर्ष वृद्धो, असहायों तथा विधवाओं को सहायता तथा छात्रों को छात्रवृत्ति देती है। महिलाओं को जीवनयापन के धन्धों में भी योगदान करती है। छात्रों को अध्ययन हेतु पुस्तक आदि उपलब्ध कराती है। मासिक छात्रवृत्ति के अलावा उच्च शिक्षा के लिये ऋण भी दिया जाता है। प्रतिवर्ष छात्र छात्राओं के लिये तीन लाख से ऊपर की राशि विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों में क्षेत्र कमेटी द्वारा व्यय की जाती है।

अनुसंधान कार्य – जैनविद्या संस्थान

संस्कृत, अपभ्रंश प्राकृत, हिन्दी साहित्य आदि भाषाओं के प्राचीन साहित्य के अनुसंधान तथा नवीन साहित्य के सृजन को ध्यान में रखते हुये अनुसंधान विभाग स्थापित किया गया जिसे आज "जैनविद्या संस्थान एवं अपभ्रंश साहित्य अकादमी" के नाम से विकसित किया जा चुका है। इस संस्थान के अन्तर्गत जैन दर्शन साहित्य, इतिहास तथा अपभ्रंश व प्राकृत के लिये पाठ्यक्रम तैयार कर शिक्षण के माध्यम से विद्वान तैयार किये जा रहे हैं तथा साहित्यिक गतिविधियाँ हो रही हैं नये साहित्य का प्रकाशन हो रहा है।

पूर्व में दिगम्बर जैन शास्त्र भण्डारों का सूचीकरण कराकर 5 भागों में उसका प्रकाशन कराया जा चुका है। यह कार्य शोधार्थियों के लिये बड़ा ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन भी कराया गया है।

पूर्व मे क्षेत्र कमेटी की ओर से हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस मे जैन दर्शन की चेयर "श्री महावीर चेयर" के नाम से स्थापित की गई थी जिसका लाभ अनेक जैन अजैन विद्यार्थियों ने उठाया है। आज भी कई पुरस्कारों की योजना चालू है जिसका लाभ विद्यार्थी उठा रहे हैं।

वर्तमान मे संस्थान मे निम्नलिखित गतिविधियाँ संचालित है -

1. **पत्राचार पाठ्यक्रम**

जैनधर्म दर्शन एवं संस्कृति सर्टिफिकेट एवं डिप्लोमा पाठ्यक्रम का अध्यापन पत्राचार के माध्यम से किया जाता है। इस पाठ्यक्रम की सत्र-अवधि एक वर्ष (जनवरी से दिसम्बर) है। सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम के अब तक चार सत्र पूर्ण हो चुके हैं।

2. **महावीर पुरस्कार एवं पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार**

ग्यारह हजार एक (11,001/-) रुपये का महावीर पुरस्कार जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति आदि विषय से सम्बन्धित प्रथम स्थान प्राप्त कृति पर दिया जाता है, द्वितीय स्थान प्राप्त रचना को 5,000/- रु. का पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार इस वर्ष से दिया जा रहा है। पुरस्कार के लिए प्राप्त कृतियों का मूल्यांकन तद्विषयक विशिष्ट विद्वानों के परामर्श पर संस्थान समिति द्वारा किया जाता है।

अब तक डॉ. पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, श्री कपूरचन्द जैन खतौली, डॉ. जयकुमार जैन मुज्जफरनगर, डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी वाराणसी, डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर, डॉ. कस्तूरचन्द जैन 'सुमन' श्रीमहावीरजी, डॉ. आराधना जैन 'स्वतंत्र' विदिशा, डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी व डॉ. उदयप्रताप सिंह सैंगर, डॉ. नीलम जैन सहारनपुर महावीर पुरस्कार से सम्मानित किये जा चुके हैं।

3. **पाण्डुलिपि संग्रहालय**

पाण्डुलिपि संग्रहालय में 4448 हस्तलिखित ग्रन्थ हैं जिनमें लगभग 727 गुटके हैं। उनमे पूजा, स्तोत्र, पद, विधान, चरित, रासा आदि विभिन्न प्रकार की अनेक भाषाओं की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनमें से अपभ्रंश की कुछ रचनाओं का सम्पादन व प्रकाशन भी किया जा चुका है।

4. **पुस्तकालय एवं वाचनालय**

जैनविद्या संस्थान श्री महावीरजी में एवं अपभ्रंश साहित्य अकादमी जयपुर में पुस्तकालय संचालित है। दोनों स्थानों पर विभिन्न विषयों की लगभग बीस हजार पुस्तकें संगृहीत हैं।

क्षेत्र स्थित वाचनालय मे पाठकों के लिए दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक विभिन्न प्रकार की लगभग अस्सी (80) पत्र-पत्रिकाएँ सुलभ है।

5 **प्रकाशन**

साहित्य का प्रकाशन धर्म की प्रभावना एव सस्कृति की अभिवृद्धि के लिए नियमित रूप मे किया जाता है। अब तक सैतालीस ग्रन्थ प्रकाशित किय गय है। 'जैन पुराण काश' का प्रकाशन किया गया है। इसकी प्रथम प्रति राष्ट्रपति को 18 मई, 1994 का भेट की गई थी।

(अ) **पत्रिका** सस्थान स वार्षिक शाध पत्रिका 'जनविद्या' का प्रकाशन किया जाता है। प्रत्येक अक म आचार्य/कवि की विशष कृतियो पर शाधपूर्ण लख प्रकाशित किये जान हैं। अब तक अपभ्रश के महाकवि स्वयभू पुष्पदन्त धनपाल, वीर, नयनन्दि, कनकागर, यागीन्दु तथा आचार्य कुन्दकुन्द, पूज्यपाद, अमितगति, अमृतचन्द्र एव समन्तभद्र पर आधारित अठारह विशषाक प्रकाशित किये जा चुक हे।

(ब) **सर्वोदय पुस्तकमाला** इसके अन्तर्गत जनसामान्य के लाभार्थ जैनधर्म-दर्शन एव सस्कृति स सम्बन्धित पुस्तक सरल शली मे प्रकाशित की जाती है। अब तक इस शृखला मे सालह पुष्प प्रकाशित हा चुके है।

6 **शिविर-सगोष्ठी-व्याख्यान**

सस्थान द्वारा समय-समय पर शिविर-सगाष्ठियो एव व्याख्याना का आयोजन भी किया जाता रहा ह। सस्थान द्वारा आयाजित 'पाण्डुलिपि प्रशिक्षण शिविर'' अपभ्रश भाषा प्रशिक्षण शिविर' 'सदाचार शिक्षण शिविर' सफल एव प्रभावी रहे है।

7 **साहित्य विक्रय केन्द्र**

दश की विभिन्न प्रकाशन सस्थाओ मे प्रकाशित दिगम्बर जैन साहित्य जनसामान्य को सहजता से उपलब्ध/प्राप्त हो सके, इस उद्देश्य मे जयपुर मे जौहरी बाजार में स्थित 'वर्धमान' मे तथा श्री महावीरजी मे 'साहित्य विक्रय केन्द्र' सचालित है।

अपभ्रंश साहित्य अकादमी -

जैनविद्या सस्थान के अन्तर्गत अपभ्रश साहित्य अकादमी म अपभ्रश भाषा के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था है। नियमित कक्षाओ एव पत्राचार के माध्यम से 'अपभ्रश सर्टिफिकेट' व 'अपभ्रश डिप्लोमा' पाठ्यक्रम सचालित है। विद्यार्थियो को अकादमी से प्रकाशित पुस्तके उपलब्ध कराई जाती है।

'अपभ्रश डिप्लामा' की परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाले अध्ययनार्थी को प्रतिवर्ष 'श्रीरामचन्द्र प्रमचन्द्र खिन्दूका चैरिटबल ट्रस्ट' की ओर स 'स्वर्णपदक' प्रदान किया जाता है।

'अपभ्रश भारती' क नाम मे अपभ्रश साहित्य अकादमी स वार्षिक शोध- पत्रिका प्रकाशित की जाता है। अब तक इसके आठ अक प्रकाशित हुए हैं।

स्वयभू-पुरस्कार

अपभ्रश साहित्य पर मौलिक लखन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से प्रतिवर्ष ग्यारह हजार एक रुपय (11 001/-) का 'स्वयभू पुरस्कार' प्रदान किया जाता है। डॉ त्रिलोकीनाथ प्रेमी, डॉ सुरजमुखी जैन इस पुरस्कार से सम्मानित किये गय हैं।

प्राकृत-अपभ्रश फण्ड से विभिन्न पुरस्कार

जैनविद्या सस्थान सर्मित क सयोजक डा कमलचन्द सोगानी न दिगम्बर जैन अतिशय क्षत्र की 'प्राकृत-अपभ्रश फण्ड' क निर्माण क लिए पिचहत्तर हजार रुपये(75,000/) प्रदान किय है। इस फण्ड मे प्राप्त ब्याज स निम्नलिखित पुरस्कार इसी वर्ष स प्रारभ किये जा रह है -

1 **डॉ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये पुरस्कार** – दो हजार रुपय की राशि का यह पुरस्कार अकादमी की शोध-पत्रिका 'अपभ्रश भारती' मे प्रथम वरीयता प्राप्त लेख के लिए देय है।

2 **डॉ हीरालाल जैन पुरस्कार** – पन्द्रह सौ रुपये (1500/-) की राशि का यह पुरस्कार 'अपभ्रश भारती' मे द्वितीय वरीयता प्राप्त लेख के लिए देय है।

3. **डॉ. नेमीचन्द शास्त्री पुरस्कार** – एक हजार रुपये की राशि का यह पुरस्कार पत्रिका 'अपभ्रंश भारती' मे तृतीय वर्षीयता प्राप्त लेख के लिए देय है।

4 **पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ स्मृति स्वर्णपदक** – अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा संचालित 'अपभ्रंश सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' की परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाला अध्ययनार्थी को यह 'स्वर्णपदक' प्रदान किया जाता है।

5 **मास्टर मोतीलाल संघी स्मृति स्वर्णपदक** – यह स्वर्णपदक जैनविद्या संस्थान द्वारा संचालित 'जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' की परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाले अध्ययनार्थी को देय है।

6 **श्रीमती मैनादेवी गोपीचंद सोगाणी स्मृति स्वर्णपदक** – यह स्वर्णपदक जैनविद्या संस्थान द्वारा संचालित 'जैनधर्म दर्शन एवं संस्कृति स्वाध्याय योजना प्रचार पाठ्यक्रम' की परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाले अध्ययनार्थी को देय है।

7 **डॉ हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी पुरस्कार**
अपभ्रंश भाषा की अप्रकाशित रचना की पाण्डुलिपि के सम्पादन व हिन्दी अनुवाद के लिए वर्ष 1998 मे प्रतिवर्ष एक हजार (1000/-) रुपये की राशि का 'डॉ हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी पुरस्कार' देय है।

चिकित्सा सुविधाएँ

प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा जनसाधारण के स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से श्री महावीरजी मे निम्न चिकित्सा सुविधाएँ प्रारम्भ की हुई है :-

क आयुर्वेदिक औषधालय एवं रसायनशाला

ख श्री महावीर योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं शोध संस्थान

ग श्रीमती चन्द्रावती सिद्धोमल जैन अस्पताल एवं प्रसूति गृह

घ विकलांग-पुनर्वास कार्यक्रम

सेवाभावी चिकित्सकों एवं उपचारकों के कारण उपर्युक्त सभी चिकित्सा सेवाओं द्वारा रोगियों की महती सेवा हो रही है – रोगी नीरोग होकर जाता है। इसीकारण इन सेवाओं की सर्वत्र प्रशंसा है।

आयुर्वेदिक औषधालय
(महावीर औषधालय एवं रसायनशाला)

प्रारंभ से ही क्षेत्र कमेटी का लोकोपकारी कार्यों की ओर ध्यान रहा है। इस दृष्टि से फाटक के अन्दर मंदिरजी के नीचे एक छोटे से स्थान पर वर्ष 1930 मे औषधालय प्रारम्भ किया गया। इस समय फाटक के बाहर औषधालय की एक स्वतंत्र, सुन्दर एवं आधुनिक साधनों से सुसज्जित इमारत मौजूद है जिसके निर्माण मे श्रीमान् द्वारकाप्रसादजी सुमतिप्रसादजी सोनीपत वालों का सहयोग सराहनीय रहा है। इस औषधालय द्वारा श्री महावीरजी के अतिरिक्त आसपास के गाँवों मे भी जाकर सेवाएं दी जाती है। औषधालय के साथ औषधि निर्माण हेतु रसायनशाला का प्रबन्ध भी है जिसमें शास्त्रोक्त विधि अनुसार शुद्ध रीति से औषधियाँ बनाई जाती है। औषधालय मे रोगियों को औषधि निःशुल्क दी जाती है। रसायनशाला से उचित मूल्य पर औषधि विक्रय भी की जाती है। वर्तमान मे रसायनशाला एक पृथक इकाई बना दी गई है। सरकार से औषधि निर्माण का अनुज्ञापत्र प्राप्त है।

महावीर योग-प्राकृतिक चिकित्सा एवं शोध-संस्थान

प्राकृतिक चिकित्सा की ओर बढ़ते हुए रुझान को दृष्टिगत रखते हुए और श्री महावीरजी जैसे पवित्र-स्थल की गरिमा को ध्यान मे रखते हुए जैन आचार-विचार के साथ क्षेत्र कमेटी ने एक विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय की "श्री महावीर योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं शोध संस्थान श्री महावीरजी" के नाम से सन् 1986 मे स्थापना की। यह संस्थान प्रायः सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से युक्त है। संस्थान मे भरती होकर उपचार लेने वाले अधिकांश रोगी स्वस्थ होकर गये है।

संस्थान मे उदर-विकार, अम्ल विकार अल्सर मधुमेह, रक्तचाप चर्मरोग, गठिया रोग, स्नायु विकार, गर्दन व रीढ की हड्डी पर सूजन पक्षाघात की प्रथम अवस्था, दमा व औंधामीसी आदि अनेक रोगों की चिकित्सा की जाती है। उक्त रोगों का उपचार आवश्यकतानुसार प्राकृतिक चिकित्सा, योग एवं

प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा संचालित इकाइयाँ

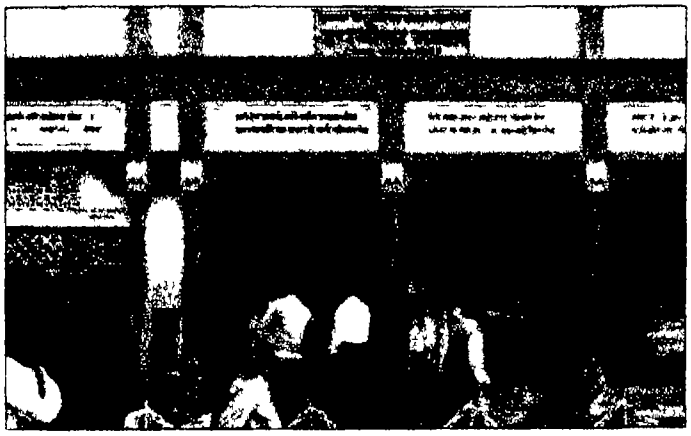

उपभोक्ता भण्डार

स्वरुचि अल्पाहारगृह एवं शुद्ध भोजनालय

कटला प्रवेश द्वार पर स्थित साहित्य विक्रय केन्द्र

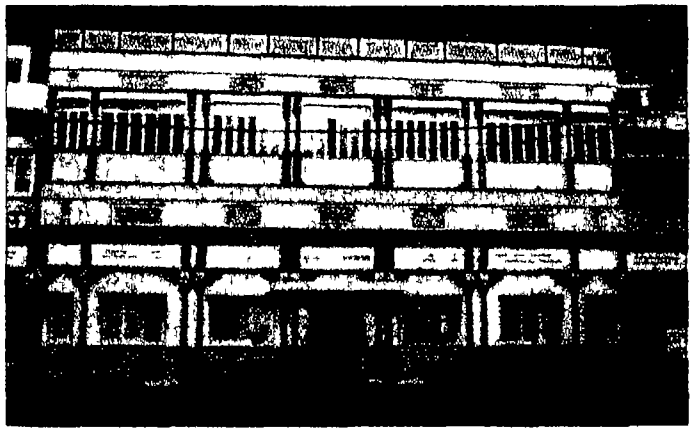

जैन विद्या संस्थान - पुस्तकालय एवं वाचनालय

बाल वाटिका में निर्मित आकर्षक बारादरी

प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा सचालित इकाइयॉ

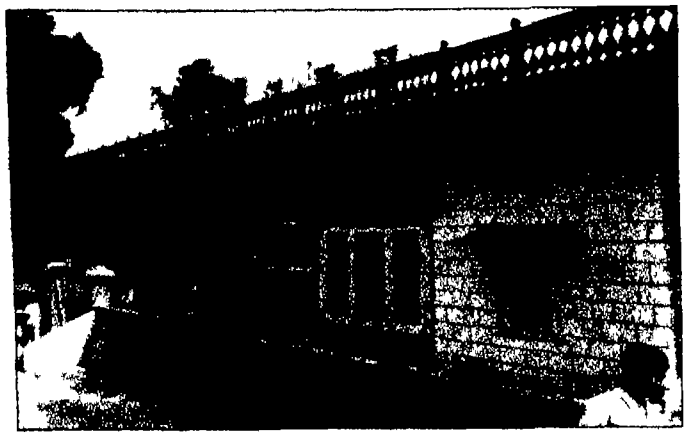

आयुर्वेदिक औषधालय

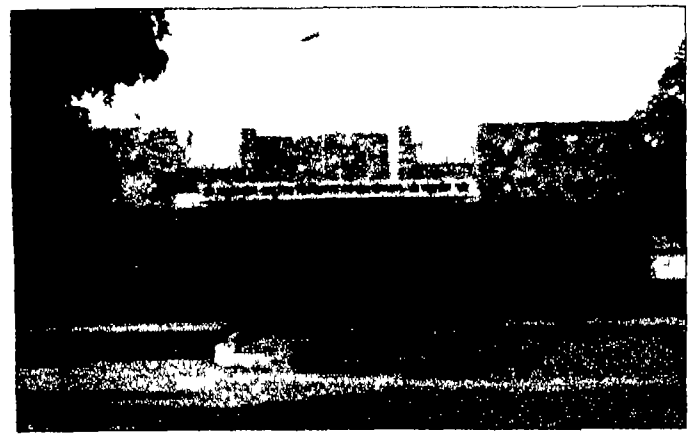

श्री महावीर योग प्राकृतिक चिकित्सा एव शोध सस्थान

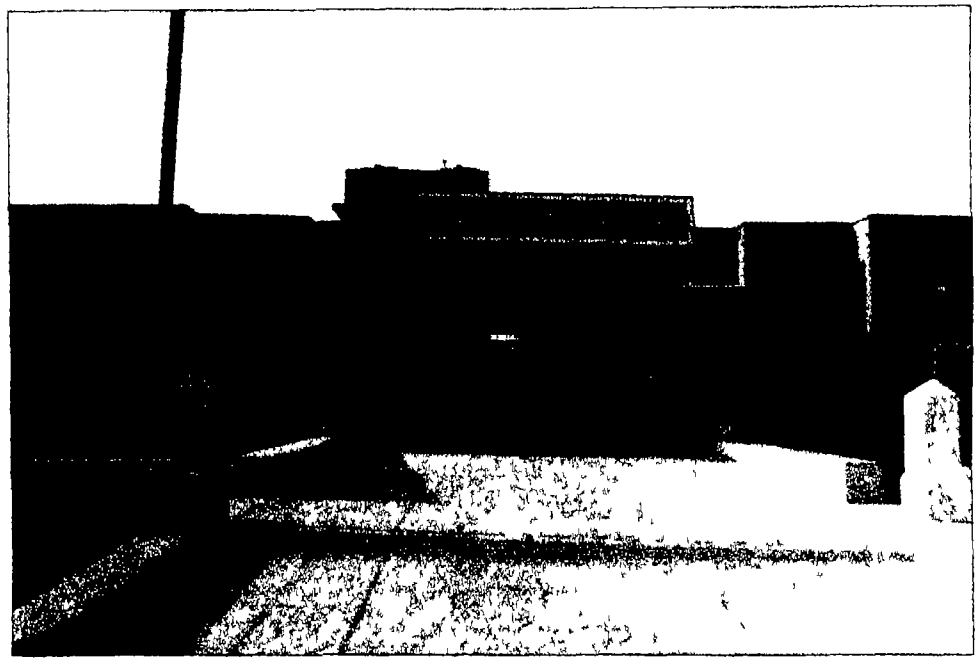

श्रीमती चन्द्रावली सिद्धामल जैन अस्पताल एव प्रसूतिगृह

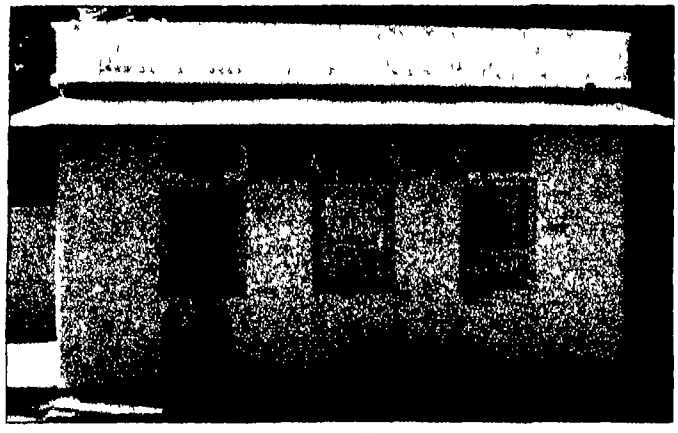

जन सुविधार्थ प्याऊ

श्री महावीर दिगम्बर जैन उच्च प्राथमिक विद्यालय, स्टेशन श्री महावीरजी

वार्षिक मेला श्री महावीरजी - झलकियाँ

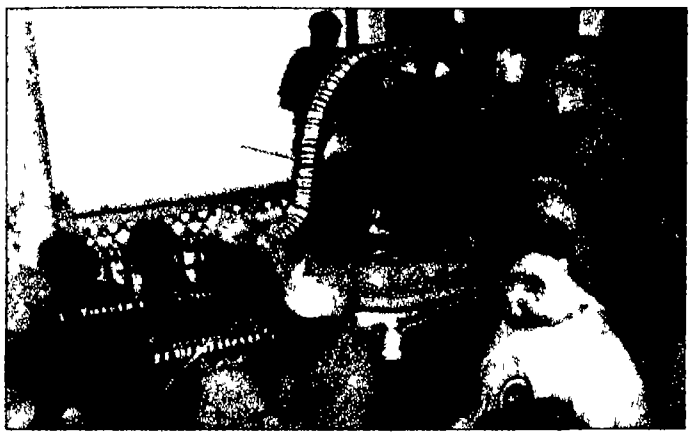

रथयात्रा हेतु प्रतिमाजी को पालकी मे ल जाते हुए

कटल के पश्चिमी पण्डाल मे पूजा का आनन्द लेते श्रद्धालुजन

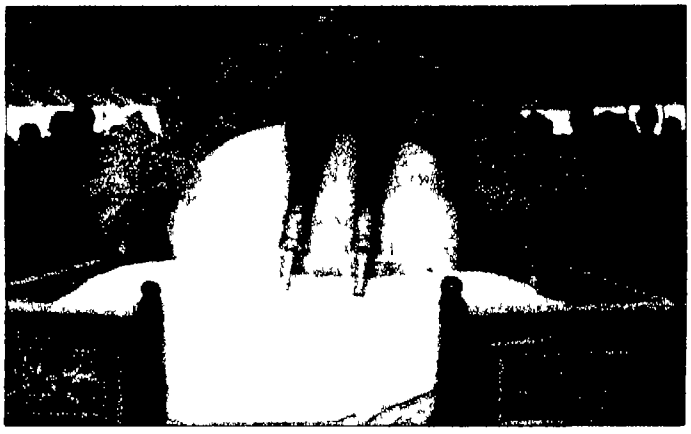

भट्टारकजी की गद्दी

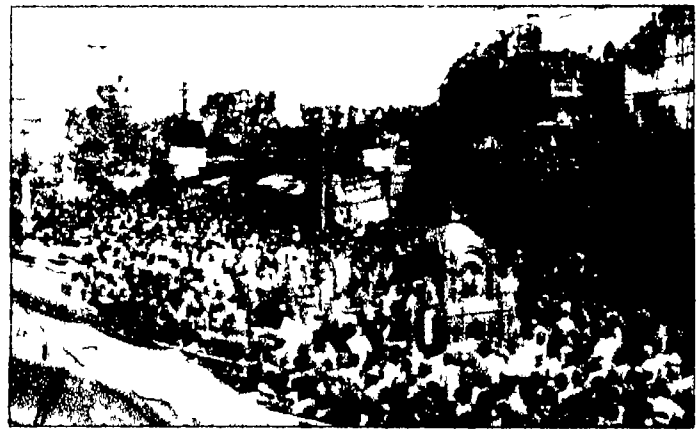

कलशाभिषक हतु प्रतिमाजी का ल जात हुये जिनेन्द्र रथयात्रा का भव्य दृश्य

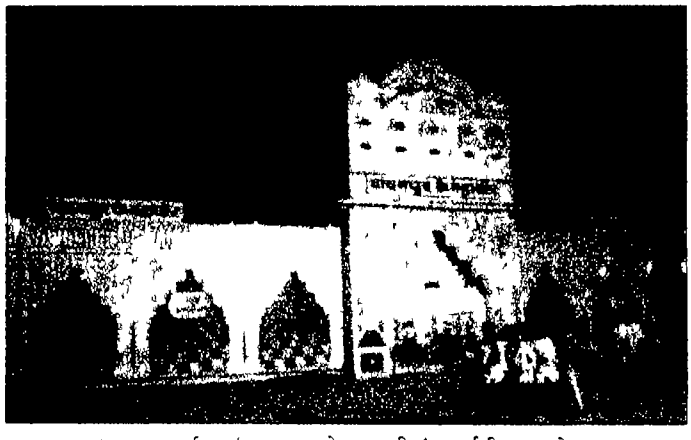

मल पर आयोजित 'चादनपुर के महावीर' प्रदर्शनी का प्रवेश द्वार

मल के अवसर पर जिले की असमर्थ महिलाओं को
स्वरोजगार हेतु सिलाई की मशीनें भेट करते हुए

प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा जिले के विकलागो को प्रदान की जा रही ट्राईसाइकिले

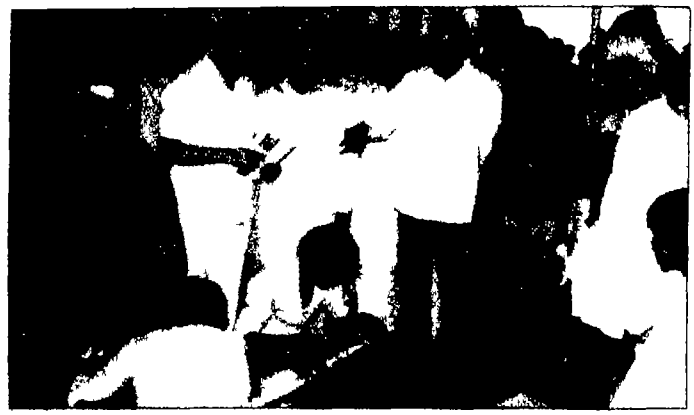

विकलागा को प्रबन्धकारिणी कमटी की ओर से दिये जा रह कृत्रिम पैर
(जयपुर फुट)

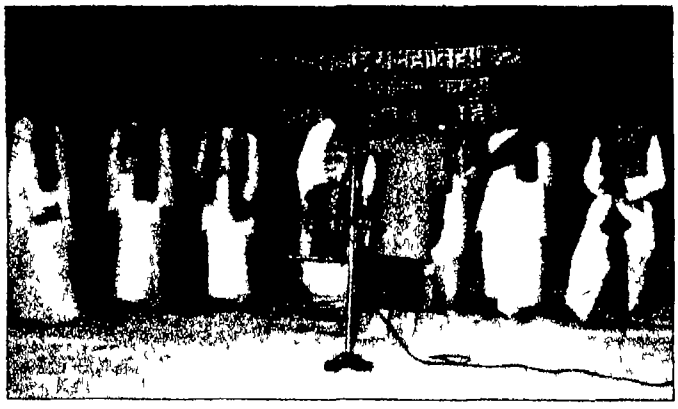

मेले के अवसर पर सास्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए आदर्श महिला महाविद्यालय की छात्राय

मेल पर आयाजित कवि सम्मेलन

जिला प्रशासन एव नेहरू युवा कन्द्र, सवाईमाधोपुर द्वारा प्रस्तुत लोकगात व लोकनृत्य कार्यक्रम

मेल क अवसर पर खरीददारी करत यात्रीगण

महावीर निर्वाणात्सव
सामूहिक लड्डू चढाते हुये श्रद्धालुजन

विशिष्ट अतिथियो का श्री महावीरजी आगमन

भगवान महावीर की प्रतिमा के उद्भव स्थल पर स्थापित चरणो पर दुग्ध अभिषेक करते हुए राजस्थान के मुख्यमत्री श्री भैरोसिह शेखावत

श्री कपूरचन्द पाटनी को स्मृतिचिह्न प्रदान करते हुए तत्कालीन केन्द्रीय मत्री श्री क सी पन्त।

राजस्थान के मुख्यमत्री श्री भैरोसिह शेखावत तत्कालीन पर्यटन मत्री सुश्री पुष्पा जैन, देवस्थान मत्रा श्री रामकिशोर मीणा, क्षेत्र प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्यो के साथ

मन्दिरजी के नीचे के भाग का अवलोकन करती पर्यटन राज्य मत्री श्रीमती नरेन्द्र कंवर

नीचे के मन्दिर का अवलोकन करते हुए राज्य के उप मुख्यमत्री श्री हरिशंकर भाभडा

राजस्थान के मुख्यमत्री श्री भैरोसिह शखावत का श्री महावीरजी मे स्वागत करत हुय प्रबन्धकारिणी कमटी के अध्यक्ष श्री एन के सेठी

प्रबन्धकारिणी कमटी के अध्यक्ष श्री नरशकुमार सठी द्वारा भेट जन पुराण कोष की प्रनि का अवलोकन करत हुए भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ शकरदयाल शर्मा

गम्भीर नदा के पुल का उद्घाटन करते हुये राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमत्री श्री माहनलाल सुखाडिया

फाटाग्राफी प्रतियोगिता के अवसर पर प्रकाशित परिचय पुस्तिका का विमाचन करती सुश्री गिरजा व्याम तत्कालीन कन्द्रीय सूचना एव प्रसारण राज्य मत्री पास म खड है जयपुर के सासद श्री गिरधारीलाल भागव।

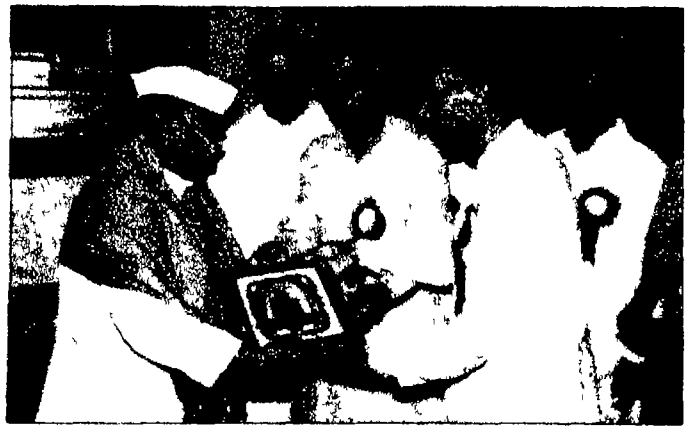

श्री महावीर याग प्राकृतिक चिकित्सा एव शोध सस्थान श्री महावीरजी के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमत्री श्री हरिदव जोशी का स्वागत करत हुये श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका (तत्कालीन अध्यक्ष प्रबन्धकारिणी कमटी)

पदयात्रियो का श्री महावीरजी आगमन

सहस्त्राब्दी समारोह की तैयारियॉ

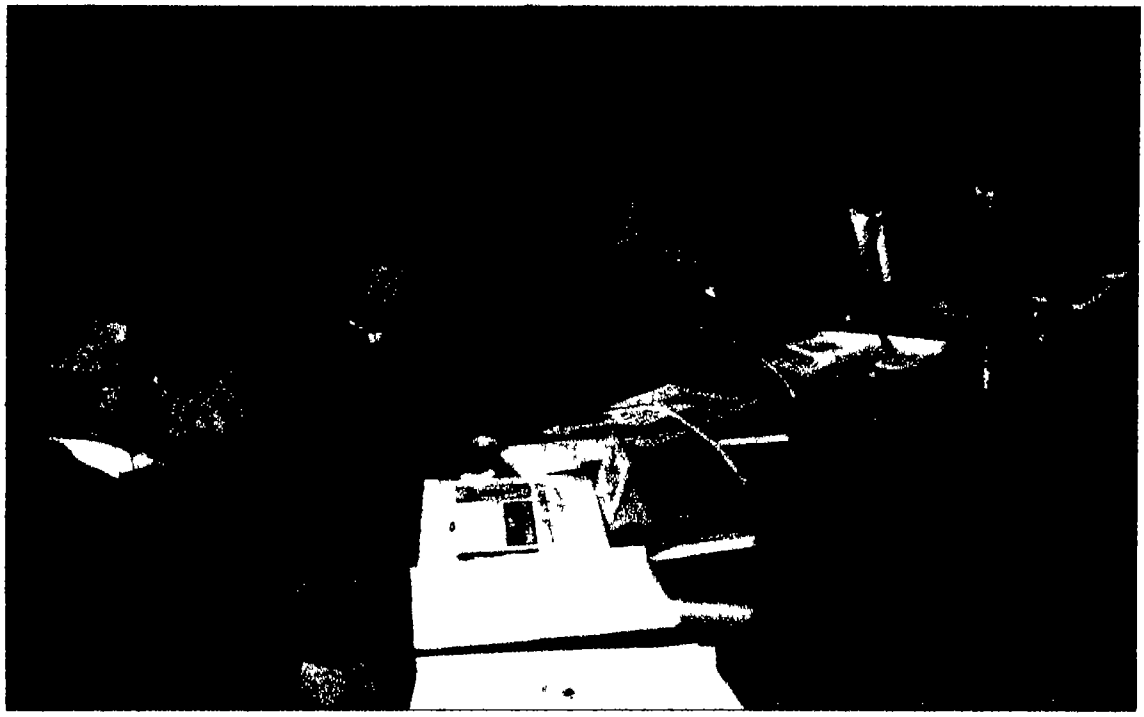

श्री महावीरजी मे होन वाले सहस्त्राब्दी समारोह की व्यवस्था के सबध म आयोजित बैठक को सम्बोधित करते हुए उप मुख्यमत्री श्री हरिशकर भाभडा, साथ म है सार्वजनिक निर्माण मत्री श्री ललित किशार चतुर्वेदी, मुख्य सचिव श्री मिट्ठालाल महता तथा कार्यकारी निदेशक टाइम्स ऑफ इण्डिया ग्रुप मे साहू रमेशचन्द जैन व सहस्त्राब्दी समारोह समिति क कार्याध्यक्ष नरश कुमार सेठी।

सहस्त्राब्दी समारोह मे भूमि पूजन व थम्बरोपण के समय आयाजित पूजा

विद्यानन्द कलश का पुण्यशाली ड्रा निकालत कार्याध्यक्ष श्री एन क सेठी

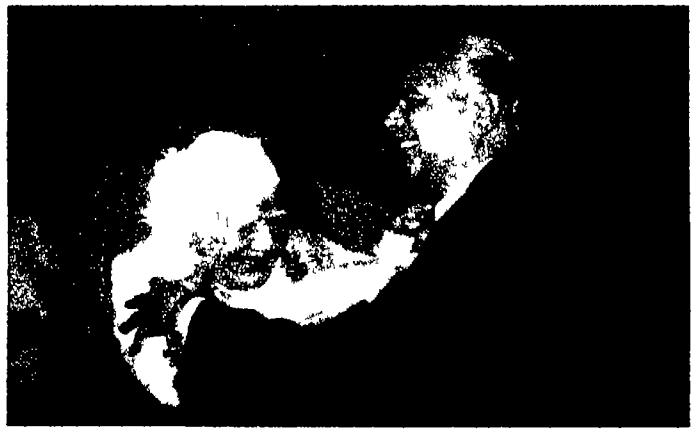

सहस्त्राब्दी समारोह के लिए सम्पन्न समाज की महती सभा मे, आवास-निर्माण समिति के अध्यक्ष पद्मश्री बाबूलालजी पाटोदी का सम्मान करते हुए सहस्त्राब्दी समारोह के कार्याध्यक्ष श्री एन के सेठी उपस्थित हैं दिगम्बर जैन समाज इन्दौर के अध्यक्ष श्री हीरालालजी झाझरी

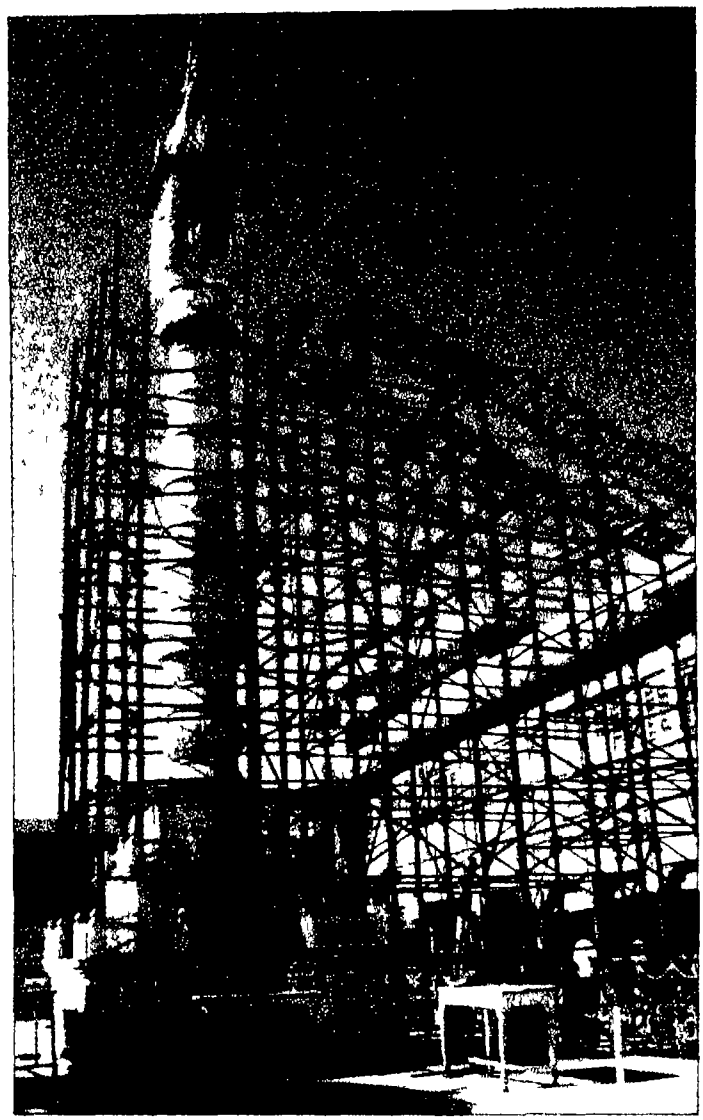

मानस्तम्भ कलशाभिषेक हेतु निर्मित लाह की सीढी का ढाचा

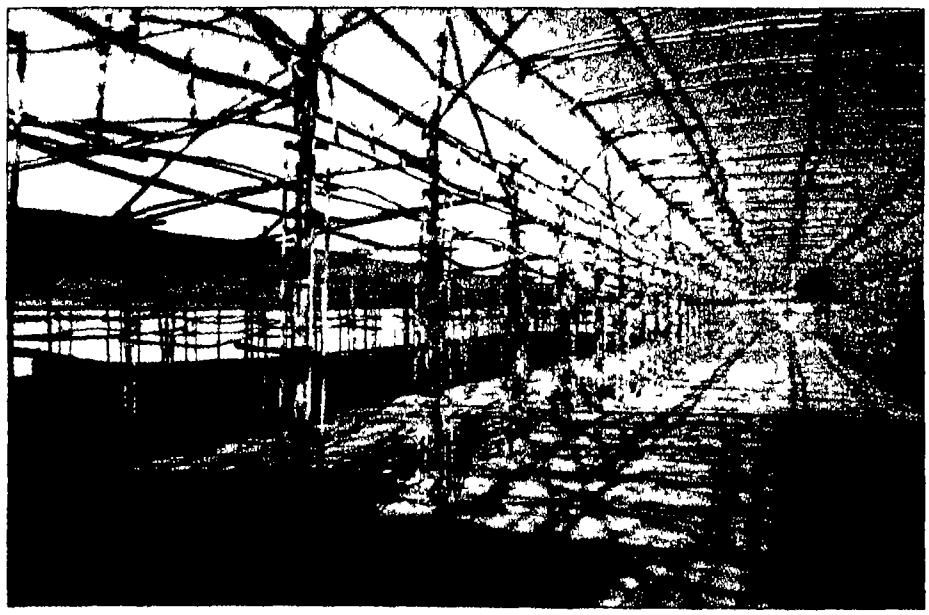

वैशाली जनपद नगर म बनाया जा रहा विशाल पाण्डाल

फिजियोथेरेपी द्वारा किया जाता है। दमा, मधुमेह आदि अनेक रोगों के उपचार सम्बन्धी अनुसधान का भी सस्थान मे प्रबन्ध है। शरीर की विभिन्न प्रकार की जाँच के लिए पैथोलोजिकल एव बायोकेमिकल जाच, ई सी जी आदि की सुविधाएँ भी सस्थान मे उपलब्ध है। आवास के लिए पुरुषो व महिलाओ के लिये अलग-अलग जनरल वार्ड्स है एव कॉटेज वार्ड्स भी अलग से उपलब्ध है। रोगियो के लिये भोजन की व्यवस्था सस्थान मे ही की हुई है।

स्वच्छ वातावरण मे रहकर स्वास्थ्य लाभ के साथ साथ रोगियो के लिये मनोरजन आदि की सुविधाएँ भी उपलब्ध है।

वर्तमान मे लगभग 50 अन्तरग रोगी तथा काफी सख्या म आउटडोर रोगी प्रतिदिन इस चिकित्सालय स लाभ उठा सकत है। आर्थिक दृष्टि स अक्षमथ रोगिया को नि शुल्क अलग स चिकित्सा व भोजन की व्यवस्था भी है। सस्थान मे रहकर उपचार लेनेवाले रोगिया क लिय दैनिक देय शुल्क निर्धारित है जिसमे आवास, उपचार व भोजन व्यय सम्मिलित रखा गया है।

सवाभाना दक्ष चिकित्सको एव उपचारको के कारण यह सस्थान तजी स विकास क पथ पर गतिशील है और आज भारत क प्रमुख यौग-प्राकृतिक चिकित्सा सस्थानो मे श्री महावीरजी के योग प्राकृतिक चिकित्सा एव शोध सस्थान का नाम लिया जाने लगा है।

श्रीमती चन्द्रावली सिद्धोमल जैन अस्पताल एव प्रसूति गृह

क्षेत्र प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा श्री महावीरजी व आसपास क क्षेत्र की आवश्यकताओ का समझते हुए स्टेशन रोड पर श्रीमती चन्द्रावली सिद्धामल जैन अस्पताल एव प्रसूति गृह वर्ष 1996 म प्रारभ किया। इसके निर्माण मे मसर्स सिद्धोमल एण्ड सन्स, दिल्लीवालो का सहयोग सराहनीय है। उपचार सबधी साज-सज्जाओ एव उपकरणो के साथ यह चिकित्सालय जन-सेवा कर रहा है। चिकित्सालय मे अन्तरग रोगियो क लिय 40 शय्याओ की व्यवस्था है। प्रबन्धकारिणी कमेटी ने नाम मात्र के शुल्क पर औषधियाँ, निदान एव अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई हुई है। सस्थान म ऑपरेशन थियेटर, विभिन्न प्रकार की जाँच हेतु निदान केन्द्र तथा रोगियो की सुविधा हेतु रोगी वाहन उपलब्ध कराया गया है। एक्सर मशीन-सोनोग्राफी की व्यवस्था भी प्रबन्धकारिणी कमेटी शीघ्र ही करने जा रही है। अन्य चिकित्सा विभागो के साथ दन्त चिकित्सा का कार्य भी प्रारभ किया जा रहा है। नर्सिंग स्टाफ क साथ वर्तमान मे तीन वरिष्ठ राजकीय चिकित्सक प्रतिनियुक्ति पर है जिनमे एक महिला रोग विशेषज्ञ, महिला चिकित्सक है। इस अस्पताल के खुल जाने स आसपास के ग्रामीण निवासियो को प्रसूति एव अन्य चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध हुई है।

विकलाग-पुनर्वास कार्यक्रम

विकलागा के पुनर्वास की दृष्टि स क्षेत्र कमेटी ने कृत्रिम पैर लगवान क लिये जिले का गोद लिया हुआ है। इसी शृखला मे प्रति वर्ष वार्षिक मेल के अवसर पर एक विशेष शिविर का आयोजन श्री महावीरजी मे कर जरूरतमन्दो को नि शुल्क पैर उपलब्ध कराय जाते है। मेले के अलावा जिले का कोई विकलाग पैर लगवान हत जयपुर जाता है तो उसके आने-जान व पर लगवाने का भार क्षेत्र कमेटी उठाती है। इस कार्य मे भगवान महावीर विकलाग समिति जयपुर का पूर्ण सहयोग मिल रहा है।

कृत्रिम पैरो क अतिरिक्त समय-समय पर विकलागो को तीनपहिया साइकिल तथा महिलाओ का सिलाई की मशीने आदि भी सहायतार्थ दी जाती रही है।

राजकीय एलोपैथिक डिस्पेन्सरी

प्रारभ म आयुर्वेदिक औषधालय के अतिरिक्त अन्य चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध नही थी तब प्रबन्धकारिणी कमेटी ने एलोपैथिक चिकित्सा की महत्ता का स्वीकार करत हुए अपने प्रभाव से श्री महावीरजा मे राजकीय डिस्पेन्सरी प्रारभ कराई। डिस्पेन्सरी हेतु भवन बनाकर उपलब्ध कराया तथा सभी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति की। आज भी यह डिस्पेन्सरी क्षेत्र कमेटी द्वारा उपलब्ध कराये गये भवन मे ही सचालित है।

आवासीय व्यवस्था

आन वाले यात्रियो के आवास हेतु मदिर के चारो ओर कुछ इमारते बनवाई गई। शनै शनै आवश्यकताओ के अनुरूप बनी

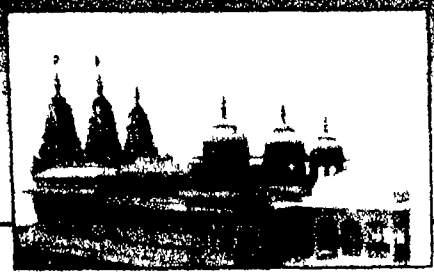

इमारतो का मन्दिरजी की भाति निरन्तर विकास होता रहा। कटला **दो मजिला बना, यह** अब पूर्णत सुविधायुक्त कमरो मे परिवर्तित **हो चुका है**। श्रद्धालुआ की निरन्तर बढती सख्या को दखकर **आवासीय** सुविधा मे निरन्तर वृद्धि की जा रही है। कटले क बाहर भी अनेक दानी महानुभावा न यात्रिया के ठहरन का सहूलियत क लिये धर्मशालाआ का निर्माण कराया जिनमे निम्न मुख्य है -

1 सठ सन्तलालजी गाधा, 'दिल्ली वालो की धर्मशाला'

2 सेठ बन्जीलालजी ठालिया, 'जयपुर वाला की धमशाला'

3 सठ बधीचन्दजी गगवाल जयपुर वाला द्वारा निर्मित धर्मशाला

4 दिगम्बर जैन जैमवाल 'आगरा वाला की धर्मशाला'

5 लाला साहब राजमल सराफ क सुपुत्र श्री अरुणसिह की स्मृति म उनक सुपुत्र सठ लक्ष्मीचन्दजी मनाहरलालजी जैन सर्राफ द्वारा निर्मित 'रवाडीवालो की धर्मशाला'

6 चरण छतरी धर्मशाला

प्रबन्धकारिणी कमटी द्वारा कटले क समीप कन्दकुन्द निलय का निर्माण सुसज्जित कमरा व बड हालो के साथ कराया गया है। कटल म बाहर बाजार म दुकाना क ऊपर क फ्लेट व कमर भी सुविधाआ मे युक्त है। चरण छतरी व कुन्दकुन्द निलय का कटल मे जोडा जाकर कटले का ही भाग बना दिया गया है। सठ सन्तलालजी गाधा व सठ बधीचन्दजी गगवाल द्वारा निर्मित धर्मशालाआ का प्रबन्ध प्रबन्धकारिणी कमेटी के अधीन आ जान पर उन धर्मशालाओ का कायापलट कर उन्हे आधुनिक सुविधायुक्त कमरा आदि म परिवर्तित कराया जा चुका है, वे आज वर्धमान धमशाला व सन्मति धर्मशाला के नाम से जानी जाती है।

इनक अतिरिक्त यात्रियो को आवासीय सुविधाआ क ध्यान मे रखकर दो बडे यात्री निवास सभी सुविधओ स युक्त डारमेट्रीज क रूप मे निर्माण कराये गय है। इसी स्थान पर एक भव्य भोजनालय भी बनाया गया है।

इमारत परिसर स्थित मानसरोवर गेस्ट हाउस के बने कमरे जो सभी प्रकार की सुविधाओ स युक्त है यात्रियो के लिये उपलब्ध है।

इस क्षेत्र पर आने वाला यात्री किसी प्रकार की कठिनाई महसूस न कर, इस हेतु अग्रलिखित सुविधाये उपलब्ध कराई जाती है -

बिस्तर-बर्तन की सुविधा

पर्याप्त मात्रा मे बिस्तर सेट व सभी प्रकार के बर्तन आदि यहाँ उपलब्ध है।

स्वागत कक्ष

श्री महावीरजी आने वाल यात्रियो की सुविधा की दृष्टि स कटल क बाहर एक सुसज्जित स्वागतकक्ष बनाया हुआ है जहाँ से सभी आवासीय व्यवस्थाआ का सचलान किया जाता है। यात्रिया की रुचि एव आवश्यकता क अनुरूप आवासीय सुविधा यहाँ स आवटित होती है।

ठण्डे व गर्म पानी की सुविधा

पाय सभी आवासीय इकाइया मे वाटरकूलर लगाय हुय है। बाजार मे प्याऊ लगाई हुई है। कटल म भी शीतल जल की व्यवस्था की हुई है। सर्दी क मौसम म गर्म पानी उपलब्ध कराने हेतु मोर ऊजा सयत्रो स व अन्य साधना स भी गम पानी की व्यवस्था की हुई है।

उपभोक्ता भण्डार

पूजा सामग्री आरती हेतु शुद्ध घी एव नित्य उपयोगी सामान "न लाभ न हानि" क सिद्धात पर यात्रियो को प्राप्त हो, इस उद्देश्य स कटला परिसर म वर्ष 1990 से उपभोक्ता भण्डार चलाया जा रहा है।

अन्नपूर्णा भोजनालय

क्षेत्र पर आन वाले यात्रियो की सुविधा को देखते हुए उचित मूल्य पर शुद्ध भोजन उपलब्ध कराने की दृष्टि स 26-6-1983 स कटल क पूर्वी भाग म एक भोजनालय 'न लाभ न हानि' के सिद्धान्त पर सचालित है। इस भोजनालय मे लगभग 200 व्यक्तियो का एक साथ कुर्सी-टेबल पर बैठकर भोजन करने की समुचित व्यवस्था है। भोजनालय मे जैन आचार-विचार तथा भक्ष्य-अभक्ष्य का ध्यान रखा जाता है। भोजनालय मे गर्मी मे ठन्डे पानी के लिए वाटरकूलर लगे हुऐ हैं। भोजनालय मे कुकिंग गैस तथा गस की

भट्टियो द्वारा भोजन तैयार किया जाता है। साधारणत प्रतिदिन यात्रियो को गर्म चपाती, तीन-चार सब्जियाँ, चावल, पापड, चटनी, आचार आदि परोसे जात है। भोजनालय प्राय दिनभर ही यात्रियो की सेवा मे कार्यरत रहता है। पूर देश के दिगम्बर जैन तीर्थों पर प्रबन्ध समितियो द्वारा उपलब्ध इस प्रकार की व्यवस्था मे श्री महावीरजी अग्रणी है। यात्रियो की बढती सख्या को देखते हुए क्षेत्र पर नवनिर्मित यात्री निवास के साथ ही 500 व्यक्तिया की क्षमता की एक भाजनशाला भी निर्मित की गई है जिसका शुभारम्भ सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर किया जा रहा है।

सुरुचि जलपान गृह

यात्रियो की सुविधार्थ उचित मूल्य पर शुद्ध नाश्ता उपलब्ध कराने के लिए प्रबन्धकारिणा कमेटी न 'सुरुचि जलपान गृह' के नाम से एक इकाइ दिनाक 25-12-1990 से चालू की है। इस जलपान गृह म पात 10 00 बज तक नाश्त की व्यवस्था है। नाश्त म चाय, दूध, जलबी, मठरी व कचारी आदि बाजार से कम दर पर उपलब्ध हात है। यह जलपान गृह भी 'न लाभ न हानि' क सिद्धान्त पर ही चलाया जाता है।

धार्मिक गतिविधियाँ (वार्षिक मला-पर्व आदि)

प्रात भार के साथ अर्थात् मदिरजी खुलन क साथ धार्मिक वातावरण प्रारम्भ हो जाता है। मदिरजी म टप द्वारा नित्य भजन-पाठ व स्तुतिया का प्रमारण प्रारम्भ हो जाता है। सूर्योदय क साथ प्रक्षालन-पूजा-पाठ मदिरजी मे श्रद्धालुआ द्वारा प्रारम्भ हा जाती है। श्रद्धालुओ की भक्ति भावना दखते बनती है। समूचा वातावरण महावीरमय बन जाता है। निश्चित समय क बाद पक्षालन ता बद हो जाती है परन्तु देर दोपहर तक पूजा आदि के कायक्रम चलत रहते है। सायकाल सध्या के समय अर्थात् सूर्यास्त क साथ बडी ही तन्मयता से घी के दीपको मे बिजली से चलने वाली मशीन के वाद्ययत्र बजाये जाने के साथ की जाने वाली आरती का दृश्य बडा ही भक्तिमय बन जाता है। दृश्य दख दर्शनार्थी झूम उठता है। उसके बाद भक्ति भावना से ओत-प्रोत होकर भगवान के सम्मुख भजन, नृत्य आदि दर्शनार्थी प्रस्तुत करते है। रात 10 00 बज तक यह कार्यक्रम चलता रहता है। उसके बाद सफाई व सुरक्षा हतु मदिरजी मगल किये जाते है।

वार्षिक मेला

महावीर जयन्ती के अवसर पर यहाँ प्रति वर्ष चैत्र शुक्ला 13 स वैशाख कृष्णा द्वितीया तक पाँच दिवसीय लक्खी मेला भरता है। अग्रजी तिथियो क अनुसार यह मार्च/अप्रैल म होता है। मले मे ध्वजारोहण जयन्ती जुलूस, जलयात्रा, जिनेन्द्र रथ-यात्रा और कलशाभिषेक आदि क सुन्दर कार्यक्रम होते हैं। राष्ट्रीय स्तर का यह मेला उन विशाल मेलो मे स एक है जिसमे सभी भागा से सभी समुदाय तथा वर्गा के लाग समभाव स सम्मिलित होते है। इसम साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय एव भावनात्मक एकता क प्रत्यक्ष दशन होते है। भारत मे यह दिगम्बर जैन तीर्थ, ऐसा धार्मिक स्थल है जहाँ जैन ही नहीं अपितु सभी वग के लोग ऐक्य भावना से दर्शन कर भक्ति करत है जय जयकार करते हैं और मनौतियाँ मनाते है। अनक ग्रामीण ता मीला दूर स साष्टाग दनक दण्डवत प्रणाम करत हुए आते है और भगवान'श्री क समक्ष श्रद्धा सुमन चढाते है और मनाकामनाय पूरी करत है।

वैशाख बुदी एकम का भव्य जिनेन्द्र रथ यात्रा व कलशाभिषेक का आयाजन होता है। इस दिन स्वण आभा से शोभित सुन्दर रथ म भगवान की प्रतिमा विराजमान होती है। रथ का सचालन परम्परानुसार हिण्डौन के उपखड अधिकारी राज्य सरकार के प्रतिनिधि क रूप म सारथी बन कर करत है। इस प्रकार धार्मिक भावनाओ स ओत प्रोत इस मल का राजकीय प्रतिष्ठा एव मान्यता प्राप्त होती है। रथयात्रा प्रारम्भ होने स पहले चर्मकार ग्वाले के वशज आज भी सम्मानित होत है। वैशाख कृष्णा प्रतिपदा क दिन विशाल रथयात्रा के जुलूस म मुख्य रथ के आगे दवराज इन्द्र की एरावत हाथी पर सवारी होती है तथा दिगम्बर जैन मूल सघ भट्टारक की पालकी होता है। रथयात्रा क साथ परम्परा रूप से मीणा जाति के लाग मजीरा की झकार के साथ कूदते-नाचते हुए नदी तट तक जात है। जुलूस मे सुमधुर धुन बजाते बेण्ड बाजे और भजन गाते भक्त समूह होत है। रथ क नदी तट पर पहुँचन पर भव्य पाण्डाल म विशाल जनसमूह क समक्ष जिनेन्द्र कलशाभिषेक होता है और तदुपरान्त पुष्प माला पहिनन की स्पर्धा होती है। जो अधिक राशि भेट चढाता है वही पुष्पमाला पहिनने का सौभाग्य सम्मान पाता है। कलशाभिषेक और माला होने के बाद वापसी रथयात्रा

जुलूस में मीणो का स्थान गुजर जाति के समूह ले लेते है और **नाचते**-कूदते, गाते, भक्ति भावना प्रदर्शित करते आते है।

मले के कार्यक्रमो मे प्रतिदिन वीर सगीत मण्डल, जयपुर के सहयोग से होने वाली सामूहिक पुजा, भजन, सगीत, नृत्य के कार्यक्रमो के अतिरिक्त ध्वजारोहण, जयन्ती जुलूस, जलयात्रा, जिनेन्द्र रथ यात्रा, कलशाभिषेक आदि है। इस अवसर पर सास्कृतिक कार्यक्रम, साहित्यिक एव शास्त्रीय सगोष्ठियाँ भी होता है। मेले मे विशेष आकर्षण ग्रामीणो का बडी सख्या मे एकत्रित होना और आत्मविभोर होकर नाचना कूदना है। वार्षिक मेले के अतिरिक्त सोलहकारण, दशलक्षण, पुष्पाजलि अठाइयो आदि पर्वों के दिनो पर विशेष कार्यक्रम आयोजित होते है। महावीर निवार्णोत्सव (दीपावली) पर प्रात काल सामूहिक रूप से निर्वाण लाडू चढाया जाता है।

चिकित्सा शिविर के आयोजन (विशेष आयोजन)

सभी प्रकार की चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध करने के पश्चात् भी क्षेत्र कमेटी ने समय-समय पर बहुत बडे बडे चिकित्सा शिविरो का आयोजन कर अभूतपूर्व सेवाये की है। वर्ष (1951) मे चक्षु आरोग्य कैम्प, वर्ष 1952 मे रेडक्रास सोसायटी, राजस्थान शाखा के सौजन्य से एक वृहद् सर्जिकल व आई कैम्प का आयोजन किया गया था। भारी सख्या मे आपरेशन हुये जो लगभग सभी सफल रहे। इस कैम्प मे भारत सरकार की स्वास्थ्य मत्री माननीया राजकुमारी अमृत कौर पधारी थी और उन्होंने श्री महावीरजी मे लगे कैम्प की मुक्त कठ से प्रशसा की। अमरीकन राजदूत श्री चेस्टर बाउल्स की पत्नी ने भी शिविर का अवलोकन कर कार्यो की सराहना की।

वर्ष 1952 मे आयुर्वेद विभाग के सहयोग से आयुर्वेद कैम्प लगाया गया जिसमे काफी रोगी आये और स्वस्थ होकर गये। लगभग प्रतिवर्ष दानी महानुभावो की ओर से आई कैम्पो की व्यवस्था की जाती रही हैं। वर्षा 1992 मे प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा भ्रमणशील शल्य चिकित्सा इकाई, राजस्थान सरकार के सहयोग मे एक वृहद् शल्य एव नेत्र चिकित्सा शिविर लगाया गया। शिविर मे भारी सख्या मे बहिरग रोगियो की चिकित्सा की गई तथा 849 रोगियो के आपरेशन किये गये जो पूर्णरूपेण सफल रहे। राजस्थान के राज्यपाल डॉ एम चेन्ना रेड्डी ने शिविर का अवलोकन किया और व्यवस्था एव कार्यो की बहुत सराहना की। गणधराचार्य 108 श्री कुन्थुसागरजी महाराज भी ससघ इस शिविर का अवलोकनार्थ पधारे तथा सभी रोगियो को स्वास्थ्य लाभ हेतु आशीर्वाद प्रदान किया और आयोजको की सराहना की। शिविर मे सभी रोगियो की वर्ष 1996 मे भ्रमणशील शल्य चिकित्सा इकाई राजस्थान सरकार के सहयोग से एक वृहद् शल्य चिकित्सा एव नेत्र चिकित्सा शिविर का आयोजन हुआ। भारी सख्या मे बहिरग रोगियो के उपचार के साथ आपरेशन भी हुये। समाज के वरिष्ठ चिकित्सकगण, समाज श्रेष्ठी व समाजसेवियो ने तथा राज्य के चिकित्सा मत्री श्री राठौड ने शिविर कार्यो आपरेशन थियेटर एव व्यवस्थाओ का अवलोकन कर सेवाकार्यो की प्रशसा की।

सुरक्षा व्यवस्था

क्षेत्र की सम्पत्ति एव यात्रियो की सुरक्षा के लिये प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा लगभग 50 60 सुरक्षाकर्मियो की नियुक्ति की गई है। ये कर्मचारी सदैव चौकस रहते है। क्षेत्र पर सभी प्रकार के व्यक्ति दर्शनार्थ आते रहते है, अपने साथ रुपया पैसा तथा महिलाये जेवर सहित भी आती है। क्षेत्र प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा सेन्ट्रल कार्यालय मे जेवर व जोखिम भरी राशियाँ जमा कर सुविधानुसार निकाली जा सकने की व्यवस्था की हुई है। सुरक्षा गृह की भी व्यवस्था है जहाँ यात्रीगण टोकन प्रणाली मे अपना सामान रख सकते है। स्थान स्थान पर यात्रियो की जानकारी हेतु बोर्ड लगवाये हुये है।

असामाजिक तत्वो से रक्षा के लिये पुलिस थाना क्षेत्रीय कमेटी द्वारा प्रदत्त भवन मे स्थापित है। पुलिसकर्मी अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद रहते है।

वार्षिक मले, पर्व दिनो एव विशेष आयोजनो पर जयपुर की प्रसिद्ध स्वयसेवी सस्था श्री वीर सेवक मण्डल की सेवाएँ व्यवस्था की दृष्टि से सदैव ही सराहनीय रही हैं।

समितियों के सदस्य महानुभावों की सूची

1 चयन समिति
1 मंत्री, संयोजक
2 अध्यक्ष
3 श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका
4 इकाई विशेष के संयोजक
5 विषय विशेषज्ञ

2 प्रचार प्रसार एवं जनसम्पर्क समिति
1 श्री नवीनकुमार बज
2 मंत्री
3 श्री कमलाकिशोर जैन
4 श्री अरुण सोगाणी

3 वर्धमान भवन
1 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी, संयोजक
2 श्री बलभद्रकुमार जैन
3 श्री नानगराम जैन

4 मेला उत्सव समिति
1 मंत्री संयोजक
2 श्री बलभद्रकुमार जैन
3 श्री सूरजमल बंद
4 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
5 श्री कमलाकिशोर जैन

5 यात्री सुविधा समिति
1 श्री भँवरलाल अजमेरा
2 श्री बलभद्रकुमार जैन
3 श्री प्रकाशचन्द

6 वित्त समिति
1 श्री नानगराम जैन, संयोजक
2 अध्यक्ष
3 मंत्री
4 श्री भँवरलाल अजमेरा
5 श्री विजयचन्द जैन
6 श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका
7 श्री पदमचन्द तातूका

7 जैनविद्या संस्थान
1 डॉ कमलचन्द सोगाणी संयोजक
2 श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका
3 डॉ गोपीचन्द पाटनी
4 श्री नवीनकुमार बज
5 मंत्री (पदेन)
6 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
7 डॉ के सी जैन उज्जैन
8 श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

8 शिक्षा प्रसार समिति
1 श्री राजकुमार काला, संयोजक
2 श्री तेजकरण डंडिया
3 श्री नवीनकुमार बज
4 श्री पूनमचन्दजी शाह
5 श्री प्रकाशचन्द जैन
6 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी

9 प्राकृतिक चिकित्सा समिति
1 श्री भँवरलाल अजमेरा
2 श्री बलभद्रकुमार जैन
3 श्री राजकुमार काला
4 श्री नवीनकुमार बज
5 श्री हरकचन्द सरावगी
6 डॉ सुभाष कासलीवाल
7 डॉ एस के सोगानी, दिल्ली
8 डॉ हुकमचन्द सेठी जयपुर

10 भोजनशाला एवं उपभोक्ता भण्डार
1 श्री बलभद्रकुमार जैन, संयोजक
2 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी

11 निर्माण समिति
1 श्री बलभद्रकुमार जैन, संयोजक
2 अध्यक्ष
3 मंत्री
4 कोषाध्यक्ष
5 श्री रामचन्द्र कासलीवाल
6 श्री कैलाशचन्द कासलीवाल
7 श्री रवि गुप्ता वास्तुकार
8 श्री विनोद साह, इंजीनियर

12 औषधालय व्यवस्था समिति
1 श्री महेन्द्रकुमार पाटनी, संयोजक
2 श्री बलभद्रकुमार जैन
3 श्री ताराचन्द जैन
4 श्री जमनादास जैन
5 डॉ अशोक कुमार गोधा

13 अस्पताल एवं प्रसूति गृह व्यवस्था समिति
1 श्री नवीनकुमार बज, संयोजक
2 श्री भँवरलाल अजमेरा
3 श्री बलभद्रकुमार जैन
4 डॉ सुभद्रकुमार पाटनी
5 श्री लोकेशकुमार जैन, दिल्ली
6 डॉ एस के सोगानी दिल्ली
7 डॉ हुकमचन्द सेठी, जयपुर

14 विधि प्रकोष्ठ
1 श्री रामचन्द्र कासलीवाल संयोजक
2 श्री नानगराम जैन
3 श्री राजकुमार काला
4 श्री पूनमचन्द शाह
5 श्री मंत्री (पदेन)
6 श्री मिलापचन्द जैन
7 श्री प्रकाशचन्द जैन
8 श्री हेमन्त सोगानी
9 श्री मधुराज कासलीवाल

चरवाहे के महावीर स्वामी

◦ सावित्री परमार

आसपास फैला जगल। गाय-भैस और भेडो के चरते-जुगाली करते समूह। वही एक टेकडी पर बैठा अलगोजे पर लोकधुन छेडता एक चरवाहा कि अचानक कोई अदृश्य छाया-ध्वनि उसके आसपास धीमे-धीमे गुजित होने लगती है।

''मगलमय मगलकरण, वीतराग विज्ञान।
नमो ताहि जाते भये, अरहन्तादि महान॥''

अपूर्व आनन्द का आवेग अलगोजा गिर जाता है। उसी समय सामने एक अलौकिक चमत्कार। गायो के झुड मे से निकलकर श्वेत श्यामा कजरी गाय हुकती सी दौडती है और सामने वाले ऊँचे ढलवाँ टीले पर चढकर एक स्थान पर खडी हो जाती है। उसके गोरोरे स्तनो से स्वच्छ दूध के झरने निसृत हो रहे है। सारा दूध उस स्थान की माटी मे समाता जा रहा है। गाय के नेत्रो मे असीम सतोष लहरा रहा है। स्तन खाली हो जाते है। गाय के शात धीर कदम फिर से गो झुड की ओर लौट जाते है। चरवाहे की समूची काया जड होकर रह जाती है। जगल भी जैसे स्तब्ध एक वशीकरण मे जैसे हर साँस मुग्ध और विस्मित यह क्या लीला रही, प्रभू? चरवाहे की वाणी मूक और मन असख्य जिज्ञासाओ का पिण्ड मन तो जाने कितने दिनो से चोर-शकालु हो रहा था कारण भी स्पष्ट तो था कि हर सध्या केवल यही भूरी कजरी के स्तन रिक्त मिलते थे। सबसे अच्छी स्वस्थ गाय, ढेरो दूध फिर यह क्या। सारा दूध जाता कहाँ है? कोई प्रेत भूत बाधा? किसी की नजर टोटका की पैनी मार या कोई असाध्य रोग या कुछ जहर मोहरा-धतूरा का प्रकोप? आखिर क्या? इसलिए आज दृष्टि मे एक-एक पहर निरीक्षण किया और विलक्षण चमत्कार देखा। फिर तो एक दो क्यो कई-कई दिन यही अपूर्व क्रम देखा। ठीक उसी टीले पर, उसी ठौर पर क्या माया है यह?

अनबूझ पहेली तो सुलझ गयी, लेकिन इसी टीले पर दुग्ध झरित क्या होता है? इन धूल-चट्टानी पर्तों के नीचे कौन-सा रहस्य है? उसका मन बेकाबू होने लगा। एक दिन चुपचाप वह फावडा-कस्सी लेकर उसी स्थान को खोदने लगता है। बहुत नीचे पाताल से जैसे कोई गभीर आवाज आती है 'कौन मानव-पुत्र हो तुम भाई?''मै तो एक चर्मकार हूँ।''गाय चराने का फिर कैसा कार्य मानव?''जाति से चर्मकार है हम लोग, परन्तु मेरा परिवार पीढियो से खेती करता आ रहा है। पशुपालन और दूध-दही का व्यापार भी। इसीलिए चरवाहा हूँ। मेरी गाय का दूध प्रतिदिन इसी स्थान पर क्यो ढलता है? यह देखना चाहता हूँ।''तब भाई, जरा सावधानी से फावडा चलाओ अवश्य जिज्ञासा शात करो क्या पता, इसी मे तुम्हारा कल्याण निहित हो?'

चमत्कार चरवाहे की धमनियो मे रक्त प्रवाह रुक सा जाता है। यह कैसे अनहोने आवरण खुल रहे है? वह आहिस्ता आहिस्ता खुदाई करने लगा तभी उसकी कुदाल किसी ठोस वस्तु से टकरायी। कुदाली फेक कर उँगलियो की पोरो से मिट्टी हटाने लगा। एक मूर्ति का सिर दिखाई दिया। अब तो उसका शरीर उत्साह वेग से भर उठा। जल्दी जल्दी मिट्टी की परत-परत हटने लगी। एक सर्वांग सुदर परिपूर्ण मूर्ति टीले की गोल पैदी मे सामने थी। बहुत ही भव्य और उत्कृष्ट। उस चरवाहे की टकटकी बँध गयी। दोनो नेत्रो से परमानन्दाश्रु की अविरल धाराएँ बह रही थी। मूर्ति के नयनो मे बडी चुम्बकीय आभा थी।

चरवाहे के हृदय से भक्ति का पुनीत झरना सरस्वती बन झरने लगा –

महावीर स्वामी। महावीर स्वामी।

स्मरण

स्व श्री कपूर चन्द पाटनी

जन्म **निधन**

8 जनवरी, 1927 22 अप्रेल, 1997

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी क्षेत्र के पूर्व मानद मत्री श्री कपूरचन्द जी पाटनी का जन्म जोबनेर मे श्री नाथूलालजी साहब पाटनी के यहाँ 8 जनवरी, 1927 को हुआ था। आपने अपना शैक्षिक जीवन जयपुर मे पडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के सरक्षण म रहकर बिताया और एम कॉम , एलएल बी तथा साहित्यरत्न की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर अपन जुझारू सामाजिक एव राजनैतिक जीवन की शुरुआत की। ''पाटनी जैन एण्ड कम्पनी'' क नाम मे श्री पाटनीजी ने टैक्स कन्सलटेन्ट का व्यवसाय चुना।

श्री पाटनीजी न प्रारम्भिक काल म 1955 स 57 तक नगर परिषद्, जयपुर के सदस्य क रूप मे, 1975 मे जयपुर शहर काग्रेस के मत्री के रूप मे, 1977 म शहर जिला काग्रस के अध्यक्ष के रूप म तथा 1984-85 मे काग्रेस शताब्दी समारोह के सयाजक क रूप म कार्य करत हुए अपनी बहुआयामी प्रतिभाआ का पदर्शित किया।

सामाजिक सेवा क क्षेत्र म श्री पाटनीजी राजस्थान जैन सभा के 7 वर्ष तक मत्री और तीन वर्ष तक अध्यक्ष रह। दिगम्बर जैन आचार्य सस्कृत महाविद्यालय जयपुर के मत्री पद का दायित्व 1973 से स्वर्गवासी होने तक, 24 वर्षों तक सभाले रहे। श्री पाटनीजी राजस्थान टैक्स सलाहकार सस्था के महामत्री एव अध्यक्ष के रूप मे की गई सवाओ क फलस्वरूप इस क्षेत्र मे सभी क आदरपात्र बने। अनेक राजकीय समितियो में, यथा 'बिक्री कर सरलीकरण समिति', 'राजस्थान भूदान एव ग्रामदान बोर्ड' एव 'देवस्थान सलाहकार बोर्ड' मे सदस्य के रूप मे श्री पाटनीजी द्वारा की गई सेवाएँ सदैव याद रखी जायेगी। भारत की प्रतिनिधि दिगम्बर जैन सस्था दिगम्बर जैन महासमिति मे श्री पाटनीजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। निधन के पूर्व $2^{1}/_{2}$ वर्षों से श्री पाटनीजी ने दिगम्बर जैन महासमिति क राष्ट्रीय महामत्री क अतिविशिष्ट पद को सभाल कर दिगम्बर जैन समाज के राष्ट्रस्तरीय नेताओ मे अपना स्थान बना लिया था।

उत्तर भारत क सबस प्रमुख तीर्थ क्षत्र दिगम्बर जैन अतिशय क्षत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमटी मे आप 22 जनवरी 1977 का अभ्यर्थित किय गये। कुछ ही समय म श्री पाटनीजी ने इस क्षत्र क उप मत्री का कार्यभार सभाल लिया और दिनाक 11 नवम्बर, 1979 मे आपन इस क्षत्र क महत्त्वपूर्ण मत्री पद पर आसीन होकर क्षत्र के उन्नयन मे अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। व इस क्षत्र क दिनाक 9 नवम्बर, 1986 स 12 जनवरी 1990 तक उप सभापति भी रहे। हमे मत्री के रूप म दिनाक 11 नवम्बर 1979 से 9 नवम्बर, 1986 तक और फिर दिनाक 13 जनवरी, 1990 स 22 अप्रेल, 1997 को स्वर्गवास होन तक श्री पाटनीजी द्वारा क्षेत्र को दी गई सेवाएँ सदैव अविस्मरणीय रहगी। दो भागो म विभक्त श्री पाटनीजी का लगभग 15 वर्ष तक मत्रित्व काल इस क्षेत्र का विकास यात्रा मे सदैव याद रखा जायेगा।

अत्यन्त मृदुभाषी, धर्मनिष्ठ, दृढ विचारो क धनी श्री पाटनीजी अपन बुजुर्गो मे, अपने साथियो म तथा अपन अधीनस्थ कर्मचारियो म एक कुशल एव कर्तव्य-परायण प्रशासक एव हरदिल अजीज व्यक्ति की छाप छोड गये है।

आपका श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह की परिकल्पना निर्माण मे अमूल्य योगदान रहा है। इस पावन अवसर पर हम उनका आदरपूर्वक स्मरण करत है।

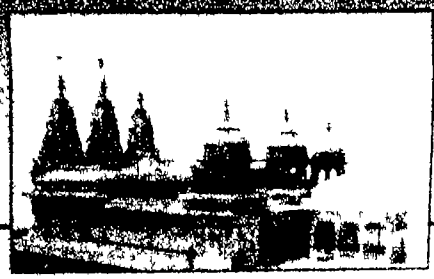

श्री महावीरजी क्षेत्र स्थित महिला शिक्षा-केन्द्र एवं अन्य जिनालय

° रतनलाल छाबड़ा, जयपुर
प्रदीप जैन, श्री महावीरजी

महिलाओं में शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं उनके सर्वांगीण विकास के लिए कर्मठ समाजसेवी ब्र. कमलाबाईजी ने बाल्यावस्था में ही विवाह हो जाने के शीघ्र बाद वैधव्य की पीड़ा के दुख को भूल श्री महावीरजी में 6 बालिकाओं के साथ 1 जनवरी 1953 को आदर्श महिला विद्यालय की स्थापना की। आज इस विद्यालय में लगभग 1800 बालिकायें पढ़ रही हैं जिसमें से 550 बालिकायें छात्रावास में ही रह रही हैं। बाईजी का संकल्प था कि विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं पर भारतीय संस्कृति की छाप हो तथा वे पाश्चात्य रंग में नहीं रंगे और वे भावी जीवन में आदर्श गृहणी, आदर्श माँ तथा आदर्श नागरिक सिद्ध हो सकें। इस संकल्प को बाईजी ने आरम्भ से आज तक बखूबी निभाया है।

विद्यालय में प्रथम कक्षा से लेकर राजस्थान शिक्षा विभाग की संस्कृत में उपाध्याय स्तर, शास्त्री (बी ए), आचार्य (एम ए, एस टी सी, बी एड) तक की नियमित शिक्षा दी जाती है जिसकी मान्यता महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर से प्राप्त है। बालिकाओं ने राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सैकण्डरी तथा हायर सैकण्डरी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी लाकर तथा योग्यता सूची में स्थान पाकर विद्यालय का नाम रोशन किया है। विद्यालय में लौकिक शिक्षा के सभी पाठ्यक्रम चलाए जा रहे है। शारीरिक शिक्षा, सिलाई कढ़ाई, बुनाई कशीदाकारी जैसी अतिरिक्त प्रवृत्तियाँ भी हैं। हस्त उद्योग, पाक विद्या तथा संगीत नृत्य, सांस्कृतिक गतिविधियाँ विद्यालय के पाठ्यक्रम के अभिन्न भाग है। नैतिक शिक्षा में जैन धर्म प्रथम भाग से लेकर मोक्षशास्त्र तक की पठन-पाठन व्यवस्था है। राज्य स्तर तथा जिला स्तर की गतिविधियों में छात्राओं ने भाग लेकर पुरस्कार जीते हैं। विद्यालय से शिक्षा प्राप्त अनेक छात्रायें उच्च प्रशासनिक सेवाओं में हैं। वे सरपंच, प्रधान एवं नगर पालिका अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुये विद्यालय को गौरवान्वित कर रही हैं। विद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं एवं छात्रावास में रहनेवाली छात्राओं का ऐसा कार्यक्रम बँधा हुआ है कि पूरा दिन किस प्रकार निकल जाता है पता ही नहीं चल पाता। ब्र. कमलाबाईजी की ममता और अनुशासन देखते बनता है। यही कारण है कि छात्रायें आपके व संस्था के प्रति समर्पित आचार्य श्री बृजमोहन के संरक्षण में सुरक्षित एवं आनन्दित अनुभव करती हैं। सभी आवश्यक सामग्री पुस्तकालय वाचनालय व प्रयोगशाला सहित विद्यालय का सुन्दर भवन है। महाविद्यालय हेतु 25 बीघा जमीन पर आधुनिकता लिए महाविद्यालय भवन का निर्माण कार्य विद्यालय समिति के अध्यक्ष श्री अमरचन्द पहाड़िया कलकत्ता व मंत्री श्री उम्मेदमल पाण्ड्या, इन्द्रामल सेठी की देखरेख में द्रुतगति से चल रहा है। 1.5 करोड़ की लागत की पांच मंजिला भव्य इमारत। विद्यालय भवन, बन जाने के बाद इस महाविद्यालय में नार्सिंग कालेज, एम एड का प्रशिक्षण महाविद्यालय, कम्प्यूटर शिक्षा आदि प्रारम्भ किये जायेंगे जिससे महिला शिक्षा में और प्रगति होगी।

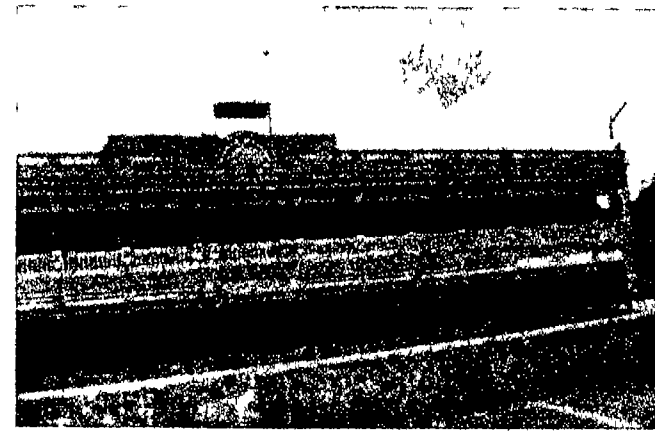

आदर्श महिला महाविद्यालय भवन

विद्यालय भवन के पीछे बड़े ही सुरक्षित ढंग से लगभग 500-600 बालिकाओं के रहने के लिये आधुनिक सुविधायुक्त तीन-मंजिला छात्रावास बनाया हुआ है, जिसमें आवासनी छात्राओं से

नाममात्र का भोजन शुल्क लिया जाता है। निर्धन व असहाय छात्रो से वह भी नहीं लिया जाता एव वस्त्र, पुस्तके व अन्य उपयोगी सामान और दिया जाता है।

प्रार्थना व आराधना हेतु विद्यालय परिसर मे एक भव्य जिनालय भगवान पार्श्वनाथ का बनाया हुआ हे, जिसमे कॉंच की सुन्दर आकर्षक पच्चीकारी का काम श्री पूनमचन्द गंगवाल झरियावालो ने कराकर इस मन्दिर का दर्शनीय बना दिया है।

इस तरह श्री महावीरजी अध्यात्म चेतना के साथ-साथ महिला शिक्षा का केन्द्र बन गया है।

अन्य जिनालय

श्री महावीरजी मे मुख्य मदिर के अतिरिक्त निम्न चार और मन्दिर हैं -

(1) मुमुक्षु महिलाश्रम वाला मन्दिर

चाँदनपुरवाले बाबा के मन्दिर स करीब 2 फर्लांग दूर पश्चिम की तरफ सडक के किनारे पर मुमुक्षु महिलाश्रम अथवा श्री कृष्णाबाई आश्रम के नाम स विकसित भगवान महावीर का एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर के पूर्वमुखी सिहद्वार मे घुसत ही मानस्तम्भ हे। मन्दिर मे भगवान महावीर की विशाल श्वेत मकराना पाषाण की 9 फुटी पद्मासन मनोज्ञ मूर्ति विराजित है। मन्दिर मे समोशरण एव नन्दीश्वर दीप की रचनाएँ भी निर्मित ह। मन्दिरजी का हॉल बहुत विशाल है। मानस्तम्भ के दक्षिण की ओर एक कमर मे सम्मेदशिखरजी के भाव को उकेरा गया ह। इसमे भरतजी, बाहुबलीजी व आदिनाथ भगवान की खड्गासन मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर के बाहर मुमुक्षु महिलाओ हेतु कमरे बने हुये है।

(2) भगवान पार्श्वनाथ जिनालय

ब्र कमलाबाईजी द्वारा सचालित आदर्श महिला विद्यालय एव छात्रावास परिसर मे भगवान पार्श्वनाथ का एक जिनालय प्रार्थना सभा के लिए चाँदनपुरवाले बाबा के मन्दिर के पूर्व मे सन्मति धर्मशाला के सामने वर्ष 1984 मे बनाया गया। मन्दिर के गर्भगृह मे मकराने की बनी सुन्दर वेदी मे भगवान पार्श्वनाथ की 4 फुट ऊँची पद्मासन श्यामवर्णी प्रतिमा विराजमान है। अन्य वेदिया मे श्वेत मकराने व धातु से बनी अन्य तीर्थकरो की मूर्तियाँ है। गर्भगृह के बाहर एक विशाल हॉल है जिसे कॉंच की पच्चीकारी म

श्री दिगम्बर जैन श्री 1008 पार्श्वनाथ चैत्यालय (प्रार्थना भवन) श्री महावीरजी का प्रवेश द्वार

श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय कांच मन्दिर म विराजमान भ पार्श्वनाथ

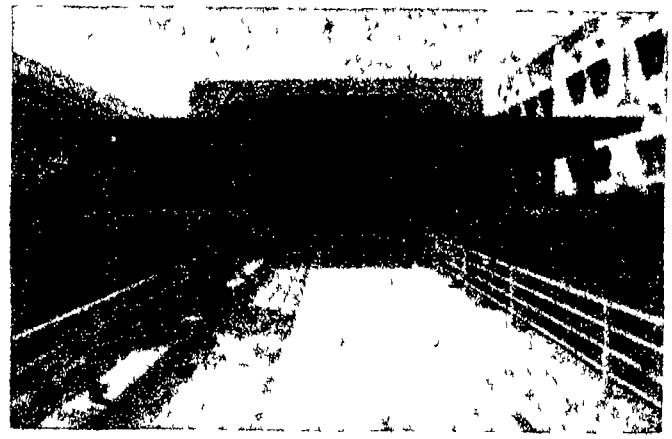

सुशोभित किया हुआ है तथा इसमें भगवान के गर्भ, जन्म, तप, **ज्ञान तथा मोक्ष** कल्याणकों के चित्र बने हुये हैं। भगवान पार्श्वनाथ **के दसों भवों** की घटनाओं को कॉच की चित्रकारी कर कलात्मक **रूप** में दिखाया गया है। मुख्य हॉल में निर्मित कॉच की सुन्दर कारीगरी की एक विशेषता यह है कि यहाँ सब जगह से मूलनायक प्रतिमा के दर्शन होते हैं। गर्भगृह में सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी, चम्पापुरीजी, पावापुरीजी, श्रमणबेलगोला व कैलाशपर्वतराज की झाँकियों का चित्र विभिन्न रंगों के काँचों से सोने के रंग में समन्वित कर बनाये गये हैं। यह बहुत ही सुन्दर व कलात्मक कार्य है। यह मन्दिर ब्र. कमलाबाईजी के काँच के मन्दिर के नाम से जाना जाता है।

(3) शान्तिवीर नगर मन्दिर

यह मन्दिर गंभीर नदी के पूर्वी तट से करीब एक किलोमीटर दूरी पर है जिसका निर्माण सन् 1960-61 में हुआ है। इस मन्दिर की मुख्य वेदी में भगवान शान्तिनाथजी, महावीर स्वामीजी एवं चन्द्रप्रभुजी की तथा अन्य वेदियों में भगवान पार्श्वनाथजी की खड्गासन व पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं।

इसी मंदिर परिसर में जिनालय से दूसरी ओर 28 फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा तथा उसके पास पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी की मनमोहक प्रतिमायें विराजमान हैं। पूर्वी भाग में सहस्रकूट चैत्यालय है। मण्डप के पूर्व में परिसर में अलग-अलग वेदियों में चौबीस तीर्थंकरों व जैन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ विराजमान हैं। मानस्तम्भ भी बना हुआ है। एक ओर में अष्ट धातुओं की 6-6 फुट ऊँची चन्द्रप्रभजी, शान्तिनाथजी एवं महावीर स्वामी की खड्गासन प्रतिमाओं का चैत्यालय बना हुआ है।

[illegible] शान्तिवीर नगर मन्दिर

(4) कीर्ति आश्रम वाला चैत्यालय

शान्तिवीर नगर के मंदिर के सामने उत्तर की ओर यह चैत्यालय स्थित है। इस चैत्यालय में प्राचीन मूर्तियाँ खड्गासन व पद्मासन विराजित हैं।

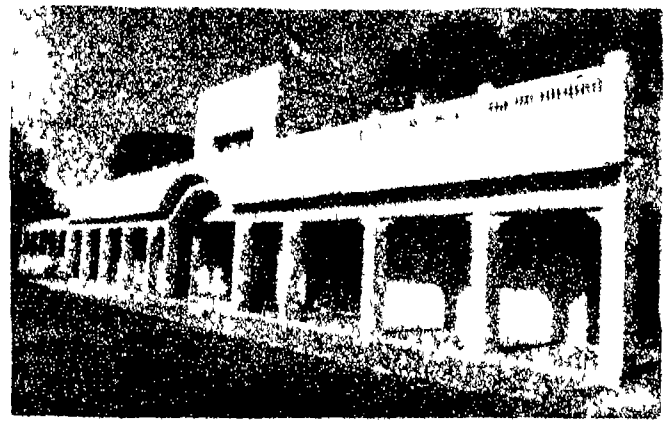

[illegible]

ये सभी जिनालय दर्शनीय हैं।

श्री महावीरजी में चलती ट्रेन से भगवान श्री के दर्शन

• कमल किशोर जैन

पूरे देश भारत मे श्री महावीरजी तीर्थ क्षेत्र के रेलवे स्टेशन पर एक विशेष व्यवस्था है। यहाँ कोई यात्री रेलवे स्टेशन पर बिना रुके आगे रेल यात्रा मे बढ रहा हो तो उसके मन मे यह अभिलाषा सदैव रहेगी कि वह भी उस पुण्य स्थल पर रुककर दर्शन प्राप्त कर सकता होता और भगवानश्री का आशीर्वाद लेने का अवसर पाता। ऐसे यात्रियो के लिए ट्रेन मे बैठे-बैठे ही दर्शन लेने की सुविधा श्री महावीरजी मे है और ऐसे यात्री अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं।

यह व्यवस्था दिल्ली-बम्बई ब्राडगेज लाइन पर स्थित श्री महावीरजी के रेलवे स्टेशन पर गत 8 वर्ष पूर्व की गई थी और आज भी कायम है। यहाँ स्टेशन के प्लेटफाम पर एक पन्द्रह फीट ऊँचे विशाल चित्र स्तम्भ का निर्माण किया गया है। इस स्तम्भ में स्थायी रूप से भगवान महावीर के 4 × 6 फीट साइज के बड़े चित्र, तीर्थ क्षेत्र के विहंगम चित्रों के साथ लगाये गए है। स्तम्भ के दोनो ओर चित्र है और यात्रीगण बिना प्लेटफार्म पर उतरे बैठे बैठे ही ट्रेन से भगवान महावीर के दर्शन कर अपने आपको धन्य समझते है।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी ने रेलवे बोर्ड की विशेष स्वीकृति से ''महावीर दर्शन'' नामक इस चित्र-स्तम्भ का निर्माण किया था। राजस्थान के करौली के ग्रेनाइट पत्थर से बने हुए स्तम्भ के बीच क्रिकल ग्लास मे जड़ित बडे चित्र लगाये गए है। स्तम्भ के नीचे की ओर करौली के गुलाबी पत्थरों का उपयोग हुआ है और इसके चारो ओर धौलपुर के लाल पत्थर की जाली लगाई गई है। इसकी सतह पर मकराने का सफेद संगमरमर लगा है।

रात्रि के समय दोनो ओर से चित्र स्पष्ट दिखाई दे सकें, इसके लिये रोशनी का आवश्यक प्रबन्ध भी किया गया है। यह स्तम्भ अत्यन्त मनोहर, कलापूर्ण और आकर्षक बन सका है। इसके चारो ओर रखे सुन्दर पौधो के गमले इसकी शोभा को और भी बढा देते है। कारीगरी की दृष्टि से श्रेष्ठता लिये हुए इस ''महावीर दर्शन'' चित्र स्तम्भ के आकृतिकार श्री पारस भंसाली और वास्तुकार श्री प्रमोद जैन है। इसके छायाकार श्री सुरेन्द्र काला हैं और क्रिकल ग्लास मे जड़ित करने का कार्य अपना उद्योग के माध्यम से श्री सी. के. जैन ने किया है। इस पूरी योजना को मूर्तरूप देने मे क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री ... ने मंत्री और सांस्कृतिक व जनसम्पर्क आयोजन के संयोजक श्री कमल किशोर जैन का विशेष योग रहा है।

यद्यपि इस स्तम्भ का रूपरेखा बनाने, रेलवे से स्वीकृति लेने, साधन जुटाने और निर्माण कराने मे लगभग एक वर्ष से भी अधिक का समय लग दिया लगा था, फिर भी श्री महावीरजी के 1980 के वार्षिक मेले के अन्तिम दिन जब 2. अप्रेल को रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष श्री राजकुमार जैन ने इस भव्य स्तम्भ का अनावरण किया तो हजारो उपस्थित नागरिकों ने भगवान महावीर की जय-जयकार से समारोह पाण्डाल को गुंजा दिया और इस प्रकार से चलती ट्रेन से भगवानश्री के दर्शन कराने की योजना को साकार रूप मिल सका।

इस समारोह के अध्यक्ष पूर्व सांसद श्री जे. के. जैन थे और इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप मे एयर मार्शल पी. के. जैन भी श्री महावीरजी आये थे। समारोह के लिये रेलवे राज्य मंत्री श्री माधवराज जी सिंधिया का मंगल कामना सन्देश प्राप्त हुआ था।

वीर, अतिवीर और वर्द्धमान के रूप मे विख्यात भगवान महावीर के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो को सदैव इस चित्र-स्तम्भ के माध्यम से बल मिलता है और इसके दर्शन कर यात्रीगण सुख व शान्ति प्राप्त करते है। यही इस स्तम्भ का उद्देश्य है।

वरिष्ठ पत्रकार, स-6 मोती मार्ग बापू नगर, जयपुर 302 015

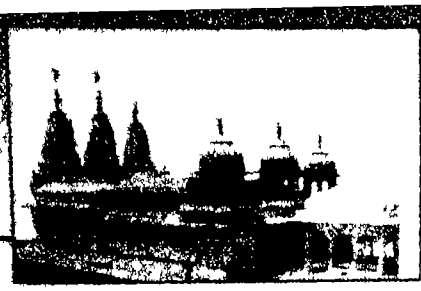

कैसे भूलेंगे वे क्षण

◦ नरेश कुमार मेठी

सूर्य की उष्मा से समुद्र का खारा जल बादल रूप में परिणित होकर बरसता है तो वह अपना खारापन खो देता है, नदी के रूप में पृथ्वी की प्यास को शमित करता है। इस जल की संगति से पृथ्वी के उदर में पड़े बीज पोषण पाते हैं और भूमि में नव-चेतना का अंकुरण होता है। धर्म-गंगा अपने मस्तक पर धारण करने वाले निर्ग्रन्थ साधु जहाँ-जहाँ से विचरित होते हैं उनके उपदेशों की अमृत वर्षा कषाय रूपी समुद्र में डूबे प्राणियों की कषायाग्नि को शान्त करता है, शमित करती है। गुरु के उपदेशों में समाहित निर्मलता, समता और ज्ञान के प्रकाश में व्यक्ति स्व को पहचानता है, स्व का बोध करता है और कषाय रूपी समुद्र से ऊपर उठकर ज्ञान का अवगाहन करता रहता है। दर्शन ज्ञान और चारित्र प्रस्फुरित होता है, रत्नत्रय की संगति से आत्मा तेजोमय होता है। व्यक्ति इस ऊर्जा से अनन्त कर्मों का क्षय करता हुआ आत्मा से परमात्मा बनने की शक्ति अर्जित कर लेता है और स्वयं सिद्ध हो जाता है बुद्ध हो जाता है, पूजक न होकर पूज्य हो जाता है। शुभ कर्मोदय और काललब्धि का संयोग बनता है तो असंख्य जीवों का कल्याण मार्ग प्रशस्त करने किसी न किसी निर्ग्रन्थ साधु, श्रमण का सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए अवश्य पदार्पण होता है।

जयपुरवासियों के लिए भी इस बार ऐसा ही निमित्त बना। से 8 फरवरी 1998 तक होने वाला सहस्राब्दी समारोह। सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत विश्वधर्म प्रेरक आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज ने इस समारोह को अपने सान्निध्य में सम्पन्न कराने हेतु दिल्ली से जब श्री महावीरजी के लिए विहार किया तो न तो आचार्यश्री को न किसी और को यह कल्पना थी कि वर्षायोग जयपुर में होगा अथवा आचार्य श्री जयपुर होकर श्री महावीरजी पधारेंगे। आचार्यश्री का मंगल विहार दिल्ली से अलवर होते हुये श्री महावीरजी के लिए निश्चित था। आचार्यश्री दिल्ली से गुड़गाँव तिजारा चन्द्रप्रभु की वन्दना करते हुये अलवर पहुँचे। अलवर से एक मार्ग जयपुर की ओर तथा दूसरा श्री महावीरजी की ओर जाता है। चातुर्मास का स्थापना दिवस जयपुर वासियों के पुण्योदय/काललब्धि के नजदीक आ पहुँचा था। इसलिए जयपुरवासियों के निवेदन से भक्ति भावना से आचार्यश्री ने अलवर में अपना वर्षायोग जयपुर में करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। जयपुर की जनता के पुण्योदय से धर्म-गंगा दूसरी ओर जाते-जाते इस ओर मुड़ गई।

आचार्यश्री धर्म प्रभावना करते हुये 10 जुलाई को आमेर रोड स्थित शिवजी गोधा की नसियाँ पहुँच गये। जयपुर की धर्मालु जनता ने जब से आचार्यश्री की घोषणा सुनी थी तब से ही वह आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज के चरणों में अभिनन्दन, अभिवन्दन करने के लिए पलक पावड़े बिछाये तैयार था। 11 जुलाई, 1997 को आचार्यश्री का जयपुर में वर्षायोग के लिए 33 वर्षों के अन्तराल से दूसरी बार मंगल प्रवेश था। आचार्यश्री भव्य शोभायात्रा के साथ दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी में पहुँचे। यहीं पर आचार्यश्री के चातुर्मास की स्थापना होनी थी।

दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी की माटी आचार्यश्री के चरणों को छूकर उपकृत हो रही थी। उसको सन् '87 के पश्चात् सन् '97 में आचार्यश्री के मंगल प्रवेश का लाभ प्राप्त हो रहा था। अन्ततोगत्वा 19 जुलाई, 1997 के दिवस अपार जनसमूह के बीच मंत्रोच्चार के साथ आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज ने अपने चातुर्मास की स्थापना जयपुर में कर दी। यह दिन जयपुरवासियों के लिए अविस्मरणीय आनन्द का दिन था क्योंकि अब पूरे चार माह तक धर्म तीर्थ के अमृतमयी प्रवचनों की वर्षा में अपने अन्तर्मन को उज्ज्वल करने का, श्रवण का अवसर नित्य प्राप्त होना था।

वर्षायोग के दौरान आचार्यश्री ने अनेक विषयों के सारगर्भित ज्ञान से जनमानस में धर्म प्रभावना का बीजारोपण किया। चातुर्मास में आचार्यश्री ने जैनागम के वास्तविक ज्ञान हेतु मूल भाषाओं, प्राकृत व अपभ्रंश के अध्ययन की आवश्यकता के बारे में बतलाया। इन भाषाओं के अध्ययन की ओर प्रेरित करने के लिए आचार्यश्री ने नित्य अपने प्रवचन से पूर्व प्राकृत भाषा में समयसार की गाथाओं का पाठ कराना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे लोगों

आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

राष्ट्रसन्त आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज का जयपुर में वर्षायोग

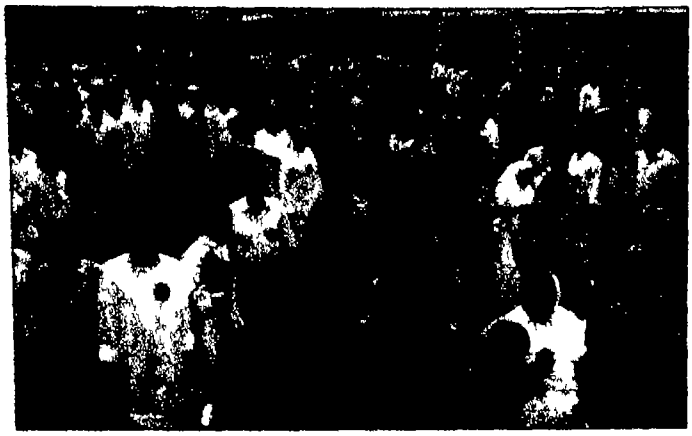

वर्षायोग हेतु जयपुर मे मगल प्रवेश

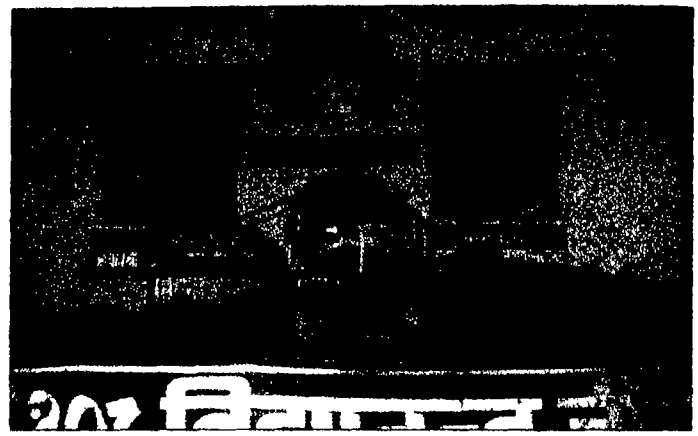

वर्षायोग स्थापना

विद्यालयो के छात्र छात्राओ को सम्बोधित करते हुय आचार्यश्री

भट्टारकजी की नसियाँ मे चातुर्मास स्थापना पर झण्डारोहण

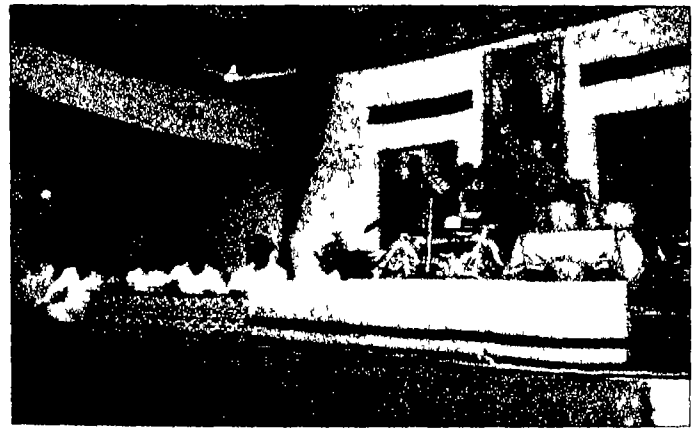

दीक्षा दिवस समारोह

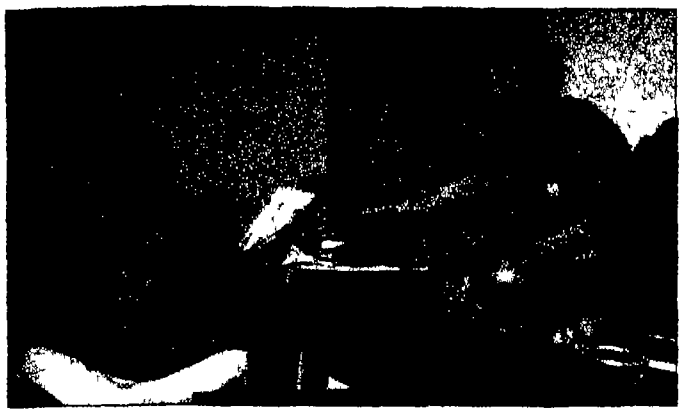

आचार्यश्री स आध्यात्मिक चर्चा करते हुये राजस्थान के राज्यपाल महामहिम श्री बलिराम भगत

आशीर्वाद ग्रहण करते राजस्थान के मुख्य मत्री श्री भैरोंसिह शेखावत

आचार्य श्री मे चर्चा करते राजस्थान प्रदेश काग्रेस (आई) के अध्यक्ष श्री अशोक गहलोत

आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज से आशीर्वाद प्राप्त करते पचायत राज्य मत्री श्री नाथूसिह गुर्जर

आचार्यश्री का श्रीफल भटकर आशीर्वाद प्राप्त करत प्रदेश स्वास्थ्य राज्य मत्री श्री राजेन्द्रसिह राठौड

वर्षायोग समापन पर चातुर्मास स्थापना कलश को आरोग्य भारती के वैद्य श्री सुशीलकुमारजी को प्रदान करत आचार्यश्री

राज्य के उप मुख्य मत्री श्री हरिशकर भाभडा की अध्यक्षता मे आयोजित मगल विहार कार्यक्रम मे प्रवचन करत आचार्यश्री

राष्ट्रसन्त आचार्यश्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज का श्री महावीरजी में मगल आगमन

श्री महावीरजी मे मगल प्रवेश करत हुय आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज

आचार्य श्री विद्यानन्द मुनिराज की आरता करत हुए श्री एन के मठी

श्री महावीरजी के मुख्य द्वार पर आचार्यश्री विद्यानन्दजी की अगवानी क लिए प्रतीक्षा म जनसमूह

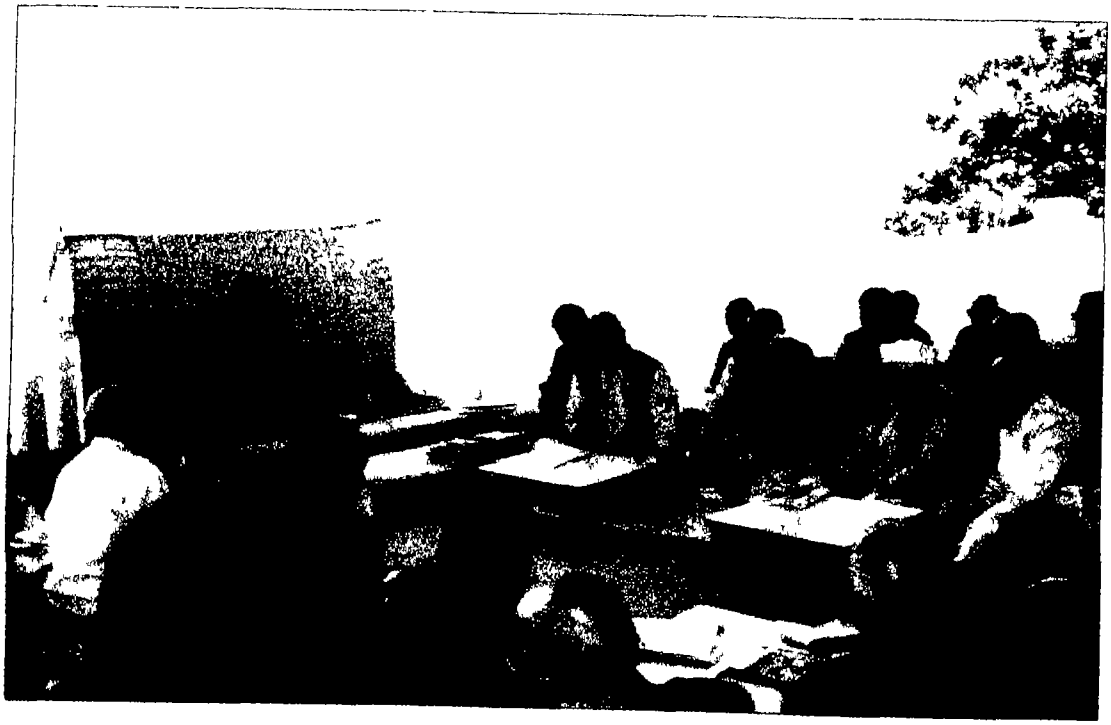

आचार्यश्री क सान्निध्य म पदाधिकारिया की एक सभा

मे इसके प्रति रुचि जाग्रत होने लगी। लोग इसके अध्ययन के लिए नसियाँ परिसर मे स्थित विद्या सस्थान की पत्राचार पाठ्यक्रम योजना के सदस्य बनने लगे।

जयपुर के इतिहास मे यह पहला अवसर था जबकि एक निर्ग्रन्थ धर्माचार्य ने समयसार का अपने प्रवचनो का विषय चुना। इससे पहले समयसार के अध्ययन व मनन के सम्बन्ध म अनक भान्तियाँ थीं। कुन्दकुन्द जैसे महान आचार्य की इस रचना को पण्डित समुदाय ने केवल मात्र अपने अध्ययन व मनन की वस्तु बना रखा था। आचार्यश्री ने इस भ्रान्ति को दूर करने व साथ साथ इसको अनुवादित करने वालो और इस पर प्रवचन देने वाले लोगो को भी आगाह किया कि समयसार की मूल भाषा के ज्ञान के अभाव मे किये गये अनुवादो म काफी गल्तियाँ रह जाती है। समयसार का प्रत्येक जन के लिए स्वाध्याय करना सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। समयसार पर प्रवचन करते हुये आचार्यश्री ने इसम वर्णित व्यवहार व निश्चय नय की समान रूप से आवश्यकता का वर्णन करते हुये शुद्धनय से आत्मानुभव का मार्ग बतलाया।

आचार्यश्री के द्वारा प्रवचनो म समयसार की गाथाओ का विश्लेषण व प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ के उत्थान के लिये दिये गये उद्बोधनो ने स्थानीय जनमानस को जागृत कर दिया। प्राकृत एव अपभ्रंश भाषाओ के पुनरुत्थान हेतु अनेक फोल्डरो व पुस्तको का प्रकाशन आपकी प्रेरणा एव आशीर्वाद से हुआ। आचार्यश्री के वर्षायोग म जैन संस्कृति के संरक्षण एव संवर्धन म 'महिलाओ की भूमिका' विषय को लेकर आयोजित विशाल महिला सम्मेलन, श्रावक सम्मेलन, शाकाहार सम्मेलन से नई जनचेतना की लहर फैली है। भाद्रपद मास मे सामूहिक दशलक्षण पर्व पूजा का आयोजन आचार्यश्री के सान्निध्य म हुआ। इस पूजा कार्यक्रम मे पूजा की महत्ता, पूजा क्यो आवश्यक है पूजा का क्या फल है इसको विस्तार से आचार्यश्री ने समझाया। धर्म ध्वज की प्रभावना लहराने लगी। लोगो ने दीपावली के पश्चात् अष्टान्हिका पर्व मे सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन आचार्यश्री के सान्निध्य मे सम्पन्न करने के लिए आचार्यश्री से निवेदन किया जिसे आचार्यश्री ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

इस वर्षायोग मे णिग्गठ पवयण, समयसार, मोह व सिद्ध पूजा के प्राकृत भाषा मे छपे फोल्डर, आचार्यश्री द्वारा लिखित "अहिंसा एव विश्वधर्म" का दूसरा संस्करण, "निर्ग्रन्थ प्रवचन" आदि का प्रकाशन जैन विद्या संस्थान द्वारा किया गया। आचार्यश्री के मासिक प्रवचनो का संकलन "प्रवचन सुधा" दैनिक समाचार जगत के सौजन्य से तथा सुश्री प्रीति जैन द्वारा सम्पादित गुरुवाणी का प्रकाशन गुरुवाणी परिवार के ज्ञानप्रकाश बक्शी ने करवाया।

आचार्य श्री विद्यानन्दजी ने इस वर्षायोग मे राजस्थान के राज्यपाल महामहिम बलिराम भगत, मुख्यमत्री भैरोंसिह शेखावत, उपमुख्यमत्री हरिशकर भाभडा, राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष शातिलाल चपलोत सासद गिरधारीलाल भार्गव, सासद कल्लप्पा अवाडे महाराष्ट्र सासद धनजयकुमार कर्नाटक स्वायत्त शासन मत्री भवरलाल शर्मा स्वास्थ्य मत्री राजेन्दसिह राठौड राज पचायत मत्री श्री नाथूसिह गुजर, प्रदेश काग्रसाध्यक्ष एव सासद अशोक गहलोत, राजस्थान विधानसभा के मुख्य सचेतक श्री महावीर प्रसाद जैन, विधायिका डॉ उजला अराडा आदि नताओ ने तथा साहू अशोककुमार जैन, मुनि रूपचन्दजी साहब, डॉ हरिराम आचार्य, पद्मश्री बाबूलाल पाटादी, श्रीमती सरयू दफ्तरी सन्मति सन्देश के सस्थापक सम्पादक प्रकाशचन्द हितैषी, वाराणसी विश्वविद्यालय के कुलपति मडन मिश्र नई दिल्ली केन्द्रीय सस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति वाचस्पति शास्त्री, दिल्ली विश्वविद्यालय की सगीत प्राचार्य श्रीमती उमा गर्ग, शिक्षाविद् ब्रह्मचारिणी कमला बाई प नीरज जैन, सतना, साहू रमेशचन्द जैन श्रेष्ठी उम्मेदमल पाण्ड्या सहित अनेक गणमान्य महानुभावो ने आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त किया।

आचार्यश्री के सान्निध्य म दीपावली के अवसर पर भगवान महावीर का सामूहिक रूप से निर्वाण लड्डू चढाया गया, जिसमे सकल दिगम्बर जैन समाज ने भाग लिया। आचार्यश्री धर्म प्रभावना हेतु चौकडी मादीखाना जौहरी बाजार, सठी कालोनी, जवाहरनगर, बापूनगर, आदर्श नगर सो स्कीम आदि कॉलोनियो मे पधारे और वहाँ के जिन मदिरो का वन्दना करने के साथ अपने मगल प्रवचन से जनता को लाभान्वित किया।

7 से 16 नवम्बर तक नसियाँ प्रागण मे श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान व वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया। इसी बीच आचार्यश्री की एक दिन 16 नवम्बर को जयपुर से श्री महावीरजी के लिए विहार की घोषणा सुन जयपुर की धर्मप्राण जनता हतप्रभ रह गई। लोगो को तब जाकर यह महसूस हुआ कि वर्षायोग के चार माह पूर्ण हो गये है। यह वर्षायोग प्राकृत व

अपभ्रंश भाषा के पुनरुत्थान, समयसार की देशना सहित धर्म **प्रभावना के** कारण जयपुरवासियों को हमेशा याद रहेगा।

आचार्यश्री के ज्ञानवर्धक मगलमयी प्रवचनो से मन की कलुषता को दूर करने के प्रशस्त मार्ग का बोध चातुर्मास म मिला है। कैसे भूलेगे वे क्षण जिनकी प्रेरणा से हम 'गृहस्थ घर को तपोवन बनाये, मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ' के बोध को जीवन म उतार कर सच्चे श्रावक बनने का प्रयास निरन्तर करते रहेगे। इसी मगल कामना के साथ आचार्यश्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज के चरणो म बारम्बार नमन।

अध्यक्ष प्रबन्धकारिणी कमेटी
श्री महावीरजी

इस वर्षायोग का सव्यवस्थित रूप से आयोजित करने म वर्षायोग व्यवस्था समिति के अध्यक्ष नरेशकुमार सेठी महामत्री बलभद्रकुमार जैन कोषाध्यक्ष नानगराम जैन तथा आचार्यश्री के प्रवचनो का नित्य समग्र रूप म प्रकाशित कर जन साधारण तक पहुँचाने म दैनिक समाचार जगत का अविस्मरणीय योगदान रहा। इसके लिए पत्र के प्रधान सम्पादक राजेन्द्र के गोधा तथा दिल्ली म जयपुर व जयपुर म पूरे चातुर्मास म आचार्यश्री की सेवा म रत ज्ञानप्रकाश जकशा तथा हेम चौधरी सहित अनेक वे लोग जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस वर्षायोग म सहयोग दिया है वे सब बधाई और साधुवाद के पात्र है। आचार्यश्री का आशीर्वाद सदैव ही उनके साथ रहेगा जिसकी प्रेरणा से यह सब निरन्तर धर्म व समाज की सेवा करते रहेंगे।

निश्चय एव व्यवहार

निश्चय प्रात शुद्ध है, सध्या शुभ व्यवहार,
समयसार जीवन सुधा, एक मात्र उपचार ॥
हो जग को उपहार ॥

समता मे जीवन जिये, मन मे शाति धार,
सम्यक् दृष्टि से वरें, निश्चय अरु व्यवहार ॥
तब होगा उद्धार ॥

तेरी करनी ही तुझे, देती कष्ट अपार,
सकट से तट ला धरे, वह ही भव के पार ॥
यह निश्चय व्यवहार ॥

परमातम हो आत्मा, निश्चय हो व्यवहार,
तन-मन-धन रत्नत्रयी, जीवन मगलाचार ॥
इस विधि हो उद्धार ॥

ज्ञान बढत है ध्यान से, बुद्धि से व्यवहार,
भाव बढ़त भव बोध से, परिग्रह से ससार ॥
निश्चय मे भव पार ॥

सयम तप अरु त्याग हो, जीवन सुमन पराग,
अधकार व्यवहार में, निश्चय हाथ चिराग ॥
तज प्रमाद उठ ! जाग ॥

घर मे निश्चय पुरुष से, पत्नि से व्यवहार,
जो दोनो मिल कर चले, सम्यक् हो सागार ॥
अनागार का द्वार ॥

निश्चय नय तो एकला, है परिवार व्यवहार
हाय भरत सा जो चले, खुले मुक्ति का द्वार ॥
उसके जीत न हार ॥

निश्चय नय है आत्मा, है व्यवहार शरीर,
स्वस्थ होय दोनो चले, तभी मिटे भव पीर ॥
फरमायी महावीर ॥

अन्तर का अवलोकना, निश्चय से सुखकार,
जनम जनम के शुद्ध हो, अगणित पाप विकार ॥
आतम हो अविकार ॥

तेरे वश मे तू स्वय, कर निज पर अधिकार,
हो स्वतत्र सब तत्र से, परिणमता व्यवहार ॥
यह निश्चय मे धार ॥

मरण महोत्सव मुक्ति का, मगलमय त्योहार,
निश्चय से लेगा विजय, शुभ सम्यक् व्यवहार ॥
होगी जय जय कार ॥

सौजन्य से **श्रीमती संतोष देवी गोधा**, *जयपुर*

सहस्राब्दी समारोह के प्रेरणास्रोत

धर्म एवं संस्कृति के उन्नायक : आचार्य विद्यानन्द मुनिराज

• प्रीति जैन

तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र भरत के भारत का दक्षिणी भाग अपनी प्राकृतिक सुषमा और उर्वरता के लिए प्रसिद्ध है। यह भूमि न केवल अन्न धन धान्य का ही अक्षय कोष है अपितु अनेक ऋषि-पुंगवों की प्रसविनी भी है। भारत की अनेक महान् विभूतियां, ऋषि-मुनियों की दात्री इस वन्दनीय भूमि ने सदैव इस प्रकार अपनी दोहरी उर्वरता का परिचय दिया है।

इस पुण्यभूमि पर कर्नाटक प्रदेश के सीमान्त क्षेत्र, कृष्णा नदी के किनारे, प्राकृतिक सुषमा से भरपूर ग्रामीण सहजता और सरलता से युक्त 'शेडवाल' ग्राम के निवासी श्री कालप्पा आण्णप्पा उपाध्ये की पत्नी श्रीमती सरस्वती उपाध्ये ने 22 अप्रैल 1925 (वैशाख कृष्ण 14 विक्रम संवत् 1982) को एक तेजस्वी बालक को जन्म देकर अपने नारीत्व और मातृत्व को कृतार्थ किया। पुत्र जन्म के शुभ समाचार से घर परिवार आस पड़ोस सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। बालक का नाम रखा गया 'सुरेन्द्र'।

अपनी बाल सुलभ क्रियाओं क्रीड़ाओं से सभी का मन मोहते हुए बालक शनैः शनैः बढ़ता रहा। माता पिता और परिवारजनों के असीम स्नेह की छाँव में पल पल बढ़ रहे बालक 'सुरेन्द्र' प्रारंभ से ही प्रभावी और होनहार रहे।

घर के समीप ही जैन मन्दिर था। मन्दिर में प्रायः धार्मिक सभाएँ, समारोह, व्रत त्यौहार भजन पूजन होते रहते थे। साधु सन्तों-त्यागियों का आवागमन भी निरन्तर बना ही रहता था। पाँच-छ वर्ष के बालक 'सुरेन्द्र' के कोमल-सुकुमार मन पर इस संयोग-सुयोगों का अमिट अंकन हुआ। बालपन में मिले वातावरण का मन पर स्थायी प्रभाव होता है। संयोगवशात् उन्हीं दिनों वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनिराज का चातुर्मास हुआ। मुनिराज के चातुर्मास-प्रवास ने बालक 'सुरेन्द्र' की दिनचर्या ही बदल दी। 'सुरेन्द्र' सारा-सारा दिन मुनिराज के आस-पास बने रहते, मानो 'मुनिचर्या' को निकट से देखना-जानना चाहते हों। मुनिराज की रंगीन-कोमल मयूरपंखी पिच्छी बालक को बहुत मन भाती। उत्सुकता-जिज्ञासावश पिच्छी को बार-बार छूना चाहते, छूकर बड़े प्रसन्न होते। मुनिराज इसे एक सहज बाल-सुलभ-क्रीड़ा समझकर बालक को आशीर्वाद दे देते। किसी को क्या पता था कि पिच्छी का यह आकर्षण भविष्य का कोई संकेत है। ये हाथ भविष्य में 'पिच्छी' को धारण करेंगे इसकी तो किसी को कल्पना ही नहीं थी। बार बार 'पिच्छी' की ओर बढ़ते-छूते हाथों को रोकती-टोकती माँ ने भी तो एक दिन सहज ही झुँझलाकर कह दिया – 'बस तेरे हाथ में पिच्छी ही है।' माँ के मुख से अनायास निकले इन शब्दों में भवितव्य का कोई अदृश्य निर्देश था ये शब्द किसी अदृष्ट प्रेरणा से निसृत थे।

समय बीतता गया, बालक बढ़ता गया। खेल कूद के साथ अब विद्याध्ययन का समय आ गया। प्रारंभिक शिक्षा 'दानवाड' ग्राम में हुई। विद्यालय में पढ़ाई-लिखाई के साथ अपने स्वाभिमान साहस, सत्यप्रियता संकल्प-शक्ति नेतृत्व और वक्तृत्व-कला से अपने शिक्षा गुरुओं को बालक ने प्रभावित किया। अपनी इन्हीं विशेषताओं में वे उनके प्रिय शिष्य रहे। बालपन से ही अपने अनूठे व्यक्तित्व से सबको सहज ही वे प्रभावित करते थे। कुछ समय अपने गाँव के आचार्य शांतिसागर विद्याश्रम में उन्होंने विद्याध्ययन किया जहाँ अध्ययन के साथ-साथ स्वावलम्बन की शिक्षा एवं संस्कार भी पाये।

किशोरावस्था में देशप्रेम और महात्मा गाँधी के स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रभावित सुरेन्द्र रात के अँधेरे में अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध पोस्टर आदि चिपकाते। देश के लिए कुछ करने की भावना मन में रहती। तभी जीविकोपार्जन के लिए पूना चले गये। वहाँ एक हथियार बनाने के कारखाने में काम करने लगे, पर यह काम मन को भाया नहीं। फिर कुछ दिन बिस्किट की फैक्ट्री में काम किया, यह काम भी रुचा नहीं। कुछ समय बाद वापस अपने गाँव शेडवाल लौट आये।

सन् 1942 मे गाँधीजी के 'भारत छोडो आन्दोलन' के प्रभाव **और जोश मे** एक रात अपने कुछ साथियो के साथ गाँव की चौपाल **पर उन्होंने** तिरंगा झण्डा फहरा दिया। प्रातः गाँव के पटेल को जब इसकी सूचना मिली तो वह चिन्तित हो उठा। खोज-खबर करने पर पता चला कि यह कार्य 'सुरेन्द्र' के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ है। पटेल ने 'सुरेन्द्र' को बुलाया, पूछताछ की, डराया-धमकाया और तुरन्त झण्डा उतारकर लाने का आदेश दिया। परन्तु 'सुरेन्द्र' इस बात के लिए सहमत न हुए। झण्डा वापस उतारने के लिए थोडे फहराया था। पटेल ने उन्हे जेल हो जाने की बात से डराया भी पर 'सुरेन्द्र' अपनी बात पर अडिग रहे और घर लौट आये। रातभर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा – 'मेरे कारण मेरे परिवार पर कोई विपदा न आ जाय।' इस चिन्ता ने रातभर सोने न दिया और इसी ऊहापोह मे प्रातः घर छोड कहीं चले जाने का विचार बना लिया। प्रातः होते ही चुपचाप, बिना किसी को बताये घर छोड अज्ञातवास को चल दिये। घूमते-घूमते कित्तूर पहुँचे, वहाँ वेश बदलकर एक 'चीनी मिल' (शुगर मिल) मे काम करने लगे, पर यहाँ भी मन शान्त न रह सका। छिपकर, चुपचाप भागकर आने की पीडा मन को कचोटती रही। कुछ दिन कित्तूर रहकर फिर 'एनापुर' एक मित्र के यहाँ आ गये। 'एनापुर' आचार्य कुन्थुसागरजी की जन्मस्थली है। यहाँ 'सुरेन्द्र' को उनके कुछ ग्रन्थ मिल गये और वे उनका स्वाध्याय करने लगे। यहीं से उनके दृष्टिकोण ने करवट ली। दृष्टि अध्यात्म की ओर मुडी, लगा – जीवन-शुद्धि का मार्ग यही है। उन्हीं दिनो तीव्र ज्वर ने ग्रस लिया। प्रारंभ मे उपचार चलता रहा पर रोग ठीक न हुआ। मित्र ने इन्हे 'शेडवाल' पहुँचा दिया।

पुत्र को पाकर माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए, पर साथ मे बीमारी ने उन्हे म्लान कर दिया। अस्वस्थता के कारण परिवारजन चिन्तित थे। एनापुर मे किये स्वाध्याय से 'सुरेन्द्र' पर अध्यात्म का रंग जम चुका था, बीमारी मे 'णमोकार मंत्र' का जाप-मनन चिन्तन चलता रहा। कच्ची उम्र मे घर छोडा, स्वावलम्बी बन जीवन के खट्टे-मीठे कडुवे अनुभव हुए जिनसे संसार के प्रति विरक्ति, सांसारिक सुखो के प्रति अनासक्ति हो गई। वैराग्यवृत्ति तो जन्मजात थी ही, उन अनुभवो से वह और दृढ होती गई। अज्ञातवास मे हुई इस बीमारी ने विरक्ति के बीजो को ठोस, सुदृढ आधार प्रदान कर उन्हे अंकुरित होने योग्य बना दिया। बीमारी मे जीवन बहुत संयमित हो गया।

बीमारी मे ही एक संकल्प जागा – 'हे प्रभो! यदि इस बीमारी मे बच गया तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा। धर्म की सेवा और राष्ट्र की सेवा ही मेरे जीवन का उद्देश्य होगा।' मन की दृढता, सत्संकल्प, पथ्य और परहेज से तन और मन दोनो संयमी होते गये। इस प्रकार आजीवन ब्रह्मचर्य धारणकर 'सुरेन्द्र' अन्तर्मुखी होते गये। साधना के सोपान पर यह प्रथम चरण-आरोहण था।

उसी वर्ष शेडवाल मे दिगम्बर आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी के वर्षायोग ने विरक्ति के बीजो पर पर्याप्त सिंचन किया जिससे अनासक्ति के अंकुर फूटकर वैराग्य बेल के रूप मे पल्लवित हो गये। अब दीक्षा की इच्छा बलवती होकर अदम्य हो संकल्प मे बदल गई। 'सुरेन्द्र' का अधिकांश समय आचार्यश्री के पास ही बीतने लगा और अन्ततः इक्कीस वर्ष की वय मे फाल्गुन सुदी तेरस, विक्रम संवत 2003 (सन 1946) को 'तमडुगे' नामक स्थान मे आचार्य महावीरकीर्तिजी से 'क्षुल्लक दीक्षा' धारणकर 'सुरेन्द्र' बन गये 'क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति'। दीक्षा धारणकर तपस्या के पथ पर अग्रसर हो अपने जीवन को निखारा। स्वर्ण बार-बार अग्नि मे तपकर कुन्दन बनता है, मुमुक्षु आत्मा भी कठोर साधना की अग्नि मे तपकर परमात्मा बनती है।

सत्रह वर्ष पार्श्वकीर्ति क्षुल्लक अवस्था मे रहे। कर्नाटक, केरल, मैसूर, महाराष्ट्र, उडीसा, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम लगभग सम्पूर्ण भारत मे विहार करते हुए सत्रह वर्षायोग व्यतीत किये। शेडवाल मे स्थित आचार्य शान्तिसागर आश्रम, जहाँ स्वयं ने भी शिक्षा पाई थी, की सुव्यवस्था हेतु गुरु के आदेश से अधिष्ठाता के रूप मे रहे। सात वर्ष तक इस गुरुतर कार्य का निर्वहन कर मानो गुरु ऋण मुक्ति पाई।

इस बीच बहुत पढा, निरन्तर पढा, बहुत कुछ सीखा। राजस्थान प्रवास मे सुजानगढ वर्षायोग मे (सन् 1957-58) 'हिन्दी' सीखी। बंगाल-प्रवास मे कलकत्ता की 'नेशनल लाइब्रेरी' का भरपूर उपयोग किया। इस अवधि मे धार्मिक-सांस्कृतिक-

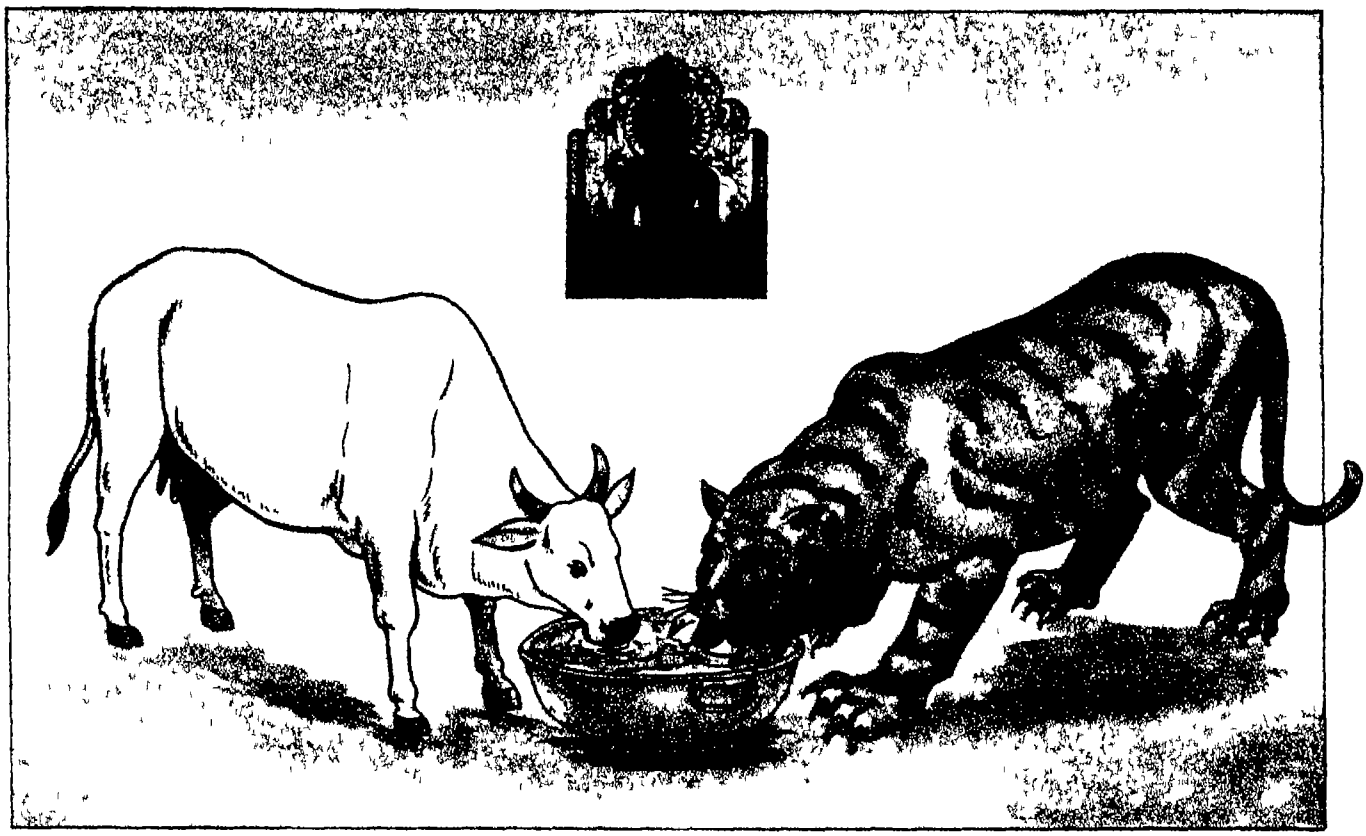

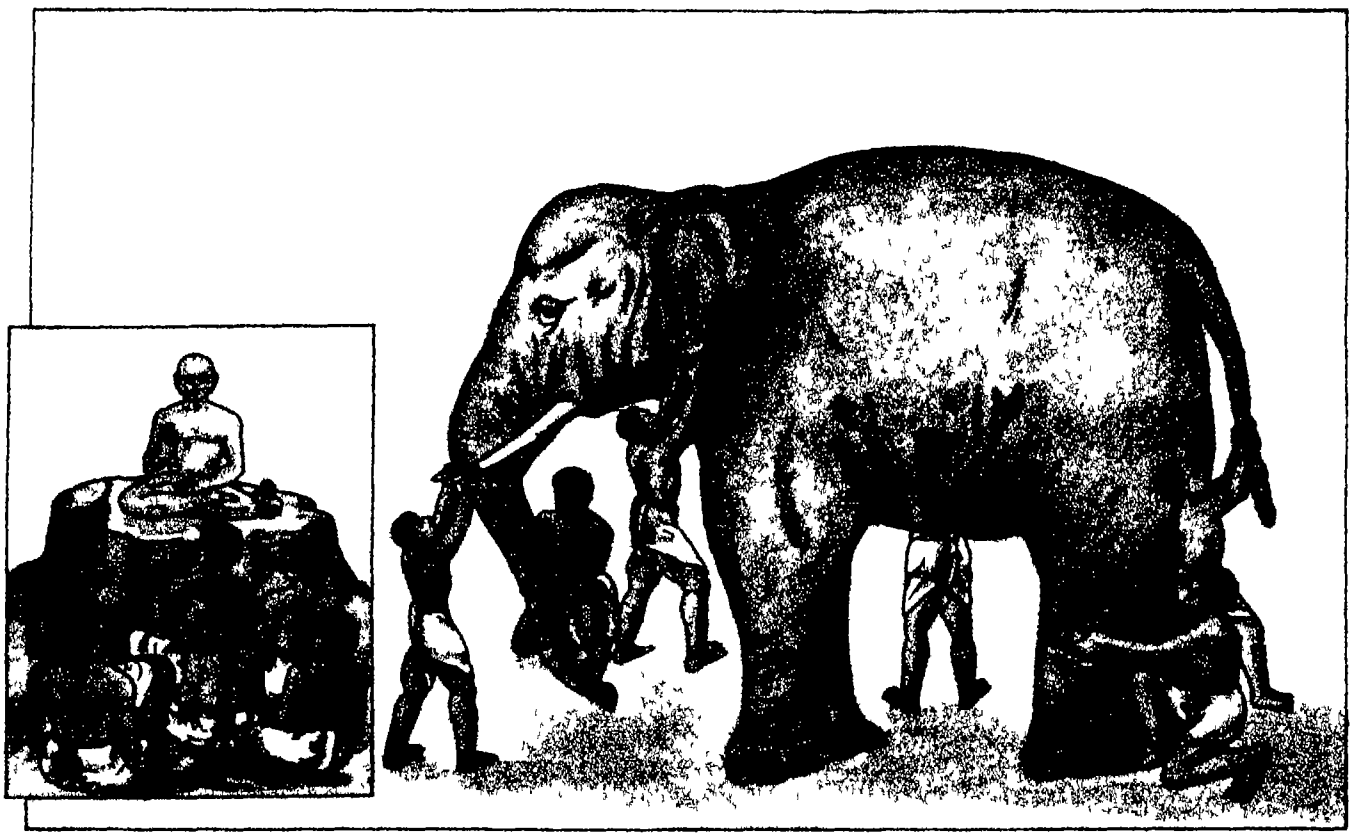

वर्द्धमान – राजकुमार से बने १००८ श्री महावीर भगवान

वर्द्धमान - राजकुमार की अवस्था म

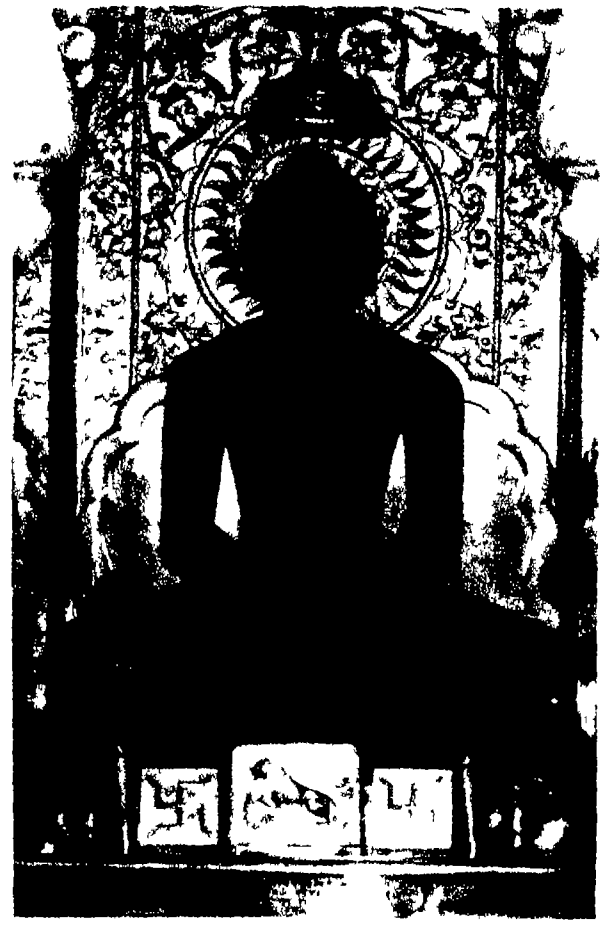

१००८ श्री महावीर भगवान

सुना, यहीं उत्पन्न हुआ था
किसी समय वह राजकुमार,
त्याग दिये थे जिसने जग के
भोग-विलास साज शृङ्गार।
जिसके निर्मल जैनधर्म का
देश-देश में हुआ प्रचार,
तीर्थंकर जिस महावीर का
यश अब भी गाता संसार।
है पवित्रता भरी हुई इस
विमल भूमि के कण-कण में,
मत कह, क्या-क्या हुआ
यहाँ इस वैशाली के प्राङ्गण में॥

प्राचार्य, मनोरंजन प्रसाद सिंह, एम ए

वैशाली जन का प्रतिपालक,
गण का आदि विधाता
जिस ढूँढ़ता देश आज
उस प्रजातन्त्र की माता।
रुको एक क्षण पथिक!
यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ
राजसिद्धियों की समाधि पर
फूल चढ़ाते जाओ॥

- रामधारी सिंह 'दिनकर'

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह के पावन अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएँ

जयपुर प्रिन्टर्स प्रा लि जयपुर

साहित्यिक चेतना के लिए आपके द्वारा प्रदत्त प्रेरणाओ-योजनाओ और सकल्पनाओ से विभिन्न कार्यक्रम विभिन्न गतिविधियाँ प्रारभ हुई। विश्वविख्यात 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' उनमे प्रमुख है। क्षुल्लक अवस्था मे ही साहित्य-सृजन की ओर उन्मुख हो गये।

क्षुल्लक अवस्था मे निम्न स्थानो पर वर्षायोग सम्पन्न हुए -

वर्ष 1946	कोण्णूर (कर्नाटक)
वर्ष 1947	हुमच (कर्नाटक)
वर्ष 1948	कुभोज (महाराष्ट्र)
वर्ष 1949 से 1956	शेडवाल (कर्नाटक) आचार्य शांतिसागर आश्रम
वर्ष 1957	हुमच (कर्नाटक)
वर्ष 1958	सुजानगढ (राजस्थान)
वर्ष 1959	सुजानगढ (राजस्थान)
वर्ष 1960	बेलगाम (कर्नाटक)
वर्ष 1961	कुन्दकुन्दाद्रि (कर्नाटक)
वर्ष 1962	शिमोगा (कर्नाटक)

इसी अवधि मे (वर्ष 1960 मे) 'कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर', 'विश्वधर्म की रूपरेखा', 'जैन सस्कृति मे दान और पूजा' पुस्तको की रचना की। 'कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर' म इतिहास का एक नया क्षितिज खोला।

सत्रह वर्ष कठोर तप तपने के बाद 25 जुलाई 1963 को आचार्य श्री देशभूषणजी से मुनिदीक्षा अगीकार कर साधना को एक और आयाम दिया। अब क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति बन गये 'मुनि विद्यानन्द'।

वर्ष '63 का चातुर्मास दिल्ली मे ही हुआ। वर्ष '64 के वर्षायोग का सौभाग्य मिला जयपुर को। यह वर्षायोग मुनिश्री और जयपुरवासियो दोनो के लिए अविस्मरणीय रहा, महनीय रहा।

युवा सन्त की ज्ञान-गगा के पीयूष-पान हेतु आयोजित विशाल प्रवचन-सभाएँ और उनमे उपस्थित अपार जनसमूह भुलाए नही भूलता। जयपुर से ही मुनिश्री की विद्वत्ता, प्रखरता, वक्तृत्वकला की धवलकीर्ति का प्रसार हुआ। जैन समाज के सम्माननीय विद्वान् पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ ने मुनिश्री की योग्यता को जाना-पहचाना माना और उसे समाज के सामने उजागर किया। बन्द कोठरी की साधना और स्वाध्याय का उजास प्रवचन-सभाओ मे स्पष्ट हुआ। एक दिगम्बर मुनि का जयपुर की सेन्ट्रल जेल मे कैदियो-अपराधियो को सम्बोधने के लिए जाना कैदियो के लिये एक अद्भुत और सुखद घटना थी। कैदियो के उद्गार थे - "भले तो सभी होते हैं मगर ऐसे भले कितनेक है जिन्हे हम जैसे बुरो का भी ख्याल है।" जयपुर का सौभाग्य रहा कि एक उगते सूरज की पखर तेजस्वी रश्मियो के उजास के प्रसार के लिए निरभ्र-शुभ्र-गगन बना।

जयपुर म विहार कर मुनिश्री श्री महावीरजी पहुँचे। फिरोजाबाद आगरा मेरठ बड़ौत, सहारनपुर आदि नगरो मे प्रवास किया विहार किया। सन् 1970 म सुदूर हिमालय क्षेत्र मे एक सौ सत्तर दिन का यात्रा प्रवास दिगम्बर जैन समाज के लिए अद्भुत है, अविस्मरणीय है। उत्तराखण्ड की हिम-शीतल धरा पर वर्षों से किसी दिगम्बर मुनि का विहार नही हुआ। वह धरा वर्षो-वर्षों म मुनि ससर्ग और सान्निध्य से वचित थी। वहाँ के अनेक गाँवो, कस्बो, नगरो मे साढे पाँच माह से भी अधिक के प्रवास-विहार स वहाँ के लोगो को जहाँ एक नया उत्साह, नइ प्रेरणा मिली वही समाज म सर्वत्र विश्वास और आस्था की नई किरण भी जगमगाई।

धर्मचक्र-प्रवर्तन, भगवान महावीर का पच्चीस सौवाँ निर्वाण महोत्सव, गोम्मटेश्वर सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक, गोम्मटगिरि इन्दौर की प्रतिष्ठापना, कुन्दकुन्द भारती दिल्ली की स्थापना मुनिश्री विद्यानन्दजी की ही सकल्पना, प्रेरणा और मार्गदर्शन मे सम्पन्न हुए। पच्चीस सौवे निर्वाण महोत्सव म जैनध्वज जनप्रतीक निर्माण एव आचार्य विनोबा के प्रयासो म सकलित/प्रकाशित 'समणसुत्त' की सगीति मे मुनिश्री ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

मुनिश्री की प्रेरणा से ही जैनधर्म, दर्शन, साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करने व इससे सलग्न विद्वानो को प्रोत्साहित करने हेतु वीर निर्वाण भारती, मेरठ व बड़ौत से अनेक विद्वानो, साहित्यकर्मियो, सगीत-साधको, समाज-सेवियो को उनकी योग्यता और योगदान के लिए पुरस्कृत करने की योजना बनाकर उसे मूर्तरूप भी दिया गया।

प्राचीन कवियो की दुर्लभ/उपेक्षित/विस्मृत आध्यात्मिक **रचनाओं एवं जैन भजनो को** श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ जैसी **संस्थाओ के माध्यम से** स्वर और संगीत मे गूँथकर उनके रेकार्ड्स **व कैस्सेट्स की** संरचना के लिए सर्वप्रथम आपने ही समाज को **प्रेरित किया**। जैन परम्परा के आद्य आचार्य श्री कुन्दकुन्द की **आध्यात्मिक** रचनाओ मे ग्रन्थराज 'समयसार' आचार्य नेमिचन्द्र **की सैद्धान्तिक** कृति 'द्रव्यसंग्रह' हिन्दी के स्वनामधन्य कवि पण्डित दौलतरामजी की अमरकृति 'छहढाला' आदि के कैस्सेट्स आपकी ही प्रेरणा से निर्मित हुए। ये गहन गंभीर रचनाएँ आज घर-घर मे बज रही है, गूँज रही है, समाज मे जन जन तक पहुँच रही है। स्वाध्याय करने मे पढ़ने मे असमर्थ/अक्षम वृद्धजन कैस्सेट श्रवणकर अपने समय का सदुपयोग कर धन्य होते है तो बालक उन्हे सुनते-सुनते अनायास ही सहज ही गुनगुनाने लगते है।

मुनिदीक्षा के बाद निम्न स्थानो पर वर्षायोग सम्पन्न हुए –

सन् 1964 – जयपुर (राजस्थान)
1965 – फिरोजाबाद (उ प्र)
1966 – दिल्ली
1967 – मेरठ (उ प्र)
1968 – बड़ौत (उ प्र)
1969 – सहारनपुर (उ प्र)
1970 – श्रीनगर गढ़वाल
1971 – इन्दौर (म प्र)
1972 – श्री महावीरजी (राजस्थान)
1973 – मेरठ (उ प्र)
1974 – दिल्ली
1975 – जगाधरी (हरियाणा)
1976 – दिल्ली
1977 – बड़ौत
1978 – दिल्ली
1979 – इन्दौर (म प्र)
1980 – श्रमणबेलगोला (कर्नाटक)
1981 – श्रमणबेलगोला (कर्नाटक)
1982 – शान्तिगिरि, कोथली (कर्नाटक)
1983 – कुंभोज (महाराष्ट्र)
1984 – बम्बई (महाराष्ट्र)
1985 – इन्दौर (म प्र)
1986 – दिल्ली

इस अवधि मे मुनिश्री का निम्न साहित्य प्रकाशित हुआ –

पिच्छी कमण्डलु
अपरिग्रह से भ्रष्टाचार उन्मूलन
दैव और पुरुषार्थ
निर्मल आत्मा ही समयसार है
भक्ति के अंकुर
विश्वधर्म के मंगलपाठ
समय का मूल्य
अनेकान्त सप्तभंगी स्याद्वाद
स्वतंत्रता और समाजवाद
विश्वधर्म के दस लक्षण
सप्तव्यसन
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
नारी का स्थान और कर्तव्य
आदि कृषि शिक्षक तीर्थंकर आदिनाथ
ईश्वर कर्ता है ?
पावन पर्व रक्षाबन्धन
सुपात्र कुलदीपक
श्रमण संस्कृति और दीपावली
धर्मनिरपेक्ष नहीं सम्प्रदायनिरपेक्ष
मोहनजोदड़ो – जैन परम्परा और प्रमाण
तीर्थंकर वर्द्धमान
मन्त्र मुनि और स्वाध्याय
वीर प्रभु
सर्वोदय तीर्थ
मौन का पिंजरा

अपने मुनि दीक्षा गुरु आचार्य श्री देशभूषणजी के समाधिमरण के बाद उनकी परम्परा मे 28 जून 1987 को दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले के सामने सुभाष मैदान मे एक भव्य

विशाल समारोह में जैनसमाज के चतुर्विध संघ ने तुमुल जयध्वनि घोष के साथ आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किया। अब आप 'आचार्य विद्यानन्द' हैं। साधना अनवरत है, साधक गतिमान है।

जुलाई, 1987 में कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली में आपके सान्निध्य में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के द्वारा प्राकृत भाषा की शोध-खोज के लिए समर्पित 'प्राकृत भवन' का उद्घाटन हुआ। आपने प्राकृत भाषा के महत्त्व बताते हुए उसके विकास के लिए जोर दिया।

आपकी प्रेरणा से वर्ष 1990 में बड़वानी (म.प्र.) में तीर्थंकर आदिनाथ की चौरासी फीट ऊँची प्रतिमा का मस्तकाभिषेक - 'श्री आदिनाथ बावनगजा महोत्सव' सम्पन्न हुआ।

फरवरी 1998 में श्री महावीरजी में सहस्राब्दी समारोह आपकी ही पावन प्रेरणा और सान्निध्य में आयोजित है। सहस्राब्दी समारोह के अनुक्रम में वर्ष 1997 का वर्षायोग जयपुर में सम्पन्न हुआ। इस वर्षायोग में अनेक नये आयाम, नये क्षितिज प्रकट हुए।*

आचार्यपद आरोहण के पश्चात् निम्न स्थानों पर चातुर्मास प्रवास हुआ -

वर्ष 1987	कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)
वर्ष 1988	कोथली (कर्नाटक)
वर्ष 1989	कोथली (कर्नाटक)
वर्ष 1990	बारामती (महाराष्ट्र)
वर्ष 1991	कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)
वर्ष 1992	कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)
वर्ष 1993	ग्रीनपार्क (नई दिल्ली)
वर्ष 1994	कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)
वर्ष 1995	बाहुबलि एन्क्लेव (दिल्ली)
वर्ष 1996	कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली)
वर्ष 1997	जयपुर (राजस्थान)

आचार्यश्री 'विश्वधर्म' के प्रकाशक हैं, परिचायक हैं, सचारक हैं, संवाहक हैं। 'विश्वधर्म', जो हिंसा/क्रूरता/बर्बरता से त्रस्त जीव/जीवन को त्राण दे सके। आपकी 'विश्वधर्म' की अवधारणा का केन्द्र बिन्दु है - अहिंसा, आचारगत अहिंसा। अहिंसा अर्थात् आचरण की शुद्धता, सहिष्णुता, सदाचार। सम्यक्चारित्र रूप अहिंसा प्राणिमात्र के लिए अपेक्षित है, आवश्यक है, अपरिहार्य है, इसलिए है अहिंसा 'विश्वधर्म'। यह 'विश्वधर्म' मत प्रणीत, कोई नया नहीं है। यह शाश्वत है, जैन संस्कृति के 'धम्मो दयाविसुद्धो' और 'निर्वैरः सर्वभूतेषु' के चिरन्तन सिद्धान्त से अनुप्राणित है। आपका उद्घोष है - विश्वधर्म की जय।

आचार्यश्री भाषा, जाति एवं सम्प्रदायजनित भेदभावों को भुलाने और मानव-हृदयों को परस्पर जोड़ने पर बल देते हैं। आप साम्प्रदायिक सद्भाव, भाषायी सौहार्द, राष्ट्रीय एकता के पोषक हैं। आपका चिन्तन निष्पक्ष है, संकीर्णता से परे है। आपका संदेश है - 'धर्म तो सभी के कल्याण के लिए है। जो मानव को मानव से जोड़े वह धर्म है, जो उनमें फूट डाले, उनमें विभेद उत्पन्न करे, कटुता का सृजन करे, एक-दूसरे की निन्दा के लिए प्रेरित करे उसे मैं धर्म नहीं मानता। संसार में प्राणिमात्र को जीने का अधिकार है। एक धरती पर, एक आकाश/छत के नीचे रहनेवाले, एक ही सूर्य-चन्द्र से आलोक पानेवाले प्राणियों का धर्म भी एक ही है, वह है - अहिंसा।'

'साधु किसी विशेष काल, देश या जाति का नहीं होता, वह समग्र मानव समाज का होता है। उसकी दृष्टि मानवतावादी होती है। वह जातियों के दल-दल से ऊपर उठकर पशु-पक्षी के कल्याण की भी कामना करता है। श्रमण संस्कृति सदैव शान्ति की पक्षधर रही है और श्रमण एवं श्रावक शांति के पुजारी।'

आपकी वैश्विक दृष्टि मनुष्यों में जातिगत भेद नहीं देखती। आप धर्म के साथ देश की चर्चा करते हैं और देश को विश्व के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। आपका जीवन-क्षेत्र जैन समाज है, पर कर्म-क्षेत्र विशाल है। आपकी मान्यता है कि हमारा चिन्तन विश्व-मंगल के लिए होना चाहिये। 'अहिंसा' की अवधारणा में सारा विश्व समाहित है। 'अहिंसा' विश्वधर्म का आधार है, रीढ़ है। संकीर्ण हिंसक, स्वार्थरत भावनाएँ राष्ट्रीय नहीं हो सकतीं। धर्मगुरु होने के

* विवरण हेतु देखें श्री नरेशकुमार सेठी का लेख 'कैसे भूलेंगे वे क्षण'।

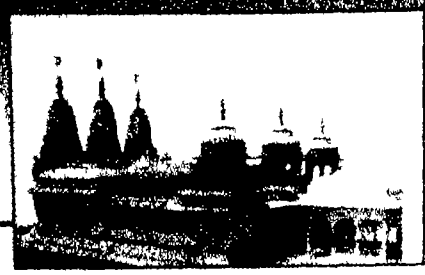

कारण सामाजिक व राष्ट्रीय उत्थान आपके चिन्तन से ओझल नहीं **होते। समाज में सत्याचरण** की स्थापना हो, सब एक-दूसरे का **सहयोग करें**, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त पर विश्वास रखते **हुए एक विशाल परिवार** की रचना करें अंध विश्वासों सड़े-गले **रीति-रिवाजों**, पारस्परिक द्वेष-विद्वेष से मुक्त रहें – यह आपकी **आन्तरिक** भावना है।

धर्म-शास्त्रों का गहन अध्ययन साहित्य पठन ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण आपके जीवन की साधना है। मौन साधना के साथ अध्ययन मनन आपकी तपस्या के अंग हैं। मुनि जीवन में अनेक बार महीने महीने भर मौनव्रत धारण कर साधना को आपने नये आयाम दिये हैं।

आप दीक्षा धारण करने के बाद से ही सदैव ज्ञानार्जन की राह पर गतिमान रहे। जितना पढ़ा उससे भी अधिक मनन किया। वाणी और लेखनी दोनों के आप धनी हैं। आपकी प्रवचन सभाएँ वक्तृत्वकला के स्पष्ट निदर्शन हैं। सीधे और सरल उदाहरणों उद्धरणों के माध्यम से कठिन से कठिन तत्त्व और तथ्य को सामान्यजन तक पहुँचाने/समझाने की अद्भुत क्षमता आपमें है। बालक, बूढ़े, जवान-प्रौढ़ किसी भी उम्र और किसी भी धर्म जाति और सम्प्रदाय के श्रोता हों, आचार्यश्री की प्रवचनधारा में अवगाहनकर सभी अपूर्व सन्तोष का अनुभव करते हैं। आचार्यश्री का शान्ति, समता और सौहार्द का सन्देश जनमानस को सदाचार की ओर प्रेरित करता है। समय निष्ठता और अनुशासन आपकी **प्रवचन-सभाओं** में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। हजारों की संख्या में श्रोता और उस पर नीरव शान्ति, आपकी प्रवचन सभा की विशेषता है।

जैन समाज के अतिरिक्त देश के शीर्ष राजनेता, वरिष्ठ **अधिकारी** प्रसिद्ध साहित्यकार, उद्योगपति, जैनेतर साधु-सन्त, विदेशी विद्वान राजनयिक आदि समय-समय पर आपके दर्शन करने, प्रवचन सुनने आते हैं और आपके बहुमुखी अगाध ज्ञान से प्रभावित होकर श्रद्धावनत होते हैं।

आप किसी एक मत के प्रति आग्रही नहीं सत्य के प्रति आग्रही हैं। मत-मतान्तरों से ऊपर, अनेकान्त दृष्टि से अन्य मत दर्शन की समन्वयात्मक व्याख्या करते हैं। 'मेरा ही सच है' के नहीं 'सच ही मेरा है' के पोषक हैं।

एक ओर जहाँ आपकी वक्तृता में सरलता एवं प्रवाह है वहीं आपकी रचनाओं में ओज एवं प्रसाद गुण पाया जाता है। कर्तव्य निष्ठा का बोध कराने, मानव-जीवन का ध्येय स्पष्ट कराने, कापायिक मैल हटाकर सद्बोध प्राप्त कराने के लिए आपकी सशक्त लेखनी अनवरत गतिमान है। धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक ऐतिहासिक शोध खोज आदि विभिन्न समसामयिक विषयों पर लगभग चालीस पुस्तकें आपकी परिष्कृत लेखनी से प्रसूत हैं। जो लिखा वह स्थायी महत्त्व का। भाषा प्राञ्जल और शैली मधुर। सभी कृतियों में आचार्यश्री के गहन अध्ययन स्वाध्याय अभिव्यक्ति कौशल एवं बहुज्ञता का परिचय सहज ही मिलता है। 'धर्म निरपेक्ष नहीं – सम्प्रदाय निरपेक्ष' 'मोहन जोदड़ो जैन परम्परा और प्रमाण' 'कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर' 'पिच्छि कमण्डलु' आदि कृतियाँ अनेक तथ्यों को अनावृत करते हुए उनकी पुनर्व्याख्या करते हुए चिन्तन के नये आयाम खोलती हैं।

साहित्य की सभी विधाओं के विकास में रुचि रखते हुए कला संगीत इतिहास लेखन व अनुसंधान पर भी आपका विशेष ध्यान है।

आपका वैज्ञानिक युक्तियुक्त दृष्टिकोण शुचि परम्परा से पोषित जीवन सामयिक चिन्तन मानव को अज्ञान और अन्धश्रद्धा के गहन अंधकार से बाहर निकालने में सहायक 'दीप' है। ज्ञान और ज्ञानी कालजयी होते हैं वे कभी पुराने या 'आउट डेटेड' नहीं होते। आचार्यश्री ज्ञानी हैं युगानुरूप हैं सामयिक हैं, सत्य परम्परा के संपोषक हैं संवाहक हैं, सिद्धान्तों को युगानुरूप भाषा/शैली में मोड़ने ढालने समझाने में सक्षम हैं। आप केवल जैनों के नहीं, देश की दीर्घकालिक आध्यात्मिक मान्यताओं के वाग्मी हैं वक्ता हैं। आपकी चिन्तनधारा का हर मोड़ जनमानस को कोई न कोई दिशा देने के लिए प्रकाश-स्तम्भ है।

ऐसे सर्वोदयी-सर्वतोभद्र व्यक्तित्व को शतशः नमन।

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह

मार्गदर्शन एवं सान्निध्य

सिद्धान्त चक्रवर्ती विश्व धर्म प्रणेता आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

आशीर्वाद

स्वस्ति श्री चारूकीर्तिजी भट्टारक स्वामी
श्रमणबेलगोला (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेनजी भट्टारक स्वामी
कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

स्वस्ति श्री चारूकीर्तिजी भट्टारक स्वामी
मूडबिद्री (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री देवेन्द्रकीर्तिजी भट्टारक स्वामी
हूमच पद्मावती (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री भुवनकीर्तिजी भट्टारक स्वामी
कनकगिरी मठ (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेनजी भट्टारक स्वामी
सिद्धदनगहे बम्नीमठ नरसिंहराजपुर (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री ललितकीर्तिजी भट्टारक स्वामी
कारकल (कर्नाटक)

स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेनजी भट्टारक स्वामी
मेल चित्तामूर (तमिलनाडु)

स्वस्ति श्री जिनसेनजी भट्टारक स्वामी
नाटनी (महाराष्ट्र)

प्रतिष्ठाचार्य

प मोतीलाल मार्तण्ड
ऋषभदेव, केसरियाजी (राज)

सह-प्रतिष्ठाचार्य

सुधीर जैन, केशरियाजी (राज)

बाहुबली, बेलगाँव (कर्नाटक)

जयकुमार जैन, दिल्ली

निर्मल कुमार बोहरा, जयपुर

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह समिति

परम संरक्षक

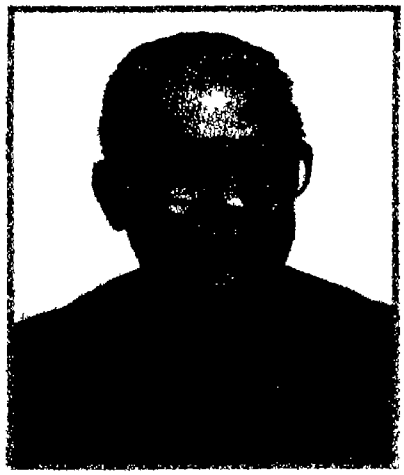

महामहिम श्री बलिराम भगत
राज्यपाल राजस्थान

माननीय श्री भैरोंसिंह शेखावत
मुख्यमंत्री राजस्थान

माननीय श्री हरिशंकर भाभड़ा
उप मुख्यमंत्री राजस्थान

माननीय श्री ललित किशोर चतुर्वेदी
सार्वजनिक निर्माण मंत्री राजस्थान

माननीय श्री एम पी वीरेन्द्रकुमार
श्रम राज्य मंत्री भारत

श्री महावीरजी : सहस्त्राब्दी समारोह समिति

संरक्षक

श्री डी वीरेन्द्र हेगड
धर्मस्थल (कर्नाटक)

ब्र. कमला बाई
श्री महावीरजी

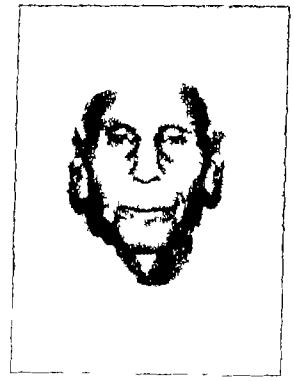

संहितासूरि पं. नाथूलाल शास्त्री
इन्दौर

न्यायमूर्ति श्री नगेन्द्र मोहन कासलीवाल
जयपुर

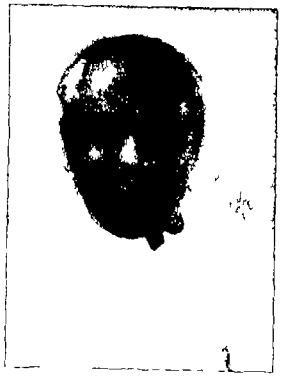

श्री कलप्पा अवाड
निवर्तमान सांसद, महाराष्ट्र

श्रीमती ऊषा मीणा
निवर्तमान सांसद, सवाईमाधोपुर

श्री महावीरप्रसाद जैन
सदस्य, राज. विधानसभा

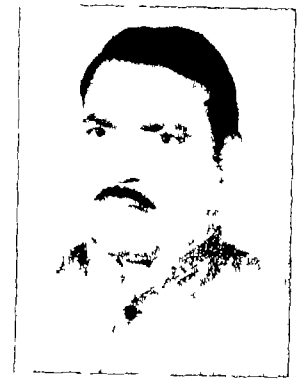

श्री कमल कोठी
सदस्य, राज. विधानसभा

श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका
जयपुर

श्री रामचन्द्र कासलीवाल
जयपुर

श्री धनंजय कुमार
सांसद, कर्नाटक

स्वागताध्यक्ष

श्री अमरचन्द भागचन्द पहाड़िया
कलकत्ता

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह समिति

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष

साहू अशोक कुमार जैन
दिल्ली

कार्याध्यक्ष

नरेश कुमार सेठी
जयपुर

मंत्री

बलभद्र कुमार जैन
जयपुर

कोषाध्यक्ष

नानगराम जैन
जयपुर

श्री महावीरजी : सहस्त्राब्दी समारोह समिति

कार्यकारिणी समिति सदस्यगण

पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी
इन्दौर

उम्मेदमल पाण्ड्या
दिल्ली

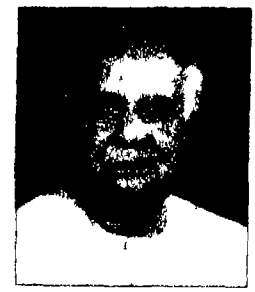

मोहनलाल सेठी
जयपुर

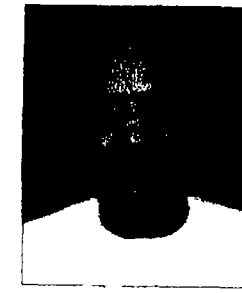

पूनमचन्द गंगवाल
जयपुर

महेन्द्र कुमार पाटनी
जयपुर

भागचन्द पहाड़िया
कलकत्ता

राजकुमार काला
जयपुर

राजेन्द्र के. शेखर
जयपुर

नवीनकुमार बज
जयपुर

डॉ. हुकमचन्द सेठी
जयपुर

स्वदेश भूषण जैन
दिल्ली
(विशेष आमंत्रित)

विशेष सहयोगी

श्री रवि गुप्ता
वास्तुकार

श्री विनोद शाह
इंजीनियर

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह समिति

कार्यकारिणी समिति

साहु रमेशचन्द जैन
दिल्ली

भँवरलाल अजमेरा
जयपुर

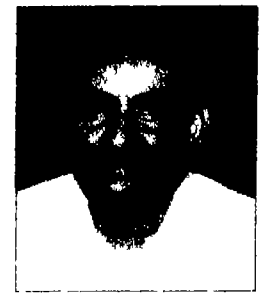

रमेशचन्द जैन (पी एम जे)
दिल्ली

प्रकाशचन्द जैन
जयपुर

आर क जैन
मुम्बई

स्वरूपचन्द जैन (मारमन्स)
आगरा

शभुकुमार कासलीवाल
मुम्बई

व्यवस्था समन्वयक

श्री राजेन्द्र क गोधा
(प्रधान सम्पादक समाचार जगत)
समन्वयक प्रसासनिक व्यवस्थाएँ

श्री राजेन्द्र के शेखर
व्यवस्था समन्वयक

श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
व्यवस्था समन्वयक

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह समिति

व्यवस्था समितियो के संयोजक व सह-संयोजक

आवास निर्माण समिति

पदमश्री बाबूलाल पाटोदी
इन्दौर
अध्यक्ष

श्री एन सी जैन
इन्दौर
मुख्य तकनीकी सलाहकार

श्री कैलाश वैद
इन्दौर
सह तकनीकी सलाहकार

श्री कमल सेठी
इन्दौर
संयोजक आवास निर्माण

श्री ताराचन्द काला
इन्दौर
सह संयोजक आवास निर्माण

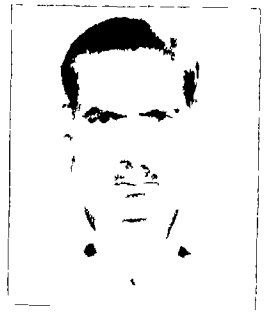

श्री नरेन्द्रकुमार बिलाला
इन्दौर
प्रभारी सजावट आवास

श्री सुमत लुहाडिया
इन्दौर
प्रभारी सजावट नगर निर्माण

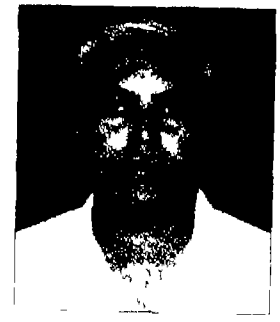

श्री विमलचन्द सेठी
इन्दौर
प्रभारी पन्डाल निर्माण

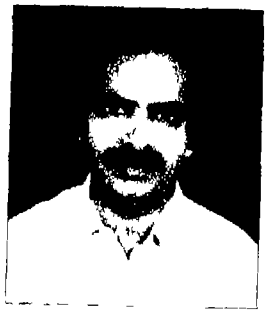

श्री सुनील जैन
इन्दौर
प्रभारी मंच निर्माण

श्री शैलेश पापडीवाल
इन्दौर
प्रभारी निर्माण समिति

श्री रमेश बड़जात्या
इन्दौर
सह संयोजक प्रदर्शनी एवं आवास

श्री पी सी जैन
ग्वालियर
प्रोजेक्ट इंजीनियर

श्री निर्मल सोनी
इन्दौर
संयोजक स्कीम फाउंडिंग

श्री सन्तकुमार मोदी
इन्दौर
कार्यालय मंत्री आवास निर्माण

व्यवस्था समितियो के सयोजक व सह-सयोजक

ी उम्मेदमल जैन पाण्ड्या
दिल्ली
अध्यक्ष
कलश आवटन समिति

श्री राजराज गंगवाल
दिल्ली
कार्याध्यक्ष
कलश आवटन समिति

श्री जयकुमार जैन
दिल्ली
मत्री
कलश आवटन समिति

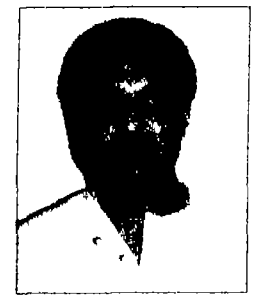

श्री सुमेरकुमार सेठी पाण्ड्या
हैदराबाद
आन्ध्रप्रदेश क्षेत्रीय कार्यालय

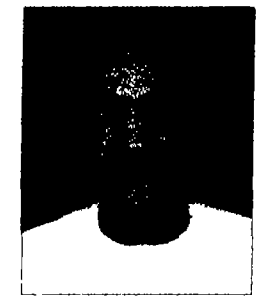

श्री पूनमचन्द गंगवाल
झरियावाले जयपुर
सयोजक
धार्मिक अनुष्ठान समिति

ी सुरेश गंगवाल, एम टेक
इन्दौर
सयोजक
आवास आवटन समिति

श्री गुलाबचन्द बाकलीवाल
इन्दौर
सह सयोजक
आवास आवटन समिति

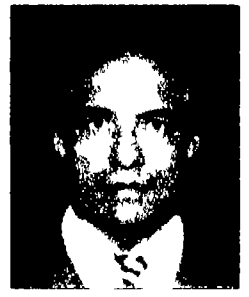

श्री एम सी बडजात्या
इन्दौर
मुख्य तकनीकी सलाहकार
विद्युत व्यवस्था समिति

श्री नरेन्द्रकुमार गोधा
जयपुर
सयोजक
विद्युत व्यवस्था समिति

श्री ज्ञानचन्द झाझरी
जयपुर
जलप्रदाय समिति

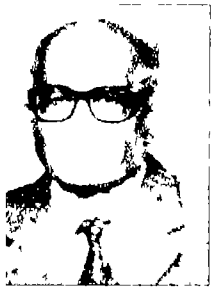

ी कमलकिशोर जैन
जयपुर
मुख्य सयोजक प्रचार
प्रसार सांस्कृतिक
कार्यक्रम एवं प्रदर्शनी

श्री बाबूलाल ठेकेदार
जयपुर
प्रचार सयोजक एव
सम्पादक महावीर सन्देश

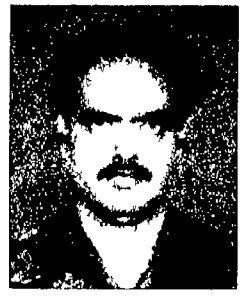

श्री अरुण सोनी
जयपुर
सह सयोजक प्रचार

श्री प्रदीप जैन
श्री महावीरजी
सह सयोजक प्रचार

श्री बलभद्रकुमार जैन
जयपुर
सयोजक
अभिषेक व्यवस्था समिति

ी राजकुमार काला
जयपुर
सयोजक
मानस्तम्भ अभिषेक व
कलश व्यवस्था समिति

श्री नानगराम जैन
जयपुर
सयोजक
ध्वजादण्ड व्यवस्था समिति

श्री मदनलाल जैन
जयपुर
सयोजक
स्वयसेवक व्यवस्था समिति

श्री नेमीचन्द गंगवाल
जयपुर
सयोजक
त्यागीवृति सेवा समिति

श्री एम के जैन
दिल्ली
सयोजक
दूरसचार व्यवस्था समिति

व्यवस्था समितियो के सयोजक व सह-सयोजक

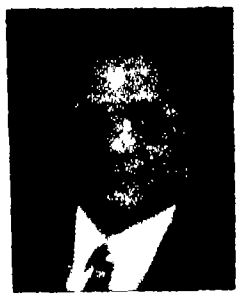

श्री नवीनकुमार बज
जयपुर
प्रधान सम्पादक
स्मारिका समिति

श्री प्रवीणचन्द जैन
जयपुर
सयोजक
यातायात व्यवस्था समिति

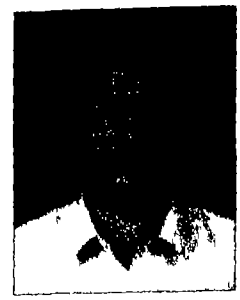

श्री सुभाषचन्द जैन
जयपुर
सह सयोजक
यातायात व्यवस्था समिति

श्री खिल्लीमल जैन
अलवर
सयोजक
पाण्डाल व्यवस्था समिति

डॉ (श्रीमती) नीलम जैन
सहारनपुर
सयोजिका
महिला सम्मेलन समिति

श्रीमती त्रिशला जैन
दिल्ली
सह सयोजिका
महिला सम्मेलन समिति

श्री नीरज जैन
सतना
सयोजक श्रावक सम्मेलन
एव मच सचालन समिति

श्री हरिशचन्द्र ठोलिया
जयपुर
सयोजक
पुस्तक मेला समिति

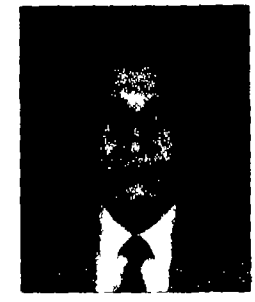

श्री राजकुमार काला
जयपुर
सयोजक
दुकान आवटन समिति

डॉ हुकमचन्द सेठी
जयपुर
सयोजक
चिकित्सा व्यवस्था समिति

श्री रतनलाल छाबडा
जयपुर
सयोजक
शोभायात्रा समिति

श्री सुरेन्द्रकुमार जैन
दिल्ली
सयोजक
प्रतिभा स्नेह समारोह

डॉ प्रकाशचन्द जैन
जयपुर
सयोजक
सुरक्षा व्यवस्था समिति

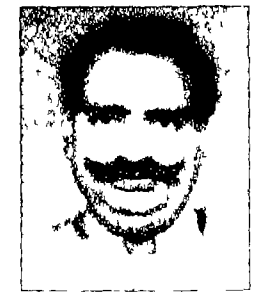

श्री बालकिशन बाणवाल
सह सयोजक
भोजनशाला व्यवस्था

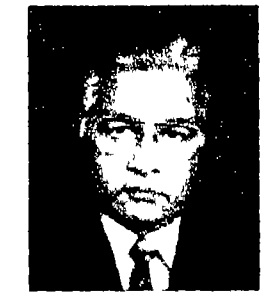

श्री पदमकुमार सेठी
जयपुर
व्यवस्था सहयोगी

कलश आवटन समिति क्षेत्रीय कार्यालय

श्री माणिकचन्दजैन गगवाल	**श्री भागचन्द पहाड़िया**	**श्री मदनलाल बैनाड़ा**
राची	कलकत्ता	आगरा
(बिहार)	(पश्चिम बगाल व उडीसा)	(उत्तर प्रदेश)

श्री ज्ञानचन्द जैन
जयपुर
सयोजक
भोजन व्यवस्था समिति

श्री गम्भीरमल जैन
इन्दौर
सह सयोजक
भोजन व्यवस्था समिति

श्री मित्रसेन जैन
पलवल (हरियाणा)
सह सयोजक
भोजन व्यवस्था समिति

श्री बच्चूसिह जैन
सह सयोजक
पडाल व्यवस्था समिति

आचार्य नरेन्द्रप्रकाश
फिरोजाबाद
मच सचालन समिति

प जयकुमार उपाध्ये
नई दिल्ली
मच सचालन समिति

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह

अभिषेक : स्मारिका समिति

प्रधान सम्पादक

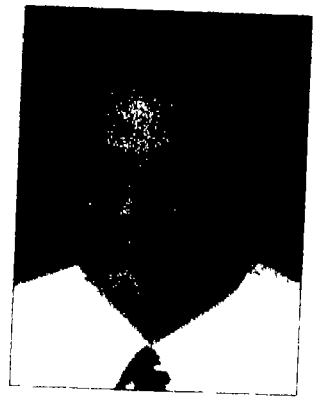

नवीनकुमार बज

सम्पादक मण्डल

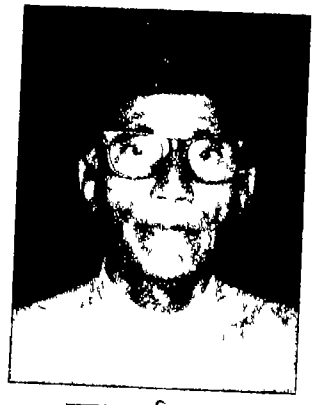

ज्ञानचन्द खिन्दूका

ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

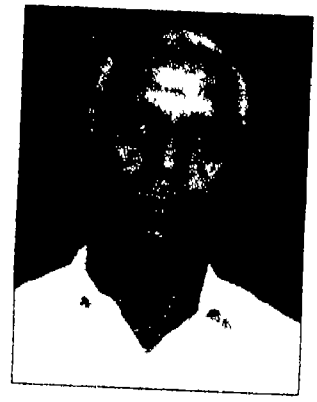

रतनलाल छाबड़ा

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह समिति

परम संरक्षक

महामहिम श्री बलिराम भगत
राज्यपाल, राजस्थान

माननीय श्री भैरोंसिंह शेखावत
मुख्यमत्री, राजस्थान

माननीय श्री हरिशकर भाभड़ा
उप मुख्यमत्री राजस्थान

माननीय श्री एम पी वीरेन्द्रकुमार
श्रम राज्यमत्री भारत सरकार

माननीय श्री ललित किशोर चतुर्वेदी
सार्वजनिक निर्माण मत्री राजस्थान

सरक्षक

श्री डी वीरेन्द्र हेगड़े
धर्मस्थल (कर्नाटक)

ब्र कमला बाई
श्री महावीरजी

महितासूरी प नाथूलाल शास्त्री
इन्दौर

न्यायमूर्ति श्री नरन्द्र मोहन कासलीवाल
जयपुर

श्री कलप्पा अवाडे
निवर्तमान मासद नई दिल्ली

श्री धनजय कुमार
निवर्तमान सासद नई दिल्ली

श्रीमती ऊषा मीणा
निवर्तमान मासद, जयपुर

श्री महावीर प्रसाद जैन
मुख्य सचतक गज विधानसभा, जयपुर

श्री कमल कोली
निवर्तमान मदस्य, गज विधान सभा जयपुर

श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका, जयपुर

श्री रामचन्द्र कासलीवाल, जयपुर

समारोह समिति

अध्यक्ष
साहू श्री अशोककुमार जैन

कायाध्यक्ष
श्री नरेशकुमार सेठी

वरिष्ठ उपाध्यक्ष
साहू श्री रमेश चन्द जैन
श्री शीलचन्द जैन
श्री निर्मलकुमार सेठी
श्री बी बी पाटिल

उपाध्यक्ष
पदमश्री बाबूलाल पाटोदी
श्री कमलकुमार बड़जात्या
श्री अरविन्द राव दोशी
श्रीमती सरयू दफ्तरी
श्री आर के जैन
श्री शिखरचन्द पहाड़िया
श्री शम्भूकुमार सिह कासलीवाल
श्री महेन्द्रकुमार पाण्ड्या
सरदार चन्दूलाल शाह
श्री धनकुमार बोलकर
श्री बसन्तलाल एम दोषी
साहूश्री शरदकुमार जैन
श्री देवकुमार सिह कासलीवाल
श्री महाराजा बहादुर सिह कासलीवाल
श्री भँवरलाल अजमेरा
श्री विजयचन्द जैन
श्री सुभद्रकुमार पाटनी
श्री तेजकरण डण्डिया
डॉ गोपीचन्द पाटनी
श्री राजकुमार काला
श्री पदमचन्द तोतूका
श्री हरकचन्द सरावगी
श्री ललितकुमार जैन
पदमश्री डॉ पी के सेठी
श्री पूनमचन्द गगवाल झरियावाले
श्री सोहनलाल सेठी
श्री गणेशकुमार राणा
श्री बशीलाल लुहाड़िया
श्री श्रेयासकुमार गोधा
श्री विजयकुमार टोग्या
श्री अशोक पाटनी
श्री उम्मेदमलजी पाण्ड्या
श्री रमेशचन्द जैन (पी एस जे)
श्री सुरशचन्द जैन
श्री रूपचन्द कटारिया
श्री सतीश जैन
श्री सुभाष जैन
श्री चक्रेश जैन (बिजलीवाले)
श्री स्वदेशभूषण जैन
श्री सुभाष बड़जात्या
श्री पूनमचन्द सेठी
श्री प्रेमचन्द जैन कागजी
श्री डी आर पाटिल
श्री रायबहादुर हरकचन्द जैन
श्री सुकुमार चन्द जैन
श्री निरजन लाल बैनाड़ा
श्री राजेन्द्रकुमार ठोलिया
श्री फूलचन्द पाटनी
श्री निर्मलचन्द सोनी
श्री पन्नालाल सेठी
श्री गणपतराय जैन
श्री डालचन्द जैन, भू पृ सासद
श्री ताराचन्द प्रेमी
श्री ओमप्रकाश जैन
श्री पारसकुमार गगवाल
श्री त्रिलोकचन्द कोठारी
श्री महावीर प्रसाद जैन
श्री प्रवीणचन्द छाबड़ा
श्री राजेन्द्र के गोधा
श्री महेन्द्रकुमार सठी
श्रीमती सरिता एम के जैन
ब्र रवीन्द्र जैन
श्री राजेन्द्र छाबडा
श्री भागचन्द टोग्या
श्री तुला राम जैन
श्री जमनादास जैन
श्री मूरजमल बैद
श्री ताराचन्द जैन
श्री नवीनकुमार बज
श्री कैलाशचन्द कासलीवाल
श्री प्रकाशचन्द जैन
श्री पूनमचन्द शाह
न्यायमूर्ति श्री नगेन्द्रकुमार जैन
श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
डॉ कमलचन्द सोगानी
डॉ हुकमचन्द सेठी
श्री हेमन्त सोगानी

मत्री
श्री बलभद्रकुमार जैन

कोषाध्यक्ष
श्री नानगराम जैन

श्री महावीरजी : सहस्राब्दी समारोह

सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज ने सन् 1991 में श्री महावीरजी प्रवास में विशाल श्रावक समाज के समक्ष अपने उद्बोधन में यह भाव व्यक्त किया था कि उत्तर भारत के इस महिमामय चान्दनपुर दिगम्बर तीर्थ, जो चार शताब्दियों से [illegible] भगवान महावीर के सन्देशों को [illegible] में प्रभावी कार्य कर रहा है एवं जो समस्त देश में पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक दिगम्बर [illegible] [illegible] करने वाली [illegible] महावीर की प्रतिमा का अखिल भारतीय स्तर पर एक [illegible] समारोह आयोजित किया जाना आवश्यक है जो [illegible] समान [illegible] भगवान महावीर के [illegible] अहिंसा के मार्ग पर चलकर [illegible] को मार्ग प्रशस्त कर सके।

भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमा को भूगर्भ से प्रकट हुए लगभग 400 वर्ष हो गए हैं। फिर भी इस प्रतिमा के निर्माण काल का निर्धारण करना शोधकर्ताओं व विद्वानों [illegible] के लिए काफी जिज्ञासा का विषय रहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के [illegible] वैज्ञानिक ढंग से प्रतिमाजी की जांच कर अधिकृत रूप से यह स्थापित किया है कि इस प्रतिमा का निर्माण काल 11वीं शताब्दी का है। अस्तु आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी ने भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमाजी का सहस्राब्दी समारोह का आयोजन करने का निर्णय लिया है।

अभिषेक का दुर्लभ स्वर्ण अवसर

[illegible] मूलनायक प्रतिमाजी के अभिषेक की [illegible] भावनाओं को [illegible] में रखते हुए प्रबन्धकारिणी कमेटी ने [illegible] किन्तु [illegible] प्रतिमा के केवल सहस्राब्दी समारोह [illegible] में [illegible] कलशों से अभिषेक का [illegible] है। [illegible] दुर्लभ स्वर्ण अवसर भगवान महावीर के [illegible] सहस्राब्दी समारोह [illegible] अभिषेक रविवार दिनांक [illegible] फरवरी 1998 [illegible]

भूगर्भ से प्राप्त दो खड्गासन प्रतिमाओं की शुद्धि

[illegible] समारोह [illegible] अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी [illegible] प्राप्त हुई है। [illegible]

मानस्तम्भ में विराजमान प्रतिमाओं का अभिषेक

[illegible] मानस्तम्भ में विराजमान प्रतिमाओं का [illegible] समारोह [illegible] सभी महानुभावों [illegible] के कारण भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमा के अभिषेक करने का अवसर प्राप्त होने में कठिनाई रहेगी [illegible] मानस्तम्भ में विराजमान प्रतिमाओं के अभिषेक करने की सुविधा उपलब्ध करायी जावेगी।

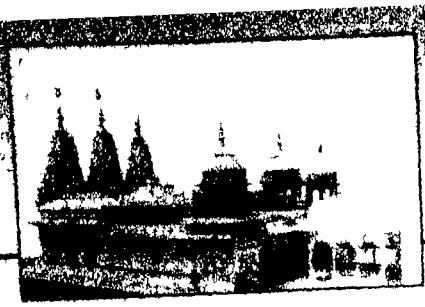

M C Joshi,
Director General
(Tel 3014821)

महानिदेशक
DIRECTOR GENERAL

D O No

भारत सरकार
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
जनपथ, नई दिल्ली - 110011
GOVERNMENT OF INDIA
ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA
JANPATH NEW DELHI-110011

25th September, 1991

Dear Shri Sethi,

Please refer to your letter No.3758 dated 18th September, 1991 regarding the date and antiquity of Jaina image installed in the famous shrine of Mahaveerji I had examined this image carefully and I feel that stylistically it may be dated circa 11th century A D

Thanking you and with best regards,

Yours sincerely,

(M.C. Joshi)

Shri N K Sethi,
President,
Digambar Jain Atishaya
Kshetra Shri Mahaveerji,
Mahaveer Bhavan,
Swai Mansingh Road,
Jaipur-302003

मंदिर के मुख्य शिखर पर ध्वजादंड की स्थापना

मंदिरजी के मुख्य शिखर पर वर्तमान मे ध्वजादंड लगे हुए नहीं है। महस्राब्दी समारोह समिति ने यह निर्णय लिया है कि इस पुनीत अवसर पर तीनो शिखरो पर ध्वजादंड स्थापित किए जाव।

रथयात्रा – प्रथम दिन

मंदिरजी स वैशाली जनपद तक दिनाक 1 फरवरी, 1998 को एक विशाल रथयात्रा का आयोजन रखा गया है। भगवान महावीर की वह प्रतिमा जो दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के

वार्षिक मेले के अवसर पर प्रतिवर्ष वैशाख बदि एकम के दिन रथयात्रा में गम्भीर नदी के पश्चिमी तट तक ले जायी जाती है, सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर पहली बार गम्भीर नदी के पूर्व में बनाये जा रहे ''वैशाली जनपद'' के विशाल पाण्डाल में भव्य शोभायात्रा में ले जायी जावेगी और यह प्रतिमाजी सहस्राब्दी समारोह की अवधि में ''वैशाली जनपद'' में ही विराजमान रहेगी।

जन्माभिषेक-शोभायात्रा

वैशाली जनपद से दिनांक 3 फरवरी 1998 को जन्माभिषेक की एक भव्य शोभायात्रा इन्द्र इन्द्राणियों सहित पाडुक शिला को ले जाई जावेगी, जहाँ 1008 कलशों से कलशाभिषेक किया जावेगा। वहाँ से पुन वैशाली जनपद को आवेगी।

रथयात्रा – समारोह समापन के दिन

दिनांक 7 फरवरी, 1998 को समारोह के समापन के साथ ही भगवान महावीर की इस प्रतिमा को रथयात्रा में वैशाली जनपद से कटले में स्थित मंदिरजी तक पूर्ण भव्यता के साथ लाया जावेगा।

ध्यान केन्द्र का शुभारम्भ

भगवान महावीर का यह मंदिर वर्तमान में प्रथम मंजिल पर है। कुछ वर्षों पूर्व ही यह जानकारी मिली कि मंदिर के नीचे भी एक भव्य मंदिर लाल पाषाण का बना हुआ है। स्टोर के रूप में काम में आ रहे इस स्थल को साफ किया गया है और अब उसे पूर्ण साज सज्जा के साथ ध्यान केन्द्र के रूप में विकसित किया गया है। इस ध्यान केन्द्र का शुभारम्भ भी सहस्राब्दी समारोह का एक प्रमुख आकर्षण है।

नवनिर्मित यात्री निवास एव भोजनशाला का शुभारम्भ

यात्रियों की सुख-सुविधा की दृष्टि से दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में पिछले दशकों में बहुत से निर्माण कार्य किये गये हैं, जिनमें सन्मति धर्मशाला, कुन्दकुन्द निलय एव स्वागत कक्ष के बाद 2000 यात्रियों को एक साथ ठहराने की क्षमता वाला यात्री निवास अतिशय क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा तैयार कराया गया है। इस यात्री निवास के समीप ही 400 व्यक्तियों के एक साथ बैठकर भोजन करने की क्षमता वाली एक भोजनशाला का निर्माण भी किया गया है। सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर नवनिर्मित यात्री निवास एव भोजनशाला का शुभारम्भ भी किया जा रहा है।

विविध सास्कृतिक कार्यक्रम

प्रत्येक रात्रि को राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों द्वारा रोचक धार्मिक एव सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाएँगे। मुख्य रूप में निम्न कलाकार इस समारोह में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे

- 1 फरवरी '98 भजन गायिका श्रीमती अनिता जैन, दिल्ली
- 2 फरवरी '98 भजन कोकिला श्रीमती कनक प्रभा हाडा, जयपुर
- 3 फरवरी '98 मगीत
- 4 फरवरी, '98 भजन सम्राट श्री अनूप जलोटा, मुम्बई
- 5 फरवरी '98 शास्त्रीय नृत्य कत्थक सुश्री प्रेरणा श्रीमाली तथा साथी सम्मान
- 6 फरवरी '98 सगीत निदेशक श्री रवीन्द्र जैन मुम्बई
- 7 फरवरी '98 राष्ट्रीय कवि सम्मेलन

प्रदर्शनी

वैशाली जनपद में लगभग 10 बीघा भूमि में एक विशाल प्रदर्शनी इस अवसर पर लगायी जा रही है जिसके प्रमुख आकर्षण होंगे

- चांदनपुर के महावीर
- शाकाहार
- जैन पुस्तक मेला
- राज्य-स्तरीय विभिन्न विभागों की प्रदर्शनी

प्रदर्शनी प्रांगण के ही एक अन्य भाग में स्टाल्स लगायी जा रही हैं, जिनमें आगन्तुक यात्रियों को सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध हो सकेंगी। इस प्रदर्शनी में बालकों के मनोरंजन के लिए सभी प्रकार के झूले आदि भी लगाये गये हैं।

सम्मेलन

सहस्राब्दी समारोह के विभिन्न कार्यक्रमों में निम्न अखिल भारतीय सम्मेलनों का आयोजन भी सम्मिलित किया गया है

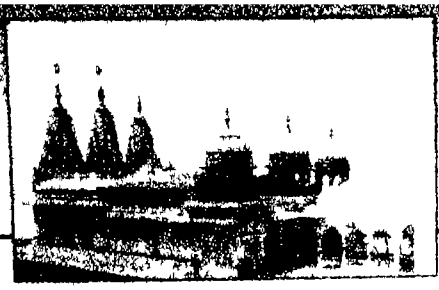

- **अखिल भारतवर्षीय** महिला सम्मेलन
- **अखिल भारतवर्षीय** श्रावक सम्मेलन - तीर्थों एवं मन्दिरों का **संरक्षण** एवं संवर्धन।
- **प्रतिभा** स्नेह संगोष्ठी

श्रावक सम्मेलन

"तीर्थों एवं मन्दिरों का संरक्षण एवं संवर्धन" विषय पर अखिल भारतवर्षीय श्रावक सम्मेलन का आयोजन दिनांक 2 फरवरी 1998 को मध्याह्न में रखा गया है।

महिला सम्मेलन

महिलाओं की समाज में बढ़ती हुई महत्वपूर्ण भूमिका को दृष्टि में रखते हुए ही अखिल भारतवर्षीय महिला सम्मेलन दिनांक 6 फरवरी 1998 को आयोजित किया गया है।

प्रतिभा स्नेह संगोष्ठी

दिगम्बर जैन समाज के उन प्रतिभावान व्यक्तियों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के विचार से जो अपनी प्रतिभा के आधार पर विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं किन्तु समाज के साथ जिनका जुड़ाव किसी न किसी कारण नहीं हो पाया है उनके सान्निध्य के लिए दिनांक 7 फरवरी 1998 को अपराह्न में प्रतिभा स्नेह संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। इस संगोष्ठी में समाज के भारतीय प्रशासनिक सेवा, अन्य अखिल भारतीय सेवायें, प्रशासनिक सेवायें, राज्य प्रशासनिक सेवायें, न्यायपालिका से जुड़े अधिकारी, डॉक्टर्स, इन्जीनियर्स आदि आमंत्रित किये गये हैं।

सम्मान समारोह

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के डॉक्टर्स, इन्जीनियर्स, शिक्षाविद, सामाजिक कार्यकर्ता, विद्वान, समाज का समाचार उद्योगपति, न्यायविदों एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों के लिए समर्पित श्रेष्ठीजनों का समाज की ओर से सम्मान शनिवार दिनांक 7 फरवरी 1998 को रखा गया है।

इस अवसर पर निम्न पुरस्कार भी वितरित किए जायेंगे

कुन्दकुन्द पुरस्कार

दिनांक 5-2-98 को आयोजित विशेष समारोह में

महावीर पुरस्कार

दिनांक 7-2-98 को आयोजित सम्मान समारोह में

स्वयंभू पुरस्कार

दिनांक 7-2-98 को आयोजित सम्मान समारोह में

ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार

दिनांक 7-2-98 को आयोजित समारोह में

आवास व्यवस्था

श्री महावीरजी में दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी ने यात्रियों की सुख सुविधा की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर एवं सुविधायुक्त आवासीय इकाइयों का निर्माण किया हुआ है। श्री महावीरजी कस्बे में अन्य बहुत सी धर्मशालायें भी हैं। क्षेत्र कमेटी द्वारा संचालित आवासीय इकाइयों में लगभग ... डीलक्स कमरों के अलावा सभी प्रकार के लगभग 700 कमरे 200 यात्रियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था यात्री निवास, सुन्दर स्वागत कक्ष एवं विशाल भोजनशालायें भी क्षेत्र पर निर्मित हैं।

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर लाखों की संख्या में आने वाले यात्रियों को आवासीय सुविधा उपलब्ध करवाने की दृष्टि से समारोह समिति ने गम्भीर नदी के पूर्वी सिरे पर लगभग 250 बीघा भूमि में एक विशाल अस्थाई नगर "वैशाली जनपद" के नाम से विशेष रूप से तैयार किया है जिसमें 30 ... हैं 1200 स्विस कॉटेज, 600 टी पी टैन्ट, 600 स्वालदारियाँ एवं 100 ग्रामकुटीर निर्मित की गयी हैं। समारोह स्थल पर ही 25 हजार दर्शकों की क्षमता वाला विशाल पाण्डाल एवं 10 बीघा भूमि में प्रदर्शनी लगायी जा रही है। तीन विशाल भोजनशालायें, शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, पर्याप्त संख्या में शौचालय एवं स्नानघर व अन्य सभी आवश्यक सुविधायें उपलब्ध करायी गई हैं। वैशाली जनपद में 30 फीट से लेकर 100 फीट चौड़ी सड़कों का निर्माण किया गया है जिन पर छोटे वाहनों का आवागमन आवासीय परिसर तक संभव होगा। विद्युत एवं जलप्रदाय की सुनिश्चित व्यवस्थाओं के अतिरिक्त सम्पूर्ण वैशाली जनपद की टीनशेड की बाउण्ड्री लगाकर यात्रियों के लिए परिपूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है। यह सभी आवासीय सुविधाएँ निर्धारित राशि जमा करवाने पर उपलब्ध रहेगी।

खण्ड : I

भगवान श्री महावीर : जीवन, सिद्धान्त एवं अतिशय

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पेज न
1	तीर्थंकर महावीर स्तुति (अपभ्रंश भाषा)	डॉ विमल प्रकाश जैन	I/1
2	जय महावीर नमो।	स्व डॉ ज्योति प्रसाद जैन	I/2
3	चाँदनपुर के श्री महावीर	माँ श्री कौशल	I/3
4	महावीर	त्रिशला जैन	I/4
5	कवियों के आराध्य – चाँदनपुर के महावीर	अनूपचन्द न्यायतीर्थ	I/5
6	चाँदनपुर के वीर-प्रभु	प्रवीण चन्द्र छाबड़ा	I/9
7	किरपा के बाबा · महावीर	प्रदीप जैन	I/11
8.	महावीर प्रतिमा की सातिशयता	नाथूलाल जैन 'शास्त्री'	I/15
9.	वैशाली कुवर महावीर	डॉ. उदयचन्द जैन	I/18
10.	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	डॉ हुकमचन्द भारिल्ल	I/22
11.	भगवान महावीर और निर्वाण-ज्योतिपर्व	डॉ प्रेमचन्द रांवका	I/26
12.	महावीर और नारी	डॉ (कु) मालती जैन	I/29
13	चरणों में अपने जगह दे दो महावीर।	अतुल कनक	I/32

तीर्थंकर महावीर स्तुति

(अपभ्रंश भाषा)

पणमामि जिणेसरु वड्ढमाणु किउ जेण तित्थु जगे वड्ढमाणु।
ससुरासुरकयजम्माहिसेउ संसारसमुद्दुत्तारसेउ।
चलणग्गे दोलियमेरुधीरु नित्तासियसक्कासंकवीरु।
नहकंतिजित्तससिसूरधामु परियाणियलोयालोयधामु।
जयसासुण विहरियसमवसरणु चउगइदुहपीडियजीवसरणु।
झाणग्गिभूइकयकम्मबंधु भव्वयणकमलकदोट्टबंधु।
वरकमलालिंगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति।
तइलोयसामि-सममित्तसत्तु वयणामृहासासियसयलसत्तु।

घत्ता - तित्थकरु केवलनाणधरु सासयपयपहु सम्मइ।
जरमरणजम्मविद्धंसयरु देउ देउ महु सम्मइ॥

मैं उन वर्द्धमान जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने लोकमें वर्द्धमान अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्तन किया व देवताओं सहित असुरों द्वारा जिनका जन्माभिषेक किया गया और जो संसाररूपी समुद्रसे पार उतारने के लिए सेतु रूप हैं, जिन्होंने अपने चरणों के अग्रभाग (अंगुष्ठ) से स्थिर मेरुपर्वतको भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार शक्रदेवेन्द्रकी शंका को नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने अपने नखोंकी कान्तिसे चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाको जीत लिया और समस्त लोकालोककी स्थितिको जान लिया जगत्को (धर्मका) शासन देनेके लिए जिन्होंने समवशरणके साथ विहार किया, एवं जो चतुर्गति (देव, मनुष्य, तिर्यंच व नरक) के दुःखोंसे पीड़ित जीवोंके लिए शरणभूत है, तथा जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्निसे कर्मबंधको भस्मसात् कर दिया है जो भव्यजनो रूपी कमलसमूहके लिए सूर्यके समान हैं व जिन्होंने चारुमूर्ति अर्थात् अत्यन्त शोभावती, शुद्धवर्णा व श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मीका आलिंगन किया एवं रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) के द्वारा परममुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्टगुणोंसहित सिद्धावस्थाको प्राप्त किया जो त्रैलोक्यके स्वामी है तथा शत्रु व मित्रमें समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचनसुधासे सभी जीवोंको (सद्गति रूप उपलब्धिका) आश्वासन दिया है। ऐसे धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तक होनेसे तीर्थंकर केवलज्ञानके धारक, शाश्वतपद (मोक्ष) के स्वामी, जरा मरण व पुनर्जन्मका विध्वंस करनेवाले सन्मति (महावीर) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करें।

अनुवादक **डॉ विमल प्रकाश जैन**

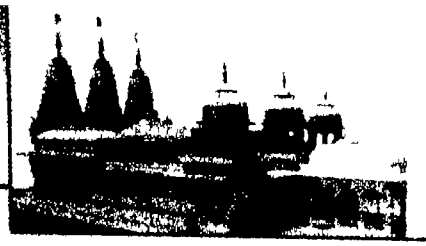

जय महावीर नमो !

जय त्रिशलानन्दन महावीर नमो।
भव-भय-भजन वीर नमो॥

सिद्धारथ राजदुलारे, तिहुँ जग के उजियारे।
जन-जन के प्यारे, जय महावीर नमो।
पाप निकदन वीर नमो॥

लोकालोक प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी।
गुण अनन्त की राशी, जय महावीर नमो।
हरि-कृत-वन्दन वीर नमो॥

मोक्ष-मग-नेता, करम कलक विजेता।
शुद्धातम-चेता, जय महावीर नमो।
रहित सपदन वीर नमो॥

करुणा-सागर पर-उपकारी, सत्य-अहिंसा अवतारी।
सुधर्म-ध्वज-धारी, जय महावीर नमो।
भक्त-उर-चन्दन वीर नमो॥

सन्मति के दाता, वर्द्धमान सुख-साता।
अखिल जग-त्राता, जय महावीर नमो।
ज्योति-मन-रजन वीर नमो॥

卐

– इतिहास मनीषी, विद्यावारिधि
स्व डॉ ज्योति प्रसाद जैन 'ज्योति'

चाँदनपुर के श्री महावीर

◦ माँ श्री कौशल

मन्ये वर हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयेषु त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य:
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥ २२॥

ऐसी ही कशिश (आकर्षण) है श्री महावीरजी की चाँदनगाँव मे विराजमान उस मूर्ति मे। जिसका पाषाण भी साधारण है, जिसमे निर्माण की कोई कला भी मुखरित नही है फिर भी उस मूर्ति मे एक अद्‌भुत आकर्षण है कि उसके सम्मुख जाने पर हटने को मन नहीं चाहता, घण्टो निहारने पर भी आँखे नही, पलक नही झपकती। शरीर नहीं रहता, शरीर की कोई सुध नहीं रहती। जैसे चकोर चन्दा की ओर उडान भरता जाता है उसको यात्रा का श्रम या पखो की शक्ति कमजोर नही करती, उसी प्रकार बरबस पाँव उस मूर्ति की ओर खिचे चले जाते हैं। कुछ उस मूर्ति मे अद्वितीय है जो अपनी ओर खीचता है, वहाँ खडे होकर जैसे सब-कुछ मिल जाता है। वह मिलता है वहाँ जो बाजार मे नहीं मिलता, जो इस पाषाण मूर्ति से भिन्न है, जो भौतिक नही है। वह मिलता है जो अमूर्त है, अभौतिक है, अनुभूति रूप है, आध्यात्मिक है, चैतन्य है, सुखद है, प्रिय है। लगता है यह कला विहीन मूर्ति कला के रूप मे दमक उठी है अथवा कला उसमे मुखरित हुई है। उसका अग-प्रत्यग ही कलात्मक दिखने लगता है। एक व्यक्ति को ही नही, लाखो लोगो को ऐसा लगा है।

कभी देखा आपने कि पाषाण भी बोलते है। आप कहेगे कि हाँ, पाषाण बोलते हैं। किस अर्थ मे? आप उत्तर देंगे – पाषाण कला के रूप मे बोलते हैं। किन्तु मैं कला की बात नहीं करती, वह तो पाषाण नहीं कला बोलती है। मैने तो पाषाण को बोलते हुये देखा है, सुना है, यह मूर्ति बात करती है। बात करते समय ऐसा एहसास नहीं होता कि यह पाषाण है, लगता है जैसे कि कोई अपना हितैषी-मित्र या बन्धु है वह बात कर रहा है। कोई उपदेश नहीं दे रहा, वह तो सुख-दु ख की बात कर रहा है, अपनेपन की बात कर रहा है, जीवन की समस्या का समाधान बता रहा है। जैसे माँ सही सीख देती है, पास बैठाकर आशीष देती है, समझाती है, तन-मन की बात करती है। ऐसे ही यह मूर्ति भी बात करती है, व्यवहार करती है और आशीष देती है।

लोग देखते हैं कि मूर्ति वेदी मे बन्द है, उसके आगे ताला लगा है, शीशे भी एयरटाइट है। किन्तु उस कौन बन्द कर सकता है, वह जो उस मूर्ति मे प्रतिष्ठित है, उसके हृदय मे केन्द्रित है वह तो आकाश के पछीवत् मुक्त है, उसे कोइ नही रोक सकता। कितनी बार देखा है कि जो उस मूर्ति मे निहित है वह शक्ति अव्याबाध है, वह निकल कर खुली हवा मे जाती है, सर्वत्र विचरण करती है, सबको आशीष दे आती है, सवार आती है, सभाल आती है, अपने-अपने आवास मे बैठे-बैठे भी सभी को उसकी उपस्थिति का एहसास होता है।

मन्दिर अहाता जीवन्त उर्जा सागर है। जन समुदाय तो लाखो की सख्या मे उमड ही पडता है, किन्तु कभी अकेले मे भी अकेलेपन का अहसास नही होता है। दवताओ की सभाये होती है, देवताओ के मेले होते है नृत्यगान होत है आँखो से कुछ नहीं दिखता, किन्तु मन की आँखो मे प्रतीत होता है जो शब्दातीत है।

जब वहाँ वार्षिक मेला होता है उसकी छटा तो दखते ही बनती है। मेले मे लाखो की भीड तो एक अलग बात है किन्तु उस मूर्ति को उस समय जो चैतन्य रूप एव तेज आता है वह अद्‌भुत एव अनोखी छटा होती है, वह अत्यन्त अदर्शनीय है तभी तो अकले इस जरा से पत्थर के टुकडे ने जगल मे मगल कर रखा है। कितनी भी विशाल धर्मशालाये हो सदा खचाखच भरी रहती है। आध्यात्मिक जन यहाँ मे आध्यात्म को पाते है तथा लौकिक जन अपनी लौकिक इच्छाओ की पूर्ति करते है।

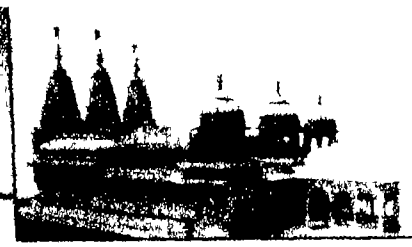

मैंने कहा, 'आपने मुझे रात्रि में मंदिर में बन्द कर दिया क्या **देख भाल करते** हो?' उत्तर मिला 'हमने सोचा आज आपका ध्यान **लगाने** का मन है अतः हमने आपको छेड़ा नहीं और दरवाजा बन्द कर दिया।' भगवानजी ने रात इतनी बात कीं, जी खोल कर बातें कीं, जैसे भक्तों के समक्ष चुपचाप बैठ-बैठ थक गये हों और अब प्रदर्शन के बन्धन से मुक्त हो गये हों और बाँट बाँट कर अब पूरा देने के मूड में हों, कुछ ऐसा लगा। और ऐसा वरदान दिया कि भवरोग ही मिटा दिया। भीड़ में भी अकेले की तरह बात करते हैं दूसरों को पता नहीं लगता। व्यस्तता में भी निश्चिन्तता से व्यवहार करते हैं दूसरा देख नहीं पाता। उनके सन्देश प्रसारित होते हैं उसमें एक सन्देश किसी नये तीर्थ के निर्माण का भी है।

वह दूर हैं किन्तु सदा पास हैं। कभी उनकी दूरी का अहसास नहीं हुआ। सदा इर्द गिर्द घूमते नजर आते हैं। निरन्तर उनकी उपस्थिति की अनुभूति रहती है, जो कहना होता है वह कह जाते हैं। तन मन में बसे रहते हैं। विश्व में अनेक मूर्तियाँ हैं महावीर की किन्तु भगवान महावीर के नाम से केवल यही मूर्ति है चाँदनगाँव की जो मानस में उभर जाती है।

कुछ उलटवासियाँ लिखी हैं मैंने "श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह" के अवसर पर छपनेवाली स्मारिका के लिये। वास्तव में यह लिखते हुए अथवा स्मरण आते हुए भक्ति के ज्वार से अथवा सुखद स्मृतियों से मन पुलकित हो जाता है। अतः कुछ भी लिखते नहीं बनता। केवल वीर प्रभु के चरणों में मेरी यही विनयाञ्जलि है।

महावीर

तुम्हें मिला जब जन्म धरा आकाश झुक गये।
तुम्हें मिला निर्वाण तो सौ सौ दीप जल गये ॥

तुम मस्तक की प्रथम पंक्ति में हो जीवन का काव्य बन गये
जिसकी खोज रही दुनियाँ उस मंजिल की तुम राह बन गये।
तुम जीवन के दर्पण में सत्य रूप निरधार बन गये
तुम मानव से ऊपर उठ कर वीतराग भगवान बन गये ॥
तुम्हें मिला जब जन्म

तुम मृत्यु का अहम जीत युग युग के शाश्वत् सत्य बन गये
तुम संयम की घोर साधना लक्ष्य स्वयं का स्वयं बन गये।
शत शत वंदन तुम्हें कर जग तुम धरा को धन्य कर गये
तुम मानव से ऊपर उठ कर वर्द्धमान महावीर बन गये ॥
तुम्हें मिला जब जन्म

तुम हो कर भारत पुत्र विश्व के लिये एक वरदान बन गये
तुम ऊँच नीच को तोड़ कगारों का समता की धार बन गये।
अर्थ अहिंसा का समझा कर जीने का अधिकार दे गये,
तुम जीवन से ऊपर उठ कर भूत भविष्य वर्तमान बन गये ॥
तुम्हें मिला जब जन्म धरा आकाश झुक गये।
तुम्हें मिला निर्वाण तो सौ सौ दीप जल गये ॥

° **त्रिशला जैन**
142 न्यू कैम्पस जे.एन.यू., नई दिल्ली

कवियों के आराध्य — चाँदनपुर के महावीर

◦ अनूपचन्द न्यायतीर्थ

चाँदनपुर का श्री महावीरजी क्षेत्र आज का बहुचर्चित दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। भूगर्भ स प्राप्त भगवान महावीर की प्रतिमा पुरातत्त्ववत्ताओ की दृष्टि मे एक हजार वर्ष प्राचीन बतायी गई है और इसी कारण दिनाक 1 2 98 से 8-2-98 तक राष्ट्रसत आचाय विद्यानदजी के सान्निध्य मे इम प्रतिमा का सहस्राब्दी समारोह मनाया जा रहा है। यह अतिशय पूर्ण दिगम्बर जैन प्रतिमा भूगर्भ मे कब प्राप्त हुई इसकी निश्चित तिथि दना कठिन है, किन्तु अनेक विद्वानो, कवियो एव पण्डितो द्वारा अपने आराध्य चाँदनपुर क महावीर के सबध मे रची गयी अनेक रचनाओ के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि यह प्रतिमा लगभग 300 350 वर्ष पूर्व निकली होगी।

प हर्षकीर्ति ने, जिसका उल्लेख प अखैराम द्वारा रचित 'भट्टारक महेन्द्र कीर्ति की जखडी' (स 1792) मे हुआ है और जो जयपुर के पाटोदी के मदिर के 51 पडितो मे से एक थे चाँदनपुर महावीर का निम्न भजन मे उल्लेख करते हुए लिखा है कि सुरनर तथा मुनिजन सदा उनके दर्शन की चाह रखते थे तथा उनकी पूजा करते थे, प्रक्षाल का गदोदक लेते थे

राग-कनरी (कन्हडी)

मेरा मन वसि कीन्हा महावीर ॥
चाँदणगाँव प्रभु आप विराजे निकट नदी के तीर ॥ मेरो०
देस-दस के पूजन आवै पूजा रचे अतिधीर ॥ मेरो०
सुरनर मुनिवर पाँय लगत है मनवछित फल सीर ॥ मेरो०
हरषकीर्ति यह मागत है इन चरनन को नीर ॥ मेरो०

कवि सेवग की सवत् 1800 मे रचित "वीनती" जो जयपुर के बधीचन्दजी दीवान के मदिर मे उपलब्ध है भगवान महावीर के सबध मे पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है। भगवान महावीर की स्मृति मे चैत्र शुक्ला पूर्णिमा का मेला भरता है। चारो ओर से दर्शनार्थी आते है, पूजन विधानादि करते है, दर्शन से सकट छूटते है, गभीरी नदी के किनारे प्रकट महावीर के यहाँ नौबत बाजे बजते है – भगवान सिहासन पर विराजमान है, आदि –

चाँदण गाँव सुहावणाजी जहा महावीर जीण राजै सुकारैजी
देस-देस का आव जातरी जीवा वे महिमा अघम अपार जीणराज
श्री महावीर समरूँ सदा जीवावै समरा होयगी साही जीणराज
श्री महावीर जिणन्द सेया जीवावे ॥ १ ॥
समोसर (ण) सोभा वण्याजी मोप वरण्या न जाइ जिणराजजी
अस्ट प्रकार पूजा रचे जीवावै करम कलंक मटि जाइ जिणराजजी
श्री महावीरजी समरूँ सदा जीवालो ॥ २ ॥
श्री महावीरजी नै बदना जी असुभ करम कट जाइ जिणराज
मनवछित फल दे घणा जीवावै दिन-दिन दौलति थाई जिणराज
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ३ ॥
जो कोई वदै भावस्यो जी, पाप विलै होइ जाइ जिणराज
राग दोष व्यापै नही जीवावे जनम जुरा मिटि जाइ जिणराज
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ४ ॥
चाँदण गाँव नदी ऊपरजी महावीरजी की जात जिणराजजी
चली पृथ्या न प्रभु प्रसा जीव वे माही आवे ठाणनीवारो जिणराज
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ५ ॥
इन्द्र धरणन्दर सेवा करेजी सब सुरनरदेव जिणराजजी
हुकमी सेवग जिणराज का जीवावे ऊभा दोइ कर जोडि जिणराजजी
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ६ ॥
श्री महावीरजी के देहराजी कसीरी हदा बीचजा जिणराजजी
नोबति बाजा बाजिवा जावात, बाजै झालर को झुणकारजी जिणराज
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ७ ॥
सवत अठारसैह व्रस चैतकाजी पडवा मगलवार जिणराजजी
सेवग की एक वीनती जीवावै अरज करूँ करिजो (डि) जिणराजजी
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ८ ॥
दयाधरम पाले सदा जीवावै, नित समरूँ नवकारजी जिणराज
ई संसार जीवावै सक है माह्रा खुवारी जिणराजजी
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ ९ ॥

रिध-सिध सुख वोह सदाजी भव-भव का दुख जाइ जिणराजजी
सेवग विनवैजी लाल लुबि लुबि लागु पाइजी जिणराजजी
श्री महावीरजी समरूँ सदा ॥ १० ॥
नित जै पढै सुणै नरनारि जिणराजजी
ज्या घर रिध बधावणा जीवावै श्रीमहावीर जिणराजजी
श्री महावीरजी बदस्या जीवावै ॥ ११ ॥

कवि देवा ब्रह्म ने भी, जिनकी अन्य रचनाएँ सवत् 1845 की उपलब्ध हैं, चाँदनगाँव के महावीर की सातिशय प्रतिमा प्रकट होने का विस्तार से 'बधावा' के रूप मे वणन किया है। यह 'बधावा' आमेर शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सगृहीत है –

अथ श्री महावीरजी की वीनती

असडो बधावा म्हारै आययो जीवा (ढाल)
चाँदणगाँव नदी भली जीवा अतिमै अधिक अपारजी
पूजौं श्री महावीरजी ॥ १ ॥
जीवा गाय घणी बन मै चरै जीवा नदी दरडा माहिजी ॥ २ ॥
जीवा एक गऊ सिरदारजी जीवा दरडो पूजै भायजी ॥ ३ ॥
जीवा दूधधार वरषो करै जीवा ढोके मस्तक नाईजी ॥ ४ ॥
जीवा गाइ-धणी इम देखिकै जीवा कह्या नगर मे आयजी ॥ ५ ॥
जीवा पच सबै भेला हुवा जीवा खोजणे लागा जागिजी ॥ ६ ॥
जीवा सबद गैब का तब हुवा चौबीसमा छै जिणरायजी ॥ ७ ॥
जीवा जतन-जतन करि काढिया जीवा दरसण करि सुख पायजी ॥ ८ ॥
जीवा पद्मासन प्रभू ध्यान मे जीवा केसरि वरणा अगजी ॥ ९ ॥
जीवा देस-देस का जातरी जीवा आया प्रभू के पाँयजी ॥ १० ॥
जीवा सब पचै मिलि इम कही प्रभू सहर मे पधरायजी ॥ ११ ॥
जीवा गाडा पर पधरायया जीवा बैला लाग्यो छै अपारजी ॥ १२ ॥
जीवा गाडा तौ चालै नहीं नवै सुपनै आया छै देवजी ॥ १३ ॥
जीवा चैतमास पून्यू सही जीवा मेलो होसी पायजी ॥ १४ ॥
जीवा तब मदर प्रभु कौ बणौ जीवा राजै बन कै बीचिजी ॥ १५ ॥
जीवा देस-देस का जातरी जीवा आवै भगति बधायजी ॥ १६ ॥
जीवा मडल करि पूजा रहै जीवा गीत निरत अधिकायजी ॥ १७ ॥
जीवा सबकी आसा पूरै सही प्रभु मनवछित दातारजी ॥ १८ ॥
जीवा दरसण करि सुख ऊपजै जीवा पूज्या पातिग जायजी ॥ १९ ॥
जीवा देवाब्रह्म अरजी करै प्रभु आवागमन नवारजी ॥ २० ॥

करौली के सौगाणियो के मदिर के शास्त्र-भण्डार मे एक गुटके मे चाँदनपुर के महावीर का पद 'ब्रह्मकपूर' का मिला है। स 1792 मे रचित भट्टारक महेन्द्रकीर्ति की जखडी मे 51 पंडितो मे ब्रह्मकपूर का नाम भी गिनाया है। कवि ने चाँदनगाँव जाकर मूर्ति के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की है –

अथ पद लिख्यते

महावीरजी दर्शन दीज्यो जी ॥
प्रभुजी दर्शन सुँ सुखपावाँ भव-भव का दु ख मिटावाँ ॥ म्हाका०
चाँदणगाँव म्हे आवाँ थाकी मूरति देख्या सुख पावाँ ॥ म्हाँका० ॥ १ ॥
और न मबु देवा माँकै निसदिन थाकी सेवा ॥ म्हाँका० ॥ २ ॥
हूँ तो तुम गुण मगल गाऊँ अब दुरगति दुख नसाऊँ ॥ म्हाँका० ॥ ३ ॥
प्रभु वसुविधि पूजा रचावु, हूँ ता हरषि-हरषि गुण गाऊँ ॥ म्हाँका० ॥ ४ ॥
प्रभु परण्या मुकति सुनारी, थता छाडी छै कुमनि धुतारी ॥ म्हाँका० ॥ ५ ॥
प्रभु मायामोह निवारि, थे ता भव मताप विडारी ॥ म्हाँका० ॥ ६ ॥
प्रभु याग जुगति बडवीरा, थ तो दया धरम का धीरा ॥ म्हाँका० ॥ ७ ॥
प्रभु अरज करूँ सिरनामी तुम चरणन ठाडो स्वामा ॥ म्हाँका० ॥ ८ ॥
प्रभु शरणौ राखि सुधारी थ मानो अरज हमारी ॥ म्हाँका० ॥ ९ ॥
एही 'ब्रह्म कपूरचद' गावै सब भविजन क मन भावै ॥ म्हाँका० ॥ १० ॥

प खुशालचन्द काला ने 'हरिवश पुराण' की भाषा टीका प सुखानद तथा सोभाचद की प्रेरणा से की। सवत् 1793 मे भ सुरेन्द्रकीर्ति क चेल प सुखलाल ने इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की। यह प्रति पचायती दिगम्बर जैन मदिर, करौली मे उपलब्ध है। लेखक-प्रशस्ति मे महावीरजी क मदिर चदनपुर अकबरपुर तथा जयसिहपुर का एव गभीर नदी का उल्लेख है। प सुखानद सोभाचद का भी उल्लेख है जो स 1770 की प नेमचद की रचना 'भ देवन्द्रकीर्ति की जखडी' म उल्लिखित पडितो मे से है। प्रशस्ति इस प्रकार है –

''इति श्री हरिवशपुराणजी की भाषा सपूर्ण'' सवत् 1793 वर्षे वैशाख मासे शुक्ल पक्षे द्वितीया शनौ लिखितो प ग्रथ साधार्सी प सुखलाल चेला श्री सुरन्द्रकीर्ति को जान।''

देस ढूढाढ सुहावनो महावीर सस्थान
जहा बैठ लेखन कियो धर्म ध्यान चित आन ।
तिन सिखर मडिप अब सोभ
गीरद चट्टी कोट मन मोहै
वन उपवन सोभत अधिकार, मनो सुर्गपुरी अवतार

दरसन करन जात्री आवै, धर्मध्यान अति प्रीति बढावै
श्री जिनराज चरन से नेह, करत सकल सुख पावै तेह
चदनपुर अकबरपुर जानि, मदिर डिग जैसिघपुर आनी
नदी गभीर चौगिरदा मानि, पडित दोन रहै तिसथान
सुखानद सोभाचद जान, ताउपदेस लिखौ सु पुराण
मार्ग सुद दोज सो मान ''

दोहा

ता दिन लिख पूरन करौ श्री हरवस सो सार।
पढै-सुनै जो भाव सौ जो भवि उतरै पार॥

''हरिवशपुराण भाषा'' (खुशालचद वाला) की ही एक प्रति पचायती मदिर, करौली के भण्डार मे और है। उसका लेखन-काल भी स 1793 है। उसमे थोडे से अन्तर के साथ प्रशस्ति इस प्रकार है –

देस ढुढाढ सुहावनौ महावीर सस्थान
जहाँ बैठ लेखन कियो, धर्मध्यान चितआन ॥ १ ॥
तिन सिखर मडिप बनो गिरदा कोट मनोग ।
बन-उपवन सोभत अधिक सुर्ग लोक जसजेम ॥ २ ॥

चौपई

दरसन करन जातरी आवै, धर्म ध्यान अति प्रीति बढावै
श्री जिन राज चरण सौ नेह करत सकल सुख पावै नेह ॥ ३ ॥

दोहा

लिख पडित सुखलाल न जथा स्थुति आन
पडित चतुर सुजान हो सुध लिजियौ सुखमान ॥
महावीर गभीर धीरमन अधिक बिराजै
नदि बहि गभीर गाव अकबरपुर राजै
मदिर बनो विशाल सिखिर तहा ऊँचे सोहै ॥
ताहा पडि सुखलाल देख सबको मनमोहे
कहि मैतीजो बजाइ बड़े जहाँ बजै बजैय
देखत प्रभु कौ रूप सबन के पातीक भाजेय ॥
॥ पडित सुखलाल लिखा भव्यजीवो को पठनार्थ सुभ भवेत् ॥

चाँदनपुर हिण्डौन निजामत का एक नगर है। इस प्रदेश का नाम जगरौटी प्रसिद्ध था। इसके आसपास का क्षेत्र गूजर का वास कहलाता था। वहाँ पाडे सुखलाल थे, जो बहुत अच्छे विद्वान् थे। महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने 'आदिपुराण भाषा' की लेखक प्रशस्ति मे उक्त उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ भी शास्त्र-भण्डार दिगम्बर जैन पचायती मदिर करौली मे उपलब्ध है। प्रशस्ति इस प्रकार है –

दोहा

चाँदन गाँव सुहावनौ नदी बहै गभीर
जहाँ विराजे आनि के श्री जिनवर महावीर

कुडलिया

बडौ नगर हिण्डोण प्रगनौ जाह को राजै
चाँदण गाँव प्रसिद्ध देश जगरौटी बाजै
जहाँ गूजर को वास नरे जहाँ नीके सोहै
जहाँ पाँडे सुखलाल देखि सब को मन मोहै
कह मोतीज बनाय बडे जहाँ बाजै बाजे
देखत प्रभु रूप को सबन के पातक भाजै ॥

वि स 1878 मे चाँदनपुर के मदिर की स्थिति का विस्तृत वर्णन 'चाँदनपुर के महावीर' के निम्न पद मे मिलता है। दरवाजा, मण्डप झरोखे, रथ, कुबाण्या, बाग, बगीचे, कुए आदि का वर्णन पडित नेमकीर्ति ने इस पद मे किया है। जिन मदिर मे दूसरी बेदी का निर्माण तथा उसमे लाल पाषाण की स 1878 मे मूर्ति विराजमान किये जाने का भी इससे परिचय प्राप्त होता है। यह वेदी भट्टारक सुखेन्द्रकीर्तिजी के आदेश मे लगवायी गयी ऐसा उल्लेख मिलता है। नेमकीर्ति का यह पद सवाई माधोपुर के दीवानजी के मदिर के शास्त्र-भण्डार से पडित लाडली प्रसादजी 'नवीन' के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। पद इस प्रकार है –

चाँदनपुर के महावीर का पद

महावीर गभीर नदी तट घन तुम गुण गाऊँ
सिखर वचन मन तन करि कै ध्याऊ ॥
सीखर कास तीन तै दीखै देखे सुख पावै
मडप तीन चार शुभ छतरी सोभा किम गाऊँ ॥ १ ॥ वचन०
दरबाजो दरियाव उच्चता सुरनर-मन मोहै
मडप झरोखा महल कुबाण्या चऊँ ओर सोहै ॥ २ ॥ वचन०
सिर पर छत्र सिंहासन परसन नो नभ नाद झरै
भामंडल सुलखि छवि सुरनर सामा झुक परै ॥ ३ ॥ वचन०

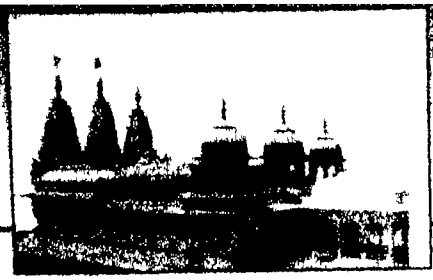

देवल देखि दूर होय दुर्मति दुति हरख भरै
चाँदनगाँव बाद नौरंगा अकबर बाहोत मिरे ॥ ४॥ वचन०
देसि-देस के आवै जातरी मल खूभ भरै
सील-सयम करि-करि पूजा-दान करै ॥ ५॥ वचन०
वसै सरावग और सराविका नित्य दरसण आवै ।
पडित हीरालाल चमनजी सवा अधिकारी ॥ ६॥ वचन०
बाग दोय अरु कूप तीन की सोभा सुखदायी
किलकिला सु जयपुर लगता हो सडक चली आयी ॥ ७॥ वचन०
भट्टारक श्री सुखेन्द्रकीर्तिजी हुकम किया राई
सवा मलावट सो कासा सु सबविधि मगवाई ॥ ८॥ वचन०
सवत अठार बरस अठतर सब जन मन भाई
द्युतिय चैत सुदि पोन्या महूरत चारी बन वाई ॥ ९॥ वचन०
मध्य मनोहर मूरति प्रभु की मुनिजन हितदायी
पद्मासण शुभ वर्ण लाल तन भविजन सुख पाई ॥ १०॥ वचन०
नम कीरति कहै महावीरजी चरणाचित लाई
इन्द्र नरेन्द्र फनेन्द्र रटत प्रभु दरसण द्यो आई ॥ ११॥ वचन०

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति जिनका पदस्थापन जयपुर के दिगम्बर जैन मदिर पाटोदी मे स 1822 मे हुआ और जिन्होने अपने समय मे 1826 मे, सवाई माधोपुर मे वृहद् पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सपन्न कराया, उनके द्वारा रचित 'राग विहग' मे चाँदनपुर के महावीर का पद भी निम्न प्रकार उपलब्ध है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन्ही भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने सवत् 1824 मे चाँदनपुर के महावीर की सस्कृत मे पूजा भी रची है जिसे स्थानाभाव से यहाँ नही दिया जा रहा है।

राग विहग

वर्द्धमान जिन वदो भवि जु वर्द्धमान जिन वदो ॥
चाँदणगाँव नदी तट ऊपरि महावीर जिणदो
अतिशय क्षेत्र महासुख आकर केवल ज्ञान वहदो ॥ १॥ भवि०
सन्मति दाइक नाम कहाइत निर अघ काठ दहदो
देश-देश के भवि मन वसि करि पूरण वीर कहदो ॥ २॥ भवि०
गाल्न वरणी मूरति राजत भविजन मन कुवलय चदो
अति ही सुन्दर मदिर है जावो फुनि दरसन करत सब दुख भगदो ॥ ३॥ भवि०
चैत की पूनिम बहुजन मेलन महावीर लहदो
निशदिन तिन के ध्यान मे मग्नो सुरेन्द्र कीर्ति मुनीदो ॥ ४॥ भवि०

आज से ठीक एक सौ सोलह वर्ष पूर्व अर्थात् वि स 1938 मे कवि बलदेव ने भारत के जैन तीर्थों की वन्दना की तथा उसका विस्तार से वर्णन किया वह चाँदनगाँव मे भी महावीर स्वामी की वदना हेतु पहुँचा तथा वहाँ का आँखो-देखा हाल उसने इन पद्यो मे वर्णन किया है। कवि बलदेव की 'चैत्य वदना' जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है। कवि के शब्दो मे श्री महावीरजी का वर्णन देखिये -

स्वामी श्री महावीर त्रिभुवनपति गुण गभीर
चाँदणगाँव नदी तीर प्रगट मे वारा ।
कटरा अति सुन्दर ताके चारो दिशि महल ऊँच
बीचि तीन शिखर युक्त मदिर है प्यारा ॥
चारो वर्ण तुम्है ध्यावै मन के मनोरथ पावै साचे
देव जग मे भक्ति वत्सलता भारा ।
कीजिये सहाय अब दयालु महावीर प्रभु दास जानि
बलदेव के सबदुख निवारा ॥ ६॥

सवैया तेईसा

स्वामी महावीर सनमति प्रभु दरसण दीजो श्री महाराज ।
अद्भुत नगरी छवि या जग मे सब देवन के हो सरताज ॥
सब वरणाश्रम यश को ध्यावै तारण तरण गरीब निवाज ।
बारबार नमै तुम पद को बलदेव के सारो प्रभु काज ॥ ७॥

इस प्रकार चाँदनपुर के महावीर के चरणो मे अनेक कवि, पडित तथा भट्टारक मुनियो ने अनेक पद रचनाएँ कर अपनी भावाञ्जलि प्रकट की है। महावीरजी के इस सहस्राब्दी समारोह मे अनेक विद्वान् एव शोधकर्ता भाग लेगे। उन्हे अपने-अपने क्षेत्रो मे यदि इस सबध मे कोई और विशेष जानकारी या पद विनती आदि मिले तो हमे अवश्य सूचित करे।

769, गोदीको का रास्ता, किशनपोल
जयपुर 302003

चाँदनपुर के वीर-प्रभु

◦ प्रवीण चन्द्र छाबड़ा

चाँदनपुर मे वीर-प्रभु के विग्रह की वन्दना अनन्त की वन्दना है। कुण्डलपुर जन्म-कल्याणक तथा पावापुर मोक्ष-कल्याणक से वन्दनीय है। युग-बोध मे चाँदनगाँव विपुलाचल है। अपने सत्य और सन्दर्य के साथ शिवकारी है। मोहनी मूरत पर दर्शन, ज्ञान-चरित्र की रत्नत्रयी वलय मुक्तिधारा है। त्रिकाल – भूत-भविष्य-वर्तमान तथा तीनो लोक, उर्ध्व मध्य और पाताल लोक, निरन्तर नर्तन करते गतिमान है।

चाँदनगाँव मे वीर-प्रभु के विग्रह का सदियो की समाधि से उठना मात्र घटना नही है। घटना किसी एक समय म होती है और काल-चक्र म अतीत होकर व्यतीत हो जाती है। वीर-प्रभु का प्रकटीकरण काल की धारा म कालातीत है। अधेर म ज्योति की कोई किरण उतरती है, वह ज्योति ही रहती है, अधेरा नही होती। चाँदनगाँव का यही अतिशय है कि वह भूगोल नही भावलोक है। अकिंचन और अन्त्यज ग्वाल बाल प्रिय है। उसके हाथ जगन्नाथ होकर कृतार्थ है। जो कभी नही हुआ, वह हो जाता है। वर्जना ही वर्जित हो जाती है। भीतर और बाहर एकमेव होकर सबके लिये क्षेत्र पावन हो जाता है। अनाथ व अकिंचन ग्वाल बाल के लिये वीर-प्रभु 'बाबा' है। धरती अहो- भाव मे भर जाती है। मगल गान गूँज उठते है। दिगम्बरी 'बाबा' की वात्सल्यमयी मूरत की वन्दना मे आकाश धरती पर उतर आता है। सबके लिये आश्रय हो जाता है, अनाथत्व रह नहीं जाता। समर्पण श्रद्धा और विश्वास के फूल खिल उठते है। जगल मे मगल हो जाता है। अकिंचन के लिये अकिंचन का देवरा हो जाता है। गति और नियति नियन्त्रित हो जाती है। 'बाबा' का दरबार सबके लिये निश-दिन हो जाता है। वेला-अवेला, वर्ग-वर्ण आदि की सब वर्जनाएँ टूट जाती है। लगभग द्विसहस्राब्दी पूर्व स्वामी समन्तभद्राचार्य ने भगवान महावीर के तीर्थ की वन्दना 'सर्वोदय तीर्थ' के रूप मे की है। चाँदनगाँव अपने स्वरूप मे 'सर्वोदय-तीर्थ' है, आनन्द और मगल का तीर्थ है। वर्ग और वर्ण भेद की दीवारें बिखर जाती है। अभिजात्य होने का अहकार टूट जाता है। सबको अपनी निजता के साथ सम्पूर्णता मे जीने और खिलने की गुणवत्ता मिल जाती है। ग्वालबाल के देवरे मे वीर-प्रभु का चैत्य के लिये मगल-विहार अनुपम घटना है। रथ मे विराजमान 'बाबा' की मूरत मनमोहक है, अर्थभरी है। रथ चलने का होकर भी अपनी जगह अचल और अटल हुआ रहता है। तभी ग्वालबाल विनीत हो निवेदित होता है। वह देखता है, 'बाबा' रथ मे होकर भी रथ के लिये नही हो रहे है। वह रथ की धुरी को स्पर्श करता है। 'बाबा' के साथ अनबोला सवाद होता है। रथ भार विहीन होकर चैत्य के लिये गतिमान हो जाता है। धर्म चक्र का प्रवर्तन हो जाता है। अकिंचन प्रभु क रथ की धुरी अकिंचन के हाथो मे हो जाती है। धरती नयी ऊर्जा से स्नात हो जाती है।

चाँदनगाँव मे इतिहास काल की धुरी पर घूमता जाता है। भगवान आदिनाथ स महावीर तक की यात्रा चिन्मयी है। आचार मे 'अहिंसा' और विचार मे 'अनेकान्त' का सूत्र क्रान्तिकारी है। विपुलाचल पर तीर्थङ्कर महावीर का समवशरण है। चाँदनगाँव समग्र है वीर-प्रभु 'बाबा' होकर जीवन्त विराजमान है, वर्तमान है। आदिवासी वनवासियो क साथ सब एक लय और धुन मे समस्वर होकर भाव की दुनिया मे खो जाते है। हृदय का सत्य ही सत्य का हृदय होकर दर्पण हो जाता है। समय की गति थम जाती है। 'जो है - सो है' का सूत्र मार्गदर्शक हो जाता है। वीर-प्रभु अपने स्वरूप म 'बाबा' है, यही सत्य है आत्मिक वैभव है। सब-कुछ भीतर है, जिन्होंने इसके दर्शन कर लिये उन्हे सब उपलब्ध है। हृदय की बात हृदय से होती है, बुद्धि हट जाती है। दर्शन मे ठहरना आवश्यक नही होता। आश्वासन बुद्धि के लिये होता है। हृदय तो श्रद्धा, आस्था और समर्पण लिये रहता है। हृदय का कमल अन्दर खिलता है, उसकी सुगन्ध भी पोर-पोर मे समायी रहती है। यह

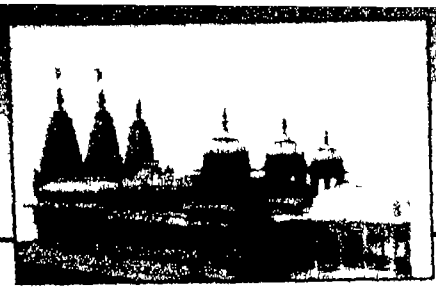

खिलना और मुस्कराना कैसे होता है, यह सवाल होकर भी महत्त्वहीन है। वीर-प्रभु हृदयरूप है, कमल खिलते हैं यह महत्त्वपूर्ण है।

वीर प्रभु के दर्शन की अनुभूति प्रत्येक की अपनी अपनी है। जल मे चाँद की छवि उतरती है, चाँद नहीं। सागर में उठती-गिरती लहरों के साथ चाँद का झूलना, नर्तन करना लुभावना होता है। लगता है कि यही सत्य है, सुन्दर है और शिव है। सागर में चाँद आकाश के चाँद से अधिक धवल और उज्ज्वल लगता है। चाँद और उसकी चाँदनी मे मन खो जाता है, आनन्द ही आनन्द हो जाता है। हर दृश्य और दर्शन नये स्वरूप मे होते हैं। अनेक प्रकार से रूपायित होने का ही सौन्दर्य है, जो ऊबने नहीं देता। देखते जाना और देखते जाना बना रहता है। अपनी इस अनुभूति के साथ लौट रहे होते हैं तो देखते हैं कि जलाशयों, पोखरों व गन्दे नालों में भी वही चाँद झिलमिला रहा है। चाँद और उसकी चाँदनी उसी तरह अठखेलियाँ कर रही है। पोखर का चाँद भी उतना ही सुन्दर और सलोना है। चाँदनी में वही कोमलता और शीतलता है। सागर में चाँद नर्तन कर रहा होता है और उसमे खण्ड भी खण्ड हो जाता है। पोखर का चाँद अपने में स्नात होता दिखता है। पोखर का गन्दा पानी उसे मलिन नहीं करता। चाँद की छवि से वह भी पवित्र हो रहा है। सागर और पोखर के चाँद अलग-अलग होकर भी अलग नहीं है। भिन्नता मे अभिन्नता ही सत्य है, शिव है और यही सौन्दर्य है। हृदय जहाँ भरा होता है, लबालब होता है, परमात्मा वहाँ साक्षात् हो जाता है। जल मे चाँद का प्रतिबिम्ब हृदय का सत्य है। वीर प्रभु की छवि आत्मा में उतर आती है, जीवन स्नात हो धवल व उज्ज्वल हो जाता है। जीवन का यही सौन्दर्य है।

वीर प्रभु का विग्रह प्रतिमा या मूरति होने से अधिक जीवन्त दर्पण है। भाव सावन की बदरिया की तरह आकाश में सागर बन लहराने लगते है, धरती झूम उठती है। बदरिया बरस बरस कर चुक जाती है, अपने में खाली हो जाती है, धरती उल्लास से भर जाती है। खेतों में जीवन उतर आता है। सब तरफ हरियाली हो जाती है। पृथ्वी नव वधू की तरह सज जाती है, धरती का सुहाग जीवन्त हो जाता है। बादलों में जिस तरह बिजली रहती है, चमकती है, वीर-प्रभु के दर्शन भी आत्मा में अमिट हो जाते हैं। प्रभु दर्शन से हजारों-हजार दीपों की ज्योति जग जाती है, चेतना आ जाती है। मन का अंधेरा भाग जाता है। आनन्द की वर्षा हो जाती है। प्रकाश केवल प्रकाश रह जाता है। भीतर ही भीतर आलोक फैल जाता है। मूरत केवल मूरत नहीं रह जाती है, निराकार हो हृदयस्थ वर्द्धमान हो जाती है, वर्तमान हो जाती है। शून्य और शून्य तदाकार हो समग्र हो जाते हैं। यह ऐसा परम बोध है, जिसमे न कुछ छूटता है और न कोई छोड़ता है।

वीर-प्रभु के दर्शन आत्मा में ऐसा मांगलिक आयोजन है कि मानना स्थगित होकर जानना हो जाता है। किसी यान में बैठकर गन्तव्य तक पहुँचने के लिये पैरों का चलाना नहीं होता। वीर प्रभु की मूरत के समक्ष प्रार्थना या कामना महत्त्वहीन हो जाता है। दर्शन केवल दर्शन महाभावमयी चेतना हो जाते हैं। जीवन में अमृत महोत्सव हो जाता है, पूर्णिमा उतर आती है। चाँदनगाँव के 'बाबा' सबको दुलारते हैं, उनके संग नाचते हैं, गाते हैं, बतियाते हैं। 'बाबा' एक साथ एक ही समय में सबमे प्रतिबिम्बित होते हैं। बस हो उज्ज्वल धवल कि कहीं कोई मल या दोष रहता नहीं है। 'बाबा' के दर्शन से सब स्नात हो पावन हो जाते हैं। जानना ही जानना रह जाता है। जानना सरलता है, मानना अहंकार है, बोझ है। जानना आत्मा का बोध है, जिसमे आकाश का खालीपन तथा सागर की परिपूर्णता है। 'बाबा' के दर्शन वीर प्रभु का पावन सान्निध्य है, जो अप्रतिम है, बेजोड़ है। वे सब धन्य हैं जो जानते हैं और अपने को जानते हैं। वे इतिहास के लिये नहीं होते, इससे कभी इति होकर अतीत नहीं होते। उनकी कोई गणित भी नहीं होता। वे वर्तमान में रहते हैं और जीवन्त रहते हैं। 'बाबा' के दर्शन ही इस संसार में सार है।

न्यु कॉलोनी जयपुर

किरपा के बाबा : महावीर

◦ प्रदीप जैन
श्री महावीरजी

छिमिया दुहने बैठती तो रोज-रोज भर जानेवाला बर्तन खाली रह जाता तो दोनो को आश्चर्य होता। बछडा घर पर रहता। गाँव मे चोरी-लुके कुछ करने का सम्कार भी नही था किसी ग्रामीण का, फिर धोरी का दूध कौन निकाल लेता है। प्रश्न था किरपा के सामने आश्चर्य था छिमिया के आगे।

राजस्थान के एक गाँव चाँदन की माटी ने जब यह चमत्कार दिखलाया था तब वह विक्रम सवत् सत्रह सौ के प्रथम दशक का समय था। गभीर नदी का किनारा महाबली हनुमान के स्कन्ध की तरह ऊँचा ऊँचा, तना तना-सा था वहाँ जिस पर ग्राम चाँदन मर्यादा पुरुषोत्तम राम की नाई सदियो से शोभा पा रहा था। चाँदन कभी 'चँदवा' कहलाता था मगर जयपुर के श्रीमन्तो द्वारा शब्द चाँदन से बढाकर वह चाँदनपुर कर दिया गया था। कालान्तर मे यह 'नगर सस्कृति' द्वारा प्रथम सम्मानीकरण था, महानगर द्वारा लघु देहात का अभिनन्दन।

आदिवासियो और हरिजनो के समवेत निवास का प्रतीक चाँदन गाँव लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा से दूर श्रम के टीलो पर रूपा था। श्रम उनका जीवन था, श्रम दिनचर्या और श्रम ही सोच विचार। चारो ओर फैले मरुस्थल की बालू गाँव को तपते ग्रीष्म मे अधिक तपा डालती थी तो ठड के महीनो मे शीतलता उलीच कर सारे वातास को ठिठुरा ठिठुरा बना देती थी, बरसात मे बालू हठीली हो जाती और यायावरो की तरह बहते भागते बरसाती पानी के साथ गाँव की खोरे-छोड कर चली जाती। चाँदन के सीधे-सादे लोगो को सुख के चार क्षण जुटाने के लिए गभीर नदी सदा चिन्तित रहती थी। वह पुकार-पुकार कर कहती, 'मै तुम्हारे समीप मे प्रवाहित होती रहूँगी। रोज-रोज अपनी शीतल गोद मे तुम्हें बैठा लूँगी, तुम्हारी बलैयाँ लूँगी, तुम्हारे तापो का हरण करूँगी और तुम्हे पुत्रवत् लाड-प्यार देती रहूँगी।' मुस्कराते ग्रामीण तब अक्सर लोकगीत के स्वरो मे गा कर उत्तर देते, 'माँ तेरी गति न्यारी है, प्यारी है तेरे आँचल मे जो यह जल की धारा कल्लोल कर रही है, वही तो हमारे जीवन का हरित करती है। माँ हम सकल्प लेते है कभी दुष्काल मे यदि तेरा आँचल सूख भी गया तो उदास न होना माँ, ये बेटे अपने पसीने की धार से तेरा आँचल भर देगे। माँ पसीना भी तो वह तत्त्व है, जो तुझमे नित्य-नित्य प्रवाहित होता रहता है।'

अबाध ग्रामीणो के बीच वह ग्वाला भी समताल रहता था जिसके दादे परदादे चौधरी वश के कहलाते थे। किरपादास चमारवशज होकर भी ग्वाला माना जाता था। यही उसके जीवन का वैशिष्ट्य था। वह गोवश का पालन पोषण इसलिए नही करता था कि उसके मरणोपरान्त उनके चाम से पनही निर्मित करे। वह तो सच्चा गोपालक था, गौएँ पालता, चराता उनकी सेवा करता उनकी इच्छा से दुग्ध-दोहन करता और परिवार चलाता। कृषि और गोपालन उसके व्यवसाय बन गये थे बन गयी थी उसकी चर्या।

किरपादास के परिवार मे आदमियो के साथ गायो की गणना भी होती थी। वह कहता - हम पाँच जीव है घर पर - मैं, मेरी पत्नी छिमिया, बच्चा भोलू और धोरी तथा कबरी। धोरी नाम था उसके सफेद गाय का और कबरी था चितकबरी का। जीव मात्र मे मैत्री की भावना किरपा के भीतर ग्रन्थो-शास्त्रो को बिना पढे आ गयी थी मैत्रीमय था उसका स्वभाव और अहिंसापूर्ण थी उसकी चर्या। आत्मा मे थी क्षमा। पर क्षमा दस धर्मोवाली क्षमा भी हो सकती है। पर वह नही जानता था दस धर्म क्या होते है, क्षमा क्या होती है? वह तो सिर्फ इतना जानता था कि उसकी एक सुशील पत्नी है, जिसका नाम है क्षमा (छिमिया) जो उसके मन मे आठो याम बनी रहती थी। किरपा के सु-सस्कार किसी से छुपे नही थे। किरपा पर जाने किसकी कृपा थी कि वह सदा सुख-सतोष से रहता था, न किसी पर क्रोध न किसी वस्तु का लोभ। सही मे वह 'सुन्दर क्षमा से उत्तम क्षमा' तक क्षमाशील था।

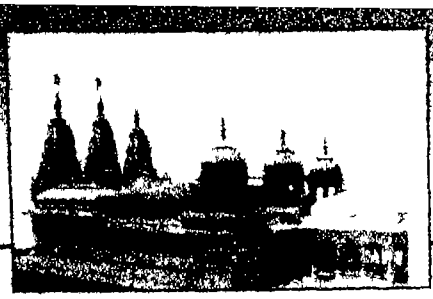

4-6 दिनो से उसका अंतकरण क्षमाभाव धकेल कर क्षोभ धारण कर रहा था, क्षोभ का कारण था धौरी का दुग्ध स्खलन। सान्ध्य बेला में धौरी लौटती तो उसके थन पूर्व की तरह भरे भरे चिकने चिकने न दिखते और जब छिमिया दुहने बैठती तो रोज-रोज भर जानेवाला बर्तन खाली रह जाता। दोनो को आश्चर्य होता, बछड़ा घर पर रहता। गाँव मे चोरी-छिपे कुछ करने धरने के संस्कार भी नहीं थे किसी ग्रामीण मे। फिर धौरी का दूध कौन निकाल लेता है? प्रश्न था किरपा के सामने, आश्चर्य था छिमिया के आगे।

एक दिन किरपा ने सारे समय छुप छुप कर गाय पर नजर रखी। दिन भर तो कुछ नहीं हुआ पर शाम को जब गाय गाँव लौटने लगी तो एक टीलेनुमा स्थान पर जहाँ घास और चोकड़े एक सी ऊँचाई तक उगे थे, गाय रुक गयी। किरपा घास की ओट लेकर पास आ गया गाय के। मगर यह क्या? वह आँख फाड़े रह गया। गाय शान्त चित्त खड़ी है और उसके चारो थनो से दूध की बूँदे झर रही है और टीले के उस स्थान विशेष पर दूध का डबरा भर गया है। कुछ निमिषो के बाद गाय यंत्र चलित-सी कान उठाती है पूँछ फटकारती है दूध भरे स्थान को सूँघती है और चल देती है घर की ओर।

भोला किरपा इतना भोला नहीं था कि वह परिवार के सदस्यो के संकेत न समझे। गाय जिस श्रद्धा से कभी कभी किरपा को सूँघती चाटती रहती थी किरपा ने टीले पर वह श्रद्धा देखी थी गाय की आँखो मे। उसे विश्वास हो गया कि गाय ने वहाँ कुछ सूँघा-ऊँघा नहीं था वह तो उसका मौन नमन था उस जगह के लिए। जगह के नीचे स्थापित किसी अदीठ अतिशय के लिए।

किरपा रात भर अपना मानवी प्रज्ञा पर शर्म करता रहा, उसे लगा जिस स्थान को एक पशु पहिचान गया, उसे आदमी क्यो नहीं पहिचान पाया? क्या हो गया है आदमी को? क्या वह पशु से भी बदतर है? खिन्नता मे से प्रसन्नता के प्रादुर्भाव की तरह अचानक ही किरपा के भीतर एक बोध जागा नहीं, बदतर नहीं। यह तो एक प्राकृतिक संकेत है पशु के माध्यम से आदमी को। पशु इतना ही कर सकता है। इसके आगे जो करना है, वह आदमी ही करेगा, आदमी - हाँ, मै।

किरपा की सम्पूर्ण कथा छिमिया जानती थी, उसकी चिन्ता छिमिया की जो थी। अस्तु दोनो दूसरे दिन प्रात काल की रम्य बेला मे पहुँच गये उस टीले पर। किरपा के स्वस्थ हाथो मे था गेती फावड़ा और छिमिया के कोमल करो मे थी एक टोकरी। नन्हाँ भालू था दर्शक, जो इस कार्य को दैनंदिनी से परे मानकर आश्चर्य कर रहा था और देख रहा था टुकुर टुकुर।

खेत मे मिट्टी डालने के अभ्यस्त हाथ यहाँ भी गति की तीव्रता बनाये हुए थे। सुबह की प्रथम किरण से चल कर संध्या की लालिमा तक पहुँचा दिनकर थक कर विदा ले गया आकाश से तब छिमिया ने किरपा से पसीने भरे अंग पर हाथ रख कर कहा - चलो चलें अब घर, कल देखेंगे उस विस्मय को। कौन रात भर मे भागा जाता है? किरपा के चेहरे पर एक अतृप्त मुस्कान फैल गयी थी न चाहते हुए भी। वे चले गये फिर घर। थके हुए को नींद आने मे देर नहीं लगती। सो गया किरपा खा पीकर। भोर की बेला मे एक स्वप्न तैर गया उसकी आँखो मे। वह देखता है कि जिस टीले को वह खोदता रहा है उसमे नीचे की ओर वह स्वयं पल्थी लगाये बैठा है। फिर अगले ही क्षण वह अनुभूतता है कि वह नहीं, कोई मूर्ति है वहाँ। उसकी कुदाल चल नहीं रही है कोई परामर्श दे रहा है भाई आहिस्ते आहिस्ते नीचे मूर्ति है।

खुल गयी नींद। सचेत हो गया किरपा। सोचता रहा स्वप्न पर और फिर बतला दिया स्वप्न सारा अपनी प्रियतमा को। छिमिया की आँखे फटी रह गयीं, पर उत्सुकता द्विगुणित हो गयी। वे फिर टीले पर थे सुबह। मेहनतकश हाथ से मारी गयी कुदाल धरती की छाती मे ऐसे घुस जाती जैसे माँड़ सने आटे मे बच्चो की अँगुलियाँ किरपा वक्ष फुला कर प्रहार करता और छिमिया हाथ पसार कर समेटती माटी को। नादान भालू मुँह मे अँगुली चूसता देखता रहा इस खेल को। सपने की बात याद थी दोनो को। अतः जब गड्ढे के बीचोंबीच हाथ पड़ते तो हल्का कर देते जैसे कोई शिशु का स्पर्श हो। कुछ ही समय मे उनकी अँगुलियो को वह परस मिल गया जिसकी उन्हे प्रतीक्षा थी। किरपा तो हर्षातिरेक मे किलकार उठा मिल गया। बीस अँगुलियो ने विद्युत वेग से हटायी बालू मिश्रित माटी और दर्शन किये एक प्रतिमा के शीर्ष भाग के। धीरे-

धीरे प्रतिमा के चारो ओर की माटी हटाने मे वे सफल हो गये। किरपा ने माथे पर बँधा दुपट्टा खोला और पोंछ डाला प्रतिमा को। चमक उठे बाबा।

यह देख प्रकृति मुस्करा उठी। हवा ने गीत प्रारम्भ कर दिया किरपी के भाग्य का। धन्य है किरपा! प्रभु का प्रथम स्पर्श तुझे मिला। प्रभु का प्रथम अभिषेक भी तेर हिस्से म गया। किया तून अपने प्रभु का अभिषेक अपने पसीने म। भीगे दुपट्टे म तूने प्रभु का अगोछन किया, अजाने ही सच तुझ महाभिषेक का सुफल मिला गया किरपा! गाती-मुस्कराती रही हवा, चलती रही हवा। समाचार को उडा कर ले गयी हवा गाँव भर मे। लोग हो गये एकत्र टीले के चारो ओर। धन्य-धन्य हो गया किरपा। एक साथ सैकड़ो आँखे घूर रही थीं बाबा का। पहिचान रही थी बाबा का। फिर बाबा की बलिहारी, बाबा की जय। बाबा हो गय तुरन्त चाँदन क बाबा। किरपा क बाबा।

किरपा तो मगर चिन्तित है। किसी ने कहा, तब किरपा न खोला चिन्ता का रहस्य। ओ मेरे प्रिय ग्रामवासियो! हमारे पूज्य बाबा प्रगट हो चुके, पर हमारी झोपडिया मे इतनी जगह भी नही है कि बाबा को साथ ल चल। बाबा भी ऐस नही कि हम दो-चार व्यक्ति काधे पर उठा सक। मै सोचता हूँ यही ठीक। यही बाबा के सिर के ऊपर एक झापडी बना डालूँ और रहन लगूँ उनक साथ। करता रहूँ सेवा। जीता रहूँ भक्तिमय जीवन।

किरपा की इच्छा पूर्ण हुई। वह टाले पर ही झापडी डाल कर बाबा के साथ रहने लगा। गाँव भर मे रोज सुबह-शाम कीतन हान लगा – चाँदनवाले बाबा तेरी छवि प्यारी। घृत वर्तिका से की जाने लगी आरती। चढाने लगे भक्तजन दाल-भात। खिलाने लग पकवान बाबा का। जिसकी रसोई मे जो बनता वह अपनी निर्धनता भूल उठा लाता बर्तन चौके से और पहले बाबा को चढाता भोजन, फिर पाता खुद।

फसले खेतो से चलकर खलियान पार कर गयी, ऋतुएँ कपडे बदल-बदलकर आती-जाती रहीं। समय बीतता गया। धरती से बाबा के प्रगटीकरण का समाचार तब तक गाँव से तहसील, तहसील से जिले और जिले से प्रान्तो की सीमा पार करने लगा। एक दिन बमवा निवासी श्रेष्ठि अमरचद बिलाला क कर्ण-पट स सदेश जा टकराया, किसी ने बताया बाबा निकल है।

अमरचन्द के जागृत चित्त मे प्रेरणा उठना स्वाभाविक था। व एक दिन पहुँच गये चाँदन गाँव और किय दशन बाबा के। शान्त छवि वीतराग मुद्रा, मृगा वर्णीय पद्मासन प्रतिमा। जुड गये हाथ अमरचद के उच्चारण करन लग णमाकार महामत्र का, आँखे अश्रु बिन्दु ढरकान लगीं और झुकन लगा बार-बार मस्तक धरती तक।

अमरचद अपने प्रभु को पहिचान गये थ। किरपा के भाग्य को भी समझ गये थ। फलत उन्होन विनतीपूर्वक कहा, 'बुधवर किरपा! तुम जसा भाग्य मे त। नही पा सका, अत प्रभु से पूर्व तुम्ही स प्रार्थना करता हूँ – भैया यह स्थान प्रभु क लिए उचित नहीं ह, इन्ह क्या हम मदिर मे नही पहुँचा सकते?'

रो पडा किरपा। गिडगिडा कर बोला – 'सठजी हम निर्धन है, हमार पास ठीक सा भवन तक नही हैं, ग्राम म मदिर तो बडी दूर की बात है हमार लिए।'

'वह मेर ऊपर छोडा। तुम आज्ञा दो तो तुम्हार ही गाँव मे मदिर बनाकर प्रभु को प्रतिष्ठित कर दूँ, बस। जनम लेना सफल हो जाएगा मरा।'

किरपा तो पूर्व से ही अपने प्रभु को सुन्दर सात्विक सुरक्षित स्थान पर रखन की अभिलाषा दबाय था मन मे। उसने हँस कर श्रेष्ठिजी क प्रस्ताव का समर्थन कर दिया हाथ जोड कर। अमरजी गद्‌गद हो गय।

अमरचद ने घर पहुँचते ही मदिरजी के लिए आवश्यक निर्माण सामग्री चाँदन म एकत्र किय जान क आदेश दिये और जयपुर के कलाकार कारीगरो को लकर डाल दिया डेरा चाँदन म। देखते ही देखते मदिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हो गया। श्रम, लगन, उत्साह, भक्ति और दान जैसे तत्व जहाँ मानस मे हिलोर लते हो वहाँ क्या नही बनाया जा सकता है? गारा तो मात्र कहने-देखने की वस्तु है।

ज्या-ज्यो मदिर उठता गया किरपा का हृदय बैठता गया। उसे विश्वास हो गया कि उसके प्रभु उससे बिछुड रहे हैं। कभी-कभी

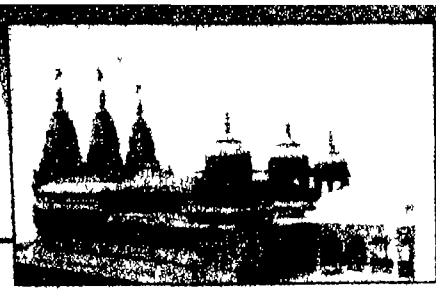

वह बाबा के सामने बच्चों की तरह बात करता मुझे छोड़ जाओगे? मेरे पास नहीं रहोगे?

वांछित पूजा-प्रतिष्ठा कल्याणक सम्पन्न होने लगे। सारे चाँदन का परिवेश सेठ-सेठानियों और उनके परिवारों से भर गया। दिन रात जयघोष होते, भक्ति सरिता का वेग गंभीर नदी से भी अधिक प्रतीत होने लगता। मीणा गूजरों के ठठ लग गए।

धीरे-धीरे वह क्षण आ गया जिसकी सेठ को प्रतीक्षा थी और जिसका किरपा को भय था। एक रथ टीले के पास खड़ा है श्रावकों की भीड़ उसे घेरे है। श्रावकगण विनती करते हुए प्रभु को रथ पर चढ़ाते हैं। प्रतिमा के रथ में पहुँचते ही रथ की शोभा बहुगुणित हो जाती है। सुडौल और स्वस्थ दो वृषभों को सेठजी हाँकते हैं बैल कंधे का धक्का देकर रथ को जड़ से खींचने का प्रयास करते हैं श्रावक चारों ओर से रथ धकेलते हैं। पर रथ? रथ हो जाता है हिमालय। टस से मस नहीं होता तनिक भी। पुनः सेठ दूसरे बैल बुलवाते हैं। वे भी थक जाते हैं पर अँगुल भर भी नहीं सरक सका। सेठ पसीना पसीना हो गए दूर गयी धुन जो अब तक उन पर सवार थी। आयी याद किरपा की। बाबा किरपा की भावभीनी विदाई की अपेक्षा तो नहीं कर रहे? कहीं किरपा का मन प्रभु के प्रस्थान से छटपटा तो नहीं रहा? उठने लगे प्रश्न सेठ के मन में। वह दौड़ कर पहुँचा किरपा के पास। किरपा अपनी झोपड़ी में बैठा सिसक रहा था प्रभु वियोग पर क्रन्दन कर रहा था। हिलक रहा था जिमिया अपने प्रभु पर रुलाई वह नहीं रोक पा रही थी। बालक भोलू तो रोते रोते सो गया था जमीन पर। रंभा रही थी धौरी कान फड़फड़ा कर हुँकार रही थी कबरी। आपदा से क्रन्दन निःसृत हो रहा था।

सेठ से किरपा के परिवार का विलाप न देखा गया। आँखें पोंछते हुए बोले – 'भैया, प्रभु कोई दूर नहीं जा रहे। तेरी झोपड़ी से एक फर्लांग दूर ही तो है मंदिर। क्या तू विदाई नहीं देगा बाबा को? चल मेरे साथ, रथ तुझे हाँकना है आज।' हाँकने का प्रस्ताव सुन अचकचा गया किरपा। इतना महान् रथ हाँकेगा। इस सौभाग्य की तो कल्पना भी न कर सका था वह। अपने नाथ का विछोह दे वह अनाथ बन जाएगा। जानता था, पर उसे प्रसन्नता थी कि उसके नाथ अभावों की झोपड़ी से दूर सद्भावों के मंदिर में पहुँच जाएँगे। यही तो थी उसकी साध। हाँ तसल्ली की सबसे बड़ी बात। फलतः चल पड़ा सेठ के साथ, पहुँच गया रथ के पास।

पहले उसने झज्जरों से सुसज्जित बैलों के कंधे थपथपाये, फिर बाबा को नमन कर धर दिया हाथ चक्के पर। मिल गया भक्त को स्पर्श भगवान का। मिल गया विदाई बाबा को। उसने बैलों को हँकारा और ज्यों ही चक्के पर जोर दिया रथ चल पड़ा एकदम मंदिर की ओर। आगे आगे रथ पीछे पीछे श्रावक। सभी प्रसन्न सभी चकित। जयघोषों से वायुमण्डल भर गया। उत्साह और भक्ति की लहरें उमड़ पड़ीं जन सागर में। पाँव तले की धूल तक गगन के मंच पर नर्तन करने लगी। मगर किरपा की आँखें रोती रोती हो रही थीं। अश्रु देखकर लगता गम्भीर नदी आज उसकी आँखों में होकर बह रही है।

हो गया स्थापना बाबा की मंदिर में। धीरे धीरे उत्सव पूर्ण हो गया। भीड़ छँट गयी। लोग लौट गये निवासों की ओर। मगर अमरचंद अभी भी मंदिर में थे। उनकी आँखों से खुशी बह रही थी और भाग रहे थे उनके उद्गार। वे मुस्करा मुस्करा कर बतिया रहे थे बाबा से। प्रभो! जिस कल्प वृक्ष तुम मुनि थे तब भी दलित के सम्बोधनों से रुलाकर महासती को सनाथ दिलाया था। अब जब मूर्ति के रूप में प्रकट हुए तब भी किरपा जैसे पिछड़ी जाति के ही व्यक्ति के विकास का हेतु बन कर आये हैं नाथ। आप सदा ही दलितजनों के उद्धारक रहे हैं। कोई यह दर्शन समझे या न समझे आपने मात्र किरपा पर नहीं समस्त चाँदन परिक्षेत्र पर कृपा की है इस देश पर कृपा की है और सम्पूर्ण दलित वर्ग के विकास और उन्नयन की प्रेरणा प्रदान की है। प्रभु आपका वास पत्थर-ईंट के मंदिर में मात्र कहने को है, आप तो जन जन के मन मंदिर में बसे हैं। प्रभो मैं भौतिक टीले से तो ले आया, पर आपको किरपा के मन मंदिर से कभी नहीं हटा सकता। वहाँ तो आपका स्थायी निवास है। प्रभो मेरे मन मंदिर में भी कदम धरें। मेरे नयन पथ से पधारें वहाँ।

(जनश्रुति पर आधारित एक भावनात्मक अभिव्यक्ति)

महावीर प्रतिमा की सातिशयता

• नाथूलाल जैन 'शास्त्री'
इन्दौर

हमारी, या यो कहे कि समग्र भारतवर्ष की मूल सस्कृति निर्ग्रंथ-दिगम्बर है। श्रमण शब्द भी इसका पर्यायवाची ही है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, जिनका यथार्थ नाम कर्मभूमि के आद्यस्रष्टा होने से आदिनाथ पडा दिगम्बर ही थे। इन्हे वैदिक सस्कृति म अष्टम अवतार तथा पुराणो के अनुसार शिव, जो दिगम्बर थे, माना जाता है। उन्ही की मूल परम्परा मे भरत मरीचि, त्रिपृष्ठ आदि भवो के पश्चात् अपने सयम एव त्याग के पुरुषार्थ द्वारा अंतिम तीर्थंकर महावीर दिगम्बर सस्कृति के उन्नायक हुए।

दिगम्बर सस्कृति से अभिप्राय ससार शरीर और भोगो से विरक्ति है। इनमे निर्लिप्त (वीतराग) होकर ही कोई आत्मा से परमात्मा अथवा ससार से मुक्त हो सकता है। गृहस्थ या सवस्त्र रहकर किसी ने भी उत्कृष्ट धर्मध्यान शुक्लध्यान, उपशम या क्षपक श्रेणी स्वरूपाचरण या शुद्धोपयोग एव ऋद्धिबल की सार्थकता को प्राप्त नही किया है।

वर्तमान काल म वीतरागदेव प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु उनकी वीतराग प्रतिमा की पूजा पुण्यार्जन के लिए होती है। आचार्य सोमदेव ने कहा है -

आप्तस्यामन्निधानेऽपि पुण्यायाकृति पूजनम्।
तार्क्ष्यमुद्राहि किं न कुर्यात् विष सामर्थ्य सूदनम्॥

गरुड की मुद्रा साक्षात् गरुड के न होने पर भी सर्प के विष को नष्ट कर देती है।

भक्तिपूर्वक कृत्रिम एव अकृत्रिम प्रतिमाये पूज्य है क्योकि अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा के गुणो का उनमे सकल्प या स्थापना की जाती है। इस सदर्भ मे शास्त्रो म कथन है कि-

भक्त्याऽर्हत्प्रतिमा पूज्या, कृत्रिमाकृत्रिमा सदा।
यतस्तद्गुण सकल्पात प्रत्यक्ष पूजितो जिन॰॥

अर्हन्त-सिद्ध भगवन्तो के वीतरागता, सर्वज्ञता आदि गुणो की पूजा उनकी प्रतिमा के द्वारा करना प्रत्यक्ष जिनेन्द्रदेव की पूजा कहलाती है। मत्र सस्कारपूर्वक जिनेन्द्रदेव की प्रतिष्ठित प्रतिमा और जिनेन्द्र देव म स्थापनादृष्टि से कोई अन्तर नही है। चाँदनपुर के श्री महावीर प्रतिमा के दर्शन पूजन वैशाली के भगवान महावीर, जो पावापुर से मुक्त हुए, उनका साक्षात् दर्शन-पूजन ही है। जिनेन्द्र प्रतिमा की पूजा और भक्ति का महत्त्व बताते हुए कवि ने कहा है -

महिमा हजार दस सामान्य केवली की
ताके सम तीर्थंकर देवज की मानिये।
तीर्थंकर देव मिले दसेक हजार ऐसी,
महिमा महत एक प्रतिमा की जानिये॥
सो तो पुण्य होय तब विधि सो विवेक लिये,
प्रतिमा के ढिग जाय सेवा जब ठानिये।
नाम के प्रताप मेंती तुरत तिर ह भव्य,
नाम महिमा तिनते अधिक बखानिये॥

उक्त पद्य मे कवि ने दस हजार सामान्य केवली के समान तीर्थंकर केवली की महिमा तथा दस हजार तीर्थंकर देवो के समान एक वीतराग तीर्थंकर प्रतिमा की महिमा कही है। कवि कहता है कि इसीलिए उस प्रतिष्ठित वीतराग प्रतिमा के सम्मुख जाकर अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा के नाम का भक्तिपूर्वक स्मरण करे। भगवान का नाम ही वह मत्र है जिसके जपने मात्र से ही भव समुद्र से पार हो जाते है। कवि ने भगवान के नाम स्मरण की महिमा सबसे बढकर कही है।

मानतुगाचार्य विरचित भक्तामर स्तोत्र म भी नाम की महिमा वर्णन करते हुए आचार्यश्री ने कहा है -

त्वन्नाम मंत्रमनिश मनुजा स्मरन्त.
सद्य स्वय विगतबधभया भवंति॥

हे प्रभो! आपके नाम रूपी मत्र को स्मरण करने वाले मनुष्य शीघ्र ही बधन विमुक्त हो निर्भय हो जाते है। महायोगी मुनिराजो

के योगबल का यह प्रभाव है कि उनके नाम ही मंत्र बन जाते हैं। श्री आदिनाथ, श्री पार्श्वनाथ, श्री महावीर आदि के नाम मंत्र अति प्रसिद्ध है।

आचार्य पूज्यपाद ने तत्त्वार्थसूत्र की संस्कृत टीका 'सर्वार्थसिद्धि' मे प्रथम अध्याय के सप्तम सूत्र 'निर्देश स्वामित्व साधनाधिकरण स्थिति विधानतः' मे साधन की व्याख्या करते हुए सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का एक साधन तिर्यंच और मनुष्य गति मे जिनबिम्ब दर्शन को बताया है। देवगति मे जिन महिमा दर्शन के अन्तर्गत पंचकल्याणक को भी बताया है। समवशरण मे तीर्थंकर की दिव्यध्वनि श्रवण करते समय उपयोग श्रवण मे रहता है अतः आत्मोन्मुखता का अवसर नही मिलता किन्तु उनकी प्रतिमा के शांतिपूर्वक दर्शन करने से प्रेरणा मिलती है कि –

ज्यो तिलमाहि तैल है ज्यो चकमक मे आग।
तेरा प्रभु तुझ मे बसे जाग सके तो जाग॥

जिन प्रतिमा की शांत और वीतराग मूर्ति हमे प्रेरणा प्रदान कर मानो यह कहती है कि हे भक्त! जैसा तुम मुझे परमात्मा जानकर दर्शन कर रहे हो वैसा ही परमात्मा तेरे मे भी विद्यमान है। तू अपनी ओर भीतर दृष्टि कर, तुझे परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे अर्थात् स्वानुभूति उपलब्ध होकर सम्यग्दर्शन हो जायेगा। हम इन्ही सब उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें कराते है तथा ऐसे पावन आयोजनो मे सम्मिलित होते है। दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे आयोजित यह सहस्राब्दी समारोह ऐसा ही मंगलकारी पावन आयोजन है।

आचार्य जयसेन ने कहा है –

ये कुर्वंति जिनेन्द्र बिम्बमनघ सत्पंचकल्याणका,
रोपात्सुस्थितमत्र पुण्ययशसो वृद्धि सुमार्गावनम्।
तेषां मार्गतिवृद्धि कारकतया पुण्यानुबंधोदयात्,
यावच्चन्द्रदिवाकरं दृशिकृता सद्दृष्टिलाभं परम्॥

अर्थात् जो पुरुष श्रद्धापूर्वक निराकांक्ष भाव से पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक जिनबिम्ब विराजमान करते है, उनकी सदैव पुण्य एवं यश की वृद्धि, सन्मार्ग रक्षा होती है तथा उन्हे उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन का लाभ होता है।

आचार्य वसुनन्दी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का उद्देश्य एवं महत्त्व बताते हुए कहते है –

अस्मिन् महे राज्य सुभिक्षसंपदाद्योति हेतु कथितो मुनीन्द्रै।
कलाविदानीं नृपभृतिरिष्टा, मिथ्या दृशा नोदयमिष्टमत्र॥

जिन प्रतिष्ठा का प्रमुख उद्देश्य राज्य की एवं सुभिक्ष की वृद्धि और शासकों का कल्याण है। इससे धर्मविरोधियो का अभाव भी एक लाभ है।

मंत्र संस्कार मे भी अधिवासना के अन्तर्गत जिन प्रतिमा के अग्रभाग मे यव माला एवं मदनफल स्थापन का उद्देश्य 'प्रतिष्ठा तिलक' मे 'जनयतु जनतानां क्षेत्र वृद्धि सुभिक्षम्' जनता मे कल्याण की वृद्धि एवं सुभिक्ष होने का प्रतीक रूप मे मंगल कामना की गई है।

प्रतिमा के अभिषेक के पश्चात् यंत्र पर शांतिधारा पाठ मे एवं पूजा के अंत मे शांति पाठ मे भी 'सर्वजनानंदनं सर्वराजानन्दनम् कुरु कुरु' तथा 'क्षेमं सर्व प्रजानाम् प्रभवतु बलवान धार्मिको भूमिपाल ... व्याधयोयान्तुनाशम्' इत्यादि मंगल कामनाएँ की गई है।

जिनेन्द्र प्रतिमा का अभिषेक जिनेन्द्र पूजा का प्रमुख अंग है। अभिषेक भव्य प्राणियो के रागादिमल विकारो के निवारणार्थ किया जाता है। जो लोग अभिषेक को प्रतिमा की शुद्धि (सफाई) के रूप मे मानते है उनका मन्तव्य आगम विरोधी है। मध्यलोक के 458 अकृत्रिम चैत्यालयो की प्रतिमाओ का देवगण अनादिकाल से अभिषेक करते आ रहे है। क्या उन रत्नमय प्रतिमाओ मे कुछ मलिनता है जिसे वे अभिषेक कर शुद्ध करते है? जब गृहस्थावस्था मे जन्म से ही तीर्थंकरो के मल मूत्र, स्वेद आदि की मलिनता नही होती तब अर्हन्त अवस्था मे परमौदारिक दिव्य देह मे, जिसकी स्थिति हेतु कवलाहार की भी आवश्यकता नही रहने पर क्या किसी भी प्रकार की मलिनता संभव है? जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के अभिषेक का उद्देश्य तो उनकी पवित्र देह स्पर्श से श्रद्धाभाव जागृत होकर वीतरागता के भाव उत्पन्न होने से है। भक्त की भावना तो सदा यही होनी चाहिये –

रागादिक दोष हरीजे परमातम निजपद दीजे
अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनेन्द्र।
यही वर मोहि दीजिए, चरण शरण आनन्द।

फरवरी '98 के प्रथम सप्ताह मे परमपूज्य दिगम्बर जैन मुनिराज आचार्य (सूरि) श्री विद्यानंदजी महाराज के पावन सान्निध्य मे हम श्री महावीर की सातिशय प्रतिमा का सहस्राब्दी समारोह मना रहे है। पूज्य आचार्यश्री का सान्निध्य बावनगजा, श्रमणबेलगोला एव गोम्मटगिरी के महामस्तकाभिषेक एव प्रतिष्ठा समारोह मे भी रहा है। इस सहस्राब्दी महोत्सव मे भी भक्त जन तीर्थंकर महावीर की एक हजार वर्ष पुरानी मनोज्ञ प्रतिमा के अभिषेक कर साक्षात् श्री महावीर स्वामी के अभिषेक, देहस्पर्श आदि का अतिशय पुण्य अर्जित कर सकेंगे क्योकि भगवान महावीर के वीतरागता आदि गुणो का सकल्प कर उनकी उस प्रतिमा मे स्थापना हुई है।

'यतस्तद्गुण सकल्पात प्रत्यक्ष पूजितो जिन ' भगवान महावीर के गुणो की स्थापना सत्य, जो दश प्रकार सत्य भेदो मे अन्यतम है को लक्ष्य कर हम कह सकते है कि इस प्रतिमा की अभिषेक पूजा साक्षात् भगवान महावीर की अभिषेक पूजा ही है।

श्री महावीरजी की सातिशय दिगम्बर प्रतिमा जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के सूरि मत्र (सूरि यानि दिगम्बर आचार्य द्वारा प्रदत्त मत्र) प्राण प्रतिष्ठा नेत्रोन्मीलन आदि मत्रो द्वारा सस्कारित होकर ही पूज्य एव प्रभावक हुई है। इन मत्रो को प्रदान करने का अधिकार दिगम्बर (निर्ग्रंथ) सूरि (आचार्य) का ही प्रतिष्ठा शास्त्र मे दिया गया है। दिगम्बर आचार्य ही अपने त्याग सयम एव योग (ध्यान) के बल पर यथार्थ मत्र सस्कारकर्ता कहलाते है। कतिपय लोगो ने शास्त्रो की अवहेलना कर प्रतिष्ठा एव मत्र सस्कार के अधिकार दिगम्बर गुरुओ से छीन कर स्वय प्रतिष्ठा दीक्षादाता बन गये है जिस कारण ऐसी प्रतिष्ठित मूर्तियो मे से तेज आकर्षण और अतिशय लुप्त हो गया।

कुछ अप्रबुद्ध भक्तजन जो इस वास्तविक प्रकृति की शक्ति एव गुणो से अपरिचित है वे इस जगत की विविध आश्चर्यपूर्ण रचनाओ को किसी अदृश्य और व्यापक एक ईश्वरकृत अथवा किसी देवी देवता द्वारा घटित मान कर सूर्य, चन्द्र, मेरु, वायु, अग्नि आदि के प्राकृतिक दृश्यो मे से उक्त देवताओ की मान्यता का अधविश्वास कर लेते है।

यहाँ की प्रतिमा मे भी कुछ लोग किसी देवता का चमत्कार मानते है। मै इसे अविनय मानता हू क्योकि आत्मा की (प्रतिमा की भी) अनन्त शक्ति का वे तिरस्कार करते है।

दिगम्बर प्रतिमा का अविनय करने मे ही अजना का पवनञ्जय का वर्षो तक सयोग नही हो सका। श्री बाहुबली श्री विष्णुकुमार, आचार्य समन्तभद्र श्री मानतुग श्री वादिराज आदि अनेक दिगम्बर महान् मुनिराजो को जो अतिशय या ऋद्धि प्रगट हुई उसके द्वारा अपना तथा पर का कल्याण हुआ। यह सब कुछ उनकी एकाग्र चिन्तानिरोध रूप ध्यान अथवा चित्तवृत्ति निरोध रूप योग का प्रभाव था। ऐसे ही मुनिराजो द्वारा मत्र सस्कार से मूर्ति मे भी अतिशय प्रगट होता है।

सपूजकाना प्रतिपालकाना यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्र ॥

– भगवान् जिनेन्द्र (तीर्थंकर) भावपूर्वक पूजा-भक्ति करनेवालो के लिए, मुनियों, सामान्यजनो व तपस्वियों के लिए, रक्षा करनेवालो के लिए, नगर प्रान्त राष्ट्र और शासक के लिए शान्ति प्रदान करे।

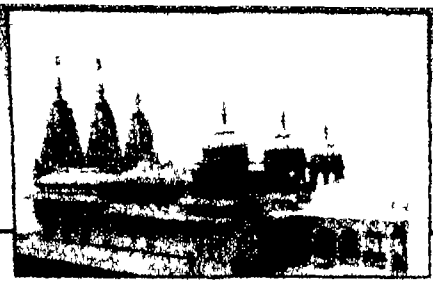

वैशाली कुंवर महावीर

• डॉ उदयचन्द जैन

मनोहंस – ॥ऽ, ।ऽ। ।ऽ। ऽ॥, ऽ।ऽ – १ऽ वर्ण
[सगण ॥ऽ, जगण दो ।ऽ।]

– १ –

मुअधार गगापवाह तुल्ल पवाहिआ
जण वीर धीर सुधीर कत महाविगा।
जह णाण-दसण-सचरित्त सुचारगा
मह णत्तम महवीर-मामि सणासगा॥ १॥

जहा गगा के प्रवाह की तरह श्रुतधार प्रवाहित है, जहाँ लाग वीर, धीर सुधीर कान्त आदि स्वाभाविकतया है जहाँ ज्ञान, दशन और चारित्र का आचरण किया जाता है, वहाँ महावीर स्वामी मेरे अन्धकार को भली-भाँति नाश करेंगे।

– २ –

पण्णागुणेण महवीर-जणम्मि सट्ठा
कंति बल च अवहिं मयल हि जुन।
सम्मे कुले हि जणए खलु सच्च-सच्च
सिद्धि च सिद्धगुणदायग-णायग च॥ २॥

जो प्रज्ञागुण से लोगो के बीच महावीर है, वह श्रेष्ठ (मानव) कान्ति बल एव अवधिज्ञान को प्राप्त करता है। वही उन गुणो से युक्त श्रेष्ठ कुल मे भी जन्म लेता है, यह निश्चय परम सत्य है।

– ३ –

त ओहिदसण - वड्ढिअ - पवड्ढि गो हि
ज सव्व दुक्ख-खयग खलु अत्थि एव।
पुप्फुत्तरम्मि भवणे भवमाण - इदो
कल्लाण-सव्वजगमाणव-इच्छ भासे॥ ३॥

जैसे ही सभी दुःखो का विनाश होता है वैसे ही अवधिदर्शन वृद्धि एव प्रवृद्धि सम्पन्न होता है। पुष्पोत्तर विमान मे रहने वाला इन्द्र सभी लोगो के कल्याण की भावना से कहता है।

– ४ –

जबूइ दीव-दिवमाण-सुदीव-तुल्ले
सोहा सिरोमणि समो भरहो हि खेत्तो।
सामिद्ध-जुत्त-वण सपअ-पुण्ण साली
पुण्णा सुधण्ण-धण-धण्ण-गुणम्मि धण्णो॥ ४॥

जबूद्वीप दीप्त प्रदीप की तरह जो द्वीप है, मे शोभा रूपी शिरोमणि मुकुट के समान भरत क्षेत्र है जो समृद्धि युक्त, वन सपदाओ से पूर्ण पुण्यशाली है। यहाँ के रहने वाले धन्य है पुण्यशाली है कि वे धन धान्य रूपी गुण से पूर्ण है।

– ५ –

अस्सेव खेत्तगरिमा महिमाद जुत्तो
सोहा विदह-विगदो हि विसेस-दसो।
तस्सि च कुडउर णाम-पहुत्त-जुत्तो
सिद्धत्थ राअ-णयर णग-मुल्ल हीरा॥ ५॥

इसका ही क्षेत्र गरिमा एव महिमा से युक्त था जो विदेह नाम से विख्यात रमणीय विशेष प्रदेश था उसमे अत्यन्त प्रभुता वाला कुण्डपुर नाम का नगर था वह सिद्धार्थ राजा का नगर था, वह भी बहुमूल्य हीरा नग से मंडित था।

– ६ –

जो कुडउरो न अत्थि, सो अत्थि कुडपुरो कुडगामो।
कुडग्गामो वि अत्थि, कुंडपुरू वि कुडलीपुरो॥ ६॥

जो कुडउर है वही कुडपुर, कुडग्राम भी है तथा कुडपुरू एव कुडलीपुर भी इसका नाम है।

– ७ –

सो खत्तियकुडपुरो, णाणाविह-चेइअ-पवित्तठाण।
रम्मो आराम-जुदो, रायदि राज-रायम्हि सदा॥ ७॥

वह क्षत्रिय कुडपुर भी था, वह नाना प्रकार चैत्यो का पवित्र स्थान था। वह रमणीय आरामो/उद्यानो से युक्त था तथा सभी राज्य शासको से वह सुशोभित था।

– ८ –

विसाला गण-रजस्स,
वेसाली अत्थि विसाल-धण-सपण्णा।
गणो सो खत्तियाण,
वेहव पुण्णत्तण भरह-खेत्तम्मि राजे॥ ८॥

विशाल गणो के राज्य का स्थान जो वैशाली थी, वह विशाल विस्तार मे युक्त थी, अत्यधिक धन से परिपूर्ण थी, वह क्षत्रियो का गण था तथा उसकी भरतक्षेत्र मे वैभवपूर्णता के लिए प्रसिद्ध थी।

– ९ –

विद्युन्माला ऽऽऽऽ – ८ + ऽऽऽऽ – ८ = १६+१६
प्रथम चरण – ३२ मात्राएँ

रम्मा दिव्वा वेसाली सा, सग्गातुल्ला आगमा जा।
रुक्खा खीरा धण्णाली सा, गंगा धारा धावन्ता जा॥ ९॥

जो वैशाली आगमो से परिपूर्ण थी वह रम्य एव दिव्य थी, इसलिए स्वर्ग के समान थी। वहाँ वृक्ष थे दुग्ध था, धान्य था और गगा की धारा दौडती/फैली हुई/बहती हुई दिखाइ पडती थी।

– १० –

महालक्ष्मी ऽ।ऽ ऽ।ऽ, ऽ।ऽ = रगण – ९ वर्ण

कुडग्गामो गणो खत्तिगो, गगकूले विसजेज्ज हि जो।
राअ-सिद्ध-सिद्धो बुद्धो, णत्थि तम्हा विसाला राआ॥ १०॥

कुडग्राम का राजा सिद्धार्थ था उसका उसपर राज्य था वह कुशल एव बुद्धिमान था। विशाल राज्य था, क्षत्रिय गण था। वह कुण्डग्राम गगा के किनारे पर स्थित होन से शोभा युक्त भी था।

– ११ –

वित्थर विसाला सा, वेसाली दाहिण पुव्व भागम्हि।
उत्तरपुव्वम्मि वि सा, कुडपुरं च पेरत च अवि॥ ११॥

वह विशाल थी, विस्तार होने के कारण। इसलिए दक्षिण एव पूर्व भाग मे फैली थी, वह उत्तर से पूर्व मे कुडपुर पर्यन्त विशाल थी।

– १२ –

सा वेसाली णयरी, सग्गसमगरीयसी तु विसाला।
सिरी सवण्णा पुरी, इदपुरीव राजदे लोए॥ १२॥

वह वैशाली नगरी स्वर्ग के समान श्रेष्ठ एव विशाल थी वह श्री सपन्न पुरी इन्द्रपुरी की तरह लोक मे प्रसिद्ध थी।

– १३ –

सिंधू-तड-सम्मिट्ठा, ताए सीमाए पत सजुत्ता।
अहहि-खडसोहिक्ष, विसाला खड-अखडलव्व॥ १३॥

वह वैशाली नगरी सिन्धु नदी के तट का स्पर्शित करती था, उसकी सीमा पर अनेक प्रान्त थे महा वनखण्ड से सुशोभित थी तथा जिसका खण्ड भी विशाल था फिर भी वह अखण्डला की तरह थी।

– १४ –

तिसु भागेसु विभत्ता, वइसाली कुडग्गामो वि तहा।
वाणिज्जगामो सआ, राजदि सा पुरी इदसमा॥ १४॥

वह वैशाली तीन भागो मे विभक्त थी – वेशाली कुडग्राम और वाणिज्यग्राम। उससे वह नगरी इन्द्रपुरी के समान सुशोभित थी।

– १५ –

तेहि समुदाएहिं, वइसाली तु अइविसाला हि।
णयरी सा वि जिणेसरी, णदावत्त सिहचिण्हजुआ॥ १५॥

वह वैशाली उन तीनो के कारण अति विशाल थी, इसलिए उसे विशाला कहा जाता था, वह जिनेश्वरी नगरी थी उसके प्रतीक नन्दावर्त और सिह थे।

– १६ –

अरहा अरहा धजा वि, अरहा उक्किट्ठा उण्णआ गगणे।
जे अरहा हवंति अवि, तेसि वासी वि अरहा जदा॥ १६॥

जिनका ध्वजा ही अर्ह/अरहत के चिह्न से युक्त है, वे अर्ह है/पूज्य हैं। जो अर्ह हैं वे उत्कृष्ट है, उन्नत है, इसलिए गगन मे लहरा रही हैं। जो अरह होते है/उत्कृष्ट होते हैं, वे अरह वासी भी अर्ह हैं।

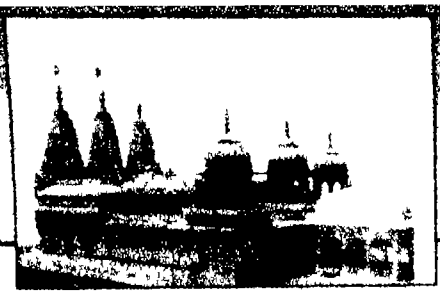

\- १७ -

अरहं मेवगो गणो, गण णायगो सासग-चेडगो।
सो आखडलेण च, सामइ अखडसासण त च॥ १७॥

अरहत सेवक उस नगरी का प्रत्यक गण था। जो समग्र गणनायक था मखिया था वह शासक चेटक था। वह पूर्ण रूप से उसका अखड शासन करता था।

\- १८ -

जा णयरी विमाला तु, तस्स सासगो विमाला कि ण जाहि।
गुणे विमाल गआ, रागि विरागि जणाण च रक्खगो॥ १८॥

यदि नगरी ही विशाल है तो उसका शासक विशाल क्या नहीं होगा। राजा चेटक गुणों में विशाल है इसीलिए तो रागिया तथा विरागी जनों का भी रक्षक है।

\- १९ -

लिच्छवीण वस-भूआ, कुलेण खत्तिओ खत्तिआ न रज्जा।
मगलकारी-दिव्वा, हिएच्छ-जण जणाण महाण॥ १९॥

वह लिच्छविओ के वशज क्षत्रिय था, इसलिए उसका एकछत्र राज्य था। वह दिव्य एवं मगलकारी था और जन जन की आकाक्षाओं का हितकारी भी।

\- २० -

जो अहिवई विसाला, जइ विसाला तस्स णयरी कि होत्था।
अम्मि अच्छेरो णो, ण विसालाउ विसाला अवि॥ २०॥

जो अधिपति होता है वह विशाल होता है। यदि उसकी नगरी विशाल है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि विशाल से ही विशाल होता है।

\- २१ -

ताए वेसालीए, सीमा वि अइ विसाला विसालाओ।
णाणे वि तु विसाला हि, णिरक्खरत्तणस्स अभावो हि॥ २१॥

उस वैशाली की सीमा अत्यन्त विशाल थी, इसलिए तो वहाँ विशेष शालाएँ थीं विशेष शिक्षा के स्थान थे उससे वह ज्ञान मे भी विशाल थी क्योंकि वहाँ निरक्षरता का अभाव था अर्थात् सभी पढ़-लिखे होने से भी विशाल थी।

\- २२ -

जो वेसाली वि अत्थि, सा वेसालीहिंतो वि विसाला।
साली णाणा धण्णा, धण-धण्णा-खेत्ते वि विसाला॥ २२॥

जो वैशाली नगरी थी वह अत्यधिक शाली धान्य से धान्य की पैदावार से भी विशाल थी। शाली धान्य भी वहाँ अनेक प्रकार की होती था इसलिए वह धन्य थी तथा सभी प्रकार के धन-धान्य के क्षेत्रों के कारण विशाल भी।

\- २३ -

वासा हवेदि दिवसम्मि सुखेन भागे
ण णअण सिरिपिअ पिअकारिणीए।
लच्छीगआ धण-धणेसर-धण्ण धण्णा
जाए तमेग-रिउपाउस काल-काले॥ २३॥

उस कुण्डग्राम के श्रेष्ठ क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन वर्षा होती थी मानो वह नव श्रिया, प्रियकरा प्रियकारिणी से लक्ष्मीवान हो गया हो वह कुबेर इन्द्र इसे ही अहोभाग्य मानने लगा। सो ठीक ही है क्योंकि ऋतुकाल के समय में वर्षा ही एकमात्र शुभ समय का सूचक है।

\- २४ -

रण्णो विसाल-गणरज्ज-विसाल-रण्णो,
तस्सेव रण्ण-वसुहा अवि राजद हि।
सिद्धत्थ तुल्ल-अहिराज-महाहिराजे,
कि णो हवेदिअदि साल-विसाल रूव॥ २४॥

राजा का राज्य विशाल था गणराज्य भी विशाल था और उसमें अरण्य भी विशाल था। उसी वसुधा पर अरण्य की शोभा थी जो सिद्धार्थ स्वरूप थी, अधिराज/अधिक से अधिक वनराजि से युक्त थी तथा महाधिराज नाना प्रकार की वनराजि से सुशोभित थी। इसलिए क्यों नहीं वैशाली का वह विशाल गणराज्य कुडग्राम रत्नवृष्टि से विशाल हो।

\- २५ -

आसाढ-सुक्कदिवस्स सुछट्ठि - छट्ठी,
साढे च उत्तर-ससी ससि सुक्ख - काले।

सिद्धत्थराज-भवणम्मि हि सत्त माले
मालीगओ पिअहवो पिअकारिणीए॥ २५॥

जब आषाढ शुक्ल षष्ठी की छटा पृथ्वी पर फैली हुई थी, उस समय चन्द्रमा की शुभ्रता भी उत्तराषाढ को सुशोभित कर रही थी तभी सिद्धार्थ राजा अपने राज भवन में सप्तम माले/सातवी मंजिल पर स्थित मालीगत थे, प्रसन्नचित्त थे और प्रियकारिणी के साथ स्थित थे।

– २६ –

जत्थेव तत्थ पिअकारण-कज्ज-कज्ज
तत्थ णिवासभवणाणि सुवण्ण-वण्णा।
पासाद-उण्णअ-गआ धवला हि धोज्जा
कति सुरम्म-रइवास-णिवास-पुण्णा॥ २६॥

जहाँ प्रियकारण होत है वही पर यदि सुवर्णमयी निवास भवन हो, उन्नत प्रासादो से युक्त हो तो वे अपनी धवलता से कान्ति को ही फैलाएँगे। ऐसी ही कान्तिमयी रमणीय निवासो मे रति का वास होता है।

– २७ –

तेसि णिवासभवणेसु इगेव वासो,
सिद्धत्थ-वास-पुरसिद्ध-पसिद्ध-भूओ।
तस्सि पिउलइ पिअकारिणी-सिद्ध-साला,
सुदेर-इद-भवणाउ सुसिद्ध-दाआ॥ २७॥

उनके निवास भवनो मे एक स्थान सिद्धार्थ-वास था, जो नगर मे सिद्धयोग के लिए प्रसिद्ध था। उसमे प्रिया प्रियकारिणी की एक सिद्धशाला थी। वे सभी इन्द्र के भवनो से भी मनोज्ञ एव सिद्धी को प्रदान करने वाले थे।

– २८ –

तस्सि च सोधतलट्ठिय-ठाण-ठाणे,
एगो हवेइ सयणालय-सोम्म-रम्मो।
णच्चत-हास-परिपुण्ण-सुसालि-भजिं,
णाणा-मणुण्ण-चिअ-चित्त-कला-समुण्णा॥ २८॥

उसमें/उन भवनो मे एक भवन के ऊपरी स्थान मे एक-एक रमणीय एव प्रशान्त शयन कक्ष था, जो नाच, हास आदि से परिपूर्ण शालिभजिकाओ से युक्त था। वह नाना प्रकार से मनोज्ञ चित्त को लुभाने वाली चित्रकला आदि से युक्त था।

– २९ –

चदा समा धवलकतिअ-गोर-वण्णी,
गब्भेण भार-सहिएण हि णिच्छलो सा।
सिद्धत्थ-कत पिअकारिणि-पुत्तलि व्व,
जाएज्ज भत्तु-पुरओ मदए कुणेइ॥ २९॥

वह चन्द्र के समान धवल कान्ति एव गौरवर्णवाली गर्भ के भार के साथ निश्चल हो गई थी वह सिद्धार्थ की कान्ता प्रियकारिणी इससे पुतली की तरह प्रतीत हो रही थी फिर भी वह पति के सामने उन्हे मद से युक्त करती थी।

– ३० –

चोज्जा अहो सरवई गगणाउ वज्ज,
मोचेज्ज णा अणिल अग्गि जल च वाहे।
मोणाउ एअ पुरवर वइसालि-रज्जे,
विट्ठि कुणेइ रयणाणि हि जम्म-पुव्वे॥ ३०॥

आश्चर्य की बात तो यही है कि सुरपति गगन से न वज्र, न वायु, न अग्नि और न जल को छोडता है, अपितु वह तो चुपचाप श्रेष्ठ नगर कुण्डग्राम एव वैशाली गणराज्य मे रत्नो की जन्म से पूर्व ही वृष्टि करता रहा।

– ३१ –

पाचिव्व भाणु-अहिणदिअ-सव्व-लोग,
सा सुइसुत्तितणय तणय मिगक्खी।
सपुण्णमास-णवमे मिअचेत-पक्खे,
ण तेरसी सुह सुजोग-सुणंद ण जाद॥ ३१॥

जिस प्रकार प्राची/पूर्व दिशा सर्वलोक को आनन्दित करती है, उसी प्रकार वह मृगाक्षी ससार को नीतिमार्ग दिखलाने वाले नव मास के पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के शुभ योग मे आनन्ददायक पुत्र का जन्म देती है।

पिऊ कुंज, अरविंदनगर,
जैन स्थानक के पास, उदयपुर ३१३ ००१ (राज.)

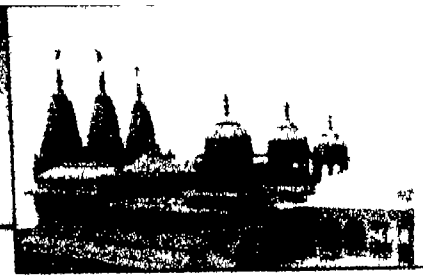

वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर

◦ डॉ हुकमचन्द भारिल्ल

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ गंभीर व ग्राह्य है उनका वर्तमान जीवन (भव) उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है उसमे विविधताओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। उनका वर्तमान जीवन घटना-बहुल नहीं है। घटनाओं मे उनके व्यक्तित्व को खोजना भी व्यर्थ है।

घटना समग्र जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओं मे जीवन को देखना उसे खण्डों मे बाँटना है। भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है अविभाज्य है उसका विभाजन संभव नहीं है। उनके व्यक्तित्व को घटनाओं में बाँटना उनके व्यक्तित्व को खण्डित करना है। अखण्डित दर्पण मे बिम्ब अखण्ड और विशाल प्रतिबिम्बित होते है किन्तु काँच के टूट जाने पर प्रतिबिम्ब भी अनेक और क्षुद्र हो जाते है। उनकी एकता और विशालता खण्डित हो जाती है। वे अपना वास्तविक अर्थ खो देते है।

भगवान महावीर के आकाशवत विशाल और सागर से गंभीर व्यक्तित्व को बालक वर्द्धमान की बाल सुलभ क्रीडाओं मे जोड़ने पर उनकी गरिमा बढती नहीं वरन् खण्डित होती है। 'सन्मति' शब्द का कितना भी महान अर्थ क्यो न हो, वह केवलज्ञान की विराटता को अपने मे नहीं समेट सकता। केवलज्ञानी के लिए सन्मति नाम छोटा ही पडेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवलज्ञानी की महानता व्यक्त करने मे समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेको की शकाएँ समाप्त की हो, अनेको को सन्मार्ग दिखाया हो सत्पथ मे लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

बढते तो अपूर्ण है जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो - उसे 'वर्द्धमान' कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है? इसी प्रकार महावीर की वीरता को साप और हाथी वाली घटनाओं से नापना कहाँ तक सगत है, यह एक विचारने की बात है।

यद्यपि महावीर के जीवन सम्बन्धी उक्त घटनाएँ शास्त्रो मे वर्णित है, तथापि वे बालक वर्द्धमान की वृद्धिगत बताती है, भगवान महावीर की नहीं। साप से न डरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है हाथी को वश मे करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशसनीय कार्य हो सकता है भगवान महावीर के लिये नहीं। आचार्यो ने उन्हे यथास्थान ही दर्शित किया है। वन-विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं पूर्ण वीतरागी सर्वस्वातन्त्र्य के उद्घोषक तीर्थकर भगवान महावीर के लिए साँप से न डरना हाथी को काबू मे रखना क्या महत्त्व रखते है?

जिस प्रकार बालक के जन्म के समय इष्ट मित्र व सम्बन्धी जन वस्त्रादि लाते है और कभी कभी तो सकडो जोडी वस्त्र बालक के लिये इकट्ठे हो जाते है। लाते तो सभी बालक के अनुरूप ही है पर वे सब कपडे तो बालक को पहनाए नहीं जा सकते। बालक दिन प्रतिदिन बढता जाता है वस्त्र तो बढते नहीं। जब बालक 20 25 वर्ष का हो जावे तब कोई माँ उसे वही वस्त्र पहिनाने की सोचे जो जन्म के समय आये थे और जिनका प्रयोग नहीं हो पाया था तो क्या वे वस्त्र 20-25 वर्षीय युवक को आ पायेगे? नहीं आने पर वस्त्र लानेवालो को भला बुरा कहे तो यह उसकी ही मूर्खता मानी जायेगी वस्त्र लानेवालो की नहीं। उसी प्रकार महावीर के वर्द्धमान, वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हे उस समय दिये गये थे – जब वे नित्य बढ रहे थे सन्मति (मति-ज्ञानी) थे बालक थे, राजकुमार थे। उन्ही घटनाओ और नामो को लेकर हम तीर्थकर भगवान महावीर को समझना चाहे तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी, न कि लिखनेवाले आचार्यों की। वे नाम, व वीरता की चर्चाएँ यथासमय सार्थक थी।

तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए हम उन्हे विरागी-वीतरागी दृष्टिकोण से देखना होगा। वे धर्मक्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे, युद्धक्षेत्र के नहीं। युद्धक्षेत्र और

धर्मक्षेत्र मे बहुत बडा अन्तर है। युद्धक्षेत्र मे शत्रु का नाश किया जाता है और धर्मक्षेत्र मे शत्रुता का। युद्धक्षेत्र मे पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र मे स्वयं को। युद्धक्षेत्र मे पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारो को।

महावीर की वीरता मे दौड-धूप नहीं, उछल-कूद नही, मारकाट नही, हाहाकार नहीं, अनन्त शाति है। उनके व्यक्तित्व मे वैभव की नही, वीतराग-विज्ञान की विराटता है।

जब-जब यह कहा जाता है कि महावीर का जीवन घटना प्रधान नही है तब उसका आशय यही होता है कि दुर्घटना-प्रधान नही है क्योकि तीर्थकर के जीवन मे आवश्यक शुभ घटनाएँ तो पचकल्याणक ही है। वे तो महावीर के जीवन मे घटी ही थी। दुर्घटनाएँ घटना कोई अच्छी बात तो है नही कि जिनके घटे बिना जीवन जीवन ही न रहे, एक बात और यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती है या पाप भाव के कारण। जिसके जीवन मे न पाप का उदय हो और न पाप भाव हो, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेगी, क्यो घटेगी? अनिष्ट सयोग पाप के उदय के बिना सम्भव नही है तथा वैभव और भोगो म उलझाव पाप भाव के बिना पाप भाव के सद्भाव म घटनेवाली घटनाओ मे शादी एक ऐसा दुर्घटना है, जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओ का एक कभी न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है। सौभाग्य से महावीर के जीवन मे यह दुर्घटना न घट सकी। एक कारण यह भी है जिससे उनका जीवन घटना-प्रधान नही है।

लोग कहते है, 'बचपन मे किसके साथ क्या नही घटता, किसके घुटने नहीं फूटते, किसके दात नहीं टूटते? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही होगा, भले ही आचार्यो ने न लिखा हो।' पर भाई साहब! दुर्घटनाएँ बचपन म नहीं, बचपने से घटती है, महावीर के बचपन तो आया था, पर बचपना उनमे नही था, अत घुटने फूटने और दात टूटने का सवाल ही नही उठता। वे तो बचपन से ही सरल, शात एव चितनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उपद्रव करना उनके स्वभाव मे ही न था और बिना उपद्रव के दात टूटना, घुटने फूटना सम्भव नहीं।

कुछ लोगो का कहना यह भी है कि न सही बचपन मे, पर जवानी तो घटनाओं का ही काल है। जवानी मे तो कुछ न कुछ घटा ही होगा। पर बन्धुवर! जवानी मे दुर्घटनाएँ उनके साथ घटती है, जिन पर जवानी चढती है। महावीर तो जवानी पर चढे थे जवानी उन पर नही। जवानी चढने का अर्थ है – यौवन सम्बन्धी विकृतियाँ उत्पन्न होना और जवानी पर चढने का तात्पर्य शारीरिक सौष्ठव का पूर्णता को प्राप्त होना है।

राग सम्बन्धी विकृति भोगो मे प्रगट होती है और द्वेष सम्बन्धी विद्रोह मे। न वे रागी थे न द्वेषी अत न वे भोगी थे और न ही द्रोही।

महावीर ने विद्रोह नही, अद्रोह किया था। विद्रोह, द्रोह का ही एक भेद है। द्रोह स्वय एक विकार है। उन्होने न स्वय से द्रोह किया न दूसरो से। उन्होने द्रोह का अभाव किया था, अत उन्हे अद्रोही ही कहा जा सकता है विद्रोही नही। द्रोह, द्रोह को उत्पन्न करता है, द्रोह से अद्रोह का जन्म नही हो सकता। उन्होंने किसी के प्रति विद्रोह करके घर नही छोडा था। उनका त्याग विद्रोहमूलक न था। उनके त्याग और सन्यास के कारणो को दूसरो मे खोजना उनके साथ अन्याय है। वे 'न काहू से दोस्ती न काहू से बैर' के रास्ते पर चले थे।

वीतरागी पथ पर चलनेवाले विरागी महावीर को समझने के लिए उनके अन्तर म झाकना होगा। उनका वैराग्य देश-काल की परिस्थितियो से उत्पन्न नही हुआ था, उसके कारण उनके अन्तरग म विद्यमान थे। उनका वैराग्य परापजीवी नहीं था। जो वैराग्य किन्ही विशिष्ट परिस्थितियो के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है। परिस्थितियो के बदलते ही उसका समाप्त हो जाना सभव है।

यदि देश काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होती तो क्या वे वैराग्य धारण न करते गृहस्थी बसाते, राज्य करते? नही, कदापि नही। दूसरे परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल भी ही कब? तीर्थकर महान पुण्यशाली महापुरुष होते है, अत परिस्थितियों का उनके प्रतिकूल न होना असम्भव नहीं है।

वैराग्य या विराग राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नहीं। वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण। महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही। महावीर जैसे अद्रोही

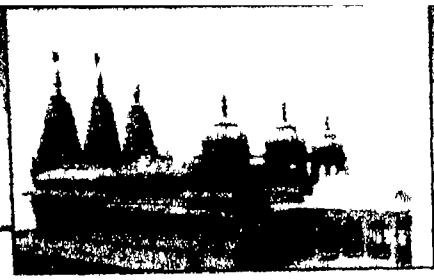

महा मानव मे विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोजबुद्धि का परिणाम है, बालू मे से तेल निकालने जैसा यत्न है, बन्ध्या के पुत्र के विवाह वर्णनवत् कल्पना की उडान है जिनका न ओर है न छोर।

'घर मे जो कुछ घटता है अपनी ओर से घटता है पर वन मे तो बाहर से बहुत कुछ घट जाने के प्रसंग रहते है, क्योंकि घर मे बाहर के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबन्ध प्राय रहता है। यदि कोई उत्पात हो तो अन्दर के विकारों के कारण ही होता देखा जाता है पर वन मे बाहर से सुरक्षा-प्रबन्ध का अभाव होने से घटनाएँ घटने की संभावना अधिक रहती है। माना कि महावीर का अन्तर विशुद्ध था, अत घर मे कुछ न घटा, पर वन मे तो घटा ही होगा ?'

हाँ। हाँ।। अवश्य घटा था, पर लोक जिसे घटने को घटना मानता है वैसा कुछ नही घटा था। राग द्वेष घट गये थे तब तो वे वन को गये ही थे। क्या राग-द्वेष का घटना कोई घटना नही है ? पर बहिर्मुखी दृष्टिवाले को राग-द्वेष घटने मे कुछ घटना सी नही लगता। यदि तिजोरी मे से लाख दो लाख रुपया घट जाय शरीर मे से कुछ खून घट जाय आँख, नाक कान घट जाय कट जाय तो इसे बहुत बडी घटना लगती है पर राग द्वेष घट जाय तो इसे घटना ही नही लगता।

वन मे ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे अल्प ज्ञानी से पूर्ण ज्ञानी बने थे। सर्वज्ञता और तीर्थंकरत्व वन मे ही तो पाया था। क्या ये घटनाएँ छोटी है ? क्या कम है ? इनसे बडा भी कोई घटना हो सकती है ? मानव से भगवान बन जाना कोई छोटी घटना है ? पर जगत को तो इसमे कोई घटना सी ही नही लगती। तोड-फोड की रुचिवाले जगत को तोड-फोड मे ही घटना नजर आती है, अन्तर मे शांति से चाहे जो कुछ घट जाय उसे वह घटना सी नही लगता। अन्तर मे जो कुछ प्रति पल घट रहा है वह तो उसे दिखाई नही देता, बाहर मे कुछ हलचल हो तभी कुछ घटा-सा लगता है।

जब तक देवांगनाएँ लुभाने को न आवे और उनके लुभाने पर भी कोई महापुरुष न डिगे, तब तक हमे उसकी विरागता मे शंका बनी रहती है। जब तक कोई पत्थर न बरसाए, उपद्रव न करे और उपद्रव मे भी कोई महात्मा शात बना रहे, तब तक हम उसकी वीत-द्वेषता समझ मे नहीं आती।

यदि प्रबल पुण्योदय से किसी महात्मा के इस प्रकार के प्रतिकूल सयोग न मिलें तो क्या वह वीतरागी और वीतद्वेषी नही बन सकता ? क्या वीतरागी और वीतद्वेषी बनने के लिए देवांगनाओ का रिझाना और राक्षसो का उपद्रव करना आवश्यक है ? क्या वीतरागता इन घटनाओ के बिना प्राप्त और सप्रेषित नही की जा सकती ? क्या मुझे क्षमाशील होने के लिए सामने वालो का मुझे सताना गाली देना जरूरी है ? क्या उनके सताए बिना मै शात नही हो सकता ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है, जो बाह्य घटनाओ की कमी के कारण महावीर के चरित्र मे रूखापन माननेवालो और चिन्तित होनेवालो के लिए विचारणीय है।

महावीर के साथ वन मे क्या घटा था ? वन मे जाने से पूर्व ही महावीर बहुत कुछ तो वीतरागी हो ही गये थे रहा सहा राग भी तोड पूर्ण वीतरागी बनने नग्न दिगम्बर हो वन को चल पडे थे। उनके लिए वन और नगर मे कोई भेद नही रहा था। सब कुछ छूट गया था वे सब से टूट गये थे। उन्होने सब कुछ छोडा था कुछ ओढा न था। वे साधु बने नहीं हो गये थे। साधु बनने मे वेष पलटना पडता है साधु होने मे स्वयं ही पलट जाता है। स्वयं के बदल जाने पर वेष भी सहज ही बदल जाता है। वेष बदला नहीं जाता है सहज वेष हो जाता है यथा जात वेष हो जाता है जैसा पैदा हुआ था वैसा रह जाता है बाकी सब छूट जाता है।

वस्तुत साधु की कोई ड्रेस नही है सब ड्रेसो का त्याग ही साधु का वेष है। ड्रेस बदलने मे साधुता नही आती साधुता आने पर ड्रेस छूट जाती है। यथा जातरूप (नग्न) ही सहज वेष है और सब वेष तो श्रमसाध्य है, धारण करने रूप है। वे साधु के वेष नही हो सकते क्योंकि उनमे गाठ है उनमे गाठ बाधना अनिवार्य है। साधुता बधन नही है उसमे सर्व बन्धनो की अस्वीकृति है। साधु का कोई वेष नही होता, नग्नता कोई वेष नही। वेष साज-सभार है साधु को सजने-सवरने की फुर्सत ही कहाँ है ? उसका सजने का भाव ही चला गया है। सजने मे 'मैं दूसरों को कैसा लगता हूँ ?' का भाव प्रमुख रहता है। साधु को दूसरो से प्रयोजन ही नही है, वह जैसा है - वैसा ही है। वह अपने मे ऐसा मग्न है कि दूसरों के बारे मे सोचने का काम ही नहीं। दूसरे उसके बारे मे क्या सोचते है, इसकी उसे परवाह ही नही। सब वेष शृगार के सूचक है, साधु

को शृगार की आवश्यकता ही नही। अत उसका कोई वेष नही होता।

दिगम्बर कोई वेष नही है, सम्प्रदाय नहीं है, वस्तु का स्वरूप है। पर हम वेषो को देखने के इतने आदी हो गये है कि वेष के बिना सोच ही नहीं सकते। हमारी भाषा वेषो की भाषा हो गयी है। अत हमारे लिए दिगम्बर भी वेष हो गया है। हो क्या गया – कहा जाने लगा है। सब वेषो मे कुछ उतारना पडता है और कुछ पहिनना होता है, पर इसमे छोडना ही छोडना है ओढना कुछ भी नही। छोडना भी क्या, उघडना है, छूटना है। अन्दर से सब कुछ छूट गया है, देह भी छूट गयी है, पर बाहर मे अभी वस्त्र ही छूटे है देह छूटने मे अभी कुछ समय लग सकता है पर वह भी छूटना है – क्योकि उसके प्रति भी जो राग था वह टूट चुका है। देह रह गयी है तो रह गयी है, जब छूटेगी तब छूट जायगी, पर परवाह उसकी भी छूट गयी है।

महावीर मुनिराज नगर छोड वन मे चले गये। पर वे वन मे भी गए कहाँ है? वे तो अपने मे चले गये हैं, उनका वन मे भी अपनत्व कहाँ है? उन्हे वनवासी कहना भी उपचार है, वे वन मे भी कहाँ रहे? वे तो आत्मवासी है। न उन्हे नगर से लगाव है, न वन मे, वे तो दोनो से अलग हो गये है, उनका तो पर से अलगाव ही अलगाव है।

रागी वन मे जायगा तो कुटिया बनायगा, वहाँ भी घर बसायगा, ग्राम और नगर बसायगा, भले ही उसका नाम कुछ भी हो है तो वह घर ही। रागी वन मे भी मदिर के नाम पर महल बसायगा, महलो मे भी उपवन बसायगा। वह वन मे रहकर भी महलो का छोडेगा नही, महल मे रह कर भी वन को छोडेगा नही।

उनका चित्त जगत् के प्रति सजग न होकर आत्मनिष्ठ हो गया था। देश-काल की परिस्थितियो के कारण उन्होने अपनी वासनाओ का दमन नहीं किया था। उन्हे दमन की आवश्यकता भी न थी क्योंकि वासनाएँ स्वय अस्त हो चुकी थी।

उन्होंने सर्वथा मौन धारण कर लिया था, उनको बोलने का भाव भी न रहा था। वाणी पर से जोडती है, उन्हे पर से जुडना ही न था। वाणी विचारो की वाहक है, वह विचारो का आदान-प्रदान करने मे निमित्त है, वह समझने-समझाने के काम आती है, उन्हे किसी से कुछ समझना ही न था। जो समझने योग्य था उसे वे अच्छी तरह समझ चुके थे, अब तो उसमे मग्न थे। उन्हे किसी को समझाने का राग भी न रहा था, अत वाणी का क्या प्रयोजन? वाणी उन्हे प्राप्त थी, पर वाणी की उन्हे आवश्यकता ही न थी। जो उन्हे चाहिये ही नही, वह रहे तो रहे, उससे उन्हे क्या? रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक। वे तो निरन्तर आत्मचिन्तन मे ही लग रहते थे।

नहाना-धोना सब कुछ छूट गया था। वे स्नान और दत-धोवन के विकल्प से भी पर थे। शत्रु और मित्र मे समभाव रखनेवाले मुनिराज वर्द्धमान गिरि कन्दराओं मे वास करते थे। वस्तुत न उनका कोई शत्रु ही रहा था और न कोई मित्र। मित्र और शत्रु राग-द्वेष की उपज है। जब उनके राग द्वेष ही समाप्तप्राय थे तब शत्रु-मित्रो के रहने का कोई प्रश्न ही नही रह गया था। मित्र रागियो के होते है और शत्रु द्वेषियो के – वीतरागियो का कौन मित्र और कौन शत्रु? कोई उनसे शत्रुता करो या करो मित्रता करो तो करो, उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नही होती है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु मित्र का अभाव है। उनके लिए उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। अन्य लोग उन्हे अपना शत्रु मानो तो मानो, अपना मित्र मानो तो मानो अब वे किसी के कुछ भी न रह गये थे। किसी का कुछ रहने मे कुछ लगाव होता है, उन्हे जगत से कोई लगाव ही न रहा था।

एक अघट घटना महावीर के जीवन मे अवश्य घटी थी। आज से 2524 वर्ष पहले दीपावली के दिन जब वे घट (देह) से अलग हो गये थे, अघट हो गये थे घट-घट के वासी होकर भी घटवासी भी न रहे थे, गृहवासी और वनवासी तो बहुत दूर की बात है, अन्तिम घट (देह) का भी त्याग मुक्त हो गये थे। इससे अभूतपूर्व घटना किसी के जीवन मे कोई अन्य नही हो सकती, पर यह जगत इसको घटना माने तब न?

इस प्रकार जगत से सर्वथा अलिप्त, सम्पूर्णत आत्मनिष्ठ महावीर के जीवन को समझने के लिए उनके अन्तर मे झाँकना होगा कि उनके अन्तर मे क्या कुछ घटा? उन्हे बाहरी घटनाओ से नापना, बाहरी घटनाओ मे बाधना सम्भव नही है।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

भगवान महावीर और निर्वाण-ज्योतिपर्व

• डॉ प्रेमचन्द गावका

आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव की धर्मसभा (समवशरण) में आदि प्रभु की दिव्य ध्वनि सुनने देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों की अपार भीड़ जमा हुई। समवशरण में चक्रवर्ती सम्राट भरत भी पहुँचे। जिज्ञासावश उन्होंने भगवान से निवेदन किया - भगवान! क्या इस समय इस सभा में कोई और भी ऐसी भव्य आत्मा है जो कालान्तर में तीर्थंकर का पद प्राप्त करेगा?

उत्तर में - अनन्त ज्ञान के धनी त्रिकालदर्शी भगवान ने भरत को सम्बोधित करते हुए कहा - भरत! सामने प्रवेश द्वार पर जो साधु खड़ा है और भव्य जीवों को परिचित कर इस सभा में भेज रहा है वह तुम्हारा पुत्र मरीचि इस भरत क्षेत्र में इसी अवसर्पिणी काल का 'वर्द्धमान' नाम का अन्तिम तीर्थंकर होगा। साथ ही इससे पूर्व वह त्रिपृष्ठ नाम का प्रथम नारायण और प्रिय मित्र नामक चक्रवर्ती भी बनेगा।

'आदि प्रभु' से अपने आत्मज के लिये यह सुखद समाचार सुनकर भरत बहुत ही आनन्दित हुये। हर्षातिरेक में उनसे रहा न गया। वे तुरन्त यह शुभ समाचार देने साधु मरीचि के पास गये और गद्गद उत्कण्ठा से बोले - मरीचि! धन्य हो, तुम धन्य हो! तुम इस भरत क्षेत्र में और इसी अवसर्पिणी काल में वर्द्धमान नाम के अन्तिम तीर्थंकर बनोगे और इससे पूर्व प्रथम नारायण एवं चक्रवर्ती भी। यह शुभ संवाद स्वयं भगवान की दिव्य ध्वनि में खिरा है।

यह शुभ समाचार सुनकर मरीचि खुशी के आवेश में उन्मत्त हो उछल पड़ा और लगा झूम झूम चिल्लाने - मैं प्रथम नारायण बनूँगा, मैं चक्रवर्ती बनूँगा और फिर बनूँगा इस अवसर्पिणी काल का अन्तिम तीर्थंकर। यह भविष्यवाणी किसी अन्य ने नहीं, स्वयं भगवान ने की है। इससे मरीचि में मद-अहंकार जाग उठा। वह साधु चर्या का कठिन मार्ग छोड़ सरल मार्ग तो पहले ही अपना चुका था। अब उसने परिव्राजक का वेष धारण कर अपना स्वतंत्र मत स्थापित कर लिया।

कालान्तर में मुनि मरीचि का जीव देव, तिर्यंच, मनुष्य और नरक गतियों में जन्म-मरण करता हुआ तीर्थंकरत्व से दस भव पूर्व हिमवान पर्वत के शिखर पर सिंह हुआ। जब वह एक मृग का भक्षण कर रहा था तो ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से उसे आत्म बोध हुआ और यहीं से यह जीव सन्मार्ग पर आया। दो भव पूर्व इस जीव ने नन्द मुनि की पर्याय में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया और अगले भव में सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ।

इस देव ने देवगति से चयकर वैशाली गणराज्य के क्षत्रिय कुण्डग्राम में महारानी त्रिशला की कोख से चैत्र शु. 13 को जन्म लिया। गर्भ में आते ही माता को 16 शुभ स्वप्न दिखायी दिये जो तीर्थंकर जन्म के सूचक थे। जन्म होने पर राज्य में रत्नों की वर्षा एवं धन धान्य की वृद्धि होने लगी। इसलिये बालक का नाम 'वर्द्धमान' हुआ। वर्द्धमान राजकीय वैभव में पले और अनेक चमत्कृत करने वाली घटनाओं के बीच बड़े हुये। पर वे जल में कमलवत भिन्न रहकर आत्मलीन रहते थे। 30 वर्ष की पूर्ण युवावस्था में राज्य वैभव के सुखों को तृणवत् त्याग कर उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा ली (मार्गशीर्ष कृष्णा 10)। बारह वर्ष की अखण्ड मौन साधना से कर्मों की निर्जरा कर वैशाख शुक्ला 10 को केवलज्ञान प्राप्त किया।

वर्द्धमान महावीर को दिव्य ज्ञान तो हो गया था परन्तु उनके ज्ञान के प्रकाश की किरणों का विश्लेषण करने वाला योग्य संवाहक उपस्थित नहीं हुआ। अतः उनकी वाणी 65 दिन तक मुखरित नहीं हुई। पश्चात् इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर वैदिक विद्वान् इन्द्रभूति गौतम अपने ज्ञान के मद में चूर शास्त्रार्थ करने महावीर के समक्ष पहुँचे। वर्द्धमान महावीर के सौम्य वीतरागी व्यक्तित्व को देखते ही गौतम अपने आत्म-शून्य थोथे ज्ञान के अहंकार को भूल गये। वे गंधकुटी में विराजमान महावीर को एकटक देखते ही रहे। कुछ ही क्षणों में उन्हें आत्मानुभूति हो गयी। उनकी अज्ञान/अहं की निशा का अन्तिम प्रहर समाप्त हो गया और वे महावीर के परम भक्त बन गये। विचारों की निर्मलता और परिणामों की शुद्धता से उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया जिसकी सामर्थ्य से वे किसी भी प्राणी के मन की बात जानने लगे।

महावीर तो सर्वज्ञ एव सर्वदृष्टा थ। वे समस्त चराचर जगत की त्रैकालिक अवस्था का एक समय मे जानते थे। गौतम जैसे योग्य शिष्य के उपस्थित होते ही महावीर का दिव्य उपदेश ॐकारमयी निरक्षरी भाषा म प्रारम्भ हुआ, जिसे गौतम ने शास्त्र रूप में गूँथ का जन-जन तक पहुँचाया।

सर्वज्ञ बनन क बाद महावीर 30 वर्ष तक मुक्ति अर्थात् परम सुख का मर्म जगत के जीवो का बतात रहे। अपने दिव्य देशना का त्रि रत्नो की त्रिवेणी मे उन्हाने जन-जन को आप्लावित किया। ''आत्मवत् सर्व भूतषु'' – समस्त जीवो मे आत्मवत् दृष्टि रखन वाले महावीर ने निरपक्ष भाव स समस्त लोक का अपनाया। उनके साम्य भाव म आर्य-अनार्य, साधु साध्वी, देव-देवाङ्गनाय स्त्री पुरुष पशु-पक्षी सब समान रीति स धर्म सभा म शरण पाते थ परस्पर प्रेमानुभव करते सर्वत्र सब जीवधारियो म समान आत्मा का अनुभव करते थे।

सुखमय समय व्यतीत होने म देर नही लगती। धर्मचक्र प्रवर्तन की गति अपने चरम बिन्दु पर थी कि महावीर का आयु का क्षय निकट आ गया। 527 ई पू महावीर पावा नगरी (बिहार) म पधारे। आचार्य जिनसेन के हरिवंश पुराण के अनुसार चतुर्थकाल म तीन वर्ष साढे आठ माह शेष रह जाने पर कार्तिक कृष्णा 14 की रात्रि के अन्तिम पहर म अमावस्या के प्रभात म, स्वाति नक्षत्र मे पावा नगरी के मनोहर उद्यान मे योग निरोध कर कर्मो का नाश कर महावीर मुक्ति को प्राप्त हुये। चारो प्रकार के देवताओ ने आकर पूजा की और दीपक जलाये। जिस दिन महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ उसी दिन साय उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। कृतज्ञ राष्ट्र न दीपको के प्रकाश से उस दिन को राष्ट्रीय पर्व का रूप प्रदान किया।

जैन धर्म मे ज्ञान और मुक्ति लाभ को सबस बडी लक्ष्मी माना गया है। महावीर ने आत्म-पुरुषार्थ से इस लक्ष्मी को पाया। महावीर का निर्वाण उनकी मृत्युजयी साधना का सुफल है, जिसके कारण वे मुक्तिवधू को प्राप्त कर सके। यह सत्य है कि मृत्यु प्राप्त व्यक्ति को मुक्तिवधू नसीब नही होती। मृत्यु और निर्वाण मे यही मौलिक अन्तर है। मृत्यु का जन्म के साथ नाता है, निर्वाण का मुक्ति के साथ। महावीर ने आत्म साधना काल म समतारस का पान कर मृत्यु को जीता और पुनर्जन्म की शृखला को तोड दिया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का घोर तम अधकार जिसमे किसी को कुछ नही दिखायी देता – इतने पर भी दीपक (पात्र) ढूँढकर, उसमे तेल और बत्ती सँजोये गये, प्रकाश फैला, अधेरा भागा जगत् ज्योतिमय दिखने लगा - आबालवृद्ध वनिता प्रसन्न हो गये। पर यह क्या हुआ दीपक का जीवन तो क्षण भगुर निकला - जिस पर उस हर्षित हो रहे थ जिसके आलोक मे नेत्र ज्योति का अभिमान किया और जिसको सर्वस्व माना। जग-मग ज्योति जले दीप स दीप जले यह मझधार मे छोड गया - एक हवा का झोका लगा और पुन घोर अधकार कहाँ प्रकाश कैसे ज्योतिमय जगत दृष्टि पथ हो। पर यह स्वाभाविक है। आये दिन ऐसा ही होता है। विरले ही सत ही इस सत्य को समझते हैं।

जिन ऋषि मुनियो न इस वस्तु स्वभाव को समझ लिया, उनकी दृष्टि मे दीपक का विशेष महत्व नही रहा क्योकि दीपक पराश्रित है। दीपक प्रतीक है अज्ञान अधकार मिटाने का। वह स्नेह वर्तिकाकारी है। तभी तम का छेदन करता है। जहाँ प्रतिकूल वायु का सचार हुआ कि झट मुँह मोडकर अधकार का अकशायी बन जाता है। इस पर क्या अभिमान। गर्व और गौरव के पात्र तो वे रत्नद्वीप है जो स्वय प्रकाशमान है जिनकी अखण्ड और अतुल ज्योति को कोई नही सह सकता। उनका आत्मप्रकाश उस घोर तम की धज्जियाँ उडा देता है और फिर जगत ज्योतिर्मय दिखलायी देता है। यह भारत भूमि ऐसे ही रत्नद्वीपो स सदा प्रकाशमान रही है। जिन्होने मोहाधकार का नाश किया है – बिन बाती, बिन तेल के ये शाश्वत प्रकाश है। आचार्य मानतुङ्ग कहते है –

निर्धूम वर्तिरपवर्जित तैलपूर कृत्स्न जगत्रयमिद प्रकटी करोषि।
गम्यो न जातु मरुता चलिता चलाना दीपोऽपरस्त्वमसिनाथ
जगत्प्रकाश ॥

कार्तिक कृष्णा अमावस्या क घोर अधकार मे अलौकिक प्रकाश छिटक गया। बिन तेल बिन बाती स्वाधीन धवल दीप का आलोक चहुँदिशी व्याप्त हो गया। महावीर की मानवीय शक्तियाँ विकसित होकर दिव्योपम गुणो की चरम सीमा बाँध गईं। वे भगवान

सच्चिदानन्दरूप सिद्ध परमात्मा हो गय, त्रिकालवन्दनीय बन गय। उन्होने मानव मात्र को सुख-शान्ति का सन्देश दिया। महावीर का निर्वाण, जिसके पश्चात् न जन्म न मृत्यु ज्ञान दीप शाश्वत है। ''अद्यदीपोत्सव दिन वर्द्धमान स्वामीमाक्ष गत '' । 2524 वर्ष पूर्व हमारे आराध्य के चरण-कमल पृथ्वी पर सचरण करत थ। उनक समवशरण मे गौतम दिव्य ध्वनि को अक्षर रूप म बोधगम्य करत थे दीपमालिका उन्ही परम दव व परम पूज्य गुर की पूजा तिथि मोक्ष एव कवलज्ञान कल्याण पूजा है।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदव की परम्परा म अन्तिम तार्थकर वर्द्धमान महावीर एस अनुपम जगत्प्रकाश दीपक थे जिन्होन जगत क अज्ञानतम को अपनी प्रखर ज्ञान ज्योति स छिन्न भिन्न कर दिया था। जिनकी द्वादशाग वाणी स आपूरित जिनागमा स यह जगत यावच्चन्द्र दिवाकरौ आलोकित रहगा -

यदीया वाग्गगा विविधनयकल्लाल विमला,
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनता या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमराले परिचिता ,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे॥

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का दीपमालिका का यह निर्वाण ज्योति पर्व भारतीय सास्कृतिक परम्परा का वह आलोक पर्व है, जा मर्यादा पुरुषोत्तम राम का रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटना 24वे तार्थकर भगवान महावीर का निर्वाण प्राप्त करना और इनक प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर को कवल्य प्राप्ति होना - इस प्रकार अधर्म पर धर्म की असत्य पर सत्य की अज्ञान पर ज्ञान की और अधकार पर प्रकाश की विजय का यह पर्व प्रतीक है। इस पावन पर्व पर प्रज्वलित दीपमालिका हम आत्म आलोचन की प्रेरणा देती है कि हम बाहर नही भीतर की ओर उन्मुख होकर अज्ञान अधकार से मुक्त होकर ज्ञान के आलोक से स्वय को प्रकाशमान करे।

वृहदारण्यक् उपनिषद् मे एक सवाद मिलता है, जिसमे गुरु शिष्य से प्रश्न करते है - वह ज्योति कौन सी है जिसके द्वारा तुम विश्व के पदार्थो को देखने म समर्थ हो? शिष्य का उत्तर था - वह ज्योति दिन मे सूर्य रात्रि म चन्द्रमा दीप एव अग्नि है। वह कौन-सा प्रकाश है, जिसम सूर्य, चन्द्रमा और दीप दिखायी देते है? वह प्रकाश है, नेत्र-ज्योति। जब आँखे बन्द हो तब कौन सा प्रकाश है? नेत्र ज्योति के अभाव मे वाणी और बुद्धि द्वारा वस्तुओ की पहिचान होती है। वह कौन-सा प्रकाश है, जिसम बुद्धि दिखलायी पडती है? इस स्थिति म मै स्वय हूँ। मै अर्थात् मेरा अन्तर्मन। मेरा आन्तरिक ज्योति पुज ही मेरी समस्त जागृत दशाओ का साक्षी है।'' - इस सवाद म उस ज्योति पुज का आख्यायित करन का प्रयास किया गया है जो स्वय आत्म प्रकाशमान है, जो अन्य पर आश्रित नही है। सूर्य चन्द्र दीप, अग्नि, नेत्र - ये सब मात्र दृष्टि के उपकरण है जो स्वय प्रकाशमान नही है। जिसके पास स्वय के ज्ञान रूपी नेत्र नही है उसके लिये बाह्य प्रकाश क्या कर सकता है? अत आत्म ज्योति को दीप्त रखने के लिये सतत स्वाध्याय और ज्ञानार्जन की आवश्यकता है। - अप्प दीपो भव। आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञानम्। आत्मा दर्शन - ज्ञानमय है। भगवान महावीर का निर्वाण आत्मालोकित पर्व है।

प्रोफेसर राजकीय सस्कृत कॉलेज,
बीकानेर

क्षेमं सर्वप्रजाना प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल।
काले काले च वृष्टिं वितरतु मघवा व्याधया यान्तु नाशम्॥
दुर्भिक्ष चौरमारि क्षणमपि जगता मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्र धर्मचक्र प्रभवतु सतत सर्वसौख्य-प्रदायि॥

- सम्पूर्ण प्रजा का कल्याण हो, शक्तिशाली धर्मात्मा भूमिपाल (शासन राज्य म) प्रभावशील रहे। समय समय पर इन्द्र (मघ) भला प्रकार यथोचित वर्षा कर व्याधिया का नाश हो। दुष्काल चौर और महामारी जगत् का कष्ट देने के लिए क्षण-भर न हो और सबका सुख प्रदान करनेवाला तीर्थकर वृषभादि का जिन शासन और 'धर्मचक्र' विश्व म निरन्तर प्रभावशील रहे।

महावीर और नारी

◦ डॉ (कु) मालती जैन

आलेख का शीर्षक निश्चय ही चौंकाने वाला है – महावीर - बाल यति – जिसने भरे यौवन मे भोग से मुख मोड़कर सयम और त्याग की राह पकडी, एक से एक रूपवती, गुणवती राजकुमारियो के विवाह के प्रस्तावो को अस्वीकार कर, कठोर ब्रह्मचर्य की साधना का दृढ सकल्प लिया। उसके तप पूत प्रात स्मरणीय नाम का ''ससार की विषबेल नारी'' से जोडना सतही तौर पर हास्यास्पद एव नितान्त असगत प्रतीत होता है, लकिन महावीर के गिरिशृग के सदृश उन्नत और महासागर के समान गहन-गभीर व्यक्तित्व का आकलन करने के लिए जिज्ञासु को गहरे पानी मे पैठना होगा, तब कुछ हाथ लगेगा – ''जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ''।

विलक्षण देह सुगठित अवयव, ओजस्वी मन, ओजस्वी मुख, अग प्रत्यग मे करवटे लेने वाले पौरुष के धनी, सौन्दय की राशि युवक वर्द्धमान के द्वारा विवाह की अस्वीकृति नारी के प्रति घृणा एव विद्वेष की दुर्भावना का प्रतिफल नही थी। माँ त्रिशला के वात्सल्य रस का उन्होने छककर पान किया था। उनका रोम-रोम माँ की ममता से पुलकित था लेकिन माँ के द्वारा पालने मे सुनाई गई लोरी की ये पक्तियाँ –

शुद्धोऽसि सिद्धोऽसि निरजनोऽसि।
ससारमाया परिवर्जितोऽसि
न तेऽसि कश्चिन्न च कस्य चत्वम्
निरस्त नि शेषित बन्धनोऽसि॥

'तुम शुद्ध हो, सिद्ध हो, निरजन हो, ससार की माया से निर्लिप्त हो, न तुम्हारा कोई है, न तुम किसी के हो, सम्पूर्ण बधनो को नष्ट कर दो।' - युवक वर्द्धमान के मन-मस्तिष्क मे कही गहरे – बहुत गहरे पैठ चुकी थी।

इन पक्तियो ने आत्मा और जगत दोनो के यथार्थ रूप को उनके समक्ष उद्घाटित कर दिया था। ज्ञान के आलोक मे वर्द्धमान ने अनुभव किया कि गृहस्थ जीवन बधन है, त्याग मुक्ति है। पराधीनता आत्मोन्नति को कुठित करती है। आत्मोदय स्वाधीनता की स्थिति है। वासना दासता है, साधना के लिए उन्मुक्तता चाहिए। सासारिक सुख मेघ की तरह क्षणिक और पानी के बुलबुले की भाँति नश्वर और अनित्य है। फिर वे क्यो बन्धनो मे आबद्ध हो? उन्हे तो स्वय मुक्त होना है और सदियो से दासता के बधनो मे जकडी नारी को भी मुक्त करना है। महावीर का वैराग्य जीवन से पलायन का मार्ग नही, जीवन के यथार्थ ज्ञान की सुखद परिणति है।

दया माया ममता, मर्यादा की अक्षय भडार श्रद्धा की साकार मूर्ति जगज्जननी नारी सदियो से पुरुष प्रधान समाज मे शोषण और अत्याचार का शिकार होती रही। 'नर के बाँटे नारी की नग्न मूर्ति ही आई।' नारी-देह के भूखे इन्सानो की साच मे नारी खाने का एक थाल ही बनी रही या फुटबॉल जिस अपने पौरुष के मिथ्यादर्प मे अन्धे पुरुष ठोकरो से उछालते रहे।

आश्चर्यजनक तथ्य यह भी है कि केवल पुरुषो ने ही स्त्रियो का शोषण नही किया, नारी ने भी नारी को सताने मे कोई कसर बाकी न छोडी। सपत्नीजन्य ईर्ष्या, सास और ननद के अत्याचार नारी की नियति बनकर रह गए।

भगवान महावीर का युग भी इस नग्न घृणित सत्य का अपवाद नही था। तत्कालीन परिस्थितियो मे स्त्री की सामाजिक स्थिति भयावह थी। उसका अपहरण होता था। कोई उसे तलघर मे डालता था, कोई बेडियो मे जकडता था, कोई उसके केश मुडा देता था, कोई उसे बाजार मे खुले आम नीलाम कर देता था। चतुर्दिक सकटो से घिरी, 'आचल मे दूध और आँखो मे पानी' लिए अबला नारी अपनी रक्षा के लिए किसी 'महावीर' की प्रतीक्षा मे थी।

तीर्थंकर महावीर की जीवन-गाथा मे गुंथा चदनबाला का प्रसग तत्कालीन शोषित, पीडित, उपेक्षित नारी का ही मर्मस्पर्शी चित्र है।

राजा चटक की पुत्री, रानी त्रिशला की छोटी बहिन चदना का अप्रतिम सौन्दय ही उसका दुर्भाग्य बनकर आया। यौवन के सुनहले दिनो मे, झूले के पेगो के साथ, मधुर कल्पनाओ के

अनन्त-आकाश मे विचरण करती सुन्दरी चंदनबाला का विद्याधर द्वारा अपहरण, कोशाम्बी की मंडी मे सब्जी भाजी की तरह सार्वजनिक नीलामी, सेठ वृषभान द्वारा उसको खरीदने पर सेठानी की सपत्नीजन्य ईर्ष्या का भाजन बन तलघर मे उसका बंदिनी होना। पैरो मे बेड़ी और हाथो मे हथकड़ी, मुण्डित सिर, सूप मे रखे उबले कोदो का आहार - यह एक सती अबला पर होने वाले अमानुषिक **अत्याचारो की दर्द भरी दास्तान है** जिसकी कल्पना मात्र से हृदय **सिहर उठता है।**

अत्याचार की इस घोर अमावस्या मे उदित हुए पूनम के चन्द्र प्रकाशपुंज भगवान महावीर। विहार करते हुए इस तेजस्वी व्यक्तित्व ने जैसे ही कोशाम्बी मे प्रवेश किया, शापित चंदनबाला का अश्रुस्नात मुख उनके दिव्य चक्षुओ के समक्ष आ उपस्थित हुआ। मन मे एक टीस उठी - तीर्थंकर की जननी, सृष्टि की मूल वात्सल्य की प्रतिमूर्ति नारी जाति पर ये पाशविक अत्याचार। जागा एक दृढ संकल्प। अपने जन्म मरण के बंधनो को काटने से पूर्व मुझे काटना होगा शोषिता नारी के इन बंधनो को। स्त्री और पुरुष मे यह कैसा विभेद? आत्मा तो दोनो मे एक है। शारीरिक संरचना की दृष्टि से स्त्री भले ही पुरुष से दुर्बल हो, पर आत्मिक विकास के द्वार तो उसके लिए भी खुले है। विचार मंथन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। कोरे उपदेश से काम नहीं चलेगा, कुछ प्रत्यक्ष दिखाना होगा।

आहार चर्या का समय हुआ। प्रभु को पड़गाहन के लिए राजा महाराजा, श्रेष्ठि अपने अपने सुसज्जित भवनो के द्वार पर भक्ति भाव से आ खड़े हुए। सबके मन मे एक ही कौतूहल - प्रभु के चरणस्पर्श से आज किसका आँगन पवित्र होगा। कोशाम्बी का छोर छोर भगवान महावीर की जय ध्वनि से गुंजायित हो उठा। यह जय गूँज बंदिनी चंदना के कर्ण कुहरो मे जा टकराई और आँसू की दो बूँदे उसके खिन्न मुखमण्डल पर ढुलक आई। "मै बंदिनी प्रभु को आहार भी नही दे सकती। मेरे पैरो मे बेड़ी, हाथो मे हथकड़ी, तन पर फटी साड़ी, आहार मे देने के लिए उबले कोदो के अतिरिक्त और कुछ नही।" अपनी नियति पर आँसू बहाने के अतिरिक्त उस अकिंचन के पास विकल्प ही क्या था? पर दूसरे ही क्षण चंदना मे जागा आत्मविश्वास - **तन की इस दशा पर मेरा वश नहीं है, पर मेरा मन तो प्रभु के चरणो मे भक्ति से नत है। निश्चय ही करुणा निधान प्रभु मेरा उद्धार करेंगे।** चंदना जैसी तैसी सूप मे कोदो को लिए प्रभु को पड़गाहने आ खड़ी हुई। उसने भाव विभोर होकर प्रभु का आह्वान किया - "हे स्वामिन्! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु, अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।" चन्दना की विशुद्ध अन्तआत्मा से निसृत ये शब्द भगवान महावीर के कर्णो मे जा टकराए। हृदय की पुकार हृदय तक पहुँची। तीव्र वेग से कदम बढ़ाते महावीर चंदना के द्वार आ खड़े हुए। चन्दना की प्रसन्नता की सीमा न रही। एक अदभुत दृश्य था - चंदना भगवान को कोदो का आहार दे रही थी और भगवान के हाथो मे वे खीर बन रहे थे।

प्रभु प्रताप से चंदना की बेड़ी और हथकड़ी स्वत खुल गई। तन बंधन मुक्त हुए लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं था। ये तो शरीर के बंधन थे। आत्मा के बंधन खुलने शेष थे। प्रभु का चन्दना ने उपदेश ग्रहण किया। उसके ज्ञान चक्षु खुल गए। उसने प्रभु से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। प्रभु ने उसे अपने आर्यिका संघ मे सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

शापित पददलिता नारी को अपने अधिकार मिले और मिली एक ऐसी ऊँचाई जिस पर नारी समाज सदैव गर्व करता रहेगा।

इतिहास अपने को दोहराता है। आज के अर्थप्रधान भौतिकवादी युग मे जब जिन्दगी ही बाजार बन गई है, नारी की अस्मिता भी व्यक्ति से वस्तु के रूप मे परिवर्तित हो गई है। आज नारी केवल "एक मस्त मस्त चीज है" और उसका रूप सौन्दर्य वाणिज्य की एक कीमत। चलचित्र निर्माता, पत्र पत्रिकाओ के सम्पादक, दूरदर्शन के निर्देशक नारी देह को पूरी पूरी खुली उघाड़ कर उछालने वाले अश्लील विज्ञापनो के द्वारा नारी सौन्दर्य का सम्भाषणप्रयत्ना का माइक्रोफोन बना रहे है। नारी सौन्दर्य के शीलहरण की यह कारगी प्रक्रिया, अश्लीलता का यह कलाहीन कुरुचि, नैतिक समाज को पतन के कितने गहरे गर्त मे ले जाएगी, इसकी कल्पना मात्र से मन सिहर उठता है।

स्त्रीशक्ति जागरण के प्रगतिशील आधुनिक युग मे भी दहेज, भ्रूणहत्या, बलात्कार, अपहरण जैसे जहरीले काले नाग नारी अस्मिता को डँस रहे है। कभी उसे तंदूर मे भूना जाता है तो कभी गैस का सिलेन्डर उसे लील लेता है। कभी निराशा के चरम क्षणो मे वह स्वयं फाँसी के फन्दे मे झूल जाती है तो कभी अर्थलोलुप नर पिशाच अपने हाथो मिट्टी का तेल छिड़ककर उसे जिन्दा जला देते है। आज के नैतिकता-विहीन समाज मे जहाँ नारी के साथ

बलात्कार एक सामान्य एवं स्वाभाविक घटना बन गई है, वहाँ भ्रूण-परीक्षण के माध्यम से जन्म लेने के पूर्व गर्भ में ही उसकी नृशंस हत्या 'महत्त्वपूर्ण' वैज्ञानिक उपलब्धि है। चारों ओर भयानक संकटों से घिरी आज की नारी फिर एक 'महावीर' की प्रतीक्षा में है।

आज चंदना के उद्धारक भगवान महावीर तो हमारे मध्य नहीं हैं पर उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत निराशा के सघन अंधकार में प्रकाशस्तंभ की तरह पतनोन्मुख समाज का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। नारी-जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान इन सिद्धांतों द्वारा संभव है। भगवान महावीर की अहिंसा यदि नारी के शोषण और उत्पीडन को रोकने का अमोघ अस्त्र है तो ब्रह्मचर्य व्रत बलात्कार की समस्या को जड़ से उखाड़ने में सक्षम है। अपरिग्रह के द्वारा दहेज की समस्या का हल किया जा सकता है तो अनेकान्त का सिद्धान्त नारी के प्रति पुरुष के पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन ला सकता है।

आइये चाँदनपुर के महावीर के सहस्राब्दी समारोह के सुअवसर पर हम अपने अपने दिलों में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त और ब्रह्मचर्य की दीपमालिका प्रज्वलित करें जिसके अनंत आलोक में नारी जीवन में छाया अंधेरा मिट जाये –

'आओ फिर दिया जलायें
भरी दुपहरी में हुआ अँधियारा'' –

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्री भगवान [illegible] स्नातकोत्तर महाविद्यालय
[illegible] (उत्तर प्रदेश)

धर्म-प्रभावना

प्रथम मंगलपाठ

'धम्मो खलु धम्मो' की गूँज में से उठनेवाली अहिंसा की पदध्वनि को पहचानकर जन साधारण सम्मान से विनत हो उठे, झूम उठे, इसके अनुरूप स्वयं को बनाना 'धर्म प्रभावना' के लिए प्रथम मंगलपाठ है। यह मंगलमय धर्म पुनः विश्व में सर्वोदयी तीर्थ के रूप में पहिचाना जाए, इसमें श्रावकों, त्यागियों और अशेष धर्मानुरागियों को मन, वचन और कर्म से सहयोग करना चाहिये। एक 'मिशनरी स्पिरिट' (चेतना) लेकर, अदम्य साहस से लेकर निष्ठा और सेवा पूर्वक निर्वैरभाव से तप, त्याग, संयम, अपरिग्रह, शौच, आर्जव आदि उत्तम गुणों को राष्ट्र के वातावरण में अपने विशुद्ध आचरण से संक्रमित करनेवाला जैन, भगवान महावीर का सच्चा सन्देशवाहक है। श्रावक और त्यागी मुनि और आचार्य तथा समाज के शास्त्र-धुरन्धर विद्वान् इस ओर एक मन एक प्राण से चेष्टावान् होंगे तो यह दयामय धर्म विश्व की झोली को शान्ति, अहिंसा, निर्वैर, अपरिग्रह, शील आदि रत्न राशि से भर देगा।[1]

चारित्र खेत, सद्धर्म बीज

भारत धर्मभूमि है। अनादिकाल से यहाँ के धर्म-कृषक अपने चारित्र के खेत में धर्म के बीज बोते आये हैं। भारतीयों के चतुर्विध पुरुषार्थों में प्रथम पुरुषार्थ धर्म है। यहाँ धर्म को उत्कृष्ट मंगल, पवित्र आचार, न्याय का आधार, जीवन की गन्तव्य दिशा, आदरणीयता का प्रमुख अंग, चिन्तन का सर्वोच्च आधार, परमकल्याणकारक तथा वांछनीय माना है।

वह धर्म दश लक्षण युक्त है। अहिंसा उसका प्रमुख स्तम्भ है। एक अहिंसा में ही अन्य सारे लक्षण समाये हुए हैं। जो व्यक्ति असत्य नहीं बोलता वह सत्य की हिंसा करने से [illegible] अहिंसा न करने से सत्य अहिंसक है। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह अब्रह्म आचरण न करने से ब्रह्म रक्षक है अथवा ब्रह्म अहिंसक है। इसी प्रकार प्रत्येक लक्षण का पालन उसकी रक्षा है, उसकी अहिंसा है। इस अर्थ में अहिंसा परमधर्म है।

निजानन्द रसलीन

कृत, कारित, अनुमोदित रूप से [illegible] प्रेरणा बन्ध उत्पन्न करती है। कर्म ज्ञानमय आत्मा को विशुद्धावस्था में प्राप्त हो जाते हैं। वहाँ *'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन'* की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अहिंसा की यह सर्वोच्च स्थिति है, इसीलिए परम अहिंसक वीतराग 'निक्कम्म' अर्थात् कर्ममुक्त कहे जाते हैं।

पीर पराई जाने रे

जिनेन्द्र भगवान् से प्राप्त यह अहिंसा धर्म परम्परा, एक-दूसरे के संपीडन को परास्त करनेवाला है। परपीडन को अधर्म माना गया है। जैनधर्म ही वह धर्म है जिसमें मन से भी परद्रोह चिन्तन की पराङ्मुखता का विधान है।

[आचार्य विद्यानंद कृत 'अहिंसा विश्वधर्म' से]

१ **प्रमद-प्रसवाकीर्णे मनोरंगे महानट ।**
नटताज्जैनसद्धर्मभासनाभिनयो मम॥ - आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण ७६ ४२७

चरणों में अपने जगह दे दो महावीर!

मुँदी आँखो म
बरसती तेजस्वी शाति
आस्थाओ को आशान्वित करती
अधरो की मुस्कान
इतिहास का गौरव
वर्तमान का वैभव
और भविष्य की अन्तिम आशा है महावीर भगवान
वर्धमान
केवल इसलिये महावीर नही हुए
क्योकि वो राजकुमार थ,
वो इसलिय भी महावीर नही हुए
कि देवताओ की मनहार थ
वो इसलिय भी
महावीर नही हुए
कि मानवता न उन्ह मान से पुकारा
कि महावीर का अस्तित्व
सद् का सहारा था
महावीर को महावीर
इसलिय नही कहा गया
कि उनने दुर्दान्त सर्प को हराया था
महावीर
महावीर थ
क्योकि उन्होने खुद पर विजय पाइ थी
समूची सभ्यता म
यह श्रेय बिरलो को हासिल है
खुद पर विजय पाना
थोड़ा दुरूह है/मुश्किल है

मुश्किल है माया क बंधन को तोडना
मुश्किल है सुविधा को साधन को छोडना
माटी की काया का आकर्षण त्यागना
मुश्किल है देवत्व की निर्मल आराधना
सचमुच निर्वाण की राह जरा मुश्किल है

यह माटी की काया तो
माया है छलना है
सुखो का प्रलोभन बस प्रवचना है
यह काया है भ्रम पचभूतो का जमघट है
मिट्टी का दर्पण प माया का पट है
सभ्रम क उत्ताल सागर की सीमा पर
हर याद अलसाई लहरो की करवट है
बस यह जीवन भी जीवन नही है
मृत्यु की छाया की खामोश आहट है

हम इस भँवर से उबारो प्रभो
हमारी भी साँस सँवारो प्रभो
लुभाता था हमको अभी तक अभिनय
सिक्को की खन खन सुविधा का सचय
मगर आज दुनिया क सार हो रगो को
शर्मिन्दा करता है य मुक्त अबर,
हमे आज दुनिया के सार सुखो म
ज्यादा लुभात हो तुम तीर्थंकर
अभी तक तो भागा है दुनिया को मने
अभी तक तो दुनिया न मुझको है भागा
अब चरणो म अपनी जगह द दो स्वामी
यही आपका महान उपकार होगा।

[श्री महावीरजी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन (1997) मे प्रस्तुत]

अतुल कनक
131, महावीर नगर द्वितीय
कोटा (राज)

खण्ड : II

जिनमन्दिर, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एवं प्रभावना

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पेज नं.
1.	तीर्थंकर मूर्तियो में झलकती स्वस्ति भावना	नीरज जैन	II/1
2	समझेंगे, समझावेंगे	प्रसन्न कुमार सेठी	II/4
3.	दिव्य मूर्ति मे मूर्तिमान भगवान	एम पी जैन	II/5
4	निर्ग्रन्थ प्रतिमा : परम्परा एवं वैशिष्ट्य	डॉ सुदीप जैन	II/8
5.	जयपुर शहर के दिगम्बर जैन मन्दिर	बाबूलाल सेठी	II/13
6	राजस्थान के दिगम्बर जैन तीर्थ	महेन्द्र कुमार पाटनी	II/16

तीर्थंकर मूर्तियों में झलकती स्वस्ति भावना

◦ नीरज जैन

अहिंसा और अपरिग्रह को विश्व-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले भगवान महावीर जैनों के अंतिम तीर्थंकर थे। ऋषभदेव से लेकर महावीर तक तीर्थंकर तो चौबीस हुए, परन्तु आज हमारे पास धर्माचरण के नाम पर जो भी "आचार-संहिता" है, वह महावीर स्वामी की ही देन है। वे सारे स्व-पर हितकारी सदुपदेश महावीर ने ही प्रसारित किये थे जिन्हें उनके अनुयायी आचार्यों-मुनियों ने अपने जीवन में उतार कर उनकी सार्थकता को प्रमाणित किया उनकी व्यावहारिकता को रेखांकित किया और हर युग के लिये प्रासंगिक बनाकर उन्हें हम तक पहुँचाया।

मनुष्य को परिपूर्ण बनाना ही जैन धर्म का उद्देश्य है। अपने सहज स्वरूप को विकसित करना अपने समस्त अंतर्विकारों से मुक्ति पाकर निर्विकार, निर्लेप, परम पद में प्रतिष्ठित हो जाना ही जैन साधना में परम लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस प्रकार मनुष्य में जो नैसर्गिक अंतर्निहित दिव्यता है, आत्मानुभूति के माध्यम से उसे अभिव्यक्त और विकसित करा देना ही धर्म का कार्य है। ऐसे महान लक्ष्य को लेकर चलने वाली जैन साधना-पद्धति के मार्ग में कठोर आत्म संयम, आत्म अनुशासन और आत्म-त्याग की अनिवार्य आवश्यकता होती है। परम स्वाधीन और पूरी तरह आत्माश्रित होते हुए भी यह साधना प्रारम्भिक अवस्था में परावलंबी होती है। यात्रा के प्रारम्भ में साधक को एक आदर्श के रूप में अपने आराध्य की अनुकृति का अवलंबन लेना होता है और मार्ग-दर्शन के लिये निःस्पृह परोपकारी गुरु का सहारा आवश्यक होता है। धर्म के सर्वोच्च प्रवक्ता अर्हन्त देव की पूजा उपासना और देव की वाणी का अध्ययन-मनन साधक की आचार-संहिता के अनिवार्य अंग होते हैं।

निर्विकार, वीतराग, सर्वज्ञ और प्राणिमात्र के हितैषी देव के रूप में अर्हन्त की पूजा-उपासना के लिये जैनों में चौबीस तीर्थंकरों की सुन्दर और मनोज्ञ मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। प्रशान्त गुफाओं में या सुन्दर मन्दिरों में ऐसी चित्ताकर्षक प्रभावक प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने की दीर्घ परम्परा से यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है।

महावीर के मार्ग में यह स्वीकार किया गया है कि कला और सौन्दर्य-बोध अपने आप में एकाकार हो जाने का और दिव्यत्व की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि धर्म की प्राप्ति में कला बाधक की आवश्यकता सिद्धान्त बाधक में किसी प्रकार कम नहीं है। संभवतः यही कारण है कि जैनाचार्यों ने सदैव धर्म के संदर्भ में ललित कलाओं के विभिन्न रूपाकारों और शैलियों को प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया है। धर्म की अनुगामिनी रहते हुए इन कलाओं ने पग-पग पर साधना की कठोरता को मृदुल बनाने का महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जलती ज्वाला के बीच खिले हुए फूल की तरह ये कलाएँ मनुष्य के लिये सांसारिक संतापों के बीच शांतिलता प्रदान करती रही हैं। कालान्तर में काल के क्षरणशील बंधनों को अस्वीकार करके कलाओं ने धर्म के कल्याणकारी संवादों को शताब्दियों तक नहीं सहस्राब्दियों तक सफल संवहन किया है। धर्म के भक्ति-परक, भावनात्मक और आकारात्मक रूपों के पल्लवन में भी कला और स्थापत्य की अहम भूमिका रही है। इसीलिये जैन निर्माताओं ने मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण में सदा शक्ति भर पुरुषार्थ किया तथा उसके लिये सम्पत्ति, श्रम और साधनों की कोई कमी नहीं होने दी।

कला का मूल अभिप्राय

जैन धर्म की आत्मा उसकी बहुविध कलाओं में प्रतिबिम्बित है। "कला के लिये कला" ही जिसका अभिप्रेत हो, वह ऐसी मानसिक विलास की वस्तु नहीं है। विविधतापूर्ण और वैभवशालिनी होते हुए भी वह उत्तेजक शृंगारिकता और सतहीपने की अश्लीलता से सर्वथा मुक्त है। यही जैन कला की अपनी

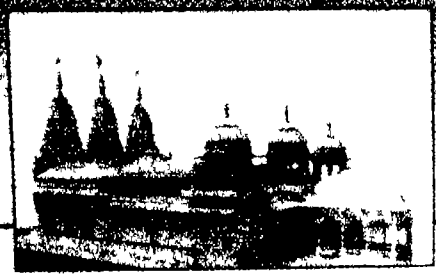

विशेषता है। वह दर्शक में सौन्दर्य-बोध के आनन्द की सृष्टि तो **करती है, परन्तु वासनाजन्य** विकार का लगाव भी उसके दर्शन से **उत्पन्न नहीं होती।** अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हुई वह **निरन्तर परमानन्द** के लक्ष्य से बँधी हुई और संतुलित है। लोक **कल्याण** की सर्वहितमती भावना से वह आपाद मस्तक ओत प्रोत है। उसके साथ तो एक तरह की सहज अलौकिकता जुड़ी दिखाई देती है। वह दर्शक के लिये आध्यात्मिक चिन्तन और गहन निजानुभूति की प्राप्ति में सहायक निमित्त बनती चलती है। उसकी यही सामर्थ्य उसका वैशिष्ट्य है।

तीर्थंकर प्रतिमाओं की प्रशान्त मुद्रा में निहित लोक मंगल विधायिनी उस स्वस्ति भावना को समझने के लिये अपने आराध्य की पूजा विधि और पूजा स्थानों के प्रति जैनों की मान्यता को समझना बहुत आवश्यक है। जैन दर्शन ईश्वरत्व की इस प्रचलित धारणा को स्वीकार नहीं करता कि हमारे सुख-दुःख के लिये सर्वोच्च शक्ति के रूप में किसी ऐसे ईश्वर की आवश्यकता है जिसके मन में विश्व के सृजन की या उसके संचालन की उत्सुकता, अभिलाषा या लगन हो। जो जगत के सारे प्राणियों के कर्मों का लेखा-जोखा रखता हो और उनके फल का निर्णय करता हो।

जैनों की ईश्वर संबंधी मान्यता यह है कि धर्म के मार्ग का अनुसरण करके जो प्राणी अपना उत्कर्ष करना चाहे, उसके लिये ईश्वर मात्र एक "आदर्श" के रूप में सहायक हो सकता है। इस आदर्श परिणति को अपना साध्य बनाकर विश्व का कोई भी प्राणी स्वयं अपने प्रयत्नों से ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। जैन दर्शन की मान्यता है कि प्रत्येक आत्मा अनादिकाल से कर्मों के बंधन में जकड़ी हुई है। ये कर्म अपनी प्रकृति, अवधि, फलशक्ति और बाह्य अनुकूलता के अनुसार स्वतः ही अपना फल देते हैं। यह प्रक्रिया स्वयमेव प्राकृतिक रूप से उसी प्रकार सम्पन्न होती रहती है जैसे खाया हुआ अन्न स्वयमेव सात धातुओं में परिणत होता रहता है। छोटे-बड़े सभी को अपने किये का फल भोगना ही पड़ता है। फिर फल भोगते समय जीव समता या विषमता, हर्ष या विषाद तथा संक्लेश और अहंकार आदि के जैसे परिणाम करता है, भविष्य के लिये उसे वैसा ही कर्म उसी समय पुनः बँधता जाता है। कर्मों की इसी सतत प्रक्रिया को जैन-दार्शनिक "विधि का विधान" कहते हैं।

जैन धर्म में ईश्वर की उपासना अपनी भाव-शुद्धि की आकांक्षा से की जाती है, जिससे उपासक के सत्ता में संचित कर्मों की उत्कटता कम होती है और वह अपने आपमें उन महान गुणों का विकास करने में सक्षम होता जाता है जो गुण उसके आराध्य में पूर्ण विकसित होकर प्रकट हो गये हैं। उन सहज गुणों का विकास ही आत्मा की चरम उन्नति है, वही उसकी आध्यात्मिक परिणति है। दो हजार वर्ष पूर्व जैनाचार्य उमास्वामी ने साधना के इसी अभिप्राय को अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण में इस प्रकार निबद्ध किया –

"जो स्वयं मोक्षमार्ग के अग्र पुरुष हैं, कर्म के पर्वतों को जिन्होंने चूर चूर कर दिया है और जिन्हें सकल विश्व का ज्ञान उपलब्ध हो गया है, उन गुणों की प्राप्ति (अपने में करने) के अभिप्राय से मैं उनकी वन्दना करता हूँ –

मोक्ष मार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म भूभृताम्
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वंदे तद्गुण लब्धये।"

तीर्थंकर मूर्तियों की बिम्ब-संयोजना

जैन साधना पद्धति के इस मूल अभिप्राय को ध्यान में रखकर जब हम जैन प्रतिमाओं का अवलोकन करते हैं तब हम पाते हैं कि ये मूर्तियाँ उन महान साधकों की अनुकृतियाँ हैं जो अपने समस्त मानसिक विकारों से मुक्त होकर लोकाग्र में सर्वोच्च स्थान पर स्थित हो चुके हैं। संसार में भ्रमण कराने वाले उनके राग-द्वेषादिक समस्त विकार निःशेष हो चुके हैं, अतः अब इस बात की कोई आशंका नहीं है कि उस सर्वोच्च स्थान से स्खलित होकर उन्हें फिर कभी मानवीय दुर्बलताओं से भरे इस मोह तिमिराच्छन्न वातावरण में पुनः जन्म लेना पड़ेगा। कल्याण मार्ग के वे विधाता अब विश्व की घटनाओं से सर्वथा निर्लिप्त हैं। वे सर्वज्ञ, अतीन्द्रिय, निश्चल, निष्कर्म और शाश्वत शान्त हैं। अब वे कोई ऐसे देवता नहीं हैं जिन्हें रिझाया या खिझाया जा सके। वे तो हमारे लिये ऐसे आदर्श मात्र हैं, जैसा उनके पद-चिन्हों पर चलकर हमें स्वयं भी बनना है। स्वभावतः जैन कला की विषय-वस्तु अपनी इसी मौलिक दार्शनिकता से अनुबद्ध और ओत-प्रोत होती है।

साधना के समर्थ निमित्त तीर्थंकर बिम्ब

जैन कला भण्डारो मे प्राय तीर्थंकर मूर्तियाँ ही अधिक मिलती हैं। कला-समीक्षको द्वारा कई बार यह आरोप भी लगाया जाता है कि – ''प्राय एक-सा, अलकरण विहीन कार्य होने के कारण जैन कलाकारो को अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाने का बहुत कम अवसर मिल पाता है।'' पर, ऐसा कहना उचित नही है क्योकि जैन मन्दिरो मे ऐसी मूर्तियो की कमी नही है जो अतिशय सुन्दर, बहुत प्रभावक और समकालीन कलाकृतियो की तुलना मे अद्वितीय बन पडी है। ये मूर्तियाँ आकार-प्रकार मे मानवीय हैं किन्तु हिमालय की तरह मानवोत्तर भी है। इसीलिये उनमे जन्म-मरण के चक्र के, चिन्ताओ व्यसनो और वासनाओ के तथा समस्त आगत अनागत भयो आशकाओ के अत्यत अभाव की आश्वस्ति भली भाँति रेखाकित होती है। लगता है वराह मिहिर ने ऐसी ही किसी कलाकृति की कल्पना मे रखकर अर्हन्त प्रतिमा का यह लक्षण लिखा होगा –

> **आजानु-लम्ब-बाहु श्रीवत्साक प्रशान्तमूर्तिश्च,**
> **दिग्वासास्तु तरुणो रूपवाश्च कार्योऽर्हन्तदेवा ।**

दर्शन मात्र से चित्त को शान्ति देने वाली और मन की वृत्ति को सहज ही वैराग्य की ओर मोड देने वाली सौम्याकृति जैन प्रतिमाओ मे निहित स्वस्ति-भावना की सम्स्तुति करते हुए अन्य अनेक कला-समीक्षको ने उनकी यह विशेषता स्वीकार की है। उन्होने लिखा है –

- ''मुक्त पुरुषो की वे प्रतिमाएँ न तो सजीव लगती है, न निर्जीव, वे तो अनन्त शान्ति से ओत प्रोत अपूर्व ही लगती हैं।''
- ''अपराजित बल और अक्षय शक्तियाँ मानो उनमे जीवन्त हो उठती है।''
- ''अडोल शान्ति, सहज भव्यता, परिपूर्ण काय-निरोध और कठोर आत्म-अनुशासन की सूचक उन प्रतिमाओ को देखकर किसी ऐसे महापुरुष का सकेत मिलता है जो अलौकिक, अद्वितीय और अनन्त सुख के अनुभव मे निमग्न है तथा लौकिक विघ्न-बाधाओ से सर्वथा अविचलित है।''

तीर्थंकर मूर्तियो के अतिरिक्त परिकर प्रतिमाओ के निर्माण मे भी जैन कलाकारो ने निराली ही शैली का आश्रय लिया। इन सभी कलाकृतियो मे ''मानव-तत्व'' बहुत उभर कर रेखाकित हुआ है और इनके माध्यम से कला की सार्थकता का सन्देश देने मे शिल्पी सचमुच सफल हुआ है। चौबीस तीर्थंकरो के चौबीस शासन यक्षो की आकृतियाँ उनकी भौतिक शक्तियो का बोध कराती है। उनकी देवागनाएँ सौन्दर्य की शालीनता और मातृत्व के गौरव का एक साथ अभिव्यक्त करती है। विद्या देवियाँ साधना की सीढियो का प्रतीक बन जाती है और उनके साथ विद्याधर किन्नर, दिक्पाल तथा नवग्रह मिलकर भगवान अर्हन्त की त्रिलोक-व्यापिनी महिमा की दुदुभी बजाते दिखाई देते है। तीर्थंकर की माता के सोलह शुभ-स्वप्न हमारे ही उज्ज्वल भविष्य की झाँकी हमे दिखाते है। मूर्ति के परिकर मे प्रदर्शित अष्ट प्रातिहार्य तथा अष्ट मगल द्रव्य साधक को यह आश्वासन देते है कि उसका मार्ग शुभ है, जो शुभतर होता हुआ किसी अनजाने मोड पर शुद्ध परिणति मे परिणमित हो जाने वाला है।

अर्हन्त प्रतिमा के परिकर मे प्राय सर्वत्र प्रदर्शित ये अभिप्राय मूल मूर्ति की स्वस्ति भावना का भामण्डल बन जाते है। इनकी उपस्थिति उस ईश्वर के सांसारिक ऐश्वर्य का स्पष्ट सूचन करती है। उधर मूल मूर्ति के आनन पर झलकता आनन्द स्वय उसके अपने आतरिक ऐश्वर्य का साक्षी बन जाता है।

जब हम अपने मन मे तीर्थंकर की ऐसी शुभकर कल्पना सँजोकर उनके समक्ष उपस्थित होते है तब हम अनुभव करते है कि निश्चित ही हम किसी पाषाण खण्ड या धातु पिण्ड के सामने नही खडे है। तब हमे सर्वोच्च गुणो से युक्त अपने आराध्य का ही दर्शन उस अनुकृति मे होता है। उस आराधना मे हमे शक्ति और स्थिरता प्राप्त होती है। हमे आराध्य का सान्निध्य अनुभव करके अपनी साधना-यात्रा मे अधिक उत्साह के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। ध्यानस्थ रूप मे भी उनकी सस्मित सौम्य भाव-भगिमा से शान्ति का अनन्त प्रवाह झरता हुआ लगता है। जब हम इस प्रकार श्रद्धापूर्वक प्रतिमा पर अपना ध्यान केन्द्रित कर देते हैं तब, कम से कम उन क्षणो मे, हम उसी मुद्रा की वीतरागता और परम शान्त भावना मे लीन हो जाते है और एक ऐसी अनोखी शान्ति

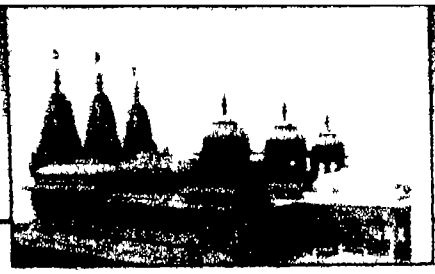

का अनुभव करते हैं जो ससार मे अन्यत्र कहाँ नही मिलती।

श्री महावीरजी के प्रागण मे प्रेरणा देकर प्रगट हुई अनुपम और अतिशयकारी यह मनोहर मूर्ति भगवान महावीर की एक प्रभावक छवि को साकार करती है। प्रति वर्ष लाखो की सख्या मे भक्तगण उनके दर्शन करके अपने आप को धन्य मानते है। उनकी छवि मे अहिसा और अपरिग्रह की प्रेरणा प्राप्त करते है और "जियो और जीने दो" का सहज शाश्वत प्रेरणा वाक्य दोहरात हुए महावीर स्वामी की देशना का स्मरण करत हैं। हजार साल मे यह क्रम चल रहा है ओर हजारो साल तक चलता रहेगा। उनकी पूजा-अर्चना के निमित्त म लाकापकार के अनेक कार्य भी यहाँ निरन्तर चलते रहत है। तीर्थकर मूर्तिया मे झलकती स्वस्ति भावना का यह तो ज्वलत प्रमाण है। आइये भावना भाये कि यह प्रतिमा शाश्वत रह ओर इसके सामन हम सदा दाहरात रह –

जैनेन्द्र धर्मचक्र प्रभवतु सतत सर्व-सौख्य-प्रदायि ।

समझेगे, समझावेगे

◦ प्रसन्न कुमार सेठी

हत्यागे का जाल कटगा, भ्रष्टाचार हटावेगे ।
हम धरती के सही सिपाही, समझेगे, समझावेगे ॥

(१)

रूसी हो अथवा जापानी, सबके दिल मे दर्द है ।
चीनी हो अथवा अमेरिकन, नही हौसला सर्द है ।
कही शिखर है, कही सरावर, कही उड़ रही गर्द है ।
किन्तु त्याग कर नुक्ताचीनी, मञ्जिल पाता मर्द है ।
दुराचार को दूर भगाकर, सदाचार अपनावेगे ॥
हम धरती के सही सिपाही, समझेगे, समझावेगे ॥

(२)

"मानव है, हैवान नही हम", मन मे तनिक विचार करो ।
एक दूसरे के प्राणो पर, फिर क्यो हिंसक वार करो ।
पढ-लिखकर शिक्षा पाई है, क्यो ओछा व्यवहार करो ।
हिन्दुस्तानी हो या अरबी, गले लगाकर प्यार करो ।
थाम गिरे का हाथ, डूबते की हम जान बचावेगे ॥
हम धरती के सही सिपाही, समझेगे, समझावेगे ॥

(३)

बिल्ली दूध पी गई यदि, बन्दर ने कुर्ता फाडा है ।
वे सब भाल ओर अशिक्षित, गर्मी उनको जाड़ा है ।
कोई बात नहीं जो छड़ी दिखाकर, उन्हे आपने ताड़ा है ।
किन्तु मारकर उन्हे आपन अपना धर्म बिगाडा है ।
जीव मात्र पर दया, क्षमा के गीत सुरीले गावेगे ॥
हम धरती के सही सिपाही, समझेगे, समझावेगे ॥

(४)

पीकर मद्य, सिगार फूँकना, रोगो का घर, ताप है ।
फैशन का खर्चीला जीवन, जन-जन को अभिशाप है।
न्याय, अहिसा की छाया मे, हिसा भीषण पाप है ।
शीलव्रती सयमी बने सब, यही इष्ट है, जाप है । ।
मायाचारी नही चलेगी, मासाहार छुड़ावेगे ॥
हम धरती के सही सिपाही, समझेगे, समझावेगे ॥

दिव्य मूर्ति में मूर्तिमान भगवान

• एम. पी जैन, एम ए एलएल बी

प्रागैतिहासिक तथ्य साक्षी है कि अनादि निधन जैनधर्म के अनुयायियो क लिये दिगम्बर मूर्तियाँ प्रमुख आलम्बन रही है। जैन पुराणो मे वर्णन आता है कि भरतखण्ड के प्रथम चक्रवर्ती भरत ने मन्दिर बनवाये तथा उनमे वर्तमान व भूतकाल के चौबीस तीर्थकरो की मूर्तियाँ स्थापित करवाई। इसके पश्चात् तो चतुर्थ काल मे जितने भी तीर्थंकर भगवान हुये उन सबकी मूर्तियाँ विश्व मे प्रतिष्ठित होती ही रही हैं। जिन-जिन तीर्थकरो का शासन काल चला उनकी मूर्तियाँ तो प्रतिस्थापित होती ही थी किन्तु साथ मे उनमे पूर्व हुये तीर्थंकरा की मूर्तियाँ भी पूजी जाती रहीं। प्रत्येक काल क चक्रवर्ती एवम् अर्द्धचक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण बलभद्र, कामदेव तथा उनकी अर्द्धांगिनी महीषी देवियो की दनन्दनी म दव पूजा का सर्वोत्कृष्ट स्थान रहता था। चाह गृहस्थ सम्बन्धी क्रियाये हा अथवा युद्ध क्षत्र म जाने की तयारी हो या वैराग्य भावना स आत-प्रोत होकर दीक्षा लेने का क्रम हो देव गुरु शास्त्र की पूजा अनिवार्य होती था। जिस युग मे तीर्थंकर का अभाव होता था उसमे उनके प्रतीक मे उन जैसी ही मूर्तियो का निर्माण एव प्रतिष्ठापन जैन शासका तथा श्रेष्ठी वर्ग का महत्वपूर्ण कर्तव्य होता था। एसा प्रतीत होता है कि यह क्रम लगभग चौबीसो तीर्थंकरो क धर्मशासनकाल मे निरन्तर रहा। यह बात भरत क्षत्र के आर्य खण्ड की है जिसमे वर्तमान का सम्पूर्ण विश्व समाहित है। आज का अमेरिका, योरोप एव एशिया का सम्पूर्ण भाग भरत क्षेत्र का आर्यखण्ड है जिसमे पचम काल के अन्त तक धर्म विद्यमान रहेगा और तीर्थंकरो की मूर्तियो की पूजा होती रहेगी।

मूर्तिपूजा गृहस्थ जीवन का आधार है। जिनवर के आलम्बन बिना मानव जीवन की सार्थकता नगण्य है। समवशरण मे विद्यमान तीर्थकरो के स्वरूप मे तथा जिन मन्दिरो मे विराजमान प्रतिष्ठित मूर्ति के स्वरूप मे कोई अन्तर नही होता। जिस प्रकार अर्हन्त भगवान, केवलज्ञानी, सर्वज्ञ एवम् हितोपदेशी तीर्थंकर शान्त मुद्रा मे, अर्ध- आँखे खोले हुये, पद्मासन अवस्था मे बैठते है और बिना होठ हिलाये उनक सम्पूर्ण शरीर से ओकार दिव्य ध्वनि झरती है उसी प्रकार मन्दिर रूपी समवशरण मे भगवान की मूर्ति के समक्ष खडे जिन भक्त का ऐसा ही आभास होता रहता है कि समवशरण मे विद्यमान तीर्थकर के सारे अतिशय उसे अनुभूत हो रहे है और उसके तन-मन मे दिव्य-ध्वनि का प्रसार हो रहा है। प्रत्येक जैन मन्दिर म शास्त्रो का स्वाध्याय व प्रवचन, जिनवाणी अर्थात् दिव्य-ध्वनि के प्रसारण का साधन ही तो है।

अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी म सहस्राब्दी समारोह का आयोजन भगवान महावीर की दिव्य-मूर्ति मे मूर्तिमान भगवान के दर्शन स्तवन का अवसर प्रदान करता है। जैन धर्मानुयायी के लिये ही नही वरन् मानव मात्र की स्मृति म लगभग 2600 वर्ष पूर्व की अवस्था का ध्यान कराने क लिये इस आयोजन का अत्यन्त महत्व है। महावीर की एक हजार वर्ष पूर्व निर्मित मूर्ति के चमत्कार का वर्णन करना हमारा उद्देश्य नही है क्योकि एसा करने से अन्धविश्वास और रूढिवाद की परम्परा पनपती है जो जैनधर्म और दर्शन के सिद्धान्तो से मेल नहीं खाती। हम किसी चमत्कार की बाता पर विश्वास नही करत। प्रत्येक घटना या दुर्घटना अपने ही परिणाम (भाव), योग्यता के अनुसार होती है। सब द्रव्य, गुण व पर्याय अपनी-अपनी सत्ता व क्षमता के बल पर परिणमन करते है। कोई भी देवी, देवता इन्द्र व जिनेन्द्र, किसी भी वस्तु के परिणमन अर्थात् अवस्था परिणमन मे हस्तक्षेप नही करते और न कर सकते है। भगवान अथवा भगवान की मूर्ति तो मात्र हमारी आराध्य पच परमेष्ठी अर्थात् अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव दिगम्बर साधुवृन्द क स्वरूप का ज्ञान कराते है, अपने जीवनकाल मे साधारण मानव से महात्मा व परमात्मा बनन की प्रक्रिया प्रज्ञापित करते है। उनके द्वारा प्रयाग किये हुये सम्यग्दर्शन, ज्ञान व आचरण के मार्ग पर चलकर जीव भगवान बन जाता है और

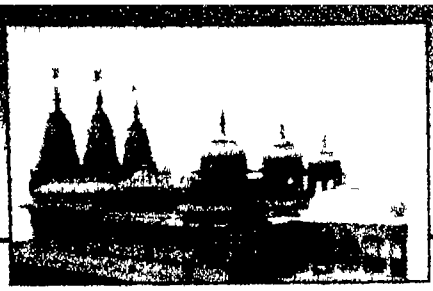

उनके जैसा परमपद प्राप्त कर लेता है, ससार के दुख कष्टो से मुक्त हो जाता है। उस किसी अन्य भगवान की शरण की आवश्यकता नही रहती। जिनेन्द्र स्वयभू होते हैं और उनके अनुयायी भी उनके बताये हुये मार्ग पर चलकर उन जैस भगवान बन जाते है।

भगवान महावीर जिनकी मूर्ति/प्रतिमा के निर्माण की सहस्राब्दी का समारोह मनाया जा रहा है उनके विषय मे धर्मप्राण भारतीय जनता को बताना आवश्यक नही है। वे अनादिकाल से चार गतियो एव चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करते हुये महा पुण्यशाली तीर्थंकर प्रकृति का बध करके, चतुर्थ काल के अन्त मे आज स लगभग 2600 वर्ष पूर्व इसी भरत क्षेत्र मे माता त्रिशला की कुक्षी से, महाराज सिद्धार्थ के घर मे उत्पन्न हुये। जन्म स ही व मति श्रुति व अवधिज्ञान के धनी थे, अत उन्ह किसी गुरु से शिक्षा दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक न था। तीस वर्ष की आयु तक व गृहवासी रहे किन्तु घर मे वैरागी रहकर उन्होन यही प्ररणा दी कि गृहस्थ की भूमिका म भी धर्मपालन सम्भव है। महाव्रत धारण करने क लिये उन्ह घर छोडना भी अनिवार्य होता है, अत बारह वर्ष तक तपस्वी के रूप मे जीवन-यापन किया। 42 वष की आयु मे महावीर सर्वज्ञ केवली बन, जिसका अर्थ होता है कि उनका परमौदारिक शरीर विशेष प्रकार क परमाणुओ का बन गया जिसम भूख-प्यास, रोग के दोष नही थे। उनके आत्मा के प्रदेश प्रदेश से उनके आभामण्डल मे ज्ञान की झलक प्रस्फुटित होती रहती थी। भारत के विभिन्न स्थलो मे उनका समवशरण धर्मचक्र के साथ प्रतिष्ठित होता और मूर्तिवत् मूर्तिमान भगवान महावीर ठाक उसी मुद्रा मे विराजते थ जैसे कि आज श्री महावीरजी क्षत्र मे हजार वष पुरानी भगवान महावीर की प्रतिमाजी बिराज रही है।

सहस्राब्दि के इस अवसर पर तीर्थकर भगवान क 46 गुणो की जानकारी देना उपयुक्त होगा। अन्य मनुष्यो या केवलियो की अपेक्षा तीर्थकरो मे निम्नलिखित 46 गुण होते है

34 अतिशय (चमत्कारपूर्ण अद्भुत बाते),

8 प्रतिहार्य, 4 प्रकार के गुण (अनन्त चतुष्टय)

इनमे तीर्थंकरो के 10 अतिशय जन्म समय से, 10 केवलज्ञान होने पर और 14 अतिशय देवो द्वारा प्राप्त होते है। ये सक्षप मे इस प्रकार है

जन्म के १० अतिशय

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल्य बल, रूधिर श्वेत आकार ॥ १॥
लक्षण सहस रू आठ तन, सम चतुष्क सठान,
वज्र ऋषभ नाराचजुत, ये जनमत दश जान ॥ २॥

केवलज्ञान समय के १० अतिशय

योजन शतइक मे सुभिख, गगन गमन मुख चार।
नहि अदया, उपसर्ग नहि, नाही कवलाहार ॥ ३॥
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहि बढे नख केश,
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेश ॥ ४॥

देवो द्वारा होनेवाले १४ अतिशय

देव रचित है चार दस, अर्द्ध मागधी भाष,
आपस माहि मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥ ५॥
होत फूल फल ऋतु सबे, पृथ्वी काच समान,
चरण कमल तल कमल वै, नभ ते जय जय वान ॥ ६॥

मन्द सुगन्ध वयारि पुनि, गधादक की वृष्टि
भूमि विषै कटक नही, हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ७॥
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मगल सार,
अतिशय श्री अरहत के, ये चौतीस प्रकार ॥ ८॥

आठ प्रतिहार्य (द्रव्य, महत्वशाली पदार्थ)

तरू अशोक के निकट मे, सिहासन छविदार,
तीन छत्र शिर पर लसे, भामण्डल पिछवार ॥ ९॥
दिव्य ध्वनि मुख ते खिर, पुष्प वृष्टि सुर होय,
ढोर चौसठ चवर जख, बाजे दुन्दभि जोय ॥ १०॥

अनन्त चतुष्टय

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दरश अनन्त प्रमान,
बल अनन्त अर्हन्त को, सो इष्ट देव पहचान ॥ ११॥

जैन शास्त्रो मे तीर्थकर भगवान महावीर के उपरोक्त गुणो विहार समयादिक की कितनी ही विभूतियो का, अतिशयो का वर्णन किया गया है परन्तु उनका यहाँ विस्तार करना अप्रयोजन भूत है। स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है

देवागम नभोयान चामरादि विभूतिय ।
मायाविस्वापि दृष्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान ॥

– आप्त मीमासा।

अर्थात् देवो का आगमन, आकाश मे गमन और चामारादिक (दिव्य चमर, छत्र, सिहासन, भामडलादिक) विभूतियो का अस्तित्व तो मायावियो मे, इन्द्रजालियो मे भी पाया जाता है। इनके कारण हम आपको महान नही मानत और न इनकी वजह स आपकी कोई खास महत्ता या बडाई ही है।

भगवान महावीर की महत्ता और बडाई ता उनक माहनीय ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय नामक कर्मों का नाश करके परम शान्ति को लिये शुद्धि तथा शक्ति की पराकाष्ठा को पहुँचने और ब्रह्मपथ का, अहिमात्मक मोक्षमार्ग का नेतृत्व ग्रहण करने मे है, अथवा यो कहिये कि आत्मोद्धार के साथ-साथ लाक की सच्ची सवा करन मे है। जैसा कहा भी है

त्व शुद्धि शक्त्योरूदयस्य काष्ठा
तुलाव्यतीता जिन शान्ति रूपाम् ।
अनापिथ ब्रह्मपथस्य नेता
महानितीयत् प्रतिवक्तुमीशा ॥

तीर्थकर भगवान के ४६ गुण/लक्षण तो बानगी मात्र हैं। उनके जन्मकाल से निर्वाणकाल तक अनन्त गुण प्रकट होत रहते है जिनके अवलोकन से ससार के सभी प्राणी सुख और शान्ति की अनुभूति करते है। आज भी यदि हम भगवान की मूर्ति मे उपरोक्त गुणो की कल्पना करें तो उसी प्रकार के सुख व आनन्द का उपभोग कर सकते है। जिनवाणी मे समाहित भगवान की दिव्य- ध्वनि का साराश आज भी हमे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

वीतराग भगवान की मुक्ति हो जाने पर उनका साक्षात् दर्शन होना असम्भव है अत उनके दर्शन की भावना सफल करने के लिये भगवान की वीतराग प्रतिमा के दर्शन पूजन करने से चित्त पवित्र होता है। यह प्रथा अनादि स है। भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभनाथ के मुक्त हो जाने के पश्चात् मन्दिर व मूर्तिया का निर्माण कराया था। भारत के विभिन्न प्रदेशा मे पृथ्वी खोदत समय अथवा खण्डहरो मे तीर्थंकरो की मूर्तियाँ आज भी प्राप्त होती है। श्री महावीरजी क्षेत्र मे तीर्थकर महावीर की हजार वर्ष पुरानी मूर्ति भी इसी प्रकार टीले के नीच स निकली जो वर्षों पश्चात् भी उसी प्रकार दैदीप्यमान है। आग के सैकडो वष तक भगवान महावीर की वह प्रतिमा हजारो लाखो जैन अजैन लोगो की प्रेरणा का स्रोत बने इसी भावना के साथ विराम लेता हूँ।

कुल सचिव, मालवीय क्षत्रीय अभि
महाविद्यालय, जयपुर

अमृत चन्द्राचार्य कहत है कि जो जीव अपना कल्याण नही कर सकता वह पर कल्याण मे सहायक नही बन सकता है। आचार्य कहते है कि वे शास्त्रो का लेखन पर के हितार्थ नहीं कर रहे है। वे तो मात्र इसलिए लिख रहे है कि इस लेखन मे उनकी आत्मा की शुद्धि हो रही है। रत्नत्रय की प्राप्ति हो रही है। बुर विचारो और आर्त्तरौद्र ध्यान से बचने का उपाय धर्म है। स्वाध्याय, पूजा, जप, तप, ध्यान मे एकाग्रता अनेक कर्मों की निर्जरा करती है।

आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

निर्ग्रन्थ प्रतिमा : परम्परा एवं वैशिष्ट्य

• डॉ सुदीप जैन

ईंट, पत्थर एव लकडी स सभी भवन बनत ह किन्तु इन्ही मे से कुछ भवन जिस कारण-विशष स पूजनाय होकर 'मदिर' या 'चैत्यागृह/चैत्यालय' सज्ञा पा जात ह उस कारण-विशष का नाम 'प्रतिमा' है।[1] इसे 'चैत्य' भी कहा जाता ह। सामान्यत ता किसी भी व्यक्ति की लकडी प्रस्तर अथवा धातु स निर्मित प्रतिकृति को 'प्रतिमा' कहा जाता है, किन्तु भारतवर्ष मे 'प्रतिमा' का अर्थ 'टके सेर भाजी, टके सर खाजा' जैसा कभी नही रहा ह कि हर किसी की अनुकृति को 'प्रतिमा' कह दिया जाये। किसी भी व्यक्ति की प्रतिकृति को अग्रेजी भाषा क 'स्टच्यू' शब्द एव हिन्दी क 'मूर्ति' शब्द से अभिहित किया जा सकता ह परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार 'प्रतिमा' शब्द का प्रयाग अतिविशिष्ट गणा स युक्त 'परमात्मा' पद को प्राप्त व्यक्ति विशष की प्रतिकृति के लिए किया जाता है। इस 'प्रतिमा' क स्वरूप निर्माण परम्परा एव वैशिष्ट्य को यहाँ रेखाकित करन का प्रयत्न किया गया ह।

'प्रतिमा' शब्द का अर्थ

'प्रतिमीयते इति प्रतिमा' इस व्युत्पत्ति क अनुसार 'प्रति' उपसर्ग क साथ 'मा' धातु के साथ 'अङ्' प्रत्यय का विधान करक फिर स्त्रीत्वसूचक 'टाप्' प्रत्यय लगाने पर (प्रति + मा + अङ् + टाप्) 'प्रतिमा' शब्द निष्पन्न हाता ह। 'मदिनीकोश' क अनुसार इसका अर्थ **'अनुकृति'** किया गया ह। 'रघुवश महाकाव्य' म इसे **'प्रतिबिम्ब'** शब्द स भी सकलित किया गया है। 'अमरकोश' मे इसके **प्रतिमान, प्रतिबिब, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, अर्च्या एव प्रतिनिधि** – य सात पयायवाची नाम गिनाय गय ह। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने इसके **प्रतिच्छन्द** , प्रतिकाय प्रतिरूप – ये नामान्तर और गिनाये ह।[2] 'दसणपाहुड' की टीका म कहा गया है –

''सा प्रतिमा प्रतियातना प्रतिबिम्ब प्रतिकृति ''[3]

अर्थात् प्रतिमा, प्रतियातना, प्रतिबिम्ब एव प्रतिकृति – य सब एकार्थवाचक नाम है। 'भगवती आराधना' मे कहा गया ह कि –

''चैत्य प्रतिबिम्बमिति यावत्। कस्य? प्रत्यासत्ते श्रुतयारवार्हतसिद्धयो प्रतिबिम्बग्रहणम्।''[4]

अर्थ – 'चैत्य' अर्थात् 'प्रतिबिम्ब' या 'प्रतिमा'। 'चैत्य' शब्द स प्रस्तुत प्रसग मे अरिहतो और सिद्धो की प्रतिमाओ का ग्रहण समझना चाहिए।

'प्रतिमा' की परम्परा – 'मूर्ति' से 'मूर्तिमान्' की एव 'प्रतिमा' स 'परमात्मा' की पूजा करने की दृष्टि मूलत जैन दृष्टि रही है। भारत की प्राचीन दा ही परम्पराय रही ह – ब्राह्मण परम्परा एव श्रमण परम्परा। इनम स ब्राह्मण या वैदिक परम्परा म मूल मे 'प्रतिमा' म 'परमात्मा' की कल्पना ही नही थी अत व प्रतिमा को पूजत ही नही थे। 'यजुर्वेद (32/13) म स्पष्ट कहा गया ह **''न तस्य प्रतिमा अस्ति।''** अर्थात् उस परमात्मा की काइ प्रतिमा नही है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (4/19) म भी यही वाक्य प्राप्त हाता है। **उपनिषत्कार** इसका कारण स्पष्ट करत हुए लिखत ह – **''एको देव सर्वभूतेषु गूढ ''**[5] अर्थात् वह एक अद्वितीय परम ब्रह्म परमात्मा समस्त तत्त्वो मे व्याप्त है अत उसे किसी प्रतिमा विशष तक सीमित करने का कोई औचित्य नही है।

इसी बात की पुष्टि करते हुये आदि शकराचार्य लिखत ह –

''न प्रतीके न हि सा''[6] अथात् किसी भी प्रतिमा आदि प्रतीक म उस ब्रह्मतत्त्व की सत्ता सीमित नही है। फिर भी वैदिक-ऋचाओ म जिन दवताओ की स्तुतियाँ की गयी है, उनमे उन देवताओ क आकार प्रकार, सौन्दर्य वस्त्राभूषण एव आयुध आदि की स्पष्टत चर्चा प्राप्त हाती है। अत प्रतीत होता है कि प्रारभ मे वैदिक लोग कल्पना शक्ति क द्वारा अपने आराध्य का वैचारिक बिम्ब बनाकर उसकी पूजा करत थे, भौतिक प्रतिमा बनाकर उसक माध्यम से परमात्मा की अर्चना करने की परम्परा उनमे बहुत बाद मे आयी है। **वराहमिहिर**[7] ने पाँचवीं शताब्दी ई मे विभिन्न देवताओ की

मूर्तियो एव उनकी पूजा का वणन किया है, जो श्रमण-परम्परा का प्रभाव ज्ञात होता है।

श्रमण-परम्परा (जैन-परम्परा) मे 'प्रतिमा' – निर्माण एव उसके माध्यम मे परमात्मा की आराधना की परम्परा अति प्राचीनकाल मे चली आ रही है। कहा जाता है कि आदिब्रह्मा तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठपुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत (जिनके नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पडा) ने सर्वप्रथम 'अरिहत' की पतिमा बनाकर उसकी पूजा करने की सूत्रपात इस युग मे किया था। ईसापूर्व 2400 2000 की एक मूर्ति का अश **हड़प्पा** की खुदाई मे प्राप्त हुआ है, जिसे परख्यात पुरातत्त्ववेत्ता **प्रो टी एन रामचन्द्रन** ने 'जैन तीर्थंकर की मूर्ति' बतलाया है।[4] ऐतिहासिक रूप से ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के **सम्राट खारवेल** के शिलालेख मे **कलिंग-जिन** (अग्रजिन-वृषभदेव) की प्रतिमा का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसे पुष्यमित्र शुग ले गया था और सम्राट खारवेल ने उस पर विजय पाप्त करके सादर उस जिन-प्रतिमा को पुन प्राप्त करके उसकी वन्दना-पूजा की थी एव वापस कलिगदेश ले गया था।

''नदराजनीत कलिगजिनन सनिवेम अग-मगधतो कलिग आनेति हय-गय-मग-वाहण-सहस्मेहिं मगधवासिण च पादे वदापयति।''

अर्थ – नदराजा (के सेनापति पुष्यमित्र शुग) के द्वारा कलिग म ले जायी गयी जिनमूर्ति (अग्रजिन वृषभदेव) को (मैने इस युद्ध म सादर पुन: प्राप्त किया और उस) सस्थापित करके मैने अगदश और मगधदश की सम्पत्ति प्राप्त की। हजारो घोडे हाथियो सैनिको एव (रथ) आदि वाहनो-सहित मगधवासियो ने मेरी चरण-वदना की है।

एक कुषाण-युगीन निर्ग्रन्थ जैन प्रतिमा मथुरा के 'ककाली टीला' से प्राप्त हुई थी, जो कि आज भी मथुरा के राजकीय सग्रहालय मे विद्यमान है। इस मूर्ति के बार मे एक लख प्राप्त होता है, जो निम्नानुसार है –

''सिद्ध ..... उसभ प्रतिमा वर्मये धीतु (गुल्हा) ये जयदासस्य कुटुंबिनिये दानं।''

अर्थ – सिद्ध गुलहो, जो कि वर्मा की पुत्री और जयदास की पत्नी थी, ने एक (भगवान् ऋषभदेव की) प्रतिमा समर्पित की थी।

एक अन्य अतिप्राचीन मौर्यकालीन निर्ग्रन्थ जैनमूर्ति आज भी पटना के राष्ट्रीय सग्रहालय मे विद्यमान है।

जैन शास्त्रो मे भी अतिप्राचीन काल से प्रतिमा पूजा का विधान प्राप्त होता है। ईसापूर्वकालीन 'प्रतिक्रमणसूत्र' मे श्रमण एव श्रावक – दोनो के लिए 'चेत्य' (प्रतिमा) की भक्ति करने का विधान प्राप्त होता है। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के **आचार्य कुन्दकुन्द** ने भी 'चेत्य' (प्रतिमा) की भक्ति करने का निर्देश दिया है।[5] **आचार्य रविषेण** (8वी शताब्दी ई) ने लिखा है कि 'जो जिनेन्द्र परमात्मा के आकार के अनुरूप जिनबिम्ब (प्रतिमा) बनवाकर उसकी पूजा स्तुति करता है, उसके लिए इस लोक मे कुछ भी दुर्लभ नही है –

''जिनबिम्ब जिनाकार जिनपूजा जिनस्तुतिम्।
य करोति जनस्तस्य न किंचिद् दुर्लभं भवेत्॥''[10]

आचार्य जटासिंहनन्दि (छठवी शताब्दी ई) ने भी जिनबिम्ब के निर्माण की महिमा बतलाते हुए उसकी प्रेरणा दी है।[11] **आचार्य अमितगति**[12], **आचार्य पद्मनन्दि**[13], **आचार्य वसुनन्दि**[14] ने भी जिनबिम्ब (प्रतिमा) के निर्माण का श्रेष्ठ फल बताते हुए इन्हे बनवाना श्रावको का कर्तव्य बताया है। **पडित शिव आशाधरसूरि** ने तो जिन बिम्ब (प्रतिमा) आदि का निर्माण करना 'पाक्षिक श्रावको' (अर्थात् जिन्ह जिनधर्म का पक्ष भी है, उनका) कर्तव्य बतलाया है।[15] **पाडे राजमल्लजी** ने भी अरिहत एव सिद्ध की जिनप्रतिमाये आदि बनवाने का विधान करते हुए लिखा है कि 'जिनबिम्ब महोत्सव' करने मे कदापि शिथिलता नही करनी चाहिए।''[16]

श्रमण-परम्परा में प्रतिमा-निर्माण की महिमा

जैसा कि ऊपर कई आचार्यो के कथनों मे स्पष्ट कहा गया है कि 'प्रतिमा बनवाने का बडा महत्त्व है', – इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए **आचार्य शिवार्य** लिखते हैं कि – ''अरिहत आदि की प्रतिमा के दर्शन से उनके गुणो का स्मरण हो जाता है। इस स्मरण

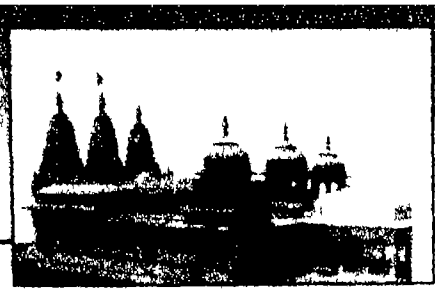

से नवीन अशुभ कर्मो का 'सवर' हो जाता है। इसप्रकार समस्त इष्ट पुरुषार्थ की सिद्धि करने मे जिनबिम्ब कारण होते है अत उनकी उपासना अवश्य करनी चाहिए।" वे आगे पुन लिखते है कि – "चैत्य (प्रतिमा) की भक्ति आत्मस्वरूप की प्राप्ति म सहायक होती है, अत चैत्यभक्ति सदा करनी चाहिए।"[18]

श्रमण-परम्परा में 'प्रतिमा' का स्वरूप

श्रमण-परम्परा मे 'प्रतिमा' का स्वरूप निर्वस्त्र, निराभरण प्रशान्तमुद्रा एव दिगम्बर रूप ही माना गया है। जैन प्रतिमा के स्वरूप के बारे मे वैदिक आचार्य वराहमिहिर लिखते है –

"आजानु-लम्बबाहु श्रीवत्साङ्क-प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासस्तरुणो रूपवाँश्च कार्योऽर्हता देव ॥"[19]

अर्थ – तीर्थंकर अरिहत की प्रतिमा घुटना तक लम्बे हाथो वाली, वक्षस्थल के मध्य 'श्रीवत्स' के चिह्न से युक्त प्रशान्तमुद्रावाली एव युवावस्था सम्पन्न **दिगम्बर** ही बनवानी चाहिए।

अन्यत्र भी जैन परम्परा मे प्रतिमा की स्वरूप इसी ही बताया है –

"उत्तम दशतालेन देवाङ्गं स मानयत्।
चतुर्विंशतितीर्थाना दशतालेन कारयेत्॥
निराभरणसर्वांग निर्वस्त्राग मनोहरम्।
समवक्ष स्थले हेमवर्ण श्रीवत्स-लाञ्छनम्॥"[20]

अर्थ – उत्तम देवताओ का शरीर **दशताल-प्रमाण** माना गया है, अत चौबीसो तीर्थंकरो की प्रतिमाय भी दशताल प्रमाण बनवानी चाहिए। वे प्रतिमाय आभूषण रहित **निर्वस्त्र-दिगम्बर**, मनोहारी, समान वक्षस्थल (स्त्री आकार से रहित) स्वर्ण के वर्णवाली एव श्रीवत्स के चिह्नवाली होनी चाहिए।

आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि (5वी शताब्दी ई) ने लिखते है –

"विगतायुधा विक्रियाविभूषा
प्रकृतिस्था कृतिना जिनेश्वरगणाम्।
प्रतिमा प्रतिमागृहेषु कान्त्या प्रतिमा
कल्मष शान्तयेऽभिवदे ॥"[21]

अर्थ – जिनेश्वरो की प्रतिमा आयुधो से रहित, विक्रिया (आभूषणो एव शृगारिक या आक्रोशमयी राग-द्वेषसूचक मुखमुद्राओ) से रहित, प्राकृतिक (जन्मजात दिगम्बररूपवाली) एव कान्तियुक्त होनी चाहिये।

वे पुन लिखते है –

'निराभरण-भासुर विगतराग-वेगोदयात्।
निरम्बर-मनोहर प्रकृतिरूप-निर्दोषत ॥"[22]

अर्थ – जिनेन्द्र प्रतिमा आभूषण रहित, चमकदार राग-द्वेष के भावो से रहित वस्त्ररहित होते हुए भी मनोहारी एव प्राकृतिकरूप से निर्दोष होनी चाहिए।

इतना ही नही गणधर (गणेश) की प्रतिमाय भी दिगम्बर एव प्रशान्त मुद्रावाली ही होती है। – यह तथ्य वैदिक सस्कृति मे भी स्वीकार किया गया है –

'श्यामवर्ण तथा शक्ति धारयन्त दिगम्बरम्।
दिगम्बरा सुवदना भुजद्वय-समन्विताम्।
विघ्नेश्वरीति ख्याता सर्वावयव सुन्दरीम्॥"[23]

अर्थ – विघ्नेश्वर के नाम से प्रसिद्ध गणधर (गणेश) की प्रतिमा श्यामवर्णी, शक्ति सम्पन्ना दिगम्बरमुद्रावाली, सुन्दर मुखाकृति दो हाथोवाला तथा समस्त अवयवो से सुन्दर होनी चाहिए।

'वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ' मे भी जिनप्रतिमा का परिचय देते हुए निम्नानुसार लिखा है कि –

(1) **लक्षण** – जिनेन्द्र की प्रतिमा सर्व सुलक्षणो से युक्त बनानी चाहिए। वह सीधी, लम्बायमान, सुदर सस्थान, तरुण अगवाली व **दिगम्बर** होनी चाहिय। श्रीवत्स लक्षण से भूषित वक्षस्थल और घुटने तक लम्बायमान बाहुवाली होनी चाहिय। काँख आदि अग रोमहीन होने चाहिये तथा मूँछ व झुर्रियो आदि से रहित होने चाहिय।

(2) **माप** – प्रतिमा को अपनी अगुली के माप से वह 108 अगुल की होनी चाहिय, चित्र मे या लेपमय शिला आदि मे प्रत्येक अग का मान प्रमाण व उन्मान नीचे व ऊपर सर्व ओर यथाकथित

रूप मे लगा लेना चाहिये। ऊपर से नीचे तक सौल डालकर शिला पर सीधे निशान लगाने चाहिए। प्रतिमा की तौल या माप निम्नप्रकार जानने चाहिए। उसका मुख उसकी अपनी अगुली के माप से 12 अगुल या एक बालिश्त होना चाहिए और उसी मान मे अन्य भी नौ प्रकार का माप जानना चाहिए।

(3) मुद्रा – लक्षणो से सयुक्त भी प्रतिमा यदि नेत्र-रहित हो या मुँदी हुई आँखवाली हो, तो शोभा नहीं देती, इसलिए उसे उसकी आँख खुली रखनी चाहिए। अर्थात् न तो अत्यन्त मुँदी हुई होनी चाहिए और न अत्यन्त फटी हुई। ऊपर-नीचे अथवा दाये-बाये दृष्टि नही होना चाहिए। बल्कि शान्त नासाग्र प्रसन्न व निर्विकार होनी चाहिए और इसीप्रकार मध्य व अधोभाग भी वीतरागता-प्रदर्शक होने चाहिए।[1]

जिन प्रतिमा के प्रमुख लक्षणो की सार्थकता बतलाते हुए धवलाकार **आचार्य वीरसेन स्वामी** लिखते हैं –

1 **निरायुध** होने से क्रोध मान माया, लोभ जन्म, जरा मरण, भय और हिंसा के अभाव का सूचक है। 2 **स्पन्दरहित नेत्र** दृष्टि होने से तीनो वेदो के उदय के अभाव का ज्ञापक है। 3 **निराभरण** होने से राग का अभाव। 4 **भृकुटीरहित** होने से क्रोध का अभाव। 5 गमन, नृत्य हास्य विदारण, अक्षसूत्र, 5 **जटामुकुट** और नरमुण्डमाला न धारण करने से मोह का अभाव। 6 **वस्त्ररहित** होने से लोभ का अभाव। 7 **अग्नि, विष,** अशनि और वज्रायुधादिको से बाधा न होने के कारण घातिया कर्मो का अभाव। 8 **कुटिल अवलोकन के अभाव से** ज्ञानावरण व दर्शनावरण का पूर्ण अभाव। 9 **गमन, प्रभामण्डल, त्रिलोकव्यापी सुरभि** से अमानुषता। इसकारण ऐसा शरीर राग-द्वेष एव मोह के अभाव का ज्ञापक है। (इस वीतरागता से ही उनकी सत्यभाषा व प्रामाणिकता सिद्ध होती है।)[2]

यहाँ यह प्रश्न सभावित है कि जिनप्रतिमा दिगम्बर ही बनाने का विधान समस्त आचार्यों ने क्यो किया?

तो इसका **समाधान यही है** कि चूँकि जिनेन्द्र परमात्मा निर्विकार दिगम्बर ही हुये है, अत उनकी प्रतिमा भी तदनुरूप बनाने का प्रावधान समस्त जैन एव जैनेतर ग्रथो मे प्राप्त होता है। यह कोई पूर्वाग्रह-प्रेरित कथन नही है, अपितु प्रमाणपुष्ट निष्पक्ष यथार्थ तथ्य की प्रस्तुति मात्र है। जैनेतरो के ग्रथो मे प्राय सर्वत्र ही जैन तीर्थंकरो एव अरिहतो को दिगम्बर ही माना गया है। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति लिखते हैं –

"ऋषभवर्द्धमानादि दिगम्बराणा शास्ता सर्वज्ञ आप्तश्चेति।"[26]

अर्थात् ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान महावीर-पर्यन्त चौबीसो तीर्थंकर दिगम्बरो के अनुशास्ता, सर्वज्ञ एव आप्तपुरुष थे।

वे जैनो को दिगम्बर के साथ साथ दिन मे ही अपनी जीवनचर्या करनेवाले बताते हैं – **आह्नीका दिगम्बरा** "[27]

अर्थात् जैन श्रमण दिगम्बर एव आह्नीक (दिन मे चर्या करनेवाले) होते है।

'वाल्मीकि रामायण' मे भी श्रमणो को दिगम्बर ही कहा गया है –

"श्रमणा दिगम्बरा श्रमणा वातवसना इति"[28]

अन्य वैदिक ग्रन्थो मे भी जैनो को दिगम्बर कहा गया है। यथा –

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्था निष्परिग्रहा।"[29]

अर्थ – जैनश्रमण नवजात बालक के समान निर्विकार दिगम्बर रूपवाले, निर्ग्रन्थ, निष्परिग्रही होते हैं। यहाँ तक कि **श्वेताम्बराचार्य हरिभद्रसूरि** ने भी जैनो का मूलरूप मे निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही माना है –

"निर्ग्रन्थ – एतेन मूलसघादि-दिगम्बरा।"[30]

अर्थ – 'निर्ग्रन्थ' इस शब्द से मूलसघ आदि दिगम्बर ही ग्रहण किये जाते है।

परम नास्तिक चार्वाको ने भी जैन श्रमणो को नग्न ही कहा है – **"नग्न श्रमणक-दुर्बुद्धे"**[31]

चूँकि नग्न-दिगम्बर रूप को परम मगलमय माना गया है, अत जैनश्रमण परममगलरूप नग्नता को ही अगीकार करते हैं।[32]

इसीलिए 'प्रतिमा' की पूज्यता को प्रमाणित करने के लिए इन्द्रनन्दि भट्टारक ने स्पष्ट कहा है कि "मूलसघ के अन्तर्गत

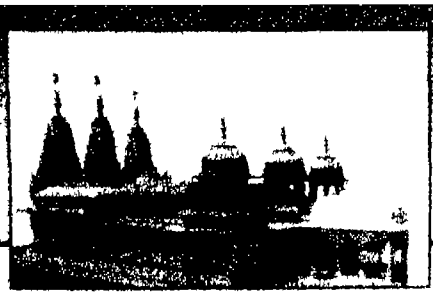

आनेवाले नन्दिसघ, सेनसघ, देवसघ और सिंहसघ – इन चार **सघो के अन्तर्गत प्रतिष्ठित** जिनबिम्ब ही नमस्कार करने योग्य है। **अन्य सघों के नही**, क्योकि वे न्याय, नियम से विरुद्ध है।'' चूँकि **उक्त चारो** सघ मूल दिगम्बर जैन-परम्परा के है अत इनकी **आम्नाय मे** प्रतिमा का भी निर्दोष स्वरूप सुरक्षित रहा है।

सन्दर्भ सूची

1 'बोध पाहुड' गाथा 8 की टीका।
2 शब्दकल्पद्रुम, भाग 3 पृष्ठ 258।
3 'दसणपाहुड' गाथा 35 की टीका।
4 'भगवती आराधना' गाथा 46 की विवृत्ति।
5 श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6/11।
6 ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य, 4/9 4।
7 वृहत्संहिता, 60 19।
8 'अनेकान्त' वर्ष 14 किरण 6 मे प्रकाशित 'हड़प्पा और जैन धर्म' शीर्षक लेख।
9 'पचत्थिकायसगहो' गाथा 160।
10 पद्मचरित्र, पर्व 14 पद्य 213।
11 'वरागचरित', 23 91।
12 'सुभाषितरत्नसदोह', शलोक 876।
13 'पदमनदि-पचविंशति' श्लोक 22।
14 'वसुनदि-श्रावकाचार' श्लोक 48।
15 द्र 'सागार धर्मामृत'।
16 द्र 'लाटीसंहिता'।
17 'भगवती आराधना' वि /47/160।
18 वही, 300/511।
19 'वृहत्संहिता' 58/45।
20 'मानसार' 55 45-46 पृष्ठ 365।
21 'चैत्यभक्ति' 12।
22 वही पृष्ठ 22।
23 द मुनिकातिसागर-प्रणीत 'खण्डहरों का वैभव' पृष्ठ 378।
24 द्र 'वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ' परि 4 श्लोक 1-74 तक।
25 द्र 'धवला' 9/4 1 44 107।
26 'न्यायबिन्दु' 3/31, पृ 126।
27 'प्रमाणवार्तिक', पृ 265।
28 रघुवार शरण डबरिस द्वारा सम्पादित कलकत्ता सस्करण मे।
29 ''परममागत्य नान्यमभ्युपगतस्य।'' – चारित्रसार पृ 110।
30 तैत्तिरीय उपनिषद 10/83, जाबालोपनिषद पृ 130।
31 'प्रशमरति प्रकरण', 8/42।
32 चार्वाकदर्शन 8 पृ 79।

जैन सस्कृति अहिसक सस्कृति है। यह अपनी अलग भाषा आचार, विचार और परम्पराये रखती है। यही बात शाकाहारी सस्कृति व अन्य सस्कृतियो मे भेद करती है। समयसार मे आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा कि सबसे पहले ज्ञान दीक्षा होनी चाहिए। अज्ञानी व्यक्ति कोई भी क्रिया सम्यक्रूप से नही कर सकता ज्ञान से ही त्याग सम्भव है। ज्ञान मे शान्ति है और ज्ञान से ध्यान की तरफ जाया जा सकता है। इसलिए जैन आचार्यो ने जीवन की आवश्यक विषयो पर अनेक शोधपरक ग्रन्थो का लेखन किया है।

आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

जयपुर शहर के दिगम्बर जैन मन्दिर

◦ बाबूलाल सेठी

जयपुर शहर जहाँ पुरातत्व की इमारतो, विशिष्ट सरचना एव गुलाबी रग क भव्य भवनो के कारण 'गुलाबी नगर' तथा 'भारत क परिस' क रूप म विख्यात है वहाँ जैन समाज की जनसख्या, राजाओ के शासन मे जैन दीवानो क वर्चस्व के कारण, उनक द्वारा तथा अनक अन्य श्रेष्ठियो द्वारा अनका विशाल कलात्मक मन्दिरो के निर्माण जिनमे सग्रहित दुर्लभ पाण्डुलिपियो, भट्टारको की गद्दी का स्थान तथा अनेक विद्वाना प टोडरमलजी, दौलतरामजी जयचन्दजी छाबडा सदासुखजी कासलीवाल, बख्तरामजी साह, थानसिह, प गुमानीरामजी ऋषभदासजी एव श्री पारसदास निगोत्या, स्वरूप चन्द बिलाला प चेनसुखदासजी आदि की कार्य स्थली तथा मन्दिरा मे नियमित शास्त्र सभाओ का आयोजन तथा विभिन्न सामाजिक एव सास्कृतिक क्रिया कलापो आदि के कारण इसे 'जैन नगरी' या 'जैनपुरी' के नाम से जाना जाता है।

जयपुर शहर की स्थापना 18 नवम्बर सन् 1727 ई को हुई और स्थापना के साथ ही यहाँ जैन मन्दिरो का निर्माण भी प्रारभ हो गया। शहर की चार दीवारी मे 61 जैन मन्दिरो का तथा 6४ चैत्यालयो का निर्माण हुआ। शहर के बाहर चारो दिशाओ स आनवाली मुख्य सडको पर यात्रियो के विश्राम एव दर्शन क लिय 12 नशिया मन्दिरो का निर्माण हुआ। उपनगरो क बसने क साथ ही वहाँ भी दर्शनो की सुविधा के लिये स्थानीय समाजो न मन्दिरो व चैत्यालयो का निर्माण प्रारम्भ किया जिनकी सख्या 51 तक पहुँच गयी है तथा निरन्तर नये नये मन्दिरो का निर्माण हो रहा है तथा बने हुये मन्दिरो मे भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन, परिवर्द्धन एव विकास कार्य हो रह है। उन सभी मन्दिरो का पूर्ण परिचय तथा चैत्यालयो की स्थिति तथा सक्षिप्त विवरण श्री दिगम्बर जैन मन्दिर महासघ द्वारा प्रकाशित 'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर परिचय, जयपुर' म उपलब्ध है।

इन मन्दिरो की विशालता, मनोज्ञ प्रतिमाओ, अनूठी कला-कृतियो एव दुर्लभ साहित्य सग्रह का जो एकबार दर्शन कर लेता है वह आनन्द विभोर होकर निर्माणकर्ताओ के चरण स्पर्श को आतुर हो जाता है। ये जैन सस्कृति की प्राचीनता, सास्कृतिक वैभव एव कला की गौरव गाथा का आभास कराते है तथा हृदय मे अत्यन्त उल्लास एव आत्मिक शान्ति प्रदान करते है।

दर्शनीय वस्तु को देखने का प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है। विभिन्न दृष्टिकोणो स कुल कितने मन्दिर दर्शनीय ह उनकी सख्या निम्न ह -

1	प्रतिमाओ	29 मन्दिर	4 चैत्यालय
2	शास्त्र भण्डार	19 मन्दिर	1 चैत्यालय
3	भित्ति, भावचित्रो	_4 मन्दिर	
4	अन्य कलात्मक वस्तुय निधिया	28 मन्दिर	
5	वेदियाँ	1? मंदिर	
6	यन्त्रो	15 मन्दिर	1 चैत्यालय

(मन्दिरो क नामो क विषय म जानकारी श्री दिगम्बर जैन मन्दिर महासघ स प्राप्त की जा सकती ह।)

मन्दिरो की विशालता उनमे निर्मित कलापूर्ण वेदियो तथा उनम विराजित प्रतिमाओ की प्राचीनता, मनोज्ञता भव्यता अतिशयता, प्राचीन एव दुर्लभ पाडुलिपियो का सग्रह (शास्त्र भडार), निर्मित अनेकानेक अन्य कलात्मक निधिया, चित्रित चित्ताकर्षक भाव (भित्तिचित्रो) यन्त्रो आदि की समग्र दृष्टि से निम्न मन्दिर दर्शनीय माने जाते है जिन्हे जैन एव जैनेतर, देशी एव विदेशी दर्शक अवलोकन कर भाव विभोर हो जाते है। मन्दिरो के नाम के आगे कोष्टक म अंकित सख्या उपर्युक्त प्रकाशन म जिस क्रमसख्या पर उस मन्दिर का पूर्ण परिचय उपलब्ध है दर्शाती है। अतएव विशेष जानकारी उस मन्दिर की विशेषता के सम्बन्ध म वहाँ स प्राप्त की जा सकती है। सक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जा रही है -

चौकड़ी घाट दरवाजा

1 मन्दिरजी ठोलियान (1) घीवालो का रास्ता, दूसरा चौराहा विशाल बिल्लौर की 4 प्रतिमाएँ, एक हर सगज की 512 हस्तलिखित ग्रथो का शास्त्र-भण्डार, सगमरमर का

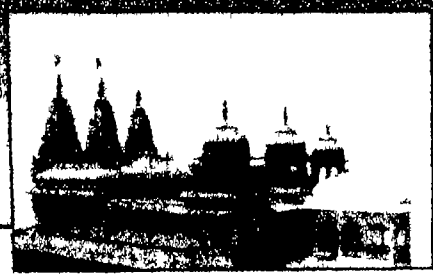

सुन्दर कार्य, स्वाध्याय के ग्रंथ विराजमान करने को कलापूर्ण खिड़कियाँ चित्ताकर्षक भाव भित्तिचित्र।

2 मन्दिर बधीचन्दजी साह (2)
घीवालो का रास्ता दूसरा चौराहा
विशाल गुम्बज मे भाव चित्रो पर सोने का बारीक काम भव्य समवशरण एव अकृत्रिम चैत्यालय रचना (टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक की तथा आत्मानुशासन की मूल प्रति) विशाल शास्त्र भण्डार मे 1278 हस्तलिखित ग्रंथ, अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ चारो तरफ की दीवारो पर सुनहरी भावचित्र काच की रतघडी।

3 गोधो का मन्दिर (4)
घीवालो का रास्ता नागोरियो का चौक
चौक मे प्रवेश द्वार पर सुन्दर पच्चीकारी सम्मेदशिखर का श्वेत संगमरमर का सुन्दर चित्रण, संगमरमर के स्तम्भ अत्यन्त कलापूर्ण है। रगीन पत्थर की कुराई एव उसमे मगल द्रव्य नियोजन बहुत बारीकी के साथ शास्त्र भण्डार मे 642 हस्तलिखित ग्रंथ मुख्य वेदी के पीछे संगमरमर के पत्थर पर सुन्दर चित्रण बड़ी संख्या मे यत्र।

4 दीवानजी का मन्दिर (10)
हल्दियो का रास्ता ऊँचा कुआँ
विशाल प्रवेश द्वार पर आकर्षक सम्मेदशिखरजी की रचना संगमरमर की वेदी के बाहर एव भीतर की दीवारो पर बारीक कलम के विभिन्न रगो से युक्त पाड्शिला पचकल्याणको के भाव चित्र, तीर्थक्षेत्र, जयपुर नगर हाथी घोडे विभिन्न प्रकार के बेल बूटे इन्द्र बने हुये है तथा पुराने होने पर भी नवीनता का आभास कराते है, बडे यन्त्र।

5 चन्द्र प्रभ जिनालय (प लूणकरणजी का) (13)
ठाकुर पचेवर का रास्ता
प्राचीन 850 हस्तलिखित ग्रंथ विशाल पद्मासन पद्मावती अतिशयपूर्ण अम्बिकादेवी ज्वालामालिनी की मूर्तियाँ, पूजाओ के मडल, चित्र।

6 मन्दिर बक्शीजी (14)
बक्शीजी का चौक
कमल की पाँच पखुड़ी मे प्रतिमा श्वेत पाषाण मे, गिरनार तथा सम्मेदशिखरजी का सुन्दर दृश्याकन व अन्य भाव भित्ति चित्र पचमेरू व नदीश्वर द्वीप की सुन्दर रचनाएँ।

7 मन्दिर मशरफान् (15)
हल्दियो का रास्ता
सहस्त्रफनी पार्श्वनाथ की मनोहारी प्रतिमा, श्वेत पाषाण मे पचकल्याण व सम्मेदशिखर के अश तराश कर अकित, सुन्दर स्वर्ण चित्रकारी।

8 मन्दिर चाकसू (17)
चाकसू का चौक
विशाल, बीसपथी आम्नाय का पचायती मन्दिर चौक मे तीन प्रवेश द्वार पर कलापूर्ण सुन्दर कुराई का काम शास्त्र भण्डार मे 250 हस्तलिखित ग्रंथ। मकराने पर सुन्दर कार्य।

9 मन्दिर चौबीस महाराज (21)
मानसिंह भोमिया का रास्ता
तलघर मे एक ही आकार की विशाल पद्मासन 24 तीर्थकरो की प्रतिमाएँ।

10 मन्दिर तेरहपथियान बडा (23)
हल्दियो का रास्ता
तेरहपथी आम्नाय का पचायती मन्दिर विशाल 2 विशाल शास्त्र भण्डार जिसमे कलापूर्ण चित्रवाले अनेको हस्तलिखित ग्रंथ, विशेष तत्त्वार्थ सूत्र की स्वर्णाक्षरी प्रति भक्तामर स्तोत्र एव त्रिलोकसार सचित्र बारीक अक्षरो मे बारीक स्वर्ण की स्याही की कारीगरी एव पच्चीकारी चित्ताकर्षक भाव भित्ति चित्र।

11 मन्दिर पार्श्वनाथजी का (25)
चौकड़ी रामचन्द्रजी खवासजी का रास्ता
विशाल मनोज्ञ एव अतिशयपूर्ण भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा शास्त्र भण्डार काच की कटाई के सुन्दर भित्ति-चित्र कथा चित्र।

12 मन्दिर कालाडेरा (महावीर स्वामी) (28)
गोपालजी का रास्ता
विशाल अतिशयपूर्ण मनोज्ञ भगवान महावीर की खडगासन प्रतिमा, मुख्यद्वार कलापूर्ण जिसमे दोनो ओर बारीक कारीगरी से उकेरे हुये हाथी एव देव विमान, मकराने मे तीन लोक, सम्मेदशिखरजी के भाव जिनमे सोने का काम, लकडी के भव्य बडे इन्द्र एव ऐरावत हाथी, चाँदी के किवाडो पर 16 स्वप्न चित्रित।

13 मन्दिर यति यशोदानन्दजी (29)
चौडा रास्ता
कलापूर्ण वेदी, भाव-भित्ति चित्र एव शास्त्र-भण्डार।

चौकड़ी मोदीखाना

14 मन्दिर मघीजी (30)
महावीर पार्क के पास
विशाल, कलापूर्ण वेदी, प्राचीन कलापूर्ण प्रतिमाएँ, विजय यत्र, भाव-भित्ति चित्र।

15 मन्दिर कालो का (32)
प शिवदीनजी का रास्ता
तलघर म पार्श्वनाथ की सहस्रफणी भव्य प्रतिमाएँ, तीन शिखर की कलापूर्ण वदी, भाव-भित्ति चित्र यत्र

16 मन्दिर बड़ा दीवानजी का (42)
मनिहारो का रास्ता
विशाल चौक पद्मासन मनोज्ञ प्रतिमाएँ भाव भित्ति चित्र।

17 मन्दिर पाटोदी (43)
मनिहारो का रास्ता
विशाल बीस पथी पचायती मन्दिर, मनोज्ञ प्रतिमाएँ, विशाल शास्त्र भण्डार, कलापूर्ण आकर्षक भाव भित्ति चित्र, प्रवेश द्वार की छत्री क नीच कलापूर्ण तोरण।

18 मन्दिर लश्करजी (44)
प चनसुखदास मार्ग
विशाल, मनोज्ञ, विशाल शास्त्र-भण्डार, आकर्षक भाव-भित्ति चित्र।

19 मन्दिर छोटे दीवानजी (46)
लालजी साड का रास्ता
विशाल चन्द्र प्रभु की मनोज्ञ प्रतिमा विशाल शास्त्र-भण्डार दीवारो के तैल-चित्र।

20 मन्दिर सिरमौरियो का (49)
आचार्यों का रास्ता
तलघर मे विशाल पद्मासन एव खडगासन मनोज्ञ प्रतिमाएँ, तीन शिखर की कलापूर्ण वेदी, निर्माण शैली पत्थर की कुराई, सुन्दर पच्चीकारी के नमूने, गुलाब की फूल-पत्तियाँ सुन्दर ढग से, एक फूल का आकार दूसर से नहीं मिलता।

हवाली शहर

21 दिगम्बर जैन नशियाँ भट्टारकजी (67)
रामबाग रोड, नारायण सिह चौराहा
विशाल मनोहारी उद्यान, मकराने म निर्मित वदी मे पच्चीकारी का सूक्ष्म कलापूर्ण काम, तीन कलापूर्ण विशाल भट्टारको क चरण-चिह्न युक्त छत्रियाँ जिनमे कायोत्सग मुद्रा म पिच्छी-कमडल सहित मुनियो क कलापूर्ण चित्र, विशाल सभा भवन जैनविद्या सस्थान म पाडुलिपियो का भण्डार।

22 सीमधर जिनालय (69)
टोडरमल स्मारक भवन गाँधी नगर
विशाल सभा गृह - सभा गृह की छत पर तीन खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमाये उनके निर्वाण स्थल की प्रतिकृतियो पर सीमधर भगवान की प्रतिमा।

23 दिगम्बर जैन मन्दिर मुलतान समाज (71)
आदर्श नगर
भव्य मानस्तम्भ कलापूर्ण 12 फुट लम्बी बिना स्तम्भ की वेदी महत्वपूर्ण ग्रथो का सुव्यवस्थित शास्त्र भण्डार दर्शनीय विशाल मूर्ति काच मे खड़ी हुई।

24 राणाजी की नशिया (81)
खानियाँ, जयपुर आगरा राष्ट्रीय मार्ग
मान की छपाइ का सुन्दर मनोहारी कलापूर्ण काय भित्ति चित्रो म महीन कलम का काम अनोखा यत्र कलापूर्ण रथ व इन्द्र, वीरसागरजी महाराज का सगमरमर की चरण छत्री।

25 अतिशय क्षेत्र श्री पार्श्वनाथ चूलगिरी (82)
भगवान पार्श्वनाथ की मनोज्ञ अतिशय पूर्ण प्रतिमा, 20 फुट की भगवान महावीर की खड्गासन प्रतिमा, 28 घुमटियो मे तीर्थंकरो की 24 प्रतिमाएँ तलघर मे खड्गासन 24 तीर्थंकरो की प्रतिमा विजय यत्र।

उपर्युक्त मन्दिर विशालता भव्यता, खड्गासन/पद्मासन, मनोज्ञ अतिशयपूर्ण प्रतिमाओ कलापूर्ण वेदियो, चित्ताकर्षक भित्ती-चित्रो, सगमरमर तथा अन्य पत्थरो क कुराई का कार्य, प्राचीन एव दुर्लभ पाण्डुलिपियो, ताडपत्रियो, ग्रथो के सग्रह आदि अनेक दृष्टि से दर्शनीय है। साराश मे ये जिनालय जैन सस्कृति के भण्डार हैं, जो अपनी गौरव गाथा स्वय प्रदर्शित करते है।

937 सेठी भवन, चौडा रास्ता, जयपुर

राजस्थान के दिगम्बर जैन तीर्थ

• महेन्द्र कुमार पाटनी, जयपुर

राजस्थान दिगम्बर जैनो का प्रमुख गढ है। यहाँ पर काफी सख्या मे जिनालय व चैत्यालय है बहुत से स्थान अतिशय क्षेत्र के रूप मे विख्यात है। श्री महावीरजी का तो सभी अतिशय क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्री महावीरजी के अतिरिक्त भी राजस्थान मे काफी सख्या मे अतिशय क्षेत्र है जिनके बारे मे सामान्य जानकारी निम्न प्रकार है

चमत्कारजी दिल्ली मुम्बई मेन लाइन पर सवाई माधोपुर रेलवे स्टेशन से शहर की ओर जाने वाली सडक पर करीब 5 कि मी पर आलनपुर नामक ग्राम मे यह अतिशय क्षेत्र स्थित है। मुख्य वेदी पर भगवान आदिनाथ की करीब 6 " ऊँची स्फटिक मणी की प्रतिमा विराजमान है। वि सवत् 1889 मे यह प्रतिमा एक किसान को हल जोतते समय प्राप्त हुई थी। जिस स्थान पर प्रतिमाजी निकली थी वहाँ भगवान के चरण बने हुए है। यहाँ के मंदिर का जीर्णोद्धार हो चुका है तथा काफी सख्या मे यात्रियो के लिए अच्छे सुविधायुक्त कमरे बने हुए है।

खडार सवाई माधोपुर शहर से करीब 25 कि मी दूर खडार का किला है। यहाँ पहाड पर एक प्राचीन जिन मन्दिर है। पहाड की चट्टान पर चार प्रतिमाएँ उकेरी हुई है जिनकी अवगाहना 1 5 मीटर है। इन मूर्तियो का विक्रम सम्वत् 20 से 30 तक का बताया जाता है।

केशवराय पाटन मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र केशवरायपाटन बूँदी जिले मे चम्बल नदी के सुरम्य उत्तरी तट पर स्थित है। यह क्षेत्र पश्चिमी रेलवे के दिल्ली मुम्बई खण्ड पर कोटा से 14 कि मी तथा बूँदी से 43 कि मी दूर स्थित है। मूलनायक भगवान मुनिसुव्रतनाथ की 4 फुट 5 इन्च ऊँची कृष्ण वर्ण की पद्मासन मूर्ति भोहँरे मे विराजमान है। यह मूर्ति मौर्य और कुशाण काल के मध्यवर्ती काल की बताई जाती है। यह मूर्ति अत्यन्त अतिशय युक्त है। आजकल इस मंदिर का नया रूप दिया जा रहा है। क्षेत्र पर नल बिजली युक्त धर्मशाला है। यही पर नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने लघु व बृहद् द्रव्य सग्रह की रचना की थी।

चाँदखेडी यह अतिशय क्षेत्र पश्चिमी रेलवे के दिल्ली-मुम्बई खण्ड पर झालावाड रोड स्टेशन से 62 कि मी तथा बीना कोटा लाइन पर अटरू स्टेशन से 35 कि मी दूर है। कस्बे का नाम खानपुर है। भगवान आदिनाथ की मूलनायक प्रतिमा विशाल तल प्रकोष्ठ मे स्थित है। इस प्रतिमा का सन् 512 की माना जाता है। भगवान की यह प्रतिमा 6 फीट 3 इन्च ऊँची और 5 फीट 5 इच मोटी है। भगवान की प्रतिमा के दर्शन करते ही मन मे शांति व वीतरागता के भाव पैदा होते है। इसी तल प्रकोष्ठ मे एक और अष्ट प्रातिहार्य युक्त भगवान महावीर की स 1143 की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा भी अत्यन्त मनोज्ञ एवम् आकर्षक है। क्षेत्र पर बिजली व पानी युक्त बहुत बडी धर्मशाला है।

झालरापाटन श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र झालरापाटन मे स्थित है। यह पश्चिमी रेलवे के दिल्ली-मुम्बई मेन लाइन पर झालावाड रोड से 28 कि मी दूर स्थित है। यहाँ भगवान शांतिनाथ का विशाल मंदिर बना हुआ है। इसमे मूलनायक भगवान शान्तिनाथ की 12 फुट ऊँची अत्यन्त सौम्य व मनोज्ञ खडगासन प्रतिमा विराजमान है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा सन 1103 मे हुई थी। मूर्ति के दर्शन से मन मे अपूर्व शांति की धारा प्रवाहित होने लगती है। मन्दिर के द्वार पर दो विशाल हाथी बने हुए है। यहाँ पर हस्तलिखित ग्रन्थो का विशाल शास्त्र भण्डार भी है। मंदिर मे काफी सख्या मे मूर्तियाँ है। नगर मे एक दिगम्बर जैन धर्मशाला भी है।

बिजोलिया यह क्षेत्र भीलवाडा जिले मे स्थित है। यह कोटा से बूँदी होते हुए 85 कि मी , भीलवाडा से माडलगढ होते हुए 85 कि मी , नीमच छावनी से करीब 100 कि मी है। बिजोलिया का अतिशय क्षेत्र बिजोलिया शहर के दक्षिण-पूर्व मे स्थित है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा वि स 1226 फाल्गुन कृष्ण 3 को हुई थी।

गर्भगृह म वेदी पर मध्य मे 6 फुट 4 इच ऊँची पाषाण की एक शिखराकृति है। शिखर मे एक द्वाराकृति बनी है। शिखर की द्वाराकृति पर 24 तीर्थकर मूर्तियाँ तथा मध्य मे पार्श्वनाथ मूर्ति उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र के चमत्कार की अनेक कथाएँ प्रचलित है। बहुत लोग यहाँ भक्ति भाव से मनौती मनाने आते है। यहाँ पर कई शिलालेख भी है। जिनमे उस समय के शासको - क्षेत्र की स्थापना - प्रतिष्ठा करानेवाले, प्रतिष्ठाचार्य तथा भट्टारको के सम्बन्ध म जानकारी उत्कीर्ण ह। क्षेत्र पर विद्युत-पानी की सुविधा युक्त धर्मशाला है।

चँवलेश्वर पार्श्वनाथ श्री चँवलश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र भीलवाडा जिले म भीलवाडा स 45 कि मी दूर स्थित है। देवली छावनी से जहाजपुर पादोली होते हुए भी यहाँ पहुँचा जा सकता है। क्षेत्र छोटी-सी पहाडी पर है। 256 सीढियाँ चढकर कुछ दूर कच्ची सडक पर चलन पर क्षेत्र है। यहाँ धर्मशाला बनी हुई है। यहाँ से 110 सीढियाँ चढन पर मदिर आता है। मदिर का शिखर दूर से ही दिखाइ देता है। बडा ही मनोरथ स्थान है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ है। इनक दायीं ओर भव्य चौबीसी है। इस मूर्ति के अतिशय की अनेक कथाएँ पर्चालित है।

बमोतर शातिनाथ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र शातिनाथ, चित्तौडगढ जिले क प्रतापगढ स 5 कि मी दूर बमोतर गाँव म स्थित है। रलवे स्टेशन मदसौर है। मदसौर स बमोतर 37 कि मी दूर है। क्षेत्र पर भगवान शातिनाथ की 5 फुट ऊँची और 4 फुट 2 इच चौडी कृष्णवर्ण पद्मासन भव्य मूर्ति विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा सवत् 1902 फाल्गुन कृष्ण 1 को हुई थी। मूर्ति काफी चमत्कारी है। क्षेत्र पर धर्मशाला है जिसम बिजली व पानी की सुविधा है।

ऋषभदेव केशरियाजी केशरियाजी उदयपुर जिले मे उदयपुर नगर स 65 कि मी दूर स्थित है। ग्राम का नाम धुलेव है। मूलनायक प्रतिमा भगवान ऋषभदेव की है। यह प्रतिमा श्यामवर्ण की है तथा पद्मासन मुद्रा मे विराजमान है। इसकी अवगाहना साढे-तीन फुट की है। चरणचौकी पर 16 स्वप्न अंकित हैं। खेला मंडप की दीवालो मे आमने-सामने दो शिलालेख उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त अन्य शिलालेख भी है। मदिर बहुत ही विशाल व कलात्मक है। क्षेत्र पर भट्टारक यशकीर्ति गुरूकुल है। जहाँ भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा भूगर्भ से प्रकट हुई थी वहाँ छतरी व पाषाण के चरण बने हुए है।

नागफणी पार्श्वनाथ यह अतिशय क्षेत्र ऋषभदेव केशरियाजी से 50 कि मी दूर है। मदिर तक जाने के लिए 50 सीढियाँ चढनी पडती है। जहाँ से सीढियाँ प्रारम्भ होती है वही पर एक जलकुड है जिसका जल अभिषेक व पीने के काम आता है। मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है जो काफी प्राचीन है। प्रतिमा का वर्ण श्याम है। अवगाहना 2 फीट 2 इच की है। प्रतिमा की चरणचौकी क ऊपर कोई लेख नही है। यह प्रतिमा नागफणी पार्श्वनाथ के नाम से विख्यात है। मदिर के दोनो ओर धर्मशाला बनी हुइ है। बहुत ही सुन्दर व मनोज्ञ स्थान है।

अन्देश्वर पार्श्वनाथ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अन्देश्वर पार्श्वनाथ बासवाडा जिले की कुशलगढ तहसील मे स्थित है। क्षेत्र एक छोटी-सी पहाडी पर स्थित है। पश्चिमी रलवे क उदयगढ स्टेशन स 50 कि मी है दोहद स 50 कि मी कुशलगढ से 15 तथा कलिजरा स 8 कि मी है। क्षेत्र सघन वन क बीच मे स्थित है। बहुत ही सुन्दर स्थान है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की 1 फुट 8 इच ऊँची कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है। इस मूर्ति के ऊपर कोइ लेख नही ह। मूर्ति इसी स्थान पर निकली थी। क्षेत्र पर धर्मशाला है। पानी व बिजली की सुविधा नही है। मदिर के बाहर मैदान म चौबीसी मदिर का निर्माण हो रहा है।

बघेरा श्री शातिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बघेरा ककडी स 17 कि मी व अजमेर स 97 कि मी है। यहाँ पर समय समय पर प्राचीन मूर्तियाँ भूगर्भ से निकलती रही है। प्राचीन काल म बघेरा जैन धर्म का केन्द्र था। यहाँ से अभी तक जितनी भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई ह व 11वी स 13वी शताब्दी तक की है। ज्यादातर मूर्तियाँ पद्मासन मुद्रा की ह। श्री शातिनाथ मदिर की मूल नायक प्रतिमा क नाम से ही इस अतिशय क्षेत्र कहा जाता है। भूगर्भ से निकली प्रतिमाएँ यही पर विराजमान की गई ह। शातिनाथ की प्रतिमा 8 इच - 9 इच अवगाहना की है। यह भी भूगर्भ स निकली थी। ग्राम के बाहर पार्श्वनाथ टेकरी है जहाँ शिलाओ म उत्कीर्ण पार्श्वनाथ मूर्तियाँ हैं।

सरवाड - आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सरवाड अजमेर कोटा मार्ग पर अजमेर से 60 कि मी दूर है। मदिरजी मे

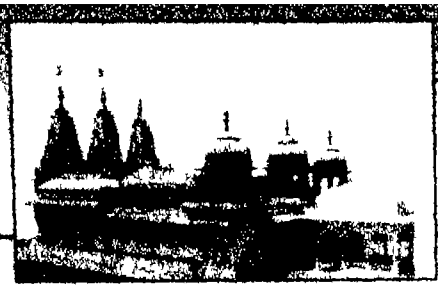

भगवान आदिनाथ की अत्यन्त मनोज्ञ श्वेत-पाषाण की प्राचीन पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इस मंदिर का निर्माण सातवीं-आठवीं शताब्दी का माना जाता है। ठहरने के लिए पूर्ण सुविधा युक्त धर्मशाला है।

मौजमाबाद श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मौजमाबाद जयपुर-अजमेर राष्ट्रीय मार्ग नं 8 पर दूदू से 11 कि मी दूर स्थित है। मंदिर का निर्माण विक्रम संवत् 1664 में श्री नानू गोधा ने करवाया था। वे आमेर के महाराजा मानसिंह प्रथम के मंत्री थे। मंदिर में तीन कलापूर्ण शिखर हैं। मूल नायक भगवान आदिनाथ की विशाल एवं भव्य पद्मासन प्रतिमा वहाँ पर विराजमान है। यहाँ प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का विशाल शास्त्र भण्डार है। यहीं पर आचार्य ज्ञानकीर्ति ने संस्कृत में यशोधरचरित काव्य की रचना की थी।

नरेना नरेना जयपुर जिले में पश्चिम रेलवे के फुलेरा जंक्शन से 11 कि मी दूर है तथा दूदू से 14 कि मी दूर है। नरेना में दो दिगम्बर जैन मंदिर हैं। यहाँ एक बहुत ही सुंदर सरस्वती की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो श्वेत वर्ण की है तथा संवत् 1102 की प्रतिष्ठित है। यहाँ के दोनों मंदिरों में अधिकांश मूर्तियाँ खुदाई में प्राप्त हुई हैं। अभी कुछ वर्षों पूर्व भी बहुत ही कलात्मक तीर्थंकर प्रतिमा खेत में प्राप्त हुई थी। जैन पुरातात्विक सामग्री के कारण नरेना का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। ठहरने हेतु अच्छी दिगम्बर जैन धर्मशाला है।

लूणवाँ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र लूणवाँ नागौर जिले में साभर व रेनवाल के मध्य स्थित है। जयपुर से यह 80 कि मी दूर है। विक्रम संवत् 1984 में यहाँ श्री चन्द्र प्रभु व श्री शांतिनाथ की प्रतिमाएँ भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। दोनों प्रतिमाएँ बहुत ही चमत्कारी हैं तथा अत्यंत सुन्दर हैं। मंदिर काफी विशाल है। मंदिर के पास ही धर्मशाला है। यात्रियों के लिए शुद्ध भोजन की व्यवस्था भी है।

टेहरा तिजारा श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र तिजारा अलवर जिले में स्थित है। यह अलवर से 53 कि मी है। सन् 1956 में यहाँ भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत मूर्ति खुदाई में प्राप्त हुई। मूर्ति की प्रतिष्ठा वि सं 1554 वैशाख सुदि 3 को हुई थी। मूर्ति बहुत ही अतिशयकारी है। लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। बहुत ही सुन्दर विशाल मंदिर का निर्माण हो गया है। बहुत ही सुन्दर सुविधायुक्त धर्मशाला भी बनी हुई है।

चूलगिरी यह क्षेत्र जयपुर-आगरा सड़क पर जयपुर से करीब 4 कि मी दूर खानियाँ में स्थित है। पहाड़ पर स्थित यह तीर्थ प्राकृतिक दृश्यों की दृष्टि से बहुत ही धनी है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की सात फुट ऊँची श्यामवर्ण-पाषाण की खड्गासन प्रतिमा है। भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा भी यहाँ विराजमान है। ऊपर ठहरने की भी सुन्दर व्यवस्था है। पहाड़ पर जाने के लिए कमरों की ओर से मामूली शुल्क पर वाहन उपलब्ध है। पहाड़ पर स्थित इस तीर्थ के चारों ओर पर्वतमाला फैली हुई है। यहाँ का दृश्य बहुत ही नयनाभिराम है।

पदमपुरा (बाड़ा) पद्मपुरा जयपुर जिले में जयपुर शहर से 33 कि मी जयपुर टोंक सड़क पर शिवदासपुरा से 5 कि मी दूर स्थित है। जयपुर सवाई माधोपुर रेलवे लाईन के शिवदासपुरा स्टेशन से 6 कि मी दूर है। यहाँ भगवान पद्मप्रभु की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा वि संवत् 2001 में भूगर्भ से खुदाई के दौरान प्राप्त हुई थी। मंदिर व इसका गुम्बज बहुत ही कलात्मक है। मंदिर गोलाकार है। गुम्बज भूमि से 85 फुट ऊँचा है। कुछ वर्षों पूर्व क्षेत्र पर भगवान पद्मप्रभ की विशाल खड्गासन प्रतिमा भी प्रतिष्ठित करवाई गई है। क्षेत्र पर भोजनशाला नियमित रूप से चलती है। यात्रियों के ठहरने की बहुत अच्छी व्यवस्था है। मानस्तम्भ व मुख्य दरवाजा निर्माणाधीन है।

चित्तौड़ पश्चिमी रेलवे की अजमेर खंडवा खंड पर अजमेर से 189 कि मी दूर है उदयपुर से 117 कि मी है तथा दिल्ली से उदयपुर जाने वाले रेल मार्ग पर 630 कि मी है। यहाँ बहुत ही विख्यात ऐतिहासिक किला है। किले में 75.5 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ बना हुआ है। यह सात मंजिला है तथा शिल्पकला का अनुपम उदाहरण है। चारों कोनों पर तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की विशाल खड्गासन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ लगी हुई हैं। पूर्व में चित्तौड़ जैन धर्म का प्रभावशाली केन्द्र था।

खण्ड : III

धर्म, दर्शन एवं परम्परा

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पेज न
1	महाश्रमण महावीर की धर्म-क्रान्ति	विद्यावारिधि डॉ महेन्द्र सागर प्रचंडिया	III/1
2.	भगवान महावीर का दर्शन	डॉ राजीव प्रचण्डिया	III/3
3	अनेकान्तवाद - सत्य से साक्षात्कार	प्रोफेसर (डॉ) प्रेम सुमन जैन	III/7
4.	पर्यावरण के संरक्षण में धर्म की महत्ता	कमल चन्द सौगानी	III/11
5.	कर्म सिद्धान्त	प्रकाश चन्द्र सखी	III/13
6.	काल के गाल पर समाधा	सजय झाला	III/19
7.	अहिंसा : एक विचार	नवीनकुमार बज	III/20

महाश्रमण महावीर की धर्म-क्रान्ति

• विद्यावारिधि डॉ महेन्द्र सागर प्रचंडिया

महाश्रमण महावीर विश्वात्मा के प्रतिनिधि थे। उनका जीवन अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान अनन्त सुख और अनन्त वीर्य बल से सम्पृक्त था। वे जागतिक मोह-पाश मे कभी नही घिर, निरन्तर उघरते ही गए। उन्होने ममता की दीवार कभी खडी नही की, समता के द्वार अवश्य खोले जहाँ से सत्य, अहिसा, अचौर्य अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का आलोक आकीर्ण होता है।

मात्र धर्म परम्परा और आध्यात्मिक तत्त्व बोध का पोषण करने के लिए महावीर के कदम नही उठे अपितु अविभक्त और अखण्ड जीवन-दर्शन के लिए उनके कदम उठे और उठते ही रहे। उनकी धर्म क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति का प्राय आन्दोलित करती है। धर्म टेकदारो की ठसक मे नही धर्म किसी जाति सम्प्रदाय विशेष की बपौती नही, अपितु ससार के प्रत्यक पदार्थ के स्वभाव म धर्म विद्यमान रहता है। जो इस सत्य का आत्मसात् करत है वे ही इसे सहज रूप मे स्वीकारते है।

तीर्थकर महावीर की धर्म क्रान्ति व्यक्ति विशेष और भाषा विशेष के बँधना का तोडती है। सामाजिक सूत्र म बहिष्कृत, गिर मनुष्यो को उनकी धर्म क्रान्ति धार्मिक सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है। उनकी दृष्टि मे धर्म भाषा विशेष म नही अपितु भाव प्रदेश से उत्पन्न आस्था मे निहित है, जिसका विकास अभिव्यक्ति म नही, अपितु अनुभूति म होता है।

उनके क्रान्तिकारी कदम अनक विकृतियो का परिष्कार कर सस्कृति का प्रवर्तन करते है। शताब्दियो से सामाजिक बधनो मे जकडी मातृ जाति को वे मुक्ति दिलाते है। उनकी समुचित उन्नति के लिए विकासपथ को निर्बाध और निरापद करते है।

मानव-जाति का कलक दास-प्रथा के उन्मूलनार्थ वे श्रम और स्वावलम्बन के सस्कारो का प्रवर्तन करते है ताकि उनमे धार्मिक, नैतिक और सामाजिक सस्कार जैसी उदात्त भावनाओ का सचार हो उठे। उन्होने स्वय पद-दलित और प्रताडित दास-दासियो के निर्दोष हाथो से आहार ग्रहण कर उनमे विश्वास की अलख जगाई। जन्म जात और कुलीन कुल के श्रेष्ठत्व के दावे को निर्मूल कर उद्घोष किया कि जन्म की अपेक्षा प्राणी कर्म से महान बनता है। कर्म की कमनीयता सद्गुणो मे परिपुष्ट होती है।

भगवान् महावीर के क्रान्तिकारी कदम लोक मे अभिव्याप्त अनेक अध विश्वासो का उच्छेदन करत है। प्रत्येक प्राणी स्वय कर्म करता है। वह अपन कर्म का स्वय कत्ता होता ह और होता है अपन कम फल का स्वय भाक्ता। अपने ही कर्म कौशल के बलबूत पर प्रत्येक आत्मा अनन्त परमात्मा बन सकता है। आत्मोदय के लिए प्रत्यक क लिए द्वार खुले है। वे मात्र व्यक्ति-उदय अथवा वर्गोदय मे विश्वास नही करते अपितु उनकी आस्था सर्वोदय मे मुखर थी। ससार मे इससे व्यापक और विराटमुखी स्वतत्रता और क्या हो सकती है? वर्ग-विहीन, शोषण मुक्त समाज की स्थापना म आज की राजनैतिक दृष्टि भगवान महावीर की वैचारिक क्रान्ति क अनुरूप सक्रिय है किन्तु इस उत्थान मे सयम के सस्कार जगाना भी आवश्यक है।

महाश्रमण महावीर क क्रान्तिकारी कदम वैचारिक द्वद द्वेष को शान्त और शमन करने क लिए अनेकान्त जैसे सिद्धान्त का प्रवर्तन करत है। उन्होन लोक का ध्यान आकर्षित किया कि ससार के प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त गुण अर्थात् धर्म स्वभाव विद्यमान ह। उन सभी स्वभावो को एक साथ न तो छद्मस्थ मानव द्वारा जाना ही जा सकता है और न ही उसका बखान सभव है। ऐसी स्थिति मे एकबार मे उसके एक ही लक्षण-धर्म का उजागरण हो पाता है। कथयिता की अपेक्षा से यदि उसक अर्थ – अभिप्रेत का ग्रहण किया जाय तो समाज मे सघष के लिए कोई सम्भावना शेष नही रहती।

भगवान् महावीर ने कहा कि श्रावक को (न्यायोपाम) पदार्थ के सग्रह करने मे परहेज करना चाहिए। उस तो पदार्थ के उपयोग

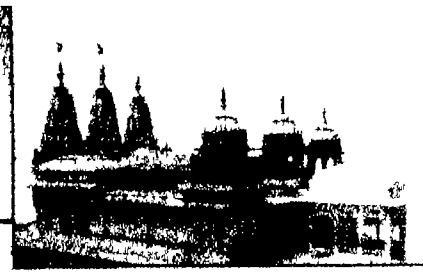

पक्ष को परिपुष्ट करना चाहिये। सम्यक श्रमसाधना से उपयोग की शक्ति-सामर्थ्य उत्पन्न होती है। उपयोग जब शुभ उपयोग में परिणत होता है तब पदार्थ का अर्जन विसर्जन के द्वार खोल देता है। इस प्रकार जीवन में दान के संस्कार जन्म लेते हैं।

शील को मोक्ष का सोपान कहा गया है। आज के समाज में कुशील का वातावरण व्याप्त हो रहा है। भगवान महावीर ने कहा कि हमारी चर्या मदों से अनुप्राणित है, फलस्वरूप हमारे भीतर चित्त अनेक हैं पर चेतना तो एक जैसी ही है। चित्त की अनेकता जब एकता में परिणत होती है, तब जीवन में समत्व का संचार होता है। इसीलिए भगवान महावीर के क्रान्तिकारी कदम प्रत्येक प्राणी में अपनी जैसी आत्मा का अवबोध कराते हैं। बोध होने पर बुराई दुहराई नहीं जाती। ऐसी स्थिति में कुशील की भावना खोखली होकर शील का संचार कर सकती है।

तीर्थंकर महावीर ने स्पष्ट किया कि इन्द्र शब्द का एक अर्थ है आत्मा। आत्मा का परिचायक होता है इन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ जब अनियंत्रित हो जाती है तब वे अपने अनुरूप चेतना को सक्रिय होने के लिए बाध्य करती हैं और तब परिणाम होता है वासना और जब आत्मा अपने अनुसार इन्द्रियों का कर्म करने के लिए बाध्य करती है तब परिणाम होता है उपासना।

आज का मानव समुदाय और समाज हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रही प्रवृत्तियों से अनुप्राणित और आक्रान्तित है। चारों ओर घोर अशान्ति, भय, पीड़ा और असन्तोष का वातावरण व्याप्त है। इस भयावह परिस्थिति से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है भगवान महावीर के क्रान्तिकारी कदमों का अनुसरण करना। यदि हम भगवान् महावीर न बन सकें तो कम से कम हम उनके अनुयायी बन कर अपने जीवन को सुखी और समृद्ध अवश्य बनायें।

इत्यलम्।

मंगल कलश

394 सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़ 202 001

अब हम अमर भये न मरेंगे।
तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों करि देह धरैंगे।।

उपजे मरे कालतै प्रानी, तातै काल हरैंगे।
राग-दोष जग बंध करत है, इनको नाश करैंगे॥ १॥

देह विनाशी मैं अविनाशी, भेदज्ञान पकरैंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरैंगे॥ २॥

मरे अनन्तबार बिन समझे, अब सब दुःख बिसरैंगे।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरे सुमरैंगे॥ ३॥

अब तो हम अमर हो गये हैं, मरेंगे नहीं। (हमने अब) शरीर धारण करने का जो (मूल) कारण है मिथ्यात्व (असत्य श्रद्धान) उसे छोड़ दिया है, तो फिर शरीर धारण क्यों करेंगे? मृत्यु के कारण प्राणी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, (हम) उसी मृत्यु को नष्ट कर देंगे। संसार के प्राणी राग-द्वेष का बंध करते हैं (हम) तो इनका (राग-द्वेष का) भी नाश कर देंगे। शरीर तो विनाशी है किन्तु मैं अविनाशी हूँ, हम यह भेद ज्ञान ग्रहण करेंगे। शरीर नश्वर है, वह तो नष्ट हो जायगा, चला जायगा किन्तु हम स्थिर आत्मा में वास करनेवाले हैं, इसलिए निष्कलंक होकर निर्मल बनेंगे। बिना समझे हुए हम अनन्त बार मरे हैं किन्तु अब तो सब दुःखों को दूर करेंगे। द्यानतरायजी कहते हैं कि केवल दो अक्षर (सोहं) हमारे बिल्कुल निकट हैं, (उन्हें) हम बिना प्रयास के स्मरण करेंगे।

भगवान महावीर का दर्शन

• डॉ राजीव प्रचण्डिया

भगवान महावीर का दर्शन आत्मवादी है। उनकी दृष्टि मे ससारचक्र का अस्तित्व ही आत्मा पर अवलम्बित है। आत्मा जब तक कर्म-कषायो से आच्छादित/आवरित रहती है तब तक वह जन्म मरण के दारुण दु खो को भोगती हुई विभिन्न यानियो-गतियो मे ससारचक्र का परिभ्रमण करती है, किन्तु जब यही आत्मा इन कर्म कषायो से अनावरित हो जाती है तब वह अपने शुद्धस्वरूप-स्वभाव अर्थात् अनन्तचतुष्टयमय होती है। ऐसी स्थिति मे वह जन्म मरण के बन्धनो से सदा सदा के लिए मुक्त विमुक्त हो जाती है। अस्तु, अनन्तचतुष्टय अर्थात् कर्म से निष्कर्म होने की साधना को ही भगवान महावीर ने साथक माना है।

भगवान महावीर ने आत्मसाधना पर बल दिया। उनकी धारणा थी कि साधना मे जो भी क्रिया होगी, वह सार्थक होगी। जो परिणाम आएगा वह भी सार पूर्ण होगा। भगवान महावीर ने सबसे पहिले अपनी जीवन धारा को बहिर्जगत से अन्तर्जगत की ओर मोडना शुरू किया। सारा श्रम पुरुषार्थ उसी मे ही खपा दिया। तत्कालीन सामाजिक वातावरण की या कहे जिस परिवेश मे वे थे उसकी चिन्ता न करते हुए व निरन्तर बढते गए खोजते रहे उसे, जो अभीष्ट था। उन्होने एकबार भी पीछे पलट कर नही देखा। देखने का समय ही नही मिला और जब समय मिला तो सासारिक वस्तुओ मे छिपा जो सार था, वह दिखलाई पड़ने लगा। जो दिखाई नही देता था, वह दिखलाई पडने लगा और जो दिखाई देता था, वह अदृश्य हो गया। कैसा विपर्यय था? विचार कर, यह विपर्यय नही, साधना का प्रतिफल था। उनकी दृष्टि मे मोह का आवरण हट चुका था। सचमुच व दृष्टा हो गए थे, पूर के पूर दृष्टा। उनकी दृष्टि आत्मिक, उनका सोच गुणात्मक, उनका कर्म निष्कर्म हो गया। अन्ततोगत्वा उनकी समस्त क्रियाएँ चेतना मे परिवर्तित होती गईं, वे चैतन्य हो गए। साधना का यह चरम बिन्दु था जिसे भगवान महावीर ने छुआ था। साधना से ही उन्होने अपने अन्तरग मे प्रतिष्ठित 'महावीर' को जगा लिया था अर्थात् वीतरागता की परिपूर्णता उनमे व्याप्त हो गयी थी। भगवान महावीर ने यह सिद्ध कर दिया कि ससार का प्रत्येक प्राणी किसी व्यक्ति/शक्ति विशेष की कृपा से नही, स्वय अपनी आत्म साधना से इस स्थिति पर पहुँच सकता है। इसलिए उनके दर्शन मे मात्र आत्मिक गुणो के चिन्तन-अनुभव करने का विधि विधान है। भगवान महावीर ने आत्मिक गुणो का ऊर्ध्वगमन रूप बताया अर्थात् गुणो का स्वभाव है नीचे से ऊपर उठना। इस आधार पर ससार का कोई भी प्राणी अपने आप मे पूर्ण तथा स्वतन्त्र होता है। वह अवतार रूप मे या अश रूप मे जन्म नही लेता है अपितु उताररूप मे जन्म लेकर यदि वह मोह से निर्मोह, मिथ्यात्व से सम्यक्त्व राग से वीतराग अर्थात् कर्म से निष्कर्ष की ओर प्रवृत्त होता है तो अपने अन्तरग मे सुप्त अनन्त शक्तिगुणो को जागृत करता हुआ परमात्मा पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है। आत्मा का परमात्मा बन जाना ही आत्मा के विकास की सर्वोच्च स्थिति है। इस स्थिति मे भगवान महावीर का 'अप्पा सो परमप्पा' का दर्शन सार्थ होता है।

इस सन्दर्भ मे एक बात ध्यातव्य है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मो का जहाँ कर्ता है वही वह उन कृत कर्मो का भोक्ता भी है। ऐसा कदापि नही होता कि कर्म कोई और करे और उसका फल कोई और भोगे। यह धारणा प्रत्येक प्राणी मे स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता तथा सम्यक् पुरुषार्थ को जगाती है। परकीय सत्ता-शक्ति के प्रति उसकी आस्था कर्तृत्व रूप मे फिर नही होती है अर्थात् कोई भी किसी का न बना सकता है और न बिगाड़ सकता है। जो कुछ बनता-बिगडता है वह सब उसके स्वकर्मो से होता है। अन्तत भगवान महावीर का कर्म से सम्दर्भित यह दर्शन प्रत्येक प्राणवन्त को परमात्मा बनने का अधिकार और मार्ग दोनो ही प्रदान करता है। वह परमात्मा के पुन भवावतरण की मान्यता कभी नही देता है। भगवान महावीर का परमात्मा 'सिद्ध' है जहाँ न कोई देह

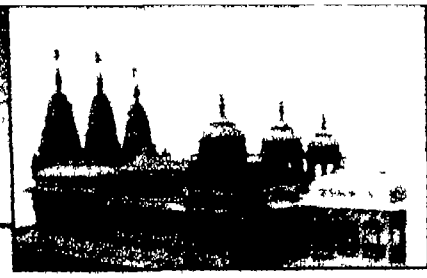

है और न रूपादि। वे तो सम्पूर्ण कर्मों से विरत, ऊर्ध्वगति के कारण लोक शिखर पर मात्र ज्ञातादृष्टामय है।

आत्मा के विकास का एक क्रम है जिसे भगवान महावीर ने गुणस्थान, जिनकी सख्या चौदह है, से सम्बोधित किया है। इन गुणस्थानो मे मोह शक्ति शने -शनै क्षीण होती है और अन्त मे आत्मा मोह के आवरण से निरावृत होती हुई निष्प्रकम्प स्थिति मे पहुँच जाती है। प्रथम तीन स्थानो म बहिरात्मा तथा चतुर्थ स द्वादश स्थानो मे अन्तरात्मा तथा तेरहव एव चौदहवे स्थानो म परमात्मा की स्थिति बनती है। चौदहवे गुणस्थान उपरान्त ता आत्मा का अवस्था पूर्ण सिद्धावस्था की होती है। इस अवस्था तक पहुँचन के लिए भगवान महावीर ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नत्रय की समन्वित साधना पर बल दिया। रत्नत्रय म सम्यग्दर्शन मुख्य है। इतना ही नही भगवान महावीर क दर्शन का सार भी 'सम्यग्दर्शन' ही है। इसके अभाव म ज्ञान, चारित्र व्रत तप ध्यान सब निस्सार है। बिना इसके सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान चर्चा तथा जीवन चर्या सब-कुछ मिथ्यापरक होती है, आत्मा का सब प्रकार की मूढताओ से घिरा रहना होता है। भगवान महावीर ने इस स्थिति से उबरने के लिए तीन बातो पर ध्यान देने के लिए कहा - एक हय, दूसरी ज्ञेय और तीसरी उपादेय। इन तीनो मे ज्ञेय प्राधान्य तत्त्व है। बिना ज्ञेय को समझे, हेय और उपादेय का निर्णय असम्भव है। ज्ञेय के माध्यम से ज्ञान-शक्ति को जगाया जाता है। 'ज्ञायत अनन इति ज्ञान' सार्थ होता है। भगवान महावीर ने ज्ञान और उसके भद-प्रभद, नय निक्षप तथा प्रमाणादि, जीवादि सप्ततत्त्वा षड्द्रव्या तथा पुण्य-पापादि नव पदार्थों के स्वरूप का वज्ञानिक पद्धति म विश्लेषण करते हुए यह बताया कि ज्ञान ही आत्मा है। ज्ञान जगत के समस्त रहस्यो को प्रकाशित करनवाला है।

'ज्ञेय' की स्थिति स्पष्ट होन पर हेय छूटने लगता है। भगवान महावीर की दृष्टि मे आत्म-अनुभूति या आत्मबोध सबस बडा ज्ञान है और यह स्थिति राग-द्वेष अर्थात् कर्म कषायो स निर्लिप्त होने पर बनती है। इस निर्लिप्तता मे 'उपादेय' की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जीवन म वही उपादेय है जिससे दर्शन, ज्ञान और चारित्र मिथ्यात्त्व से हटकर सम्यक् स सम्पृक्त हो सके। सम्यक् का आधार ध्यान है, जिस पर भगवान महावीर का दर्शन केन्द्रित है। आत्म-साधना मे ज्ञान पहला चरण है जबकि ध्यान अन्तिम चरण। ज्ञान स ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान एक ऐसा इधन है जिसकी अग्नि-तपन म समस्त कर्म भस्म हा जाने है अर्थात् समस्त कर्मो की निर्जरा ध्यान से ही सम्भव है। कर्म-निर्जरा होन पर आत्मा योग स अयोग मे चली जाती है। अयोग मे पुरुषार्थ-चतुष्टय का अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष सार्थ होता है।

जन्म और जीवन दो शब्द है। जन्म लेना एक बात है और जन्म लकर जाना यह दूसरी बात है। जन्म तो कोई भी ले सकता है किन्तु जीवन का जीना एक साधना है। वहाँ तनाव नही, आनन्द-ऊर्मियाँ हिलोर लती है। फिर जीवन म पतझड नही बसन्त खिलता है। भगवान महावीर ने इस स्थिति के लिए अर्थात् सुखी और समृद्ध जीवन के लिए कुछ सूत्र-सिद्धान्त तत्कालीन समाज का दिए जा आज भी प्रासगिक बने हुए है। ये सूत्र जीवन रूपा माला म जब पिरो दिए जाते हैं तो जीवन की सार्थकता और भा बढ़ जाती है। इन सूत्रो मे पहला सूत्र है सत्य, दूसरा अहिंसा, तासरा अचाय चाथा अपरिग्रह, पाँचवाँ ब्रह्मचर्य तथा छठवाँ अनकान्त स्याद्वाद।

भगवान महावीर की दृष्टि मे सत्य आभव्यक्ति का नही अनुभूति का विषय है। जो अभिव्यक्त हाता है वह सत्य नही सत्याभास है। साधना क वातायन म अन्तरग म जा अनुभूत हाता है वहाँ सत्य भासता है। इसलिए भगवान महावीर ने कहा कि सत्य को बाहर नही, अन्तरग म खोजिए, जहाँ वह प्रतिष्ठित है। यह निश्चित है कि सत्याभिभूत साधक म पापकर्म कटते है। अत सत्य, सिद्धि का सोपान है। सत्य से साधक म शक्ति का सञ्चार होता है। वह तो मृत्यु क प्रवाह को भी पार कर जाता है।

भगवान महावीर का दूसरा सूत्र है अहिंसा। अहिंसा आत्मा का स्वभाव है और जो विभावादि है वह है हिंसा। स्वभाव और विभाव मे 'भाव' मुख्य है। जब भाव 'स्व' अर्थात् आत्मा पर केन्द्रित हान है तब वहाँ किसी प्रकार का न राग होता है और न द्वष। राग-द्वेषादि कषाय भाव तो हिंसा को जन्म देते हैं। अपने मन मे मनुष्य के प्रति ही नही अपितु किसी भी प्राणी के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना आने मात्र से ही अपन शुद्ध भावा का घात कर लना हिंसा है। चाह यह दुर्भावना क्रियान्वित हो अथवा न हो और उसमे किसी प्राणी को कष्ट पहुँचे या न पहुँचे, इन

दुर्भावनाओ के आने मात्र से ही व्यक्ति हिसा का दोषी हो जाता है। इतना ही नहीं हिसा का अनुमोदन करना भी हिसा है। यह हिसा चार रूपा मे विभक्त है – आरम्भी, उद्यागी, विरोधी और सकल्पी हिसा। वस्तुत हिसा-अहिमा की कसौटी व्यक्ति के भावो पर निर्भर करती है क्योकि समस्त क्रियाएँ भावानुरूप ही होती है। भगवान महावीर की अहिंमा जीवन मे समता और सहिष्णुता का मञ्चार करती है 'आत्मवत् सर्वभृतेषु', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'परस्परोपग्रहा जीवनाम्', 'जियो और जीन दो', 'खामेमि सव्वे जीवा, सव्व जीवा खमन्तु मे' जैसी अनगिन अनमोल सूक्तियाँ जीवन म चरितार्थ होने लगती है। वास्तव मे अहिमा पर आधृत जीवन प्रमाद मे जहाँ अयुक्त होता है वही पञ्च समितियाँ तथा तीन गप्तियाँ भी मुखर रहती है। जीवन मे निर्भयता, प्रामाणिकता, एकता तथा अनन्त आनन्द की अनुगूँज व्याप्त रहती है। अहिमा क अभाव म जीवन अनार्जवी और अहकारी बन जाता है। समस्त मानवीय गुण तिरोहित हो जाते है द्वेष व द्वन्द्व, घृणा नफरत तथा अविश्वास अन्यायादि की अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है। इस प्रकार अहिमा का पूण दर्शन यही है कि स्वय का समस्त प्राणिया क प्रति सयम रखना।

अहिमात्मक जीवन जीने के लिए भगवान महावीर ने सात्विकता स अनुप्राणित जीवन-चर्या का महत्त्व दिया। सात्विकता का आधार है शाकाहार और सप्त निर्व्यसन। मासाहार तथा सप्तव्यसनो स प्रभावित जीवन मे अशुचि एव तामसी वृत्तियाँ सजग रहती हैं जो आत्म तत्त्व को अपकर्ष की ओर उन्मुख करती है। अन्तत अहिमा विश्व के सर्व आश्रमो का हृदय है, समस्त शास्त्रो का उद्गम स्थल है तथा सर्वव्रतो - सिद्धान्तो का नवनीत रूप सार है।

भगवान महावीर का तीसरा मूत्र है अचौर्य/अस्तेय। अचौर्य लोभ कषाय के अभाव मे होता है। जब तक आत्मा लोभ-लिप्सा से कलुषित रहती है तब तक चोरी की प्रवृत्ति बनी रहती है। अस्तेयव्रत का साधक कहीं किसी भी स्थल पर परायी वस्तु को दृष्टिगत कर मन मे भी उसे ग्रहण करने का भाव नहीं लाता। भगवान महावीर का यह सूत्र व्यक्ति मे कर्मठता तथा प्रामाणिकता के सस्कारो का रोपण करता है। बिना इसके आत्म-विकास असम्भव है।

भगवान महावीर का चौथा सूत्र है अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक और अनुपयोगी पदार्थ का सग्रह न करना। सग्रह-प्रवृत्ति के मूल मे मूर्च्छा है। मूर्च्छा ही सबसे बडा परिग्रह है। और यह परिग्रह ही सबसे बडा बन्धन है, जाल है। मूर्च्छा मे आसक्ति या ममत्व भाव का साम्राज्य रहता है। आसक्ति के वशीभूत प्राणी पेट नहीं, पेटियाँ भरा करता है अर्थात् आवश्यकताओ का स्थान इच्छाएँ ले लेती है जो कि आकाश के सदृश अनन्त हैं। अत इच्छाओ के व्यामोह से हटने के लिए भगवान महावीर का यह सूत्र एक उत्तम टॉनिक है। भगवान महावीर ने कहा कि आत्मसाधना मे रत साधक भोगो से विरक्त होता हुआ बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का परित्याग करता है। वह वस्तु के साथ-साथ शरीर के प्रति भी पूर्णत अनासक्त रहता है। अन्तत परिग्रह दु ख-द्वन्द्व का मूल है अपरिग्रह आनन्द का द्वार है।

भगवान महावीर का पाँचवाँ सूत्र है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म अर्थात् आत्मा मे रमण करना। ब्रह्मचर्य की साधना मे मन या चित्त को विषय भोगो की अपेक्षा आत्मतत्त्व पर केन्द्रित किया जाता है। मन का सीधा सम्बन्ध अन्न स रहता है। अत मन, ब्रह्म मे रम इस हेतु साधक को परिमित-सात्विक तथा निर्दोष भोजन ही हितकर माना गया है। आत्मसाधना मे शरीर-शृगार तथा स्त्री-ससर्ग दोनो ही सबस बडे अवरोधक है। साधक का चित्त कभी भी इस ओर नही रमता है। वास्तव मे भगवान महावीर का यह ब्रह्मचर्य-उत्तम तप नियम ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है।

भगवान महावीर का अन्यतम सूत्र-सिद्धान्त है अनेकान्त और स्याद्वाद। भगवान महावीर न जिस समय जन्म लिया था उस समय प्रचलित अनेक मत-मतान्तरो मे द्वन्द्व था, वैचारिक प्रदूषण व्याप्त था जिसका थामने के लिए उन्होने एक कारगर सूत्र दिया 'अनेकान्त'। अनेक और अन्त क योग मे विनिर्मित अनेकान्त शब्द का अर्थ है अनेक गुण/धर्म/स्वभाव। अनेकान्त मे 'अनन्त धर्मात्मक सत्' की ध्वनि अन्तर्निहित है जिसके अनुसार वस्तु मे अनन्त गुण-विशेषताएँ होती हैं। जब किसी वस्तु के विषय मे कुछ भी कहा या विचारा जाता है तो साधारणतया एक धर्म को प्रमुख व अन्य

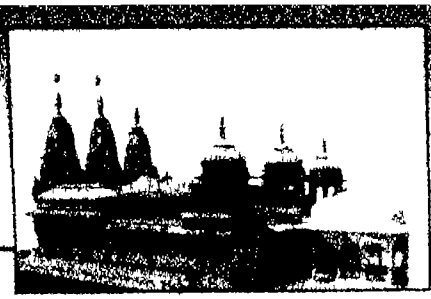

धर्म को गौण कर दिया जाता है। इस प्रकार का सत्य आपेक्षिक होता है, जबकि अन्य अपेक्षाओं से वही वस्तु अन्य प्रकार की भी होती है। इस बात को ध्यान में न रखकर वस्तु के स्वरूप का विवेचन करते समय मात्र उसके किसी एक गुण/धर्म को लेकर ही अपनी मान्यता या विचारों पर ही बल देते रहने से द्वन्द्व या संघर्ष की स्थिति बनती है। अनेकान्त दर्शन इस स्थिति को रोकता है। यह व्यक्ति में विभिन्न भावों-विचारों को गौण ही न कर गौर करने पर भी जोर देता है। अनेकान्तिक दृष्टि संकीर्णता, हठवादिता तथा 'ही' शब्द की अपेक्षा विराटता, समन्वयवादिता पोषक 'भी' शब्द पर केन्द्रित रहती है। संसार की प्रत्येक वस्तु में अन्तर्भूत अनन्तगुणादि को जानना, समझना और फिर एक साथ अभिव्यक्त करना सहज और सरल नहीं है। इस सत्य को भगवान महावीर जानते थे अतः उन्होंने अनेकान्त की अभिव्यक्ति हेतु 'स्याद्वाद' का सूत्र दिया।

स्याद्वादी किसी वस्तु के अस्तित्व का जब प्रकट करता है तो वह केवल 'अस्ति' अर्थात् 'है' न कहकर 'स्याद् अस्ति' कहता है अर्थात् 'कथंचित्' - किसी अपेक्षा से 'है' कहता है। सापेक्ष कथन में संशय या भ्रम के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। जो कुछ भी कहा जाता है वह स्यात् से सम्पृक्त 'अस्ति' या 'नास्ति' पर आधारित होता है। यह स्यात् अस्ति नास्ति अधिक से अधिक सात प्रकार से अभिव्यक्त हो सकता है जो 'सप्तभंगी' से संज्ञायित है। यथा - 1 अस्ति, 2 नास्ति, 3 अस्ति-नास्ति, 4 अवक्तव्य 5 अस्ति अवक्तव्य, 6 नास्ति अवक्तव्य 7 अस्ति नास्ति अवक्तव्य। इन सातों में 'स्यात्' अवश्य सम्मिलित रहता है। इस प्रकार भगवान महावीर का अनेकान्त सत्य के स्वरूप को स्थिर करता है और स्याद्वाद उस स्वरूप को व्यावहारिक रूप देता है।

अन्ततः, जो प्राणी भगवान महावीर के दर्शन और सिद्धान्त को अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं, उनका जीवन वर्तमानता, अनासक्तता तथा सहजता पर आधारित होता है। भगवान महावीर ने एक बात और महत्त्वपूर्ण कही, यह थी जिसका जीवन सार्थक होता है उसका मरण भी सार्थक होता है। भगवान महावीर ने जीने की कला के साथ साथ मरने की कला भी दी, जो समाधिमरण, पण्डितमरण से संज्ञायित है। ऐसा मरण जिसमें राग द्वेष विषयकषायों से निर्लिप्तता, प्रमाद मूर्च्छा की अपेक्षा जागरण के साथ सल्लेखना के माध्यम से आत्मा द्वारा देह का विसर्जन होता है, मृत्यु महोत्सव का रूप धारण करता है। मृत्यु महोत्सव भगवान महावीर की एक अभिनव देन है। इस प्रकार भगवान महावीर के 'निवृत्तिपरक' दर्शन की सार्थकता तभी है जब साधक आखिरी जन्म और आखिरी मरण करने में सफल होता है।

'मंगल कलश' 394, सर्वोदय नगर
आगरा रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.)

केवलणाणसहावो, केवलदंसणसहावो सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी॥

जो अनन्तज्ञान स्वभाववाला है, जो अनन्तदर्शन स्वभाववाला है, जो अनन्त सुखमय है और जो अनन्तशक्ति स्वभाववाला है - वह मैं हूँ। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी विचार करता है।

णियभावं ण वि मुञ्चदि, परभावं णेव गिण्हदे केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतदे णाणी॥

जो स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता, किसी प्रकार के परभाव को कभी ग्रहण नहीं करता और सबको जानता-देखता है वह मैं हूँ, इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी चिंतन करता है।

अनेकान्तवाद : सत्य से साक्षात्कार

• प्रोफेसर (डॉ.) प्रेम सुमन जैन

भगवान् महावीर ने ज्ञान के भेद प्रभेदो का जो प्रतिपादन किया, उसके द्वारा आत्मा के क्रमिक विकास का पता चलता है तथा इस वस्तुस्थिति का भी भान होता है कि हम ज्ञान की कितनी छोटी-सी किरण को पकडे बैठे हैं, जबकि सत्य की जानकारी सूर्य-सदृश प्रकाश वाले ज्ञान मे हो पाती है। महावीर ने इस क्षेत्र मे एक अद्‌भुत कार्य और किया। उनके युग मे चिन्तन की धारा अनेक टुकडो मे बँट गयी थी। वैदिक परम्परा के अनेक विचारक थे तथा श्रमण परम्परा मे 6-7 तीर्थंकरो का अस्तित्व था। प्रत्येक अपने को इस परम्परा का 24वाँ तीर्थंकर प्रमाणित करने मे लगा था। ये सभी विचारक अपनी दृष्टि से सत्य को पूर्णरूपण जान लेने का दावा कर रह थे। पत्यक के कथन मे दृढता थी कि सत्य मेरे कथन मे ही है, अन्यत्र नही। इसका परिणाम यह हुआ कि अज्ञानी एव अन्धविश्वासी लोगो का कुछ निश्चित समुदाय प्रत्येक के साथ जुड गया था। अत प्रत्येक सम्पदाय का सत्य अलग-अलग हो गया था।

महावीर यह सब देख-सुनकर आश्चर्य मे थे कि सत्य के इतने दावेदार कैस हो सकते है? प्रत्यक अपने को ही सत्य का बोधक समझता है, दूसरे का नही। ऐसी स्थिति मे महावीर ने अपनी साधना एव अनुभव के आधार पर कहा कि सत्य उतना ही नही है जिस मे देख या जान रहा हूँ। यह वस्तु के एक धर्म का एक गुण का ज्ञान है। पदार्थ में अनन्त गुण एव अनन्त पर्याये है। किन्तु व्यवहार मे उसका कोई एक स्वरूप ही हमारे सामने आता है। उसे ही हम जान पाते हैं। अत प्रत्येक वस्तु का ज्ञान सापेक्ष रूप मे हो सकता है। पदार्थों का ज्ञान करने के दो साधन है - प्रमाण एव नय। जब हम केवलज्ञान जैसे प्रामाणिक ज्ञान के अधिकारी होते हैं तब वस्तु को पूर्णरूपेण जानने की क्षमता रखते है। किन्तु जब हमारा ज्ञान इससे कम होता है तो हम वस्तु के एक अश को जानते है, जिसे नय कहते है। तथा, जब हम वस्तु को जानकर उसका स्वरूप कहने लगते है तो एक समय मे उसके एक अंश को ही कह पायेंगे। अत सत्य को सापेक्ष मानना चाहिए।

उस युग मे महावीर की इस बात से अधिकाश लोग सहमत नही हो पाये। लोगो को आश्चर्य होता यह देखकर कि यह कैसा तीर्थंकर है, जो एक ही वस्तु को कहता है - है, और कहता है - नही है। अपनी बात को भी सही कहता है और जो दूसरो का कथन है उसे भी गलत नहीं मानता। इस आश्चर्य के कारण उस युग मे भी महावीर के अनुयायी उतने नही बने, जितने दूसरे विचारको के थे। क्योकि व्यक्ति तभी अनुयायी बनता है, जब उसका गुरु कोई बधो-बधाई बात कहता हो। जो यह सुरक्षा देता हो कि मेरा उपदेश तुम्हे निश्चित रूप से मोक्ष दिला देगा। महावीर ने यह कभी नही कहा। इस कारण उनके ज्ञान और उपदेशो के वही श्रावक बन सके जो स्वय के पुरुषार्थ मे विश्वास रखत थ एव बुद्धिमान थे। महावीर जैसा गैरदावेदार आदमी ही नही हुआ इस जगत मे। उनका एकदम असाम्प्रदायिक चित्त था। इसी कारण वे सत्य का विभिन्न कोना से देख सके। महावीर के पूर्व उपनिषद् कहते थे कि ब्रह्म की व्याख्या नही हो सकती। बडा अद्‌भुत है उसका स्वरूप। महावीर ने कहा ब्रह्म तो बहुत दूर की चीज है, तुम एक घडे की ही व्याख्या नहीं कर सकत। उसका अस्तित्व भी अनिर्वचनीय है। इसे महावीर ने विस्तार स समझाया।

महावीर क पूर्व सत्य के सम्बन्ध मे तीन दृष्टिकोण थे - (1) है, (2) नही हे और (3) दोनो - नही भी एव है भी। घट के सम्बन्ध मे यह कहा जाता था कि वह घट है, कोई कपडा आदि नही। घट नहीं है क्योकि वह तो मिट्टी है। तथा घडे के अर्थ मे वह घडा है तथा मिट्टी के अर्थ म घडा नही है। इस प्रकार वस्तु को इस त्रिभगी से दखा जाता था। महावीर ने कहा कि सिर्फ तीन से काम नहीं चलेगा। सत्य और भी जटिल है। अत उन्होने इसमे चार सम्भावनाएँ और जाड दी। उन्होन कहा कि घट स्यात् अनिर्वचनीय है, क्योकि न तो वह मिट्टी कहा जा सकता है ओर न घडा ही। इसी अनिर्वचनीय को महावीर ने प्रथम तीन के साथ और जोड दिया। इस प्रकार सप्तभगी द्वारा वे पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या करना चाहते थे।

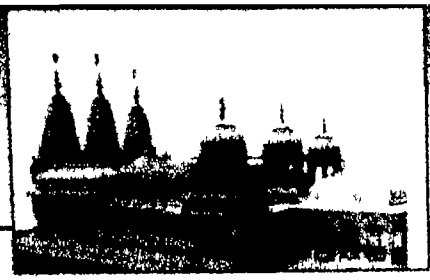

इस सप्तभगी नय को महावीर ने अनेक दृष्टान्तो द्वारा समझाया है। उनमे छह अन्धो और हाथी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। आप इसे अन्य उदाहरण से समझ। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, पति मामा, भानजा, काका, भतीजा इत्यादि सभी हो सकता है। एक साथ होता है। किन्तु उसे ऐसा सब कुछ एक साथ नही कहा जा सकता। उसकी एक विशेषता को मुख्य और शेष को गौण रखकर ही कहना होगा। यहाँ गौण रखने का अभिप्राय उसकी विशेषताओ का अस्वीकार नही है और न सशय या अनिश्चय ही। बल्कि व्यावहारिकता का निर्वाह है। अत किसी वस्तु का युगपद कथन न जरूरी है और न सम्भव। फिर भी उसकी पूर्णता अवश्य बनी रहती है। वस्तुओ के इस अनेकत्व को मानना ही अनेकान्तवाद है।

पदार्थो की अनेकता स्वय द्रव्य के स्वरूप मे छिपी है। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य से युक्त होता है। प्रत्येक क्षण उसमे नयी पर्याय की उत्पत्ति, पुरानी पर्याय का नाश एव द्रव्यपन की स्थिरता बनी रहती है। इसी बात को कहने के लिए महावीर ने अनेकान्त की बात कही। वस्तु का अनेकधर्मा होना अनेकान्तवाद है तथा उसे अभिव्यक्त करने की शैली का नाम स्याद्वाद है। स्याद्वाद कोई सशयवाद नही है। अपितु स्यात् शब्द का प्रयोग वस्तु के एक और गुण की सम्भावना का द्योतक है।

स्यादवाद महावीर के जीवन मे व्याप्त था। उनके बचपन मे ही स्याद्वादी चिंतन प्रारम्भ हो गया था। कहा जाता है कि एक दिन वर्द्धमान के कुछ बालक साथी उन्हे खोजते हुए माँ त्रिशला के पास पहुँचे। त्रिशला ने कह दिया वर्द्धमान भवन मे ऊपर है। बच्चे भवन के सबसे ऊपरी खण्ड पर पहुँच गये। वहाँ पिता सिद्धार्थ थे वर्द्धमान नही। जब बच्चो ने पिता सिद्धार्थ से पूछा तो उन्होने कह दिया – वर्द्धमान नीचे है। बच्चो को बीच की एक मंजिल मे वर्द्धमान मिल गये। बच्चो ने महावीर से शिकायत की कि आज आपकी माँ एव पिता दोनो ने झूठ बोला।

वर्द्धमान ने अपने साथियो से कहा - तुम्हे भ्रम हुआ है। माँ एव पिताजी दोनो ने सत्य कहा था। तुम्हारे समझने का फर्क है। माँ नीचे की मंजिल पर खडी थी। अत उनकी अपेक्षा से ऊपर था और पिताजी सबसे ऊपरी खण्ड पर थे इसलिए उनकी अपेक्षा से नीचे था। वस्तुओ की सभी स्थितियो के सम्बन्ध मे इसी प्रकार सोचने से हम सत्य तक पहुँच सकते है। भ्रम मे नही पडते। वर्द्धमान की यह व्याख्या सुन कर बालक हैरान रह गये। महावीर स्याद्वाद की बात कह गये।

स्याद्वाद और अनेकान्तवाद मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् महावीर ने इन दोनो के स्वरूप एव महत्व को स्पष्ट किया है। अनेकान्तवाद मूल मे है। सत्य की खोज। महावीर ने अपने अनुभव से जाना था कि जगत् मे परमात्मा अथवा विश्व की बात तो अलग, व्यक्ति अपने सीमित ज्ञान द्वारा घट को भी पूर्ण रूप से नही जान पाता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणो से युक्त वह घट छोटा-बडा, काला-सफेद, हल्का-भारी, उत्पत्ति नाश आदि अनन्त धर्मो से युक्त है। पर जब कोई व्यक्ति उसका स्वरूप कहने लगता है तो एक बार मे उसके किसी एक गुण का ही कह पाता है। यही स्थिति ससार की प्रत्येक वस्तु की है।

हम प्रतिदिन सोने का आभूषण देखते है। लकडी का टेबिल देखते है और कुछ दिनो बाद इनके बनते बिगडते रूप भी देखते है किन्तु सोना और लकडी वही बनी रहती है। आज के मशीनी युग मे किसी धातु के कारखाने मे हम खडे हो जाय तो देखेगे कि प्रारम्भ मे पत्थर का एक टुकडा मशीन मे प्रवेश करता है और अन्त मे जस्ता ताबा आदि के रूप मे बाहर आता है। वस्तु के इसी स्वरूप के कारण महावीर ने कहा था प्रत्येक पदार्थ उत्पत्ति विनाश और स्थिरता से युक्त है। द्रव्य के इस स्वरूप को ध्यान मे रखकर उन्होने जड और चेतन आदि छ द्रव्यो की व्याख्या की है। मति, श्रुत केवलज्ञान आदि पाँच ज्ञानो के स्वरूप को समझाया है। केवलज्ञान द्वारा हम सत्य को पूर्णत: जान पाते है। अत सामान्य ज्ञान के रहते हम वस्तु को पूर्णत जानने का दावा नही कर सकते। ज्ञान कर भी उसे सभी दृष्टियो से अभिव्यक्त नही कर सकते। इसलिए सापेक्ष कथन की अनिवार्यता है। सत्य के खोज की यह पगडडी है।

अनेकान्त-दर्शन महावीर की सत्य के प्रति निष्ठा का परिचायक है। उनके सम्पूर्ण और यथार्थ ज्ञान का द्योतक। महावीर की अहिंसा का प्रतिबिम्ब है – स्याद्वाद। उनके जीवन की साधना रही है कि सत्य का उद्घाटन भी सही हो तथा उसके कथन मे भी किसी का विरोध न हो। यह तभी सम्भव है जब हम किसी वस्तु का स्वरूप कहते समय उसके अन्य पक्ष को भी ध्यान मे रखे और अपनी बात भी प्रामाणिकता से कहे। स्यात् शब्द के प्रयोग

द्वारा यह सम्भव है। यहाँ स्यात् का अर्थ है – किसी अपेक्षा से यह वस्तु ऐसी है।

विश्व की तमाम चीजे अनेकान्तमय है। अनेकान्त का अर्थ है नानाधर्म। अनेक यानी नाना और अन्त यानी धर्म और इसलिए नानाधर्म को अनेकान्त कहते है। अत. प्रत्येक वस्तु मे नानाधर्म पाये जाने क कारण उसे अनेकान्तमय अथवा अनेकान्तस्वरूप कहा गया है। अनेकान्त स्वरूपता वस्तु मे स्वय है - आरोपित या काल्पनिक नही है। एक भी वस्तु ऐसी नही है जा सर्वथा एकान्तस्वरूप (एकधर्मात्मक) हो। उदाहरणार्थ यह लोक, जो हमार और आपक प्रत्यक्ष गाचर है, चर और अचर अथवा जीव और अजीव इन दो द्रव्यो से युक्त है। वह सामान्य की अपेक्षा एक होता हुआ भी इन दो द्रव्या की अपक्षा अनेक भी है और इस तरह वह अनेकान्तमय सिद्ध है।

जो जल प्यास का शान्त करने खेती का पैदा करन आदि मे सहायक होन स प्राणियो का प्राण है – जीवन है, वही बाढ लाने, डूबकर मरने आदि म कारण होने से उनका घातक भी है। कौन नही जानता कि अग्नि कितनी सहारक है, पर वही अग्नि हमारे भाजन बनान आदि म परम सहायक भी है। भूखे का भाजन प्राणदायक है, पर वही भाजन अजीणवाले अथवा मियादी बुखारवाले बीमार आदमी के लिए विष है। मकान, किताब, कपडा, सभा, सघ, देश आदि य सब अनेकान्तस्वरूप ही तो हैं। अकेली ईटो या चूने-गारे का नाम मकान नही है। उनके मिलाप का नाम ही मकान है। एक-एक पन्ना किताब नहीं है, नाना पन्नो के समूह का नाम किताब है। एक-एक सूत कपडा नही कहलाता। ताने-बाने रूप अनेक सूतो के सयोग का कपडा कहते है। एक व्यक्ति को कोई सभा या सघ नही कहता। उनके समुदाय को ही समिति, सभा सघ या दल आदि कहा जाता है। एक-एक व्यक्ति मिलकर जाति और अनेक जातियाँ मिलकर देश बनते है।

जिस प्रकार समुद्र के सद्भाव मे ही उसकी अनन्त बिन्दुओ की सत्ता बनती है और उसके अभाव मे उन बिन्दुओ की सत्ता नहीं बनती उसी प्रकार अनेकान्त रूप वस्तु के सद्भाव मे ही सर्व एकान्त दृष्टियाँ सिद्ध होती है और उसके अभाव मे एक भी दृष्टि अपने अस्तित्व को नहीं रख पाती। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिका में इसी बात को बहुत ही सुन्दर ढग से प्रतिपादन करते हैं .

उदधाविव सर्वसिन्धव· समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टय. ।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधि. ॥

''जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र मे सम्मिलित हैं उसी तरह समस्त दृष्टियाँ अनेकान्त-समुद्र मे मिली है। परन्तु उन एक-एक मे अनेकान्त दर्शन नहीं होता। जैसे पृथक्-पृथक् नदिया मे समुद्र नही दीखता।''

इसे एक अन्य उदाहरण मे भी समझा जा सकता है। राजेश एक व्यक्ति है। वह अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है तथा अपने पुत्र की अपक्षा पिता है। वह पति है एव जीजा भी। मामा है और भानजा भी। अब यदि कोई उसे केवल मामा ही माने और अन्य सम्बन्धों को गलत ठहराय तो यह राजेश नामक व्यक्ति का सही परिचय नहीं है, इसमे हठधर्मी है अज्ञान है। महावीर इस प्रकार के आग्रह को वैचारिक हिंसा कहते है। अज्ञान स अहिंसा फलित नही होती। अत उन्होन कहा कि स्याद्वाद पद्धति मे प्रथम वैचारिक उदारता उपलब्ध करा। केवल अपनी बात कहना ही पर्याप्त नहीं है, दूसरो को भी अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर दो। सत्य के दर्शन तभी होगे, तभी व्यवहार की अहिंसा सार्थक होगी।

सत्य का विभिन्न कोणा स जानना और कहना दर्शन के क्षेत्र म नयी बात नही है। किन्तु महावीर न स्याद्वाद के कथन द्वारा सत्य को जीवन क धरातल पर उतारन का कार्य किया है। यही उनका वशिष्ट्य है। हम सभी जानत हैं कि हर वस्तु मे कम से कम दो पहलु होते है। कोई भी वस्तु न सर्वथा अच्छी होती है और न सर्वथा बुरी ·

''दृष्ट किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोष न निर्गुणम्।''

नीम सामान्य व्यक्ति को कडवी लगती है। वही रोगी के लिए औषधि भी है। अत नीम क सम्बन्ध म कोई एक धारणा बना कर किसी दूसर गुण का विरोध करना बेमानी है। सामान्य नीम की जब यह स्थित है तो ससार के अनन्त पदार्थों के अनन्त धर्मो के स्वरूप को जानकर उनका आग्रहपूर्वक कथन करना सम्भव नहीं है। महावीर ने इसे गहराई म समझा था। अत· वे मनुष्य तक ही सीमित नहीं रहे। प्राणीमात्र के स्पन्दन की सापेक्षता को भी उन्होन स्थान दिया। मनुष्य की भाँति एक सामान्य प्राणी भी जीने का अधिकार रखता है। अपने साधना द्वारा उसे भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है। यह महावीर के स्याद्वाद की फलश्रुति है।

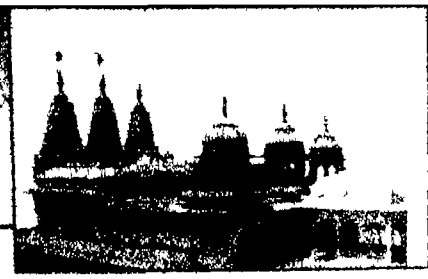

महावीर अनेकान्तवाद व स्याद्वाद से उन गलत धारणाओ का दूर कर देना चाहते थे, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास मे बाधक थीं। उनके युग मे एकान्तिक दृष्टि से यह कहा जा रहा था कि जगत् शाश्वत् है अथवा क्षणिक है। इससे वास्तविक जगत् का स्वरूप खडित हो रहा था। मनुष्य का पुरुषार्थ कुण्ठित होन लगा था नियतिवाद के हाथो। अत महावीर ने आत्मा परमात्मा और जगत् इन तीना के स्वरूप का वह यथार्थ सामने रख दिया जिससे व्यक्ति अपनी राह का स्वय निर्णायक बन सके। अपूर्व थी महावीर की यह देन। अनेकान्त व स्याद्वाद के सम्बन्ध म महावीर न जा कहा वह उनक जीवन से भी प्रकट हुआ है। वे अपने जीवन म कभी किसी की बाधा नही बने। जगत् म रहत हुए किसी अन्य क स्वाथ से न टकराना कम लोगा के जीवन मे सध पाता है। महावीर क अनुसार यह टकराहट अधूरे ज्ञान क अहकार स होती है। प्रमाद व अविवक स होती है। अत अप्रमादी होकर विवकपूवक आचरण करन से ही अनेकान्त जीवन म आ पाता है। अनेकान्त दृष्टि स ही सत्य का साक्षात्कार सभव है।

महावीर द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद म वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होन के कारण उसे अवक्तव्य कहा गया है। मुख्य की अपक्षा स गौण को अकथनीय कहा गया है। वेदान्त दर्शन म सत्य का अनिर्वचनीय और बौद्धदर्शन मे उस शून्य व विभज्यवाद कहा गया है। अन्य भारतीय दार्शनिको के अतिरिक्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन व दार्शनिक बर्ट्रेन्डरसेल क सापक्षवाद क सिद्धान्त भी महावीर के स्याद्वाद स मिलत जुलत है। महावार न कहा था कि वस्तु क कण-कण को जानो तब उसक स्वरूप का कहो। ज्ञान की यह प्रक्रिया आज के विज्ञान मे भी है। इसका अर्थ है कि स्याद्वाद का चिन्तन सशयवाद नही है। अपितु इसक द्वारा मिथ्या मान्यताओ की अस्वीकृति और वस्तु क यथार्थ पक्षा की स्वीकृति होती है। विचार के क्षेत्र मे इससे जो सहिष्णुता विकसित होता है वह दीनता व जी-हजूरी नही है, बल्कि मिथ्या अहकार क विसर्जन की प्रक्रिया है।

दर्शन व चिन्तन के क्षेत्र मे अनेकान्त व स्याद्वाद की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही व्यावहारिक दैनिक जीवन मे भी है। वस्तुत इस विचारधारा से अच्छे-बुरे की पहिचान जागृत होती है। अनुभव बताता है कि एकान्त विग्रह है, फूट है, जबकि अनेकान्त मैत्री है, सधि है। इसे यो भी समझ सकते हैं कि जिस प्रकार सही मार्ग पर चलने के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय यातायात सकेत बने हुए है। पथिक उनके अनुसरण से ठीक-ठीक चल कर अपने गन्तव्य पर पहुँच जाते है। उसी प्रकार स्वस्थचिन्तन के मार्ग पर चलने के लिए स्याद्वाद द्वारा महावीर न सप्तभगी रूपी सात सकेता की रचना की है। इनका अनुगमन करने पर किसी बौद्धिक दुर्घटना की आशका नही रह जाती। अत बौद्धिक शोषण का समाधान है – स्याद्वाद।

महावार क स्याद्वाद से फलित होता है कि हम अपने क्षेत्र म दूसरा के लिए भी स्थान रखे। अतिथि क स्वागत के लिए हमार दरवाज हमशा खुल रहे। हम पाय बचपन स कागज पर हाशिया छाड कर लिखने आय है ताकि अपने लिखे हुए पर कभी सशोधन की गुजाइश बनी रहे। जो हमने अधूरा जाना है वह पूरा हो सके। महावीर का स्याद्वाद जीवन के प्रत्यक क्षेत्र म हम हाशिया छोडन का सदेश देता है। चाहे हम ज्ञान सग्रह कर अथवा धन व यश का प्रत्यक क साथ सापेक्षता आवश्यक है। सविभाग की समझ जागृत होना ही महावीर के अनेकान्त को समझना है। यही हमारे चरित्र की कुजी है। अनेकान्त हमारे चिन्तन को निर्दोष करता है। निर्मल चिन्तन स निर्दोष भाषा का व्यवहार होता है। सापेक्ष भाषा-व्यवहार म अहिंसा प्रकट करती है। अहिंसक वृत्ति से अनावश्यक सग्रह और हिंसा का शोषण नही हो सकता। जीवन अपरिग्रही हो जाता है। इस तरह आत्म शोधन की प्रक्रिया का मूलमन्त्र है – महावीर का स्याद्वाद। जैनाचार्य कहते है कि ससार के उस एकमात्र गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है, जिसके बिना इस लोक का कोई व्यवहार सम्भव नही है। यथा

जेण विणा लोयस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगतवायस्स ॥

– आचार्य, जैनविद्या एव प्राकृत विभाग
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज)

पर्यावरण के संरक्षण में धर्म की महत्ता

◦ कमल चन्द सौगानी

पर्यावरण एक वृहदाकार सहति है। पर्यावरण 'परि' और 'आवरण' शब्दो की सन्धि से बना है जिसका अर्थ है समस्त दिशाओ मे फैला आवरण, घेरा या मण्डल। पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, खनिज पशु-पक्षी, मनुष्य, परिवार, सामाजिक रीति-रिवाज, परम्पराएँ, ग्रह, उपग्रह, सूर्य, चन्द्रमा आदि जड व चेतन के समस्त तत्त्व मिलकर ही इसकी रचना करते है। ये सब प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप म एक वैज्ञानिक सतुलित आधार पर टिके हुए है। सतुलित पर्यावरण ही मनुष्य और पर्यावरण के विभिन्न अगो के जीवन का आधार है। जब स मनुष्य जीवन है, तभी से उसने प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक घटको को अपने ऊपर कृपा करते पाया। उसने समय समय पर अपनी इस कृतज्ञता का प्रदर्शन भी किया है और उल्लेख भी किया है। विश्व के अनेक धर्मो मे प्रकृति के इन प्रतीको को देवी-देवताओ के रूप मे प्रतिष्ठित करके इनका गुण गान किया गया है। मनुष्य ने इनकी उपासना करके अपने को कृतज्ञ माना है। वेदो, पुराणो, उपनिषदो और अनेक धार्मिक ग्रन्थो मे पर्यावरण के इन विभिन्न घटको की पूजा-अर्चना का प्रावधान किया गया है। भारत के लोक मानस मे वृक्षो को बडा सम्मान दिया गया है। भारतीय नारी पुत्र व सौभाग्य की प्राप्ति के लिये वट, तुलसी, पीपल की पूजा करती है। ऋषि दत्तात्रय ने तो वृक्ष को अपना गुरु माना है और त्याग का पाठ वृक्ष गुरु से सीखा है। 'अन्यशिक्ष तरोस्त्यागम्'। श्रीमद्भगवत म भी श्रीकृष्ण ने वृक्षो के गुणो की महिमा का वर्णन किया है।

श्री जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति मे जीवन के अस्तित्व को वैज्ञानिक तरीको से सिद्ध करके जैनधर्म के अनुसार माने गये वनस्पतिकायिक जीवों के चेतनत्व को प्रमाणित किया है। जैनाचार्य कुन्दकुन्द ने सासारिक जीवो के वर्गीकरण मे एकेन्द्रिय जीवो मे वनस्पति के साथ पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को भी सम्मिलित किया है और इनकी भी व्यर्थ हिसा से बचने का उपदेश दिया है। इन सबसे ही ब्रह्माड के पर्यावरण की रचना होती है। श्री विजय शर्मा (नवनीत, दिसम्बर, '97 का अंक) के अनुसार तो इन्ही चारो तत्त्वो (जल, अग्नि वायु और पृथ्वी) को केन्द्र म रखकर ही वेदो की रचना की गयी प्रतीत होती है। ऋग्वेद मे 'अग्नि', यजुर्वेद म 'वायु' सामवेद मे 'जल तत्त्व' और अथर्ववेद मे 'पृथ्वी तत्त्व' की व्याख्या है। पर्यावरण के सरक्षण मे धर्म का बहुत महत्त्व है। धर्म एक त्रिकालाबाधित सत्य है। उसे कभी भी क्षेत्र काल और सम्प्रदाय आदि की सीमाये बाँध कर नही रख सकीं। धर्म' शब्द भारत के ऋषियो, मनीषियो का अनुपम देन है। धर्म तो वो तत्त्व है जो केवल मानव जाति का ही नही वरन् समस्त पर्यावरण को प्रभावित करता है। धर्म महज रूढिया और रीति-रिवाजो का परिपालन मात्र नही है। उसका अर्थ तो बहुत व्यापक और विस्तृत है जिसम दर्शन रीति आचार व्यवहार, कर्तव्य आदि सबका समावेश है। वह शाश्वत सार्वभौम तथा सार्वजनिक है। धर्म तो मगलमय होता है। वह सम्पूर्ण विश्व के कल्याण व मगलमय होने की एक मजबूत आधारशिला है। धर्म मनुष्य द्वारा प्रकृति (पेड आदि) को निर्जीव एव भूक मानने के विरुद्ध है। भगवान महावीर का 'जीयो और जीने दो' और 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' सूत्र तो प्रकृति के साथ सामजस्य बना कर रहने की शिक्षा का प्रतिपादन करता है। प्रकृति अनेक सूक्ष्म, अगोचर एव लघु जीवो को चेतना म स्पन्दित है। उनके रक्षण म ही जीवन है। जैनधर्म के मूल भूत सिद्धान्त 'अहिसा परमोधर्म' म तो द्रव्य-हिसा के साथ-साथ भाव हिसा का भी निषेध किया गया है अर्थात् अन्य का एव अपनी हिसा का भाव भी अपराध है।

अहिसा ही पर्यावरण सुरक्षा का मूलाधार है। 'वसुधैव कुटम्बकम्' के भारतीय दर्शन उसके चिन्तन और अनुपालना म ही पर्यावरण के सब घटको की सुरक्षा व उनका उचित सतुलन बनाये रखा जा सकता है। समय के साथ-साथ मनुष्य ने स्वच्छन्दता मे वस्तु जगत की समस्त उपलब्धियो का उपयोग करते हुये **अपने भौतिक विकास को प्राप्त करने के लिये** प्रकृति की सम्पूर्ण सम्पदा का स्वय को मालिक ही समझ लिया। इस अधाधुध दौड मे उसने इस पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त साधनो का तो मनचाहे

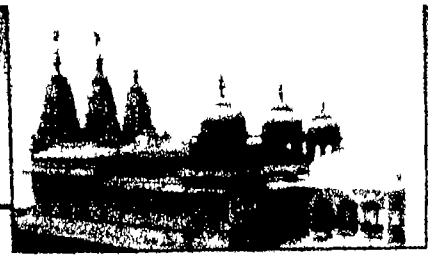

तरीके से उपयोग किया ही है, पर अब तो अन्य ग्रहो की ओर भी **अपनी इच्छाओ की पूर्ति** के लिये कदम बढ़ाना प्रारम्भ कर दिये **हैं। उसके इस एकाधिकार** साम्राज्य की लिप्सा के दृष्टिकोण के **कारण प्रकृति** के उपादानो का अत्यधिक दोहन व शोषण हो रहा **है। अपनी** स्वार्थ लोलुपता के वशीभूत होकर वो आज दिशाहीन **हो गया है** और अपने गर्वीले प्रयोजनो की प्राप्ति हेतु पानी, हवा, **नदी**, पहाड, जंगल खनिज सम्पदा से मनमाने तरीके से खिलवाड कर रहा है। विशिष्ट होने के दम्भ ने मनुष्य को आक्रान्ता और पर के अधिकारो का शोषक बना दिया है। इसके दुष्परिणाम प्रकृति मे इतनी दूर तक फैल गये है कि आज उसकी अपनी स्थिति दयनीय होकर विनाश के कगार पर आ पहुँची है।

मनुष्यो ने धर्म के मूल भूत सिद्धान्तो की अवहेलना करके अपने भौतिक विकास की गति को अत्यन्त तीव्र करने के लिये औद्योगिक क्रान्ति का भी अवलम्बन लिया है। भौतिक वैभव की प्राप्ति हेतु कारखानो के रूप मे अनेकानेक उद्योगो की स्थापना अंधाधुंध वनो की कटाई कृषि विकास के नाम पर प्राणघातक रसायनो कीटनाशको का उपयोग और विनाश-लीला करने वाले अस्त्र-शस्त्रो के निर्माण मे लग गया है आज का मानव। मांसाहार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के फलस्वरूप और विदेशी मुद्रा की प्राप्ति की मृगतृष्णा मे फँस कर बड़े बड़े कत्लखानो की स्थापना से आज वह अपनी पशु संपदा पर भी कहर बरपा रहा है।

इस तरह मनुष्य की अप्राकृतिक और अनियन्त्रित हिंसक प्रवृत्ति और भौतिक सुखो की लिप्सा से पर्यावरण का शोषण हो रहा है। इन सबके परिणामस्वरूप तो आज बड़ी तेजी से राष्ट्र की वन सम्पदा पशु सम्पदा, खनिज सम्पदा और भूमि गत जल सम्पदा का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया है। जलवायु का प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के चारो तरफ के वायुमण्डल का भी अवांछित तत्त्वो के प्रभाव से ओजोन परत के पतली होते जाने से तापक्रम बढ़ता जा रहा है (Global Warming – ग्लोबल वार्मिंग)। अगर यह सतुलन डगमगा गया तो उत्तर-दक्षिण ध्रुव स्थित बर्फ ज्यादा मात्रा मे पिघलेगी। जिसके कारण महासागरो के जल स्तर के ऊँचा उठने से निम्नतर-स्थित समुद्र तट डूब जावेगे। अनेक सामुद्रिक जीवो की, जल व पृथ्वी के वनस्पतियो की प्रजातियाँ लुप्त हो जाएगी। खेतो की जमीन रेगिस्तान मे बदल जावेगी और हरे भरे वन वीरान हो जावेगे। आज हम अपने ही इन सब अवांछित कार्य-कलापो से आत्मघाती होकर स्व-विनाश की ओर अग्रसर हो रहे है। क्या हमारे अस्तित्व के लिये इन्हे रोकना आवश्यक नही है?

पर्यावरण और उसका उचित संवर्धन, संरक्षण आज सम्पूर्ण मानवता की समस्या है। हम कैसे इस समस्या से उभरे? हम कैसे उस क्षति की पूर्ति करे जो हो चुकी है? हम कैसे उस सतुलन को बनाये रखे जो केवल कुछ वर्षो की ही नही, वरन् युगो-युगो की धरोहर थी? इसके लिये हमे केवल पर्यावरण रक्षण की बात ही नही करनी होगी, वरन् हमारे चिन्तन दर्शन व चर्या मे परिवर्तन करना होगा। हमे संवेदनशील होना पड़ेगा - इस सृष्टि के समस्त जीवो के प्रति वनस्पति के प्रति, जल, पृथ्वी वायु के प्रति और उन सब घटको के प्रति भी जो मिलकर इस पर्यावरण की रचना करते है। जीवन के मूल्यो का सही आकलन करना होगा और करना होगा हमे हमारी विलासिता और मन की लोलुपता की इच्छाओ पर नियन्त्रण। यह सभी तभी सम्भव हो सकता है जब हम धर्म के मंगलमय एव अहिंसात्मक स्वरूप को समझकर अपने जीवन की प्रत्येक प्रक्रिया मे भगवती अहिंसा का समन्वय करे। धर्म और केवल धर्म ही पर्यावरण के रक्षण और संवर्धन मे सहायक हो सकता है। मन की विशुद्धता और अहिंसा की पूर्ण रूप से अनुपालना ही हमारे अन्दर संवेदनशील भावनाओ का संचार करेगी और सहायक होगी पर्यावरण के वैज्ञानिक सतुलन को बनाये रखने मे। सत्य मे हमे कहना होगा धम्मं सरणं गच्छामि धम्मं सरणं पवज्जामि।

स्वस्थ व संतुलित पर्यावरण को हम प्रकृति द्वारा प्रदत्त और अपने पुरखो द्वारा छोड़ी गई केवल अपनी पैतृक सम्पत्ति ही न समझे वरन् उसे तो आगे आनेवाली पीढ़ियो की अमूल्य धरोहर समझ कर उसकी समुचित रक्षा व देखभाल करे। धर्म की अनुपालना से ही पर्यावरण का वैज्ञानिक सतुलन बना रहेगा। पर्यावरण रहेगा तो निश्चय ही हम सब रहेगे, आनेवाली पीढ़ियाँ रहेगी सुख समृद्धि मे – अन्यथा हमारा विनाश तो निश्चित है।

सेवानिवृत्त निदेशक (भू-भौतिकी)
भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण
5 छ 7 जवाहर नगर, जयपुर

कर्म सिद्धान्त

• प्रकाश चन्द्र सधी

जैनधर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों मे स एक है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त तथा कर्मसिद्धान्त इस धर्म के मुख्य आधार है। यदि यह कहा जाये कि कर्मसिद्धान्त जैनधर्म के प्राण अध्यात्म को ठोस आधार प्रदान करता है ता कोई अतिशयोक्ति नही हागी। कर्मसिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव अथवा आत्मा अनादि काल स कर्मों से लिप्त अथवा बद्ध है एव ये कर्म ही उसे समार की चारो गतियो मे तब तक भ्रमण कराते रहते है जब तक वह अपने पुरुषार्थ द्वारा सभी कर्मों का पृथक् कर शुद्धस्वरूप को प्राप्त नही हो जाता। शुद्ध अवस्था मे वह पचम गति, माक्ष को प्राप्त होता है जिस के पश्चात् वह समार म लौटकर नही आता। जब तक जीव शुद्ध अवस्था को प्राप्त नही हो जाता वह स्वय अपने कर्मों का कता एव भाक्ता है। शुद्धस्वरूप की प्राप्ति के पश्चात् इसका कर्मों से कोई सबध नही रहता अत न यह उनका कर्ता ही रहता है और न भाक्ता ही।

कर्मसिद्धान्त आत्मा के ससार भ्रमण का कारण व उनक निवारण का सिद्धान्त है जिसे समझन के लिये निम्न सारभूत बातो का विवेचन आवश्यक है·

1 जीव अथवा आत्मा एव उसका शुद्धस्वरूप क्या है?
2 पुद्गल कर्म व उसका स्वरूप क्या है?
3 कर्मों का आगमन आत्मा की ओर कैसे व क्यो होता है?
4 कर्म आत्मा से किस प्रकार बध जाते हैं व उस बन्धन का क्या परिणाम होता है?
5 नवीन कर्म बन्धन को रोकने का क्या उपाय है?
6. बँधे हुए कर्म किस प्रकार नष्ट होते हैं व नष्ट किये जा सकते हैं?
7 मोक्ष क्या है?

जैनदर्शन में उपर्युक्त सात मूलभूत विषयों को संक्षेप मे तत्व कहा गया है जो क्रमश: जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष के नाम से जाने जाते है। इन सात तत्वो मे से प्रथम दो जीव व अजीव द्रव्य है आश्रव बध, सवर और निर्जरा जीव व अजीव पुद्गल कर्म क सम्बन्धो की प्रक्रिया स्वरूप है व मोक्ष जीव की शुद्ध अवस्था है।

आचार्य कुन्दकुन्द क अनुसार जो अपने अस्तित्व भाव को नही छोड़ते हुए उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य स युक्त है तथा गुण व पर्यायवान् है, द्रव्य कहलाते है। उक्त आधार पर द्रव्य के निम्न गुण है –

1 द्रव्य अपने अस्तित्व भाव का नही छोडता। दूसर शब्दो मे द्रव्य शाश्वत सत्/नित्य है, इस न तो उत्पन्न किया जा सकता है एव न ही नष्ट।
2 पर्याय की दृष्टि स द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य गुण युक्त है। उदाहरण के लिये मिट्टी एक द्रव्य है जिससे विभिन्न उत्पाद बनाये जा सकते है। उत्पाद बनान मे मिट्टी का व्यय होता है व्यय होने से नया उत्पाद बनता है किन्तु नय उत्पाद म मिट्टी विद्यमान रहती है। मिट्टी का विद्यमानता उसका ध्रौव्य (शाश्वतता) गुण है। उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य तीनो प्रक्रियाये साथ-साथ ही चलती है। एक क बिना दूसरी नही हो सकती।
3 प्रत्येक द्रव्य के अपन विशिष्ट गुण होते है जिससे उसकी अन्य द्रव्या से पहचान हो जाती है। मिश्रित अथवा मिश्रित दिखनेवाल पदार्थों/द्रव्या को उनक गुणो के आधार से पृथक कर दना भेदविज्ञान कहलाता है।
4 द्रव्य स रहित कोइ गुण व गुण स रहित कोई द्रव्य नही होता। इसी प्रकार पर्याय स रहित कोई द्रव्य व द्रव्य से रहित कोई पर्याय नहीं होती।
5 पर्याय परिवर्तन अथवा परिणमन द्रव्य का स्वभाव है।
6 प्रत्येक द्रव्य अपने स्वय क गुण व पर्याय का कर्ता व अधिकारी है, किसी दूसर का नही।

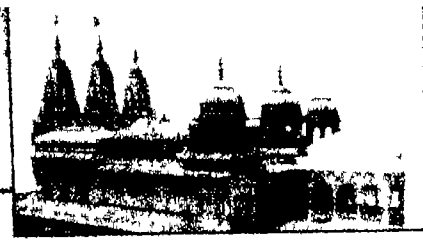

उपर्युक्त परिभाषा व विवेचन के अनुसार इस ब्रह्माण्ड मे छ **प्रकार के द्रव्य है** – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल। **इनमे जीव को** छोडकर शेष पाँच द्रव्य अजीव है। आकाश ही एक **ऐसा द्रव्य है** जो समस्त ब्रह्माण्ड (लोकाकाश व अलोकाकाश) **मे व्याप्त है।** काल द्रव्य एक प्रदेशी है। उसका कोई परिमाण **(विस्तार)** नही होता अत वह अनास्तिकाय भी कहलाता है। इस **ब्रह्माण्ड** मे जीव व पुद्गल अनन्तानन्त है जब कि धर्म, अधर्म तथा आकाश एक एक है तथा काल द्रव्य कालाणुओं के रूप मे असख्यात है लोकाकाश मे जितने प्रदेश है उतने है। जैनदर्शन मे परिमाण की इकाई को प्रदेश कहा गया है। एक प्रदेश उतना बडा होता है जितना पुद्गल का एक परमाणु। पुद्गल का एक परमाणु कितना छोटा होता है उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पानी की एक बूद मे आधुनिक विज्ञान के अनुसार 6×10 परमाणु होते है। एक परमाणु एक प्रदेशी है या दो से अधिक परमाणुओ से बना स्कन्ध सख्यात प्रदेशी, असख्यात व अनन्त प्रदेशी होता है।

आत्मा व उसका स्वरूप

जीव द्रव्य का सामान्य लक्षण अथवा असाधारण या विशिष्ट गुण जो अन्य द्रव्यो मे नही पाया जाता वह चेतना है। दूसरे शब्दो मे जिसमे चेतना हो वह जीव है। जीव का दूसरा पर्यायवाची नाम आत्मा है। प्रत्येक जीव एक पृथक् आत्मा है। द्रव्य के सभी सामान्य गुण आत्मा के लिए भी लागू होते है। इस प्रकार –

1 आत्मा अनादिनिधन एवम् अविनश्वर है। व्यवहार मे हम जिसे मृत्यु कहते है वह आत्मा की पर्याय परिवर्तन की एक प्रक्रिया मात्र है।

2 पर्याय की दृष्टि से यह उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य गुणो से युक्त है। पर्याय दो प्रकार की है – (1) अर्थ पर्याय और (2) व्यजन पर्याय। अर्थ पर्याय सूक्ष्म व क्षणिक होती है। प्रत्येक द्रव्य की परिणामशक्ति से उसके गुणो मे स्व पर आलम्बन (प्रत्यय) से प्रति समय परिणमन होता रहता है। आत्मा मे ऐसे परिवर्तन को अर्थ पर्याय परिणमन कहा जाता है। आत्मा का नर, नारकी, तिर्यच आदि पर्यायो मे परिणमन विभाव व्यजन पर्याय व शुद्ध अथवा सिद्धपर्याय मे परिणमन स्वभाव व्यजन पर्याय कहलाता है। विभाव व्यजन पर्याय अल्प व लम्बे समय के लिये होती है तथा स्वभाव व्यजन पर्याय स्थायी होती है।

3 नर, नारकी, तिर्यच आदि पर्याये शरीर की दृष्टि से है। शरीर स्वय आत्मा नही है। तथापि, आत्मा शरीरो मे तब तक अपनी आयु प्रमाण रहती है जब तक सिद्ध गति को प्राप्त नही हो जाती। आत्मा शरीर मे इस प्रकार रहती है जैसे कलश मे जल। साधारण बोलचाल मे हम पानी से भरे मिट्टी के कलश को पानी का कलश कह देते है। किन्तु वास्तव मे पानी व मिट्टी पृथक् पृथक् है। इसी प्रकार आत्मा व शरीर पृथक् द्रव्य है। आत्मा जीव द्रव्य है तो शरीर पुद्गल द्रव्य है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और बडे से बडे जीव मे आत्मा का निवास है। सभी आत्माएँ समान है शरीर के परिमाण के अनुसार उसके लोकाकाश प्रमाण प्रदेश सकोच विस्तार कर लेते है।

4 शुद्धता की दृष्टि से आत्मा के दो मुख्य भेद है। एक शुद्ध व दूसरी अशुद्ध। आत्मा अनादिकाल से कर्मो से युक्त है व इस प्रकार तब तक अशुद्ध है जब तक कि वह अपने पुरुषार्थ से कर्मो से विलग होकर शुद्धता को प्राप्त नही हो जाती।

5 ज्ञान तथा दर्शन आत्मा का स्वभाव है।

6 आत्मा रूप, रस, गध व स्पर्श जो पुद्गल के गुण है, उनसे रहित है। शुद्ध आत्मा बन्ध, स्पर्श, व अन्य के सयोग से रहित होती है एवम् परम शान्त भाव मे स्थित होती है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहा है कि जीव के वर्ण नही है, गन्ध भी नही है, रस भी नही है स्पर्श भी नही है रूप भी नही है शरीर भी नही है, सस्थान (आकार) भी नही है सहनन भी नही है। जीव के राग भी नही है द्वेष भी नहीं है, मोह भी नहीं है, आस्रव भी नही है, कर्म भी नही है, उसके नोकर्म भी नही है। जीव के वर्ग नही है कोई वर्गणा नही है, कोई स्पर्धक भी नही है अध्यात्म स्थान भी नही है और अनुभाग स्थान भी नही है। जीव के कोई योग स्थान नही है, बध स्थान नही है और उदय स्थान भी नहीं है, कोई मार्गणा स्थान भी नहीं है। जीव के स्थिति बध स्थान नहीं है, सक्लेश स्थान नहीं है, विशुद्धि स्थान

नही है, लब्धि स्थान नहीं है और जीव के गुणस्थान भी नहीं है, क्योकि ये सब पुद्गल के परिणाम हैं। यह शुद्ध निश्चयनय का कथन है। अशुद्धनिश्चयनय के अनुसार राग आदि को जीव का कहा जाता है एवम् शरीर के वर्णादि को व्यवहार नय के अनुसार जीव का कहा जाता है।

पुद्गल एवम् उसका स्वरूप

पुद्गल द्रव्य मे सभी भौतिक पदार्थ व ऊर्जा सम्मिलित है। विज्ञान की परिभाषा के अनुसार वे सभी वस्तुएँ जो स्थान घेरती है तथा जिन मे भार होता है, पदार्थ या द्रव्य कहलाती हैं। वे ठोस, द्रव तथा गैस तीन अवस्थाओ मे पाये जाते है। ताप, ध्वनि, प्रकाश, विद्युत चुम्बकत्व आदि ऊर्जा के रूप है। यह सिद्ध हो चुका है कि पदार्थ व ऊर्जा एक-दूसरे मे परिणमनशील है अत जैनदर्शन के अनुसार दोनो पुद्गल द्रव्य है। वास्तव मे ससार मे जितने भी तत्व (elements) है सभी के परमाणु कुछ अतिसूक्ष्म कणो, जिन्हे इलैक्ट्रॉन कहा जाता है, से बने है। भिन्न-भिन्न तत्वो के परमाणुओ म इन सूक्ष्म कणो की सख्या भिन्न-भिन्न होती है एवम् किसी तत्व के परमाणु को उसके सूक्ष्म कणो मे वृद्धि अथवा कमी करके दूसरे तत्व के परमाणु म बदला जा सकता है। इस प्रकार सभी तत्व एक ही प्रकार के (पुद्गल के) सूक्ष्म कणो से बने है।

पुद्गल का सामान्य लक्षण अथवा विशिष्ट गुण जिससे इसकी पहचान अन्य द्रव्यो मे की जा सकती है वे हैं-उनका रूप, रस, गध और स्पर्श से युक्त होना। प्रत्यक परमाणु मे स्वभाव स एक रूप या वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श होते है। स्कन्ध पुद्गल परमाणुओ की सयुक्त पर्याय है। स्कन्ध छ प्रकार के होते है -

1 अतिस्थूल-स्थूल या बादर-बादर - जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वय न मिल सके। सभी ठोस पदार्थ इस श्रेणी म आते हैं।
2 स्थूल या बादर :- जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वय आपस मे मिल सके। सभी द्रव व गैस पदार्थ इस श्रेणी मे आते है।
3 स्थूल-सूक्ष्म या बादर सूक्ष्म :- जो स्कन्ध दिखने मे तो स्थूल दिखाई दे लेकिन छेदने-भेदने और ग्रहण करने मे नहीं आये, जैसे - छाया, प्रकाश, अन्धकार, चाँदनी आदि।
4 सूक्ष्म-स्थूल - चक्षु को छोडकर शष चार इन्द्रियो के विषय-स्पर्श, रस, गध और शब्द सूक्ष्म-स्थूल है।
5 सूक्ष्म - जो सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियो के द्वारा ग्रहण नही हो, जैसे कर्मवर्गणा।
6 अति सूक्ष्म - कर्मवर्गणा से भी छोट द्वयणुक तक के स्कन्ध।
7 परमातिसूक्ष्म - परमाणु परमातिसूक्ष्म है।

इन्द्रियाँ मन, शरीर, इन्द्रिया के विषय श्वासोच्छ्वास आदि पुद्गल द्रव्य के विविध परिणमन है।

सक्षप म भौतिक पदार्थो को पुद्गल व उनस जनित, उत्सर्जित उनम हुई स्व क्रियाओ अथवा दो या दो मे अधिक पुद्गलो म हुइ क्रियाओ व प्रक्रियाओ को पौद्गलिक कहा जा सकता है। जनदर्शन मे सभी पौद्गलिक पदार्थो व क्रियाओ आदि को भी इसीलिए पुद्गल माना है। मन वचन व शरीर मे से किसी एक अथवा दो अथवा तीनो द्वारा किय गय काय के परिणामस्वरूप जीव के चारो ओर व्याप्त सूक्ष्म कार्माण स्कन्ध वर्गणाये जीव मे बध जाती है अत कर्म (द्रव्य कर्म) पुद्गल है। क्रोधादि कषाय रूप कर्मो का उदय होने पर शरीर म ग्रन्थियो म रस स्राव तो पुद्गल है पर जीव का क्रोधादि होना पुद्गल नहीं, जीव का विकार है भाव-कर्म है। द्रव्य कर्म पुद्गल है, जीव के जिन भावो स व बधते है वह भावकर्म जीव है।

कर्मो का कई प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। गुणो की दृष्टि से उन्हे अच्छे या बुरे फल की दृष्टि स शुभ व अशुभ, बन्ध की दृष्टि से पुण्य व पाप विचार की दृष्टि स भावकर्म/द्रव्यकर्म प्रकृति बध एव परिणाम की दृष्टि से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों मे वर्गीकृत किया गया है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के पुन अनेक भेद है जिनका यहाँ विवचन नही किया जा रहा है।

जिस प्रकार भौतिक पदार्थ परमाणुओ स बने हैं, उसी प्रकार कर्म भी परमाणुओ स बने है, जिन्हे कर्मवर्गणाएँ कहा जाता है।

आत्मा व कर्म के मध्य सबध

पदार्थों के मध्य तीन प्रकार के सबध बताय गये हैं -

1 व्याप्य व्यापक सबध
2 कर्त्ता कर्म सबध
3 निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

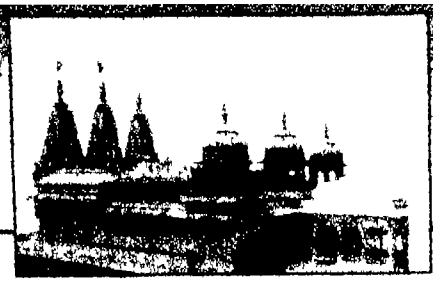

व्याप्य-व्यापक सबध – अग्नि के साथ उष्णता का सबध व्याप्य-व्यापक सबध है। इस सबध को तादात्म्यता भी कहा जा सकता है क्योकि अग्नि के साथ उष्णता अनिवार्य है। अपने गुणो के साथ द्रव्य का नित्य अथवा शाश्वत सम्बन्ध है पर पर्याय के साथ क्षणिक, अल्पकालिक अथवा स्थायी जैसे पूर्व मे हम कह चुके है, सम्बन्ध है।

कर्ता-कर्म सबध – कर्ता के लिए कर्म तीन प्रकार से कहा गया है –

1 विकार्य कर्म – वह है जब कर्ता परिणाम रूप आप परिणमे।

2 प्राप्य कर्म – वह है जब कर्ता किसी को ग्रहण करे।

3 निवर्त्य कर्म – वह है जब कर्ता किसी को उत्पन्न करे।

उदाहरण के लिए मिट्टी स्वय ही घडरूप परिणमती है व मिट्टी ही घडे को उत्पन्न करती है तथा घडा पर्याय ग्रहण करती है अत मिट्टी व घडे के मध्य कर्ता कर्म सबध है।

निमित्त-नैमित्तिक सबध – कुम्हार चाक की सहायता से मिट्टी का घडा बनाता है, परन्तु न तो कुम्हार और न चाक घड रूप परिणमता है, अत कुम्हार व चाक का घट के साथ कर्ता कर्म का सबध नही है। परन्तु यह भी सही है कि कुम्हार व चाक के बिना मिट्टी स्वय घडा नही बन सकती। अत निमित्त नैमित्तिक सबध जो घडे और कुम्हार व चाक के बीच है, वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कर्म और आत्मा के मध्य भी निमित्त-नैमित्तिक सबध है। उनके बीच व्याप्य व्यापक सबध नही है क्योकि कर्म व आत्मा का सबध शाश्वत नही है। उनके बीच कर्ता-कर्म सबध भी नही है क्योकि दोनो ही भिन्न द्रव्य है, अत एक से दूसरे का परिणमन सभव नही है, न तो आत्मा पुद्गल को और न पुद्गल आत्मा को ही उत्पन्न कर सकता है।

अत आत्मा ही स्वय का कर्त्ता है व वही भोक्ता है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार पवन के चलने और न चलने का निमित्त पाकर समुद्र मे तरगे उठती और विलीन होती है किन्तु समुद्र के इन रूप होने मे भी पवन और समुद्र के बीच न व्याप्य-व्यापक सबध है और न ही कर्त्ता कर्म सबध वरन् समुद्र स्वयमेव ही पवन के निमित्त से उत्तरग निस्तरग रूप परिणमित होता है। इसी प्रकार पुद्गल कर्म व जीव के बीच व्याप्य-व्यापक तथा कर्त्ता-कर्म सबध न होते हुए भी जीव कर्मो के निमित्त से अपनी आत्मा को विविध अवस्था रूप करता हुआ उन विभाव अवस्थाओ मे विभाव रूप परिणमित होता है।

आस्रव

कर्मो के आत्म प्रदेशो मे आगमन को आस्रव कहते है। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रकार के आस्रव है जो चारो ही चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते है। चेतन मे विकारी भावो के आस्रव को भावास्रव व अचेतन पुद्गल कर्मो के आस्रवो को द्रव्यास्रव कहा जाता है।

जैसा कि पूर्व मे कहा गया है जीव आत्मा कर्मो से बद्ध है। ये कर्म समय आने पर उदय मे आते है तथा मिथ्यात्व, अविरति, कषायादि पुद्गलीय विकारो को उत्पन्न करते है। इन विकारो के निमित्त से आत्मा मे विभाव कुछ इस प्रकार उत्पन्न होते है जैसे दर्पण मे प्रतिबिम्ब बनता है। आत्मा मे यह विभाव (जो रागादि भाव है) ही बन्ध का कारण है। इस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मो का उदय मे आना, आत्मा मे उनके निमित्त से रागादि भावो का उत्पन्न होना एवम उनके फलस्वरूप नवीन कर्मो का बध होना एक सतत व चक्रीय प्रक्रिया है। जीवो के जो विपरीत ज्ञान (वस्तुस्वरूप का अयथार्थ ज्ञान) है वह अज्ञान का उदय है, तत्वो का अश्रद्धान मिथ्यात्व का उदय है, अत्याग भाव (विषयो से विरत न होना) असयम का उदय है, क्रोधादि कषाय भाव कषाय का उदय है तथा शुभ या अशुभ प्रवृत्तिरूप अथवा निवृत्तिरूप मन, वचन व काय के व्यापार मे उत्साह है वह योग है। इन मिथ्यात्व आदि विभावो के उदय अथवा उत्पन्न होने पर कार्माणवर्गणाओ के रूप मे आया पुद्गल द्रव्य आठ प्रकार परिणमन करता है व जीव के साथ बन्धता है।

कर्म बन्ध

जैसा कि पूर्व मे कहा गया है ज्ञानावरणादि कर्मो के उदय मे आने पर आत्मा मे उनके निमित्त से रागादि भाव उत्पन्न होते है। रागादि भावो का उत्पन्न होना ही बन्ध का कारण है। यह आवश्यक नही है कि रागादि भाव कार्यरूप मे परिणित ही हो।

उदाहरण के लिए यदि द्वेषवश किसी की हिसा का भाव आया तो भाव आने से ही हिसा के पाप का बन्ध हो जायेगा, चाहे वास्तव में हिसा की ही न हो या हुई ही नहीं हो।

बन्ध का स्वरूप क्या है? इस सबध मे कहा गया है कि कर्म आत्मा स इस प्रकार मिल जाते है जैसे दूध मे पानी या निर्मल जल मे रज या जैसे तेल लगी त्वचा मे धूल। कर्म का एक दूसरा स्वरूप भी सभव है जिसक अनुसार यह उस प्रकार का हा सकता है जैसे एक परमाणु के नाभिक से उसके इलैक्ट्रोन्स बँधे रहते है या जैस सूर्य से पृथ्वी आदि ग्रह बँधे हुए है। दूध और पानी अथवा पानी और रज जैसे स्वरूप मे आत्मा व कर्म परस्पर एक-दूसर को छूते है किन्तु यदि यह स्वरूप नाभिक और इलैक्ट्रान या सूर्य व ग्रहा जैसा माना जाये तो वे परस्पर एक-दूसर को छूते नही है।

कर्म बन्ध क समय यह निर्धारित हो जाता है कि कितनी कर्म वर्गणाओ का बन्ध हुआ कर्म की प्रकृति क्या है, यह कब उदय मे आयगा, उदय मे आने के पश्चात् कितने काल तक अपना फल देगा और उस सुख दु खरूप फल की तीव्रता कितनी होगी। इन्ह क्रमश प्रदेशबन्ध, प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध व अनुभागबन्ध के नाम से भी जाना जाता है। प्रकृतिबन्ध की दृष्टि मे कर्म मुख्य रूप से निम्न प्रकार के है, परन्तु प्रत्येक क पुन अनेक भेद है

1 **ज्ञानावरण** इस कर्म की उपमा पर्दे स दी गई है। जिस प्रकार पर्दा या आवरण होने मे वस्तु का सही ज्ञान नहीं हो पाता, उसी प्रकार ज्ञानावरण स सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति नही हो पाती।

2 **दर्शनावरण** इस कर्म की उपमा द्वारपाल स दी गई है। इसके उदय होने मे सही स्वरूप का दर्शन नही हो पाता।

3 **वेदनीय** इसकी उपमा शहद लगी तलवार से दी गई है, जो चाटने पर तो मीठी लगती है किन्तु जिससे जीभ कट जाती है। सुख-दु ख वेदनीय कर्म के परिणाम हैं।

4 **मोहनीय** इसकी उपमा मद्य से दी गई है। जिसप्रकार शराब पी कर मनुष्य होश मे नही रह पाता, वैसी ही स्थिति मोह के उदय मे ससारी जीवो की होती है।

5 **आयु** · इसकी उपमा पैरो मे पडी बेडी (काठ) से दी गई है। जैसे पैर बँध जाने पर मनुष्य एक ही स्थान पर पड़ा रहने हेतु बाध्य है, वैसे ही आयु कर्म जीव को एक भव मे रोक रखता है।

6 **नाम** नामकर्म की उपमा चित्रकार से दी गई है। जैसे चित्रकार नानाप्रकार के चित्र बनाता है, वैसे ही नामकर्म जीव क शरीरादि की रचना करता है।

7 **गोत्र** गोत्र कर्म की उपमा कुम्हार से दी गई है। जैसे कुम्हार छोट बडे, सुन्दर-असुन्दर बर्तन बनाता है वैस ही गोत्र कर्म ऊँचा-नीचा या छोट-बडेपन का व्यवहार कराता है।

8 **अन्तराय** इस कर्म की उपमा भण्डारी से दी गई है। जैसे राजा ने ता किसी वस्तु को देने क आदेश कर दिये, किन्तु भण्डारी उस न द अथवा देने मे व्यवधान कर ऐस ही इस कर्म से इच्छित लाभ नहा हा पाता।

कर्मो का बन्धन व उनका खिरना एक सतत क्रिया है जिसक कारण उनमे अनेक परिवर्तन होत रहत है। अत कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत कर्मो के सबध म निम्न तथ्य जानने योग्य है

1 **बन्ध** कर्मो का आत्मा के साथ बद्ध होना और उनमे स्वभाव, काल मर्यादा, प्रभाव और परिणाम उत्पन्न हो जाना।

2 **उत्कर्षण** बँधे हुए कर्मो की काल मर्यादा और फल म वृद्धि हो जाना।

3 **अपकर्षण** बँधे हुए कर्मो की काल मर्यादा और फल मे कमी हो जाना।

4 **सत्ता** कर्म बँधत ही अपना फल नही दत। कर्म बन्ध के पश्चात् बीच का नियत समय जिस आबाधा काल कहते है समाप्त होन पर ही कर्म का फल प्रकट होन लगता है। बन्ध होन और फलोदय होन क बीच कर्म आत्मा स बद्ध रहते है। बीच की यह अवस्था सत्ता कहलाती है।

5 **उदय** कर्म का फलदान उदय कहलाता है। यदि कर्म अपना फल देकर निर्जीर्ण हो जाये तो वह विपाकोदय और फल दिये बिना ही नष्ट हो जाये तो वह प्रदेशोदय कहलाता है।

6 **उदीरणा** बन्ध के समय नियत हुई काल मर्यादा से पूर्व ही कर्म का उदय मे ले आना उदीरणा है।

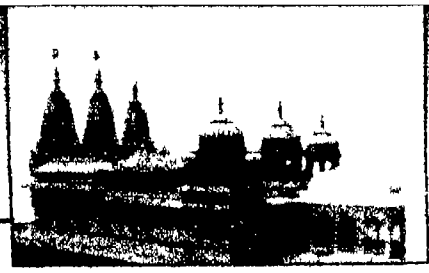

7 **सक्रमण** एक कर्म के अनेक भेद है। एक कर्म अपने सजातीय दूसरे भेद मे बदल सकता है जो सक्रमण कहलाता है। तथापि, मूल आठ कर्मो मे एक कर्म पलट कर दूसरा नही बन सकता। इस प्रकार ज्ञानावरण किसी अन्य कर्म दर्शनावरण मोहनीय आदि मे परिवर्तित नही हो सकता।

8 **उपशम** कर्मो के विद्यमान रहते हुए भी उनके उदय मे आने मे अक्षम कर देना जैसे अगारो को राख मे दबा देना।

9 **निधत्ति** कर्मो का सक्रमण और उदीरणा न हो सकना।

10 **निकाचना** कर्मो का ऐसे प्रगाढ रूप से बँधना कि उनमे उत्कर्षण, अपकर्षण सक्रमण एव उदीरणा आदि न हो सके।

सभी कार्यो को अच्छे-बुरे की दृष्टि से दो भागो मे बॉटा जा सकता है - (1) सद्कार्य व (2) बुरे कार्य। सदकार्य सभी को सुखकारी और बुरे कार्य दु खकारी होते है। सद्कार्यो मे पुण्य का व बुरे कार्यो से पाप का बन्ध होता है। पुण्य जीव को उच्चगति जैसे देवगति व मनुष्यगति व बुरे कार्य उसे अधम गतियो की प्राप्ति के हेतु है। तथापि, चूँकि दोनो ही प्रकार के कार्यो मे कर्म बन्ध होता है अत जैनदर्शन ने दोनो को ही त्याज्य माना है। हॉ बुरे कार्यो की तुलना मे तो सत्कार्य उपादेय है ही क्योकि वे जीव को अधोगति से बचा कर ससार मे उच्चगति प्राप्त कराते है।

सवर

सवर का अर्थ है कर्मो का अवरोध। यह आस्रव के विपरीत क्रिया है। चूँकि आत्मा कर्मो के कारण ही अशुद्ध है एवम् बँधे हुए कर्म एक निश्चित अवधि के पश्चात् फल देकर झड जाते है साथ ही कर्मो की जीव अपने पुरुषार्थ से अवधि से पूर्व निर्जरा भी कर सकता है अत यदि नवीन कर्म बन्ध नही हो तो आत्मा की शुद्धि हो सकती है।

जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है कर्म बन्ध आत्मा मे रागादि भावो के उत्पन्न होने के कारण होता है। यदि जीव इन विभावो को अपने मे उत्पन्न ही न होने दे तो कर्म बन्ध नही हो सकता। ज्ञानी जीव आत्मा मे विभावो को उत्पन्न नही होने देते।

निर्जरा निर्जरा का अर्थ है झडना या खिरना। जैसे पके हुए फल वृक्ष से झडकर अलग हो जाते है वैसे ही कर्म उदय मे आने के पश्चात् अपना फल दे कर झड जाते है तथा जैसे वृक्ष से अलग हुए फल पुन वृक्ष पर नही लगते वैसे ही कर्म झडने के पश्चात् पुन फल नही देते।

कर्म जब भी उदय मे आते है साधारणतया जीव सुख-दु ख का अनुभव करता है तथा तदनुसार परद्रव्यो का उपभोग करता है किन्तु वैरागी व ज्ञानी पुरुष उनका प्रकरण रूप उपभोग करता हुआ भी नये कर्म नही बॉधता क्योकि न वह सुख मे मग्न हो कर उनमे एकत्व व आसक्त भाव रखता है और न वह दु ख मे विचलित हो कर दु खी ही होता है। वह जानता है कि सुख और दु ख आत्मा के स्वभाव नही है वे तो कर्मोदय जनित है। इस प्रकार सयम, तप, अपरिग्रह व अनासक्ति कर्म निर्जरा के हेतु है।

अपरिग्रही वह है जिसे कोई इच्छा नही है क्योकि वह जानता है कि अपनी आत्मा के सिवा उसका इस ससार मे कोई नही है फिर पर पदार्थो से राग करने व उन्हे अपना मानने तथा अनावश्यक सग्रह करने का कोई औचित्य नही है।

कर्म निर्जरा के लिए सम्यग्ज्ञानी होना अनिवार्य है। सम्यग्दर्शन व ज्ञान के बिना कर्म बन्ध को रोका नही जा सकता।

मोक्ष

मोक्ष आत्मा की परम गति है जो ध्रुव (शाश्वत्) अचल व अनुपम है। जब जीव सब कर्मो से रहित हो जाता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् आत्मा का ससार भ्रमण समाप्त हो जाता है और आत्मा परम शान्ति व सुख को प्राप्त होती है।

जिस प्रकार बन्धन मे पडा हुआ कोई व्यक्ति बन्धन की चिन्ता मात्र से मुक्त नही हो पाता उसी प्रकार जीव भी कर्म बन्ध की चिन्ता मात्र करने अथवा कर्म बन्धनो की प्रकृति प्रदेश स्थिति और अनुभाग को जानने मात्र से बन्धन से मुक्त नहीं होता। जो व्यक्ति जीव व कर्म बन्ध के स्वभावो को जानकर रागादि को दूरकर बन्धो के प्रति विरक्त होता है, वही कर्मो से मुक्त होता है। जीव तथा बन्ध अपने निश्चित लक्षणो रूप भेद विज्ञानरूपी छैनी से अलग किये जाते है। प्रज्ञा द्वारा यह ग्रहण किया जाना चाहिए कि जो चिदात्मा है, जो दृष्टा है तथा जो ज्ञाता है, वह मै हूँ, शेष जो भी भाव हैं वे मुझसे पर है।

अन्य दर्शनो में कर्म सिद्धान्त

मोटे तौर से जीव जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पडता है, यह कर्म सिद्धान्त का अभिप्राय है। इस सिद्धान्त को जैन, साख्य-योग आदि आत्मवादीदर्शन और अनात्मावादी बौद्धदर्शन भी मानता है। ईश्वरवादी वैदिक और अनिश्वरवादी भी इसे मानते हैं, किन्तु कर्म के स्वरूप और फल देने के सबध मे इनमे और जैनदर्शन मे मौलिक भेद है। कुछ दर्शन ईश्वर को समस्त पर द्रव्यो का व नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव का सृष्टि कर्ता मानते हैं एव कुछ अपनी आत्मा को पर-द्रव्यो का तथा नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य आदि का कर्ता मानते हैं। जैन-दर्शन ईश्वर या आत्मा को सृष्टा नहीं मानता क्योकि इसके अनुसार यदि ईश्वर ही सृष्टा है, तो जीव पराधीन हो गया और वह स्वय मोक्ष नहीं पा सकता। एवम्, यदि आत्मा सृष्टा है तो आत्मा नित्य होने से सदा सृष्टा ही बना रहेगा, अत उसे भी मोक्ष नही हो सकता। जैन मत के अनुसार आत्मा का किसी भी पर-द्रव्य मे कर्ता-कर्म सबध नही है अत पराधीनता नही है। इसके अनुसार जीव जब कुज्ञान के पथ पर चलता है तो ससार सृष्टि होती है और जब ज्ञानरूप परिणमता है तो मोक्षमार्ग पर चलकर मोक्ष पाता है।

साख्य मत यह कहता है कि आत्मा सदैव ही अकर्ता है। किन्तु जैनदर्शन स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुसार मानता है कि आत्मा कर्मों (भावकर्मो) का कर्ता है भी और नही भी है। वह भावकर्मों का कर्ता तब तक है जब तक वह अज्ञान अवस्था मे है और जब आत्मा को भेदविज्ञान हो जाता है और वह आत्मा का आत्मा के शुद्धस्वरूप मे जान जाता है और ज्ञानरूप परिणमन करता है, तब वह भावकर्मों को नही करता।

जैनदर्शन कर्मों को आत्मा पर मन, वचन व शारीरिक क्रियाओ का सस्कार मात्र नही मानता जैसा अन्य मत मानते हैं, वरन् उन्हे एक भौतिक पदार्थ के रूप मे मानता है। जैनदर्शन के अनुसार आत्मा मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् इस ससार मे अवतार आदि के रूप मे पुन. नही लौटती।

कर्म सिद्धान्त की उपादेयता

आज इस जगत मे जो विषमताये मानव मानव के बीच ही नही वरन् विभिन्न जीवो के बीच भी दृष्टिगोचर होती है, वे सब कर्म सिद्धान्त की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। कभी-कभी लगता है कि विषमताय परिस्थितिजन्य होती है, किन्तु यह पूर्णतया सही नहीं है। समान परिस्थितियो म भी विभिन्न प्राणियो मे भारी असमानताएँ होती है, उनके व्यवहारो मे भारी अन्तर होता है। इस सब विषमताओ को कर्म सिद्धान्त के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है।

कर्म सिद्धान्त सद्कार्यों व सद्प्रवृत्तिया की प्रेरणा देता है क्योकि इसके अनुसार सद्कार्यो व प्रवृत्तियो का फल शुभ व हीन कार्यो व प्रवृत्तियो का फल अशुभ मिलता है। कभी कभी ऐसा लगता है कि जो लोग पापाचार अत्याचार या भ्रष्टाचार जैसे कर्मो मे लिप्त रहते है व अधिक सुखी तथा जो लोग सदाचारी, परोपकारी व ईमानदार होते हैं व दु खी तथा परशान होते है। कर्म सिद्धान्त इसका भी कारण स्पष्ट कर देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर्म अपना फल तुरन्त नहीं देते, अत आज के बुरे कर्मो का फल आज नही कालान्तर मे अशुभ ही मिलेगा और आज जो हीन कार्यो के करते हुए भी सुखी हैं, तो इसका कारण उनके पुण्य कर्मों का वर्तमान म उदय होना है। इसी प्रकार जो सद्प्रवृत्तिवाले व्यक्ति आज दु खी है, उसका कारण उनके अशुभ कर्मो का उदय है। अत कर्म सिद्धान्त के ज्ञानी दु ख मे दु खी नही होते, वरन् सहज रहते हैं।

अतिरिक्त निदशक एव विशेषाधिकारी
खान विभाग शासन सचिवालय, राजस्थान, जयपुर

काल के गाल पर तमाचा

काल ने कहा एक मात्र मैं ही बलवान,
मैं ही इस दुनिया का अंतिम सत्य हूँ,
मै शिव का त्रिनेत्र और प्रलय प्रदर्शन,
नष्ट कर्त्ता हूँ इसीलिए स्तुत्य हूँ।

इस मिथ्या जगत को नष्ट करके यार,
अपनी महानता पर इतना क्यू नाचा है
महावीर स्वामी की भक्ति को नष्ट कर दे तो जानें
जो काल तेरे गाल पर धरती तमाचा है

• **सजय झाला**, दौसा

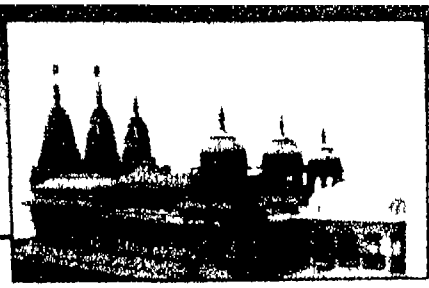

अहिंसा : एक विचार

• नवीनकुमार बज
जयपुर

प्रत्येक प्राणी मे स्वाभाविक इच्छा रहती है कि वह जीवित रह उसे पीडा का अनुभव न हो अर्थात् काइ भी दु खा होना या मरना नही चाहता। यही कारण है कि वह दूसर प्राणिया स यह अपेक्षा करता है कि उसके प्रति वे स्वीकृत आदर्शो क अनरूप व्यवहार करें तथा उस जीवित रहने म सहयोग प्रदान कर। यह स्वाभाविक इच्छा अहिसा को आदर्श धार्मिक व सामाजिक मूल्य क रूप म स्थापित करती है तथा समाज म निश्चित प्रकार क व्यवहार करन की प्रेरणा देती है।

ससार के विभिन्न धर्मो म इस आधार पर अहिसा - उसके प्रकार, स्वरूप तथा अहिसक व्यवहार के सम्बन्ध म अनक धारणाये स्वीकार की गई है तथा मानव क अस्तित्व क लिय 'जीओ और जीन दो' का सिद्धान्त या अहिसात्मक आचरण की आवश्यकता का लगभग सभी दशनो व धर्मो न स्वीकार किया।

इसी सन्दर्भ म आज स 2521 वर्ष पूर्व अहिसा की एक विशिष्ट परम्परा भगवान् महावीर द्वारा प्रवर्तित की गई। उन्होन सर्वप्रथम अहिसा का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर न कवल भौतिक हिसा का प्रतिरोध किया अपितु आचार व विचार म अहिसा क उपयोग पर बल दिया। इस प्रकार न कवल सामूहिक जीवन म अपितु व्यक्तिगत जीवन मे अहिसा क अनुरूप व्यवहार करन की आवश्यकता उन्होन तार्किक आधार पर प्रस्तुत की। स्व भाव हिसा स्वद्रव्य हिसा, पर भाव हिसा तथा पर द्रव्य हिसा क रूप म हिसा व अहिसा का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसी आधार पर महावीर की अहिसा सर्वाधिक रूप मे व्यापक मानी जाती है।

महावीर और उनकी अहिसा की व्याख्या के अतिरिक्त जो सबस अधिक महत्वपूर्ण है वह है उन परिस्थितियो का विश्लेषण जिस समय क्रूर पशु हिसा तथा हिसामय परिस्थितियो मे महावीर न अपन सिद्धान्तो का अनुपालन कर अपन विचारो की उपयोगिता व व्यवहारिकता को स्वय प्रमाणित किया था। उनक पश्चात् इतिहास न अनेक बार यह प्रमाणित किया है कि व्यक्तिगत व सामूहिक दोनो की स्तर पर हिसा का किस प्रकार अहिसा द्वारा जीता जा सकता है।

आधुनिक समय म जब भौतिकवादी विचारधारायें व सासारिक लालुपताय व्यक्ति व समाज को दिशा भ्रम कर हिसक मार्ग की ओर अग्रसर कर रही है महावीर क विचार प्रकाश पुज की तरह जन मानस को अहिसा तथा उसकी उपादेयता की आवश्यकता का अनुभव करात है। यद्यपि अनक बार वतमान परिस्थितिया म हिसा का एक मात्र विकल्प माना जाने लगता है किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है हिसा अहिसा का विकल्प नही हो सकती। हिसात्मक व सघर्षात्मक स्थितियाँ स्थाई नही होतीं। फिर भी हम हिसा के मार्ग की ओर क्यो बढत है या बढना चाहते है? इसका एक मात्र उत्तर शायद यह हो सकता है कि हम हमारे मन मे यह जानते हुए भी कि हिसा समस्याओ का समाधान नही है हम हिसा इसलिय अपना लेते है क्योकि अहिसक बनने की शक्ति व सामर्थ्य हम मे नही है। किन्तु यह तो निर्विवाद रूप से हमे मानना ही होगा कि अहिसा एक शाश्वत मूल्य है।

खण्ड : IV

पुराण, इतिहास एवं पुरातत्व

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पेज नं
1	जैनधर्म : प्राचीन स्वतंत्र धर्म (तथ्यों के आलोक मे)	प महावीर प्रसाद शास्त्री	IV/1
2	पुराण साहित्य मे जैन परम्परा	डॉ भागचन्द 'भास्कर'	IV/16
3.	भारतीय संस्कृति मे श्रमण सस्कृति की भूमिका	कलानाथ शास्त्री	IV/22
4	जैनधर्म और अन्तिम तीर्थंकर महावीर	डॉ रमेशचन्द जैन	IV/25
5	जब तिलक ने अपने गले का दुपट्टा उनके गले में डाल दिया	डॉ. कपूरचन्द जैन	IV/30
6	आजाद हिन्द फौज में भी थे जैन	डॉ (श्रीमती) ज्योति जैन	IV/36

जैनधर्म : प्राचीन स्वतन्त्र धर्म

(तथ्यों के आलोक में)

• प महावीर प्रसाद शास्त्री

जैन धर्म के विषय मे एक भ्रम रहा है कि भगवान् महावीर न उसकी नीव डाली, ब्राह्मण धर्म के प्रति जन साधारण मे व्याप्त असतोष के कारण उसका आविर्भाव हुआ अथवा कि वह हिन्दू धर्म का एक अग है, आदि। इस विषय पर अनेक ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों, पुरातत्त्ववेत्ताओ और अनुसधानकर्ताओ न प्रकाश डाला है, जिनमे अगणी हैं – गौरीशकर हीराचद आझा, जैनिज्म इन बिहार के लेखक पी सी राय चौधरी, की ऑफ नॉलेज के लेखक बॅरिस्टर चम्पतराय जैन तथा भारतीय पुरातत्त्व विभाग के पूर्व महानिदेशक टी एन रामचन्द्रन्। उनके लखो से उद्धृत कुछ अश इस पुस्तिका म प्रस्तुत हैं, जो यह सिद्ध करते है कि जैन धर्म बहुत पुरातन है हिन्दू धर्म मे भी, जो सबस पुरातन माना जाता ह। तथा यह कि जैनो के चौबीस तीर्थंकरो मे भगवान् ऋषभनाथ पहिले तीर्थंकर थ, जैसा कि हडप्पा व मृ अन जा-दडो की खुदाई मे प्राप्त मुद्राओ के सूक्ष्म अध्ययन स प्रतीत होता है, और भगवान् महावीर उन तीर्थकरो मे अतिम थे। नई दिल्ली के फीराजशाह कोटला मे स्थित अशोक मौर्य के स्तम्भ पर जो लेख अकित है उसमे जन धर्म एक स्वतत्र धर्म के रूप मे स्वीकारा गया है।

तीर्थकरो ने मगल उपदेश प्राकृत भाषा मे दिए तथा जैनाचार्यो न उसे शौरसेनी प्राकृत भाषा मे लिपिबद्ध किया, जो अपने विभिन्न रूपो म अतिप्राचीन भाषा है, और जन धर्मावलम्बियो की ही भाषा मानी जाती है। जैन धर्म नास्तिकवादी नही है, यद्यपि वह ईश्वर को कर्ता स्वीकार नही करता तथा कर्म सिद्धान्त मे विश्वास करता है।

जैनधर्म मे पारम्परिक सौहार्द एव सहअस्तित्व की भावना से 'अहिसा' सिद्धान्त को सर्वाधिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया तो वैचारिक सहिष्णुता की शिक्षा देने के लिये 'अनकान्त' सिद्धान्त का प्रवर्तन हुआ। वाणी की सहिष्णुता का पाठ इसने 'स्यादवाद' सिद्धान्त के द्वारा समझाया, तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से अनुप्राणित होकर 'अपरिग्रहवाद' का सिद्धान्त इमीन दिया। इसप्रकार आचरण मे 'अहिसा', विचार मे 'अनकान्त', वाणी मे 'स्यादवाद' एव जीवन में 'अपरिग्रह' की अनुपम आदर्श दृष्टि जैनधर्म को, उसके सिद्धान्तो को, उसके अनुयायियो को सहस्राब्दियो मे इस देश मे एक विशिष्ट धारा के रूप म स्थापित किये हुये है। इतिहास साक्षी है कि राष्ट्र क निर्माण एव विकास म सदैव सकारात्मक दृष्टि से अग्रणी रहने वाले जैनो ने अपनी वैचारिक, सैद्धान्तिक स्वतत्रता एवं मौलिकता को बनाये रखते हुये अपना उल्लेखनीय एव अनुकरणीय योगदान दिया है।

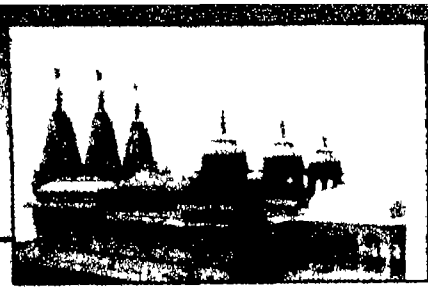

सिन्धु सभ्यता मे जैनधर्म

प्राचीन भारत मे जैनधर्म एव सस्कृति को 'श्रमण सस्कृति' के नाम से भी जाना जाता रहा है। इस सस्कृति के प्रागैतिहासिक प्रमाण पुरातात्त्विक अवशेषो मे मिलते है। 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' के नाम से प्रसिद्ध 'हडप्पा' एव 'मो-अन जो-दडो' नामक स्थलो पर उत्खनन से प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषो का सूक्ष्म अध्ययन कर पुरतत्त्ववेत्ताओ ने सिद्ध कर दिया है कि उस समय श्रमण सस्कृति (जैन सस्कृति) का व्यापक प्रभाव था। जैनो के आराध्यदेव की मूर्ति भी उसकी मुद्राओ (सीलो) पर उत्कीर्णित मिली है।

1922 मे सर जॉन मार्शल के निर्देशन म सिन्धु सभ्यता का उत्खनन हुआ।

Not only the seated deities engraved on some of Indus seals are in *Yoga* posture and bear witness to the prevalence of *Yoga* in the Indus valley in that remote age, the standing deities on the seals also show *Kavotsarga* posture of *Yoga*. Further that The *Kavotsarga* posture is peculiarly **Jaina**. It is a posture not of sitting but of standing. In the *Adipuran* Book XVIII, *Kavotsarga* posture is described in connection with the penances of Rishabh or Vrisabha. A standing image of **Jaina** Risabha in *Kavotsarga* posture on a slab showing four such images assignable to the 2nd century A.D. in the Curzon Museum of Archaeology, Mathura is reproduced in figure 12. Among the Egyptian sculptures of the time of the early dynasties there are standing statues with arms hanging on two sides. But though these early egyptian statues and the archaic Greek Konroi show nearly the same pose, they lack in feeling of abandon that characterises the standing figures and the Indus seals and images of Jainas in the *Kavotsarga* posture. The name Rishabh mean 'Bull' and the bull is the emblem of Jain Rishabh.

(R.B. Prof. Ram Prashad Chanda
Modern Review, August 1932, Page 155-160)

'सिन्धु घाटी की अनेक मुद्राओ मे अकित न केवल बैठी हुई देवमूर्तियाँ योगमुद्रा मे है और उस सुदूर अतीत मे सिन्धु घाटी मे योग मार्ग के प्रचार को सिद्ध करती है बल्कि खड्गासन देवमूर्तियों की भी योग की कायोत्सर्ग मुद्राये है। और ये कायोत्सर्ग ध्यानमुद्रा विशिष्टतया जैन है। आदिपुराण अध्याय 18 मे इस कायोत्सर्ग मुद्रा का उल्लेख ऋषभ या वृषभदेव के तपश्चरण के सम्बन्ध म बहुधा हुआ है। जैन ऋषभ की इस कायोत्सर्ग मुद्रा म खड्गासन प्राचीन मूर्तियाँ ईसवी सन् के प्रारम्भ काल की मिलती है। प्राचीन मिस्र के प्रारम्भिक राजवशो के समय की दोनो हाथ लटकाये खडी मूर्तियाँ मिलती है किन्तु यद्यपि इन प्राचीन मिस्री मूर्तियो तथा प्राचीन यूनानी कुराइ नामक मूर्तियो मे प्राय वही आकृति है तथापि उनम उस दृढोत्सर्ग, निःसगभाव का अभाव है जो सिन्धुघाटी की मुद्राओ पर अकित मूर्तियो म तथा कायोत्सर्ग ध्यान मुद्रा स युक्त मूर्तियो म पाया जाता है। 'ऋषभ' का अर्थ है 'बैल' और बैल भगवान् ऋषभ का चिह्न है।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक श्री टी एन रामचन्द्रन भी पुरातात्त्विक अवशेषो के आधार पर स्पष्ट करते है कि -

"There two riks flash before us the truth that we are perhaps recognising in the Harappa statuette a full-fledged Jain Tirthankara in the characteristic pose of physical abandon (Kayot-sarga)."

(T.N. Ram Chandran — Harappa and Jainism P.6)

अर्थ - इन दोनों खण्डित धडो (Riks) मे हमे इस बात की सत्यता पर रोशनी पडती है कि शायद यह हडप्पा काल की जैन तीर्थंकर मूर्ति जैनधर्म मे वर्णित कायात्सर्ग-मुद्रा की ही प्रतीक है। इसलिय कथित मूर्ति जैनधर्म के इस विचार का शायद आरम्भ से ही जीता जागता नमूना है आदि।''

हडप्पाकालीन जैन तीर्थंकर मूर्ति

वे आगे लिखते है -

What is the message of Jainism or for the matter of that what do the colossal statue of Bahubali at Sravana Belgola and elsewhere and of the figure of the 24 Tirthankars reveal of Jainism, so called because its founder was a Jina or Victor attempts to raise man to godhood and to inspire him to reach it by steady faith right perception, perfect knowledge and above all by a spotless life Jainism believes in godhood and speaks of innumerable gods The story of the religion of last Tirthankara Lord Mahavira is a story of 25 centuries, spreading over the whole of India, with its centres of activity still maintained in Gujarat, Mathura, Rajasthan, Bihar Bengal Orissa, Deccan Mysore and South India While saints and scholars ennobled the religion, the Jaina merchants engaged in erecting myriad temples, some of which are the glories of the religious architecture of India'

अर्थ .- अब प्रश्न यह है कि जैनधर्म की देशना क्या है? अथवा श्रवणबेलगोल और अन्य स्थानो की बाहुबली की विशाल मूर्तियाँ एव अन्य चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिमाएँ ससार को क्या सन्देश देती हैं?

'जिन' शब्द का अर्थ विकारो को जीतना है। जैनधर्म के पवर्तको ने मनुष्य को सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् बोध और निर्दोष चारित्र के द्वारा परमात्मा बनने का आदर्श उपस्थित किया है। जैनधर्म का परमात्मत्व मे पूर्ण विश्वास है और जैनधर्म के अनुष्ठान द्वारा अनेक जीव परमात्मा बने है। जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के धर्म का 2500 वर्षों का एक इतिहास है। यह धर्म भारत मे एक कोने म दूसरे कोने तक फैला है। आज भी गुजरात, मथुरा, राजस्थान, बिहार बगाल, उडीसा मैसूर और दक्षिण भारत इसके प्रचार के कन्द हैं। इस धर्म क साधु और विद्वानो ने इस धर्म का समुज्ज्वल किया और जैन व्यापारियो ने भारत मे सर्वत्र सहस्रो मन्दिर बनवाय, जो आज भारत की धार्मिक पुरातत्त्व कला की अनुपम शोभा है।

मू-अन-जो दडो के उत्खनन मे लगभग तीन हजार ईस्वीपूर्व की एक मानवमूर्ति मिली है जिस विद्वानो न प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव क पिता अन्तिम कुलकर नाभिराय की मूर्ति माना है। इस मूर्ति म दाढी एव सिर क बाल बड़े हुय है किन्तु व व्यवस्थित है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि इस समय तक कश कर्तन या क्षौरकर्म के उपकरणो का आविष्कार नही हुआ था। इस मूर्ति के वस्त्रो का अलकृत स्तर राजसी है किन्तु सिर पर राजमुकुट नही है, अत विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि यह नाभिराय का उस समय का मूर्तिशिल्प है जब उन्होंने अपन पुत्र ऋषभदेव को अपना राजमुकुट पहिनाकर स्वयं दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया था। श्रीमद्भागवत मे इसका स्पष्ट उल्लेख आता है - **'विदितानुरागमहापौर-प्रकृति जनपदोजारा नाभिरात्मज समयसेतुरक्षा-यायभिषिञ्य-सह मरूदेव्या विशालाया प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन महिमानमवाप्त॥'** *(भागवत स टीका, 5/4/5)*

मू अन जो-दडो स प्राप्त नाभिराय की मूर्ति

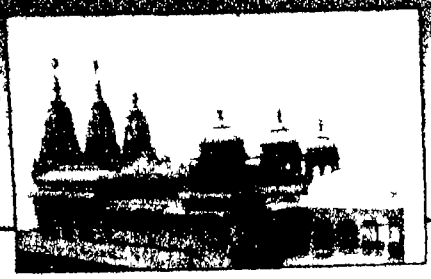

अर्थ - नाभि ने अपने पुत्र (ऋषभ) को राज्य देकर मरुदेवी के साथ तपपूर्वक (वैराग्य-दीक्षा) समाधि को धारण कर महिमा को प्राप्त किया। (यहाँ महिमा का अर्थ आत्म-परक है क्योंकि लोक महिमा (राज्य सम्पदा) से तो वे विरक्त हो ही चुके थे।)

महाकवि जिनसेनाचार्य ने इस घटनाक्रम के सम्बन्ध में बड़ा ही प्रभावी वर्णन किया है -

"नाभिराज स्वहस्तेन मौलिमारोपयत् प्रभोः ।
महामुकुटबद्धानामधिराड् भगवानिति ॥"

- (महापुराण 16/232)

इसी बात की पुष्टि करते हुये एवं वंश परम्परा का परिचय देते हुए महाकवि सूरदास लिखते हैं -

"बहुरि रिषभ बड़े जब भये। नाभि राज दे वन को गये ।
रिषभ राज परजा सुख पायो। जस ताको सब जग में छायो ॥
रिषभदेव जब वन को गये। नव सुत नवौ खण्ड नृप भये ।
भरत सो भरतखण्ड को राव। करे सदा ही धर्म अरु न्याव ॥"

- (सूरसागर पंचम स्कन्ध पद 1/2)

इन राजा नाभिराय ने नाभिनाल काटने की प्रथा चलाई थी इसीलिए इनका नाम 'नाभि' पड़ा तथा राज का प्राकृत में राय रूप मिलता है इसीलिए ये 'नाभिराय' नाम से जाने जाने लगे। क्षत्रिय वंशी इस राजा का उल्लेख अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है -

'नाभिश्च क्षत्रिय' - (अभिधानचिन्तामणि 1 30)

'हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन् महात्मनः ।'

- (लिंगपुराण 1 27)

'क्षत्रिय नाभि ।' - (अमरकोश 3 5 20)

'नाभिमुख्यनृप चक्रमध्य शोभिता पुमान्'

- (इति मादना कोश 10 5 6)

'अजनाभं नामैतद् वर्षभारतमिति यत् आरभ्य व्यपदिशन्ति।'

- (भागवत 5 7 3)

सर्वप्रथम इस देश का नाम तीर्थंकर ऋषभदेव के पिता नाभिराय के नाम पर 'अजनाभवर्ष' था (द्र० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा लिखित 'जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका की भूमिका, पृष्ठ 8)। तदुपरान्त ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर इसका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। इस तथ्य को हिन्दू संस्कृति के 'शिवपुराण' में भी स्पष्टतः स्वीकार किया गया है -

"नाभेः पुत्रश्च वृषभो वृषभाद् भरतोऽभवत् ।
तस्य नाम्नात्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ॥"

- (शिवपुराण, 37/57)

महाराष्ट्र के सन्त एकनाथजी ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है-

"ऐसा तो रिषभाचा पुत्र, जयासी नाव भरत ।
ज्याच्या नामाची कीर्ति विचित्र, परम पवित्र जगमाजी ॥
तो भरत राहिला भूमिकेसी,
म्हणोनि भरतवर्ष म्हणती यासी ।
सकल कर्मारम्भी करिता संकल्पासी,
जरूचिया नामासी स्मरतासी ॥"

- (संत एकनाथ भागवत् 2 14 45)

अर्थ - ऋषभदेव के पुत्र भरत ऐसे थे जिनकी कीर्ति सारे संसार में आश्चर्यजनकरूप से फैली हुई थी। भरत सर्वपूज्य हैं। (किसी भी पवित्र या श्रेष्ठ) कार्य का आरम्भ करते समय भरत जी का नाम स्मरण किया जाता है। ऐसे भरत जी के नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा।

जैन 'महापुराण' के रचयिता जिनसेनाचार्य ने स्पष्टरूप से लिखा है कि ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत के राज्याभिषेक के समय ही इस देश का नामकरण 'भारतवर्ष' घोषित किया था -

"ततोऽभिषिच्य साम्राज्ये भरतं सूनुमग्रिमम् ।
भगवान् भारतं वर्षं तत्सनाथं व्यधादिदम् ॥"

- (महापुराण 17 76)

जिनसेनाचार्य ने इस देश की सीमायें भी वहाँ स्पष्ट की हैं -

"तन्नाम्ना भारतं वर्षमितिहासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम् ॥"

- (महापुराण 15 159)

अर्थ - उन्हीं चक्रवर्ती भरत के नाम से हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त इस क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' लोक में प्रतिष्ठित हुआ।

अन्यत्र भी लिंगपुराण (47/19 23), स्कन्दपुराण (कौमारखण्ड 37 57), श्रीमद्भागवत् (5/4/9), ब्रह्माण्डपुराण (2 14), मार्कण्डेय पुराण (50/39 42), नारद पुराण (48/5-6), अग्निपुराण (10/10-11) एवं मत्स्यपुराण (114/5-6) आदि में भी 'ऋषभदेव के पुत्र' चक्रवर्ती भरत के नाम पर इस देश

का नामकरण 'भारतवर्ष' हुआ - ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इन चक्रवर्ती भरत ने बाद मे मुनिदीक्षा लेकर तप-पूर्वक मोक्ष प्राप्त किया था। छह खड का राज्य, नवनिधियो एव चादह रत्नो का दिव्य वैभव छोडकर उन्होने आत्मसाधना करके मुक्तिपद प्राप्त किया था। जैनो मे इन्हे 'भगवान्' के रूप मे पूजा जाता है। प्रसिद्ध क्षेत्र देवगढ (जिला ललितपुर, उ प्र) मे इनकी प्राचीन प्रतिमा विद्यमान है जिसमे नवनिधि, चतुर्विध राजनीति (साम दाम दण्ड-भेद) एव राज्य लक्ष्मी के त्यागपूर्वक नग्न दिगम्बर मुद्रा मे ध्यानस्थ योगी के रूप मे इनका व्यक्तित्व उकेरा गया है। इनका चित्र यहाँ द्रष्टव्य है।

देवगढ (ललितपुर) से प्राप्त भरत चक्रवर्ती की प्रतिमा

तीर्थकर ऋषभदेव के भरत आदि सौ पुत्रो ने आत्मसाधना की थी एव वे जनमान्यतानुसार 'भगवान्' बने।

(भरत और भारत पृष्ठ 46)

'ब्रह्माण्ड पुराण' मे इस बारे मे उल्लेख है -

''ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर· पुत्रशताग्रज ॥

- (ब्रह्माण्ड पुराण, 2 14)

अर्थ - राजाओ मे श्रेष्ठ एव समस्त क्षत्रियों के पूर्वज ऋषभदेव है। इन्ही ऋषभदेव के सौ पुत्रो मे वीर भरत ज्येष्ठ है।

इन साधनारत सौ पुत्रो एव तीर्थकर ऋषभदेव की एक विशाल शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ मिलती हैं।

भारत के षड्दर्शनो में जैनधर्म-दर्शन

''जैना मीमासका बौद्धा शैवा वैशेषिका अपि ।
नैयायिकाश्च मुख्यानि दर्शनानीह सन्ति षट् ॥''

- (शारदीयाख्य नाममाला 147)

अर्थ - जैन, मीमासक, बौद्ध, शैव, वैशेषिक नैयायिक - ये छह प्रमुख दर्शन इस देश में है।

'वायुपुराण' मे भी जैन को स्वतत्र दर्शन माना गया है तथा उसकी अलग उपासनाविधि भी मानी गयी है -

''उपासनाविधिश्चोक्त कर्मसशुद्धिचेतसाम् ।
ब्राह्म शैव वैष्णवञ्च सौर शाक्त तथार्हतम् ॥
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ।
एतदन्यच्च विविध पुराणेषु निरूपितम् ॥

(वायुपुराण 104 16 17)

विश्व-साहित्य मे जैनधर्म

ईसापूर्व काल से लेकर ईसोत्तर काल तक जो विदेशी यात्री एव विद्वान् भारत आये उन्होने भारत के बारे मे विस्तृत वर्णन एव अनुभवो को अपने यात्रा-वृत्तातो मे सजाया है। ईसापूर्व काल मे मेगास्थनीज भारत आया था तथा उसने भारत मे दो ही मूल संस्कृतियो के दर्शन किये वे थी श्रमण संस्कृति (जैन संस्कृति) एव ब्राह्मण संस्कृति। विश्वविख्यात लेखक डा स्वानबेक इस बारे मे लिखते है -

''इन भारतीयो के दो सम्प्रदाय है एक 'सरमनाई' (SARMANAI) कहलाता है और दूसरा 'ब्राचमनाइ' (BRACHMANAI) इनमे 'सरमनाई' श्रमण (जैन) तथा 'ब्राचमनाई' ब्राह्मण है।

(दी इण्डिका)

चीनी यात्री ह्वेनसाग जब भारत आया, तो यहाँ उसने जैन समुदाय एव जैन श्रमणो को देखा तथा वह उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने यात्रा वृत्तात मे उन्हे 'श्रमणेरा' (SRAMANERAS) कहा है।

(सैम्युएल बील कृत 'ट्रैवल्स आफ ह्वेनसाग' खड 2 पृष्ठ 185)

जैनधर्म की प्राचीनता एव मौलिकता

जैनधर्म की प्राचीनता एव मौलिकता के बारे मे मद्रास प्रान्त के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीयुत श्रीप्रकाश जी के दो टूक विचार मननीय है -

"The Jain religion, however, can legitimately be traced to a different source, and in the mind of many,

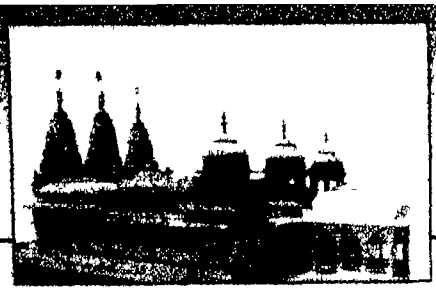

it is regarded as a more ancient faith than the one that is known as Hinduism

(P C Roy Choudhury - *Jainism in Bihar*)

अर्थ - जैनधर्म मूलत एक अलग ही धारा है, तथा अनेक लोगो के विचारानुसार यह जैनधर्म बहुत ही प्राचीन है यहाँ तक की हिन्दू धर्म से भी।

पुरातत्त्व विभाग के अधिकारी श्री पी सी राय चौधरी इस विषय को स्पष्ट करते हुये लिखते है -

'Not much research is possible in the prehistorical age as the role Bihar played in the stay of Jainism But some of the ancient Jain scriptures mention that Jainism had been preached in Magadha (Bihar) by Lord Rishabha at the end of the stone age and the beginning of the Agricultural Age At that remote period Magadha was separated from rest of India by Ganga Sagar The ancient history of Nepal bears this out also

(*Jainism in Bihar P 7 Last Para*)

अर्थ - एतिहासिक युग के पहले बिहार मे जैनधर्म के विषय मे क्या कुछ हुआ इसका बहुत ज्यादा अनुसधान होना आज सम्भव नही है। परन्तु कई प्राचीन जैन शास्त्रो द्वारा प्रमाणित होता है कि श्री ऋषभदेव ने जैनधर्म का प्रचार मगध (बिहार) मे पाषाण युग (Stone age) के शेष और कृषि युग के आरम्भ मे किया था। उस प्राचीनकाल मे मगधदेश शेष भारत से गगासागर से विच्छिन्न था। नेपाल का प्राचीन इतिहास भी इस बात का साक्षी है।

वे आगे लिखते हैं -

'A common mistake has been made by some of the recent writers in holding that Jainism was born because of discontent against Brahmanism This wrong theory originates because writers have taken Vardhman Mahavira as the founder of Jainism This is not a fact It is true that the historicity of the Jainas lies buried in the lap of hoary times long before history came into existence, but at least there is a certain amount of historicity regarding Parswnath, the 23rd Tirthankar The creed had already originated and spread and Mahavira propagated it within historic times and that is probably the reason why this mistake has been made by some of the eminent scholars whose name however, need not be mentioned here "

(Jainism in Bihar P 1)

अर्थ - "आधुनिक कुछ लेखको ने यह लिखकर एक साधारण भूल की है कि ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध असन्तोष की भावनाये फैल जाने के कारण जैनधर्म की उत्पत्ति हुई। इस गलत धारणा का सूत्रपात इसलिए हुआ कि इन्होने वर्द्धमान महावीर को जैनधर्म का प्रवर्तक मान लिया - यह तथ्य ठीक नही है। यह सत्य है कि अन्य बाईस जैन तीर्थंकरो के एतिहासिक प्रमाण तो इतिहास शुरू होने के बहुत पहले से ही काल की लम्बी अवधि के हाथो दब गये है, परन्तु 23वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ के बारे मे तो निश्चित एतिहासिक प्रमाण पाये जाते है। जैनधर्म की उत्पत्ति एव प्रसार पहले से ही हो चुका था और महावीर ने इसका अत्यधिक प्रचार किया था और यही कारण है कि इसप्रकार की गलत धारणा कई ख्याति प्राप्त विद्वानो मे हो गई। इन विद्वानो का नाम यहाँ लिखने की आवश्यकता नही है।"

जैनधर्म की इस मौलिक विशेषता को रेखांकित करते हुये विख्यात विद्वान् श्री जे एल जैनी लिखते है -

Jainism more than any other creed gives absolute religious independance and freedom to man Nothing can intervene between the actions which we do and the fruits thereof Once done they become our masters and must fructify As my independence is great so my responsibility is co extensive with it I can live as I like but my choice is irrevocable and I cannot escape the consequences of it This principle distinguishes JAINISM from other religions e g - Christianity Mohammadanism Hinduism No god or his prophet or deputy or beloved can interfere with human life The soul, and it alone is directly and necessarily responsible for that it does

(Jugmandar Lal Jainy - Outlines of Jainism P 344)

अर्थ - जैनधर्म ने मनुष्य को पूरी स्वाधीनता दी है। - यह दूसरे किसी भी धर्म मे नहीं है। हमारा कर्म और उसका फल - इन दोनो

क बीच कुछ नहीं है। एक बार किये जाने पर वे हमारे नियामक बन जात है। उनके फल अवश्य ही फलेंगे। मेरी आजादी जैसी कीमती है वैसी मेरी जिम्मेदारी भी खूब कीमती है। मैं अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन बिता सकता हूँ। लेकिन एक बार जो रास्ता चुन लिया है, उससे वापस आने का कोई उपाय नही। मैं उस रास्ते को चुन लेने का फल अन्यथा नहीं कर सकता। इस नीति क कारण जैनधर्म ईसाई, इस्लाम और हिन्दधर्म आदि मे अलग हो जाता है, खुद भगवान् या उनके अवतार या उनक स्थलाभिषक्त अथवा उनक प्रिय (पुत्र ओर पैगम्बर) को मनुष्य क कर्म के फल मे हस्तक्षेप करने की ताकत नही है। आत्मा जो भी करती है, उसके लिये आत्मा ही प्रत्यक्षरूप मे और निश्चितरूप मे जिम्मेदार है।

जैनधर्म के सिद्धान्तो की मौलिकता एव विशेषता को एक प्राचीन हिन्दी कवि न अपन पद्य मे प्रभावी ढग से रेखाकित करते हुये लिखा है –

''कैसे करि कनकी - कनेर एक कहे जाय ।
आक दूध गाय दूध अन्तर घनेर है ॥
पीरी होत री-री पै न रीस करै कंचन की,
कहाँ बक-वाणी कहाँ कोयल की टेर है ।
कहाँ भान भारो कहाँ अगिया विचारो कहाँ ।
पूनौ को उजास कहाँ मावस-अन्धेर है ।
पच्छ छोरि पारखी निहार नैम नीके करि,
जैन-बैन और बैन इतनो ही फेर है ।

(शतक भूधरदास 10वाँ पद)

अर्थ - अहो ! कनेर और केतकी (केवडा) को कोई पुष्प जातिगत-साम्यमात्र से एक कैसे कह सकता है? अर्क-दुग्ध मे गोदुग्ध मे तो अन्तर बहुत है। रीरी पीतल भी रग मे सुवर्णवत् पीला होता है, परन्तु वह सुवर्ण की समानता नही कर सकता है। कौए की कर्ण कटु क्रेंकार और कोयल की कूक मे बडा अन्तर है। सूर्य के तेज और अग्नि स्फुलिंग मे महत् अन्तर है। जैसे पूर्णिमा के प्रकाश और अमावस्या के अन्धेरे मे महत् अन्तर है, वैसे ही जिनवाणी के स्याद्वाद और एकान्त वाणी में महत् अन्तर है।

इतना ही नहीं, जैनधर्म मे 'धर्म' का अर्थ एक विशेष गरिमापूर्ण स्तर पर व्याख्यायित किया गया है। ग्यारहवी शताब्दी ईस्वी के विद्वान् पडित आशाधर लिखते है –

''लोके विषामृतप्रख्य भावार्थ क्षीरशब्दवत् ।
वर्तते धर्म शब्दोऽपि तत्तर्थोनुशिष्यते ॥

(अनगार धर्मामृत 1.89)

अर्थ – लोक मे 'भाव' शब्द अमृत (शुभ) और विष (अशुभ) दोनो अर्थों मे प्रयुक्त होता है। जैसे 'क्षीर' शब्द विष (आक का दूध) और अमृत (गो-दुग्ध) दोनो अर्थों मे प्रयुक्त होता है, वैसे ही 'धर्म' शब्द अमृत (अहिंसा आदि रूप धर्म) और विष (हिंसा आदि) रूप अर्थों मे प्रयुक्त होता है – ऐसा देखा जाता है (ये वक्ता के भावो पर अवलम्बित है) अत 'धर्म' शब्द की आगम मे विस्तृत व्याख्या की गई है।

जैनधर्म के नामान्तर

जैनधर्म के आराध्यदेव 'अर्हन्त' के आधार पर इसे 'आर्हत धर्म' भी कहा गया है देखे –

''तित्थाहिवई जिणा अरिहा'' *(पाइयलच्छी नाममाला 1?1)*

''स्यात् स्याद्वादिक आर्हक आर्हत इत्यापि''

(अमरकोश 2.7.18)

''अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता'' *(हनुमानाटक 1.3)*

जैनधर्म के प्रवर्तक महापुरुषो मे ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकर माने गये है। प्रसिद्ध जैनाचार्य अकलंकदेव लिखते है –

'धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु, स्याद्वादिभ्यो नमो नम ।
ऋषभादिमहावीरान्तेभ्य स्वात्मोपलब्धये ॥'

(आचार्य अकलंक लघीयस्त्रय 1.1)

इन चौबीसो तीर्थकरो का जैन लोग नित्य अपने प्रार्थनासूत्र (Prayer) मे पढते है –

लोगस्सुज्जोयकरे, धम्म-तित्थयर जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्स, चउव्वीस पि केवली ॥
उसभमजिद च वंदे, सभवमभिणदण च सुमदि च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पह वंदे ।

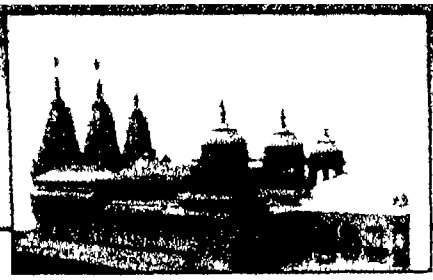

सुविहिं च पुप्फदंत, सीदल-सिजंस-वासुपुज्ज च ।
विमलमणंतं च जिण, धम्म संति च वदामि ॥
कुंथु अर च मल्लिं, वदे मुणि सुव्वद नमि च जिण ।
वदामि रिट्ठणेमिं, पास तह वड्ढमाण च ॥
एव मए अभित्थुदा विहुयरयमला पहीण-जरमरणा ।
चउवीस पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीदंतु ॥
कित्तिय वदिय महिया ज लोगस्स उत्तमा सिद्ध ।
आरोग्ग बोहिलाह, समाहिवरमुत्तम दितु ॥
चदसु णिम्मलयरा, आइच्चसु अहिय पयामयदा ।
सागर वर-गभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसतु ॥

जेनतर दशनो म भी जनधर्म क इन चोबीस तार्थकरो का स्पष्ट स्वीकृति मिलती है। बौद्धदशन क प्रसिद्ध आचार्य धमकीर्ति लिखत ह –

"ऋषभो वर्धमानश्च तावादौ यस्य स ऋषभवर्धमानादि
दिगम्बराणा शास्ता सर्वज्ञ आप्तश्चेति।"

(न्यायबिन्दु 3 131 पृष्ठ 126)

'**आचार्य धर्मकीर्ति**' न 'न्यायबिन्दु' पृ 126 पृ 18 तथा 128 पृ 19 म जनियो के तीथकर ऋषभ का उल्लेख दोना स्थल पर तथा वधमान का उल्लख प्रथम स्थल पर किया ह। इसस प्रगट हाता है कि उनक समय आठवीं शताब्दी म भी जनतर विद्वान् जनधर्म का प्रथम उपदश दनवाला भगवान् ऋषभदेव का ही समझत थ न कि भगवान् वर्धमान का। जनधर्म का प्रथम उपदेष्टा भगवान् महावीर या पार्श्वनाथ को कहन की धारणा पाश्चात्य एतिहासिका क ही मस्तिष्क की उपज विदित होती ह।'

– चन्द्रशखर शास्त्री न्यायबिन्दु भूमिका

* * *

जैना का मूलमन्त्र 'णमोकार मन्त्र'

जैनधर्म क आत्मिक विकास क साधनाक्रम म पाँच पद मान गय है, जिन्हे – '**पचपरमेष्ठी**' भी कहा जाता है। ये ह – अरिहत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु। जैनमतानुयायी नित्यप्रति अपन मूलमत्र '**णमोकार मत्र**' म इनको वदन करते हुये सादर स्मरण करत है। जनो का यह मूलमत्र निम्नानुसार है –

णमो अरिहताण।	NAMO ARIHANTANAM
णमो सिद्धाण ।	NAMO SIDDHANAM
णमो आइरियाण ।	NAMO AYARIYANAM
णमो उवज्झायाण ।	NAMO UVAJJHAYANAM
णमो लोए सव्व-साहूण।	NAMO LOYE SAVVA SAHUNAM

जनो का यह महामत्र जैनसमाज क बच्चे-बच्चे को याद होता ह। जन्म स लकर मरण-पर्यन्त किय जाने वाल सस्कारो म इसका अनिवार्यत प्रयोग होता है। बच्च क नामकरण के समय उनक कान म यही मत्र सुनात ह। शिक्षा क योग्य हान पर उस सर्वप्रथम यही मत्र याद कराते है। नित्यप्रति हान वाल जाप, पूजन दवदर्शन आदि कार्यो म इसका अनिवार्यत उच्चारण किया जाता ह। यहाँ तक कि सोत समय इसी का उच्चारण करक सोत ह, तथा जागन पर इसी का उच्चारण करक उठत ह। कोई यदि मरणासन्न हो तो भी उसका इसी मत्र को सुनाते ह। इस जैनधम म 'सभी मगलो म प्रथम मगल' माना गया ह

"**णमो पचणमक्कारो सव्व पावप्पणासणो ।
मगलाण च सव्वसि पढम हवदि मगल ॥**"

यहा नहो 'सन्ध्या सकल्प' क रूप म पढ जान वाल जनपाठ एव जनतर पाठ भी पूर्णत स्वतत्र ह। इसक तुलनात्मक अध्ययन क लिए नीचे कतिपय पाठ दिय जा रह ह –

बौद्धपाठ –

'**पाणातिपाता-वेरमण सिक्खापद समादियामि। अदिन्नादाना-वेरमण सिक्खापद समादियामि। कामेसु मिच्छाचारा-वेरमण सिक्खापद समादियामि। मुसावदा-वेरमण सिक्खापद समादियामि। सुरामेरयमज्जपमादट्ठाणा-वेरमण सिक्खापद समादियामि।**'

(लघुपाठ पचशील)

जेनपाठ –

'**इरियागोयरमुमिणादि सव्वमाचरदु मा व आचरदु ।
परिमचरिया दु सव्वे सव्व णियमा पडिकमति ॥**

(आचार्य कुन्दकुन्द मूलाचार 7 156)

बौद्धपाठ –

'**सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सव्वे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता।**'

(लघुपाठ मेत्तसुत्त)

वैदिकपाठ -

'ममोपात्तदुरितक्षयाय श्रीपरमेश्वर-प्रीतये प्रात
सायं माध्यदिनं च सन्ध्योपासन - महं करिष्ये।'

(वैदिक सन्ध्यासकल्प)

अर्थ - वैदिक त्रिकाल सन्ध्या (प्रात·, मध्यान्ह और साय) करते समय सकल्प पढते हैं कि 'मै अपने सगृहीत पापो के क्षयार्थ तथा परमात्मा की प्रसन्नता के लिए सन्धोपासन (परमात्म ध्यान की उपासना) करता हूँ।

वैदिकपाठ -

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्य पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद् रात्र्या पापकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्या पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तद-वलुम्पतु यत् किंचिद दुरित मयि। इदमहममृत-यानो सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।'

(वैदिक सन्ध्यासकल्प)

अर्थ - 'ॐ' इस मगल शब्द के द्वारा परमात्म स्मरणपूर्वक सध्यावन्दन-कर्त्ता कहता है (प्रार्थना करता है) कि सूर्य मन्यु और मन्युपति मन्यु (क्रोध शोक) से समुत्पन्न पापो से मेरी रक्षा करे। **मैने आज रात्रि मे मन, वचन, हाथ-पैर, उदर और उपस्थेन्द्रिय द्वारा जो भी पाप किये हो, इस मगलप्रभात मे भगवान् सूर्य उन्हे नष्ट कर दे**, जो-कुछ भी दुरित मुझ मे रह गया हो। यह मत्रपाठ करते हुए मै अपने-आपको अमृतयोनि सूर्यरूप अग्नि मे आहुति दे देता हूँ। स्वाहा - मेरा कर्म स्वस्तिकारक हो।

इतना ही नही, जैनधर्मानुयायियो के **श्रावको** (गृहस्थी लोग) एव श्रमणो (साधुजन) के लिए भी चिरकाल से स्वतत्र पाठ प्रचलित रहे है। जैनश्रमण (साधू) 'नित्य प्रतिक्रमण' मे बोलते है - **पडिक्कम्मामि भंते। सचित्तविरदिपडिमाए पुढविकाइया जीवा असखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा** असखेज्जासखेज्जा, तेउकाइया जीवा असखेज्जासखेज्जा, वाउकाइय जीवा असखेज्जासखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणताअणता हरिया-बीया अकुरा-छिण्णा-भिण्णा एदेसि उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो व कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥5॥

तथा जैन श्रावक भी अलग से प्रतिक्रमण पाठ बोलते है -

पडिक्कम्मामि भंते। वदपडिमाए पढमे थूलवदे हिंसाविरदवदे वहेण वा बधेण वा छेदेण वा अहिभारारोहणेण वा अण्ण-पाण-णिरोहणेण वा जो मए दिवसिओ अदिचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥2॥

(प्रतिक्रमण सूत्र)

जैनो के स्वतत्र पर्व

जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है अत उसके पर्वो मे भोग की प्रधानता नहीं है, अपितु त्याग की प्रधानता है। इसीलिए अन्य समुदायो की अपेक्षा जैन समुदाय मे जो पर्व माने जाते है, उनमे सयम एव तप की प्रमुखता रहती है। और इसी कारण जैनो के पर्व जैनेतरो के पर्वो से स्वरूपत भिन्न होते हुए तिथियो की दृष्टि से भी भिन्न है। जैन लोग दसलक्षण महापर्व अष्टाह्निका महापर्व आदि वर्ष मे तीन बार आने वाले त्यागप्रधान पर्वो को मनाते है, तथा महीने की प्रत्येक अष्टमी एव चतुर्दशी को व्रत उपवास आदि करते है। यह त्यागप्रधान वाले जैन पर्वो की निवृत्तिप्रधान सस्कृति की द्योतक है। जैन दसलक्षण पर्व के बारे मे आचार्य कुन्दकुन्द लिखते है -

उत्तमखम-मद्दवज्जव-सच्च-सउच्च च सजम चेव।
तव चागमकिंचण्ह बम्हा इदि दसविह होदि ॥

(बारस अणुवेक्खा, 70)

जैन-पर्वो मे तथा अन्य सामान्य दिनो मे दिन मे ही भोजन करते है, रात्रि मे भोजन नही करते, इसलिये दिन मे ही अपनी चर्या करने के कारण जैनो को 'आह्नीका' (दिन मे ही चर्या करने वाले) कहा गया है -

''आह्नीका दिगम्बरा'' *(आदग्रथ)*

जैनो का बहीखाता

जैनो की बहीखाता लिखने की पद्धति अन्यो से पूर्णत भिन्न है, यथा -

श्री ऋषभदेवाय नम, श्री महावीराय नम,
श्री गौतमगणधराय नम, श्री केवलज्ञानलक्ष्म्यै नम,
श्री जिन सरस्वत्यै नम ।

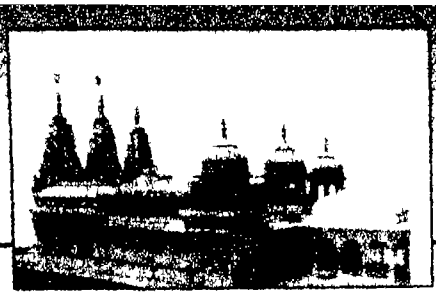

श्री शुभ मिति कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा महावीर निर्वाण संवत् 2523 विक्रम संवत् 2053 1997 ई०
वार का श्री
की दुकान की बहा
का मुहूर्त किया।

जैनों का स्वतंत्र संवत्

भारत में अनेक संवत् आज प्रचलित हैं, जैसे कि महावीर संवत्, विक्रम संवत्, इस्वी सन्, शालिवाहन शक संवत्, हिजरी सन् एवं पारसी सन्। सम्प्रति वर्तमान वर्ष में महावीर संवत् 2522-23, विक्रम संवत् 2052-53, इस्वी सन् 1996-97, शालिवाहन शक संवत् 1998, हिजरी सन् 1416-17 एवं पारसी सन् 1365-66 है।

इससे स्पष्ट है कि जैनों का महावीर संवत् सबसे प्राचीन है। यह जैनों के अंतिम (चौबीसवें) तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण दिवस से प्रवर्तित है। तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के बारे में ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के महान् जैनाचार्य कुन्दकुन्द लिखते हैं -

'पवरवरधम्मतित्थं, जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
तिविहेण महहति य, णत्थि इदो उत्तर अण्ण ॥'

(आचार्य कुन्दकुन्द मूलाचार 2-7-6 प 25)

जैनों के इस महावीर संवत् का विश्व के प्राचीनतम शिलालेख में उल्लेख मिलता है।

राजस्थान प्रान्त के **अजमेर जिले** के **बडली गाँव** में एक गरीब किसान के यहाँ भारत का प्राचीनतम शिलालेख पुरख्यात भाषाशास्त्री एवं पुरातत्ववेत्ता **पं. गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा** को मिला। किसान इस पत्थर पर तम्बाकू कूटता था। पं. जी ने उससे माँग लिया तथा उसे पढ़ा। इस शिलालेख में जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण संवत् 84 का उल्लेख है, जिससे सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व से 443 वर्ष लगभग जैनों का वीरनिर्वाण संवत् स्वतंत्र रूप में प्रचलित हो चुका था।

यह शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है, जो कि अजमेर के राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित है।

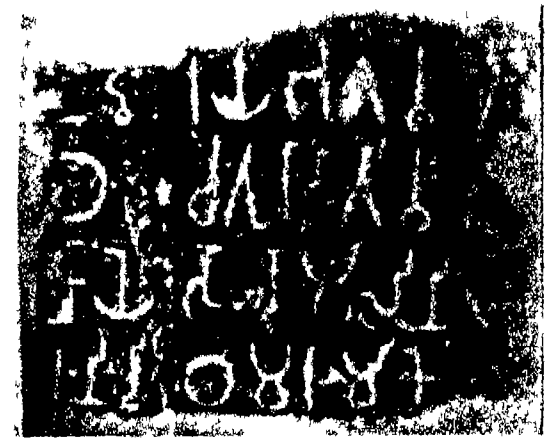

अजमेर जिले में प्राप्त प्राचीन शिलालेख जिसमें महावीर निर्वाण संवत् 84 का उल्लेख है।

जैन साहित्य में 'महावीर संवत्' के प्रवर्तन के बारे में प्राचीनतम प्रमाण यह मिलता है -

इच्छामि भंते! परिणिव्वाण भत्ति काउस्सग्गो कदो ।
'पावाए णयरीए, कत्तियमासस्स किण्हचउदसीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भगवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धि गदो ॥

- (निर्वाणभक्ति पृष्ठ 200)

इससे स्पष्ट है कि ईसापूर्व 527 में कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन भगवान महावीर स्वामी ने निर्वाण (मोक्ष) लाभ लिया था। अतः उनकी पुण्यस्मृति में उनके निर्वाण के अगले दिन से 'वीर संवत्' का प्रवर्तन किया गया। आज भी जैनों का यह 'वीर संवत्' कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से प्रारंभ होता है, इसे ही जैनों में नववर्ष माना जाता है।

तीर्थंकर भगवान् महावीर परिनिर्वाण संवत् (सम्प्रति वीर निर्वाण संवत् 2523 है) आज भी चालू है।

जैनों का तिथिमान सम्बन्धी स्वतंत्र सिद्धान्त

जैन संवत् की स्वतंत्रता एवं प्राचीनता के साथ-साथ जैनों में तिथिमान अर्थात् 'किस दिन कौन-सी तिथि मानी जाये' - इस बारे में भी स्वतंत्र सिद्धान्त है। जहाँ वैदिकों में 'विंशति-घटिका-सिद्धान्त' है, वहाँ जैनों में इस बारे में 'रस-घटिका-सिद्धान्त' माना जाता है -

'अत कुन्दकुन्दाद्युपदेशात् रसघटिका
ग्राह्या कार्या इत्यर्थ ' ॥ 6 ॥

(आचार्य सिहनन्दि व्रततिथि-निर्णय)

अर्थ – अतएव कुन्दकुन्दादि आचार्यो के उपदेश से सभी मतो की अपेक्षा छ (6) घटी प्रमाण (2 घटे 24 मिनिट) तिथि का मान (प्रमाण) ग्राह्य है।

इसके अनुसार जिस दिन सूर्योदय के बाद छह घडी-प्रमाण समय तथा जो तिथि रहे वही तिथि उस दिन मानी जायेगी, जबकि वैदिक मान्यता के अनुसार सूर्योदय के साथ कम से कम 20 घडी प्रमाण समय तक वह तिथि अवश्य रहनी चाहिये। अन्यथा उस दिन वह तिथि नही मानी जायेगी। इस बारे मे वैष्णव मान्यता 10 घडी की है।

जैनो का वर्षमान

इसीप्रकार जैनो मे 'वर्ष' का प्रमाण भी स्वतत्र माना गया है। जैनश्रमण (साधु) 'सावत्सरिक (वार्षिक) प्रतिक्रमण' के अवसर पर पढते है –

इच्छामि भते! सवच्छरिय आलोचेदुं बारसण्ह मासाण, चउवीसण्ह पक्खाण तिण्ह छावट्ठिसय दिवसाण, तिण्ह छावट्ठिसय-राईण ॥ (पडिक्कमणसुत्त 4, पृष्ठ 270)

इसके अनुसार जैनो के वर्ष मे ३६६ दिन होते है। (सौरवर्ष 365 दिन, 16 घडी, 32 पल, 32 विपल माना है।)

जैनो के तीर्थक्षेत्र

जैनो के तीर्थक्षेत्र भी स्वतत्र हैं। जहाँ वैदिको के तीर्थक्षेत्र प्राय नदियो, समुद्रो एव सरोवरो के तट पर स्थित है, वही अधिसख्य जैनतीर्थ पर्वतो पर स्थित हैं। जैनो का सर्वाधिक पूज्य तीर्थक्षेत्र 'सम्मेदशिखरजी' (गिरडीह जिला, बिहार प्रात) भी विशाल पर्वत पर ही है। जैनो की 'निर्वाण भक्ति' मे इसके बारे मे उल्लेख है कि –

'वीस तु जिणवरिंदा, अमरासुरवदिदा धुदकिलेसा'।
सम्मेद गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

(निर्वाणभक्ति ॥ 2 ॥)

इसके अनुसार जैनो के चौबीस तीर्थकरो मे से बीस तीर्थकरो और करोडो मुनियो ने यहाँ (सम्मेदशिखरजी) से मोक्ष प्राप्त किया है।

जैनो के आराध्यदेव

जैनो के आराध्यदेव का नाम 'अरिहत' या 'अर्हन्त' है। यह अन्य धर्मो के देवताओ से भिन्न है। तुलना के लिए निम्न सारणी द्रष्टव्य है –

समुदाय	आराध्यदेव
जैन	अरिहत
वैदिक	ब्रह्मा
मुस्लिम	अल्लाह
क्रिश्चियन	गॉड
डच	गाट
स्पैनिश	डायोस
ग्रीक	थियोस
जापानी	सान
चीनी	प आनप

'शारदीयाख्य नाममाला' मे जैन भगवान् के विशेषणो किंवा नामान्तरो का वर्णन करते हुए लिखा है –

"देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतरागो जिनेश्वर ।
तीर्थंकरो जगन्नाथो जिनोऽर्हन् भगवान् प्रभु ॥

– *(शारदीयाख्य नाममाला 6)*

मथुरा सग्रहालय मे प्रदर्शित जैन तीर्थंकर आदिनाथ की कुषाणकालीन प्रस्तर प्रतिमा

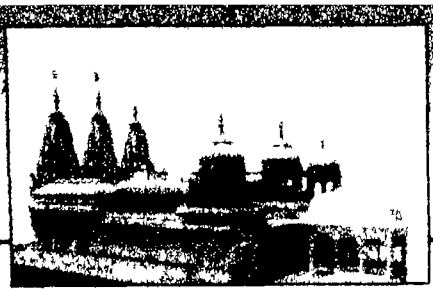

अर्थ - देवाधिदेव, सर्वज्ञ, वीतराग, जिनेश्वर, तीर्थंकर, जगन्नाथ, जिन, अर्हन्त, भगवान् एवं प्रभु - (ये सब जैनों के आराध्यदेवों के नामान्तर हैं।) मथुरा के संग्रहालय में कुषाणकालीन जैन तीर्थंकर आदिनाथ की प्रस्तर प्रतिमा आज भी विद्यमान है जिसका चित्र यहाँ दिया जा रहा है।

जैन प्रतिमा को पूजते हैं

जैनधर्म में ही सर्वप्रथम मूर्तिपूजा का विधान प्राप्त होता है। जबकि वैदिक धर्म में मूलतः मूर्तिपूजा थी ही नहीं। इस बारे में दोनों दर्शनों के प्रमाण द्रष्टव्य हैं -

'अरहंत-सिद्ध पडिमाणं पणमो।'

(आचार्य कुन्दकुन्द मूलाचार 1.25)

'जिणपडिमाणं पणमं करेह।' *(ज्ञातासूत्र 1.18)*

ईश्वर की कोई प्रतिमा नहीं हो सकती -

'न तस्य प्रतिमा अस्ति।' *(यजुर्वेद 32.3)*

अर्थ - परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति।' *(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.7)*

अर्थ - ईश्वर की कोई भी मूर्ति नहीं बन सकती है।

'न प्रतीके न हि सः।' *(आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्र 4.2.4)*

अर्थ - किसी प्रतीक (मूर्ति आदि) के द्वारा ईश्वर की उपासना नहीं हो सकती है।

विश्व की प्राचीनतम मूर्तियाँ **जैन-तीर्थंकरों** की हैं। सिन्धु सभ्यता के युग से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी तक की उपलब्ध मूर्तिकला का इतिहास इस तथ्य को पोषित करता है। प्रख्यात विद्वान राधाकुमुद मुखर्जी लिखते हैं -

उन्होंने (श्री रामप्रसाद चन्दा) 6 अन्य मुहरों पर खड़ी हुई मूर्तियों की ओर भी ध्यान दिलाया है। फलक 12 और 118, आकृति 7 (मार्शलकृत - मोहनजोदड़ो) कायोत्सर्ग नामक योगासन में खड़े हुए देवताओं को सूचित करती है। यह मुद्रा जैन योगियों की तपश्चर्या में विशेषरूप से मिलती है, जैसे - मथुरा संग्रहालय में स्थापित तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की मूर्ति में। 'ऋषभ' का अर्थ है 'बैल' जो आदिनाथ का लक्षण है।

- **राधाकुमुद मुकर्जी**, *हिन्दू सभ्यता*, पृ. 23, राजकमल प्रकाशन

ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट खारवेल द्वारा कलिंग जिन की प्रतिमा को मुक्त कराने का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है। इससे स्पष्ट है कि यह जिनप्रतिमा कम से कम 500 या 600 ई.पू. में निर्मित हुई होगी। भारतीय मूर्तिकला के विशेषज्ञ **रायकृष्णदास** इस बारे में लिखते हैं -

'उक्त नंदिवर्धन ने मगध साम्राज्य को, जो अजातशत्रु के समय में ही बनना प्रारंभ हो गया था, और भी बढ़ाया। उसने कलिंग को भी जीत लिया था तथा वहाँ से लौटकर और निधियों के साथ जिन (जैन तीर्थंकर) की मूर्ति भी ले आया था। ई.पू. 5वीं शती में जैन मूर्तियाँ बनने का यह अकाट्य प्रमाण है। इसी समय के कुछ पीछे कृष्ण की मूर्ति के अस्तित्व का अनुमान होता है।'

- **राय कृष्णदास**, *भारतीय मूर्ति कला* पृ. 24, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

इसी क्रम में लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त प्रतिमा के बारे में **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** के विचार भी द्रष्टव्य हैं।

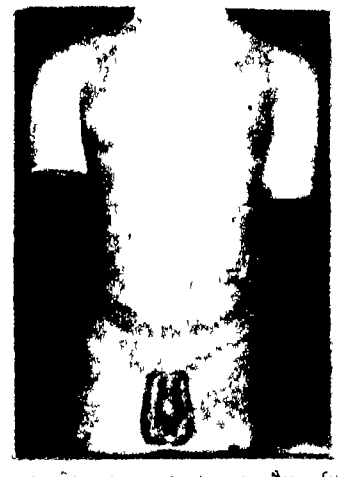

लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त जैन मूर्ति

किन्तु एक दूसरा प्रमाण जो सन्देहरहित है सामने आ जाता है। वह पटना के लोहानीपुर मुहल्ले से प्राप्त एक नग्न कायोत्सर्ग मूर्ति है। उस पर मौर्यकालीन ओप या चमक है और श्री काशीप्रसाद जायसवाल से लेकर आज तक के सभी विद्वानों ने उसे तीर्थंकर प्रतिमा माना है। उस दिशा में वह मूर्ति अब तक की उपलब्ध सभी बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म-सम्बन्धी मूर्तियों से प्राचीन ठहरती है। कलिंगाधिपति खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख से भी ज्ञात होता है कि 'कुमारी पर्वत पर जिन प्रतिमा

का पूजन होता था।' इन सकेतो से इगित होता है कि जैनधर्म की यह ऐतिहासिक परम्परा और अनुश्रुति अत्यन्त प्राचीन थी।

– डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल,
अध्यक्ष इन्डालॉजी कालज काशी विश्वविद्यालय
मालवीय जयन्ती पृ 10

ईश्वर के बारे मे जैन मान्यता

ईश्वर के बार मे जैनो की मान्यता अत्यन्त मौलिक एव स्वतत्र है। वह ईश्वर को वीतरागी (राग-द्वेष मोह आदि विकारी भावो से रहित), सर्वज्ञ (समस्त पदार्थो का ज्ञाता) एव हितोपदेशी (आत्म-हितकारी उपदेश देनेवाला) मानता है। आचार्य समन्तभद्र कहते ह –

''आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्य नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेते ॥''

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार । ५)

जबकि अन्य दर्शनो म ईश्वर को जगत् का कर्ता एव नियन्ता माना गया है। इस बारे म स्पष्टीकरण करते हुए प्रख्यात बैरिस्टर चम्पतराय जी लिखते है –

"The first question which arises in connection with the idea of creation is why should God make the world at all? One system suggests that he wanted to make the world, because it pleased him to do so, another, that he felt lonely and wanted company, a third that he wanted to create beings who would praise his glory and worship, a fourth that he does it in sport and so on

Why should it please the creator to create a world, where sorrow and pain are the inevitable lot of the majority of his creations? Why should he not make happier being to keep him company?"

(Key of Knowledge P 135)

अर्थ – ''प्रथम प्रश्न उपस्थित होता है कि ईश्वर ने इस विश्व का निर्माण क्यो किया? एक मत कहता है कि इससे उसे आनन्द की उपलब्धि हुई, तो दूसरा कहता है कि वह अकेलेपन का अनुभव करता था और इसलिए उसे साथी चाहिये थे। तीसरा मत कहता है कि वह ऐसे प्राणियो का निर्माण करना चाहता था, जो उसका गुणगान कर तथा पूजा करे। चौथा पक्ष कहता है कि वह विनोदवश विश्वनिर्माण करता है। इस विषय म यह विचार उत्पन्न होता है कि **''विश्वकर्ता को ऐसा जगत् निर्माण करने की इच्छा क्यो हुई जिसमे बहुत बडी सख्या मे प्राणियो को नियमत दु ख और शोक भोगने पड़ते है? उससे अधिक सुखी प्राणी क्यो नहीं बनाए, जो उसके साथ मे रहते।''**

('की आफ नौलज' बैरिस्टर चम्पतराय पृष्ठ 135)

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य कुन्दकुन्द (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी) ईश्वर के जगत्कर्तृत्व के सम्बन्ध म निराकरण करते हुए लिखते है –

लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणपि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काए ॥

loyassa kunai vinhu suranaravatiriyamanuse satte
samananampi va appa jai kuvvai chavvihe kae

लोयसमणाण मेव सिद्धत पडि ण दीसइ विसेसो ।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाण पि अप्पओ कुणइ ॥

loyasamanana mevam siddhamtam padi
na disai vieso
loyassa kunai vinhu samananam pi appao kunai

एव ण कोवि मोक्खो दीसइ लोयसमणाण दोण्हपि ।
णिच्च कुव्वताण सदेवमणुआसुरे लोये ॥

evam na kovi mokkho disai loyasamanana
donhampi
niccam kovvamtanam sadevamanuasure loye

321 to 323, According to the worldly people Visnu creates all creatures celestial, hellish sub-human and human if according to the Sramanas the soul creates his six kinds of organic bodies then between the popular doctrine and the Sramana doctrine, both being identical, no difference can be perceived For the people it is Visnu that creates and for the Sramanas it is the Self that creates Thus if the worldly people and the Sramanas both believe in the doctrine of perpetual creation of worlds human and divine then there is no such thing as moksa or liberation discernible in their doctrine

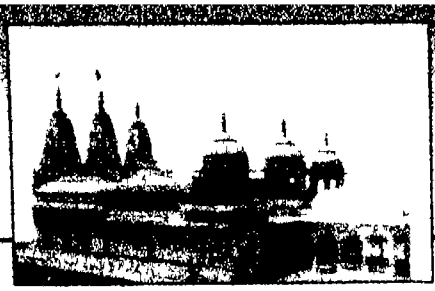

Commentary

Creative activity also implies desire to achieve something The moment a desire to achieve an ideal appears, there comes a train of emotions such as attachment, aversion delusion etc Hence continuous creative activity implies perpetuation of samsara and hence there is no chance for liberation or mukti

Next when the Self and non Self are so entirely distinct and when there is no chance of association of any kind between the two much less the causal relation how does the feeling of doer occur in the Self? The following gatha is offer an explanation

लाक (विश्व) के बारे मे जैन मान्यता

ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है - इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का कारण यह रहा है कि जैन मान्यता अनुसार विश्व शाश्वत जीवादि छह द्रव्यों से निर्मित अनादि एवं अकृत्रिम है।

षड्द्रव्यात्मा स लोकाऽस्ति स्यादलोकस्ततोऽन्यता।'

(पद्मपुराण 2 12 पृष्ठ 18)

लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइ णिहणो सहावणिप्पण्णो ।
जीवाजीवहि भरो णिच्चो तालरुक्ख-सठाणो ॥

(आचार्य कुन्दकुन्द 'मूलाचार' 8 । पृ 20)

अर्थ - यह लोक अकृत्रिम (नेचुरल) है किसी के द्वारा निर्मित नहीं है। अनादिनिधन है अर्थात् आदि अन्त रहित है। स्वभाव से निष्पन्न है जीव और अजीव से भरा हुआ है। नित्य तथा तालवृक्ष के आकार वाला है।

जैन वेदो को प्रमाण नही मानते

वैदिक दर्शनों का मूल आधार वेद ही है। अतः उन्होंने वेद को ही मूल प्रमाण माना है। और जैनों को 'वेदबाह्य' कहा है।

'अपरे वेदबाह्य दिगम्बरा एकस्मिन्नेव पदार्थे भावाभावौ मन्यते।'

(ब्रह्मसूत्र विज्ञानामृत भाष्य 2 2 33)

जैनो के वेदों के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए प्रख्यात जैनाचार्य कुन्दकुन्द लिखते है -

रिगवेद-सामवेदा, वागणुवागादि-वेद-सत्थाइं ।
तुच्छाणित्ति ण गिण्हदि वेदियमूढो हवदि एसो ॥

(मूलाचार 5 61, पृ 182)

अर्थ - ऋग्वेद, सामवेद आदि वेद ग्रंथो को एव अन्य वेदपरक वाङ्मय को जो प्रमाण मानता है वह वेदमूढ है।

जैन दार्शनिक दृष्टि की मौलिकता

जैनो की दार्शनिक दृष्टि 'अनेकांत दृष्टि' है। अतः वे 'णमो भयवओ अणेगंतवायस्स' (अर्थात् अनेकान्तवाद को नमस्कार है) कहते हैं जबकि 'महाभारत' में वेदो को 'एकान्तदर्शन' रूप माना है -

' **एकान्तदर्शनावेदा** '' (महाभारत मो भ्रम शान्तिपर्व 12 300 46)

जैनो की भाषा

जैनो की मूलभाषा प्राकृत रही है। प्रख्यात भाषाशास्त्रियो ने इस तथ्य को स्वीकार किया है -

Had there not been Jaina books belonging to prakrit literature we should not have been able now to form an idea of what Prakrit literature was which once was the rival of Sanskrit literature and certainly more popular than Sanskrit literature We are much indebted to the Jainas for all the glimpses we get of the popular Prakrit literature

(Dr Harman Jaikobi)

प्राकृत साहित्य विषयक जैन ग्रन्थ यदि न होते तो प्राकृत साहित्य क्या है इसका हमे ख्याल न आता। प्राकृत साहित्य एक समय संस्कृत साहित्य का प्रतिस्पर्धी था और सचमुच ही संस्कृत से अपेक्षा अधिक लोकप्रिय था। लोकप्रिय प्राकृत साहित्य की जो झलक हमे मिलती है उसके लिए हम जैनो के बहुत ऋणी है।

तथा प्राकृतभाषा वेदो की उत्पत्ति से भी पूर्ववर्ती थी - ऐसा वैदिक विद्वानो ने स्वीकार किया है -

The linguals in vedic and later Sk are due to influence of the old Prakrits, which therefore must have existed side by side with the vedic dialects Side by side with the language of vedas and the pundits there was current even during the period of the production of hymns, a language which was much

more developed than the priestly language and which had the chief characteristics of the oldest phase of the mid Indian dialects

(**Dr P D Gure** - An Introduction to Comparative Philosophy)

प्राकृतो का अस्तित्व निश्चितरूप से वैदिक बोलियो के साथ-साथ वर्तमान था। इन्हीं प्राकृतों मे परवर्ती साहित्यिक प्राकृतो का विकास हुआ। वेदो एव पण्डितो की भाषा के साथ-साथ, यहाँ तक कि मत्रो की रचना के समय भी, एक एसी भाषा प्रचलित थी जो पुरोहितो की भाषा से अधिक विकसित थी। इस भाषा मे मध्यकालीन भारतीय बोलियो की प्राचीनतम अवस्था का प्रमुख विशेषताये वर्तमान थी।

सम्राट अशोक कालीन निर्ग्रन्थो की व्यवस्था

टोपरा दिल्ली म पाये गये प्रियदर्शी सम्राट अशोक के सप्तम स्तभ लेख मे यह स्पष्ट उल्लेख आता है कि निर्ग्रन्थो की स्वतत्र व्यवस्था की जाये -

'इमे वियापटा होहति ति निगठेसु[1] पि मे कटे इमे वियापटा होहति। नानापासडेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहति ति पटीविसठ पटीविसठ तेसु तेसु ते-ते महामाता धम महामाता[2] चु मे एतेसु चेव वियापटा सवेसु च अनेसु पासडेसु देवानपिये पियदसि लाजा हेव आहा।' - *(अशोक राधाकुमुद मुखर्जी पृ 209)*

अर्थ - इसी प्रकार मैने व्यवस्था की है कि वे (धर्म महामात्य) निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैन) और विविध सप्रदायो की व्यवस्था करेगे। अनेक 'महामात्य' मनुष्यो की विविध श्रेणियो और बहुत से निश्चित कार्यों के लिए नियुक्त है परन्तु मैने 'धर्म-महामात्य' की नियुक्ति इन तथा अन्य सब सप्रदायो के लिए की है। देवताओ के प्रिय राजा इस प्रकार कहते है।

Translation I have so organised that they (senior Ministers for Religious affairs) will make arrangement for Nirgranthas (Digambar Jains) and for various other faiths I have appointed many senior Ministers to look after various categories of mankind (society) and also have assigned them many specific tasks, but I have appointed 'senior Ministers for Religious affairs for these as well as for all other faiths Thus speaks the Ruler the beloved of the Gods

भारतीय सविधान के अनुसार भी जैन स्वतत्र-समुदाय

भारतीय गणतत्र के सविधान की भाग म जैनो का स्वतन्त्र समुदाय के रूप म उल्लेख किया गया है। इतना ही नही भारतीय सविधान की मूलप्रति के ऊपर जैनो के चौबीसवे तीर्थकर भगवान् महावीर का ध्यानस्थ मुद्रा मे चित्र देकर नीचे यह टिप्पणी दी है कि "जैन-समुदाय के चौबीसवे तीर्थकर भगवान महावीर के अहिसा एव अपरिग्रह के पावन सन्देशो का अनुसरण करके ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इस देश को स्वतन्त्रता दिलायी।"

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि भारतीय गणतत्र के सविधान-निर्माता जैन समुदाय एव उसके तीर्थकरो से सुपरिचित एव अतिप्रभावित थे तथा राष्ट्र के निर्माण मे उनका विशिष्ट योगदान मानते थे।

---

१ *निर्ग्रन्थ (Nirgrantha)*

'यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्था निष्परिग्रह ।' - *(जाबालोपनिषद् पृ १३०)*

They are of form (appearance) as when born Nigranth is devoid of possessions *(Jabalopanishad P 130)*

'यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थ ।' - *(तैत्तिरीय अरण्यक, १०/८३)*

Of form (appearance) as when born Nirgrantha - *(Taittariya Aranyak 10/83)*

'निर्ग्रन्थ-एतेन मूलसंघादि दिगम्बरा ।' - *(आचार्य हरिभद्रसूरि प्रशमरति प्रकरण १/४२)*

Nirgrantha Those Digambars from the Mulasangh and other orders of monks

— *(Acharya Haribhadrasuri Prasamarati Prakaran, 9/42)*

The doctrine of the Tirthankars from the first Tirthankar Lord Rishabdev to Tirthankar Lord Mahavir Vardhaman were held in esteem in ancient India Rishabdev and Vardhaman are also referred to as 'Jina and Nirgrantha Those who worship Nirgranthas are also called Jains

2 **Dharma Mahamatya** – Senior Ministers for Religious affairs

Senior Officials during Emperor Ashoka s regime who looked after Religious matters and tasks propagated by him

पुराण साहित्य में जैन परम्परा

• डॉ भागचन्द 'भास्कर'

पुराण प्राचीन परम्परा का द्योतक शब्द है (वायु 1 203) जिसमे "पुरा भवत अभूत्" की ध्वनि व्यंजित होती रहती है (ब्रह्माण्डपुराण)। शायद यही कारण है कि इतिहास पुराण मिश्रित रूप को पचम वेद माना गया है छान्दोग्योपनिषद् मे। यहाँ पुराण मे काल्पनिक कथा या आख्यान मुख्य रहता होगा। यास्क ने इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए "इति ऐतिहासिक" कहकर एक स्वतत्र शाखा के रूप मे उसे मान्यता दी है जिसमे निश्चित रूप से घटित तथ्य को स्थान मिलता है। छान्दोग्योपनिषद (7 1) तक आते आते दोनो के बीच विभेदक रेखा और भी स्पष्ट हो जाती है। वहाँ शकराचार्य ने उर्वशी तथा पुरुरवा सवाद को ऐतिहासिक माना है और सृष्टि प्रक्रिया को पौराणिक। कालान्तर मे पुराण मे सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्ग (विलय) वश (वशावली) मन्वन्तर (विशिष्ट काल-गणना) तथा वशानुचरित का वर्णन आवश्यक मान लिया गया।

इस तथ्य की समीक्षा करने पर पता चलता है कि "पुराण" का उदय अथर्ववेद के समय हुआ एक सामान्य मौखिक परम्परा के अर्थ मे। बाद मे उसका अभ्युदय गुप्त साम्राज्यकाल मे हुआ और उसमे लोकवृत्त के वर्णन को प्रमुखता दी गई। सायणाचार्य ने इतिहास-पुराण को अथर्ववेद का उपवेद बताया। उत्तरकाल मे इतिहास के स्थान पर आख्यान गाथा शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

विष्णुपुराण (3 6 20 24) तथा भागवत (12 13 3 8) आदि पुराणो की सख्या अठारह मानी जाती है - ब्रह्म पद्म विष्णु शिव, भागवत, नारदीय मार्कण्डेय, अग्नि भविष्य ब्रह्मवैवर्त लिग, वराह स्कन्ध वामन, कूर्म मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड।

इन पुराणो मे अवतारवाद को प्रश्रय दिया गया है। वहाँ भगवान स्वय पुनर्जन्म लेकर पाप का सहार करते दिखाई देते है। ऋग्वेद सहिता मे सन्निहित इसके बीज ब्राह्मण ग्रन्थो मे विकसित हुए है। श्रीमद्भागवत मे मूलत दो अवतारो का उल्लेख है - राम और कृष्ण। महाभारत मे छ अवतार हो गये - वराह, नरसिह, वामन, भार्गव, राम, दाशरथि राम तथा कृष्ण (शान्ति 339 77-102)। यहाँ दश अवतारो का भी उल्लेख है, हस कूर्म मत्स्य और कल्कि के साथ। श्रीमद् भागवत मे फिर 22 अवतारो की गणना हुई है - सनत्कुमार वराह नारद नर नारायण, कपिल दत्तात्रेय यज्ञ ऋषभदेव पृथु, मत्स्य कच्छप धन्वन्तरी, मोहिनी नरसिह वामन परशुराम वेदव्यास रामचद्र, बलराम कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि। हस तथा हयग्रीव को मिलाकर यह सख्या 24 भी हो गई है। बुद्ध सहित दशावतार की कल्पना 9वी 10वी शती मे आयी। दशावतारो की गणना भिन्न भिन्न रूप से मिलती है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवत (1 3 13 2 7 10, 5 3 6) को छोडकर अन्यत्र कही भी ऋषभावतार का वर्णन नही मिलता। पर पौराणिक काल तक आते-आते ऋषभदेव को तीर्थकर और भगवान के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। गरुड पुराण (26 10 13) मे कहा है - अग्नीध्र के 9 पुत्र हुए जिनमे नाभि एक था। नाभि से मरुदेवी को ऋषभ पुत्र हुआ। उसका पुत्र भरत शालिग्राम का उपासक और व्रतधारी था। भरत का पुत्र तेजस तेजस का पुत्र द्युम्न और द्युम्न का परमेष्ठी और परमेष्ठी का प्रतिहार पुत्र हुआ। यही आगे परमष्ठिक भिक्षु को योगाभ्यासी कहा है।

ऋग्वेद और उपनिषद् काल तक ऋषभदेव और शिव को एकरूप माना जाने लगा था। यह अधिक सभव है कि कालान्तर मे जैन जिन आदि तीर्थकर के रूप मे पूजते थे, वैदिको ने उन्हे पशुपतिनाथ शिव मान लिया हो। पुरातत्त्व मे भी ऐसी मूर्तियाँ मिली है जो तीर्थकर भी है और महादेव शिव का रूप भी वही उत्कीर्ण है।

लिग पुराण मे शैव सिद्धान्तो को अभिव्यक्ति मिली है। भगवान के व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त रूप वहाँ दिग्दर्शित हुए है। यहाँ शिव की तीन मूर्तियो मे उस रूप को स्पष्ट किया गया

है – अलिगी, लिगी और लिगालिगी। इसी सदर्भ मे शिव की आराधना मे उन्हे नग्न, दिग्वास और ऋषभ कहा गया है – भस्मपासुदिग्धागो नग्नो विकृतुलक्षण – 22 28 नमो दिग्वाससे नित्यम् – 22 1 ग्राम्याणा वृषभश्चासि – 22 7 आगे गरुड पुराण जैसी पूरी वशावली दी है ऋषभ की और उनके 100 पुत्रा म भरत के नाम स भारतवर्ष की सज्ञा होने का उल्लख है – भारतवर्ष वर्णन, 35 6 24। यही शिव को वृषभध्वज भी कहा गया है (69 10, 68 42, 87 66, 67 51)। दिगम्बरत्त्व और नग्नत्त्व को सेव्य माग भी कहा गया है (24 13 141)।

विष्णुपुराण मे मैत्रेय के प्रश्न के उत्तर म नग्ना की विशेषताये दी गई है और देव और दैत्यो के बीच महासग्राम का उल्लख किया गया है। यहाँ "ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज" विशेष उल्लेखनीय है। दिग्वास वीतराग अनकान्तवाद, अर्हत् जैस शब्दो का भी प्रयोग हुआ है जो जैनधर्म क विशिष्ट शब्द है (18 1 30)।

श्रीमद्भागवत पुराण एक अद्भुत समन्वय परक भक्तिरस से आप्लावित काव्य ग्रन्थ है। इसमे भगवान के अवतारो मे यज्ञ (7) बुद्ध और कल्कि को छोड़कर अन्य सभी कथाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। बुद्ध – अवतार ग्रहण के पूर्व ही इसकी रचना हो गई होगी। क्योंकि उसमे बुद्ध और कल्कि अवतारो को भविष्य मे होने वाले अवतारो मे सम्मिलित किया गया है। इसके रचयिता बादरायण व्यास है। पर यह भी असभव नही कि इसके कुछ भाग उत्तरकाल मे जोडे गये हो।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध के पचम स्कन्ध पुराण मे तीर्थकर ऋषभदेव को विष्णु के आठवे अवतार क रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है और उन्हे परमहस दिगम्बर धर्म का प्रतिपादक माना गया है। व नाभिराय और मरूदेवी के पुत्र थे।

* तस्य हरिन्द्र स्पर्धमानो भगवान् वर्षे नववर्षे तदवधार्य भगवान् ऋषभदेवो योगेश्वर· प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभे नामाभ्यवर्षत् (4 3)
* मरुदेव्या धर्मान्दर्शयतिकाम्यो वातरशनानां श्रमणानामृषीणा-मूर्ध्वमन्थिना शुक्लया तनूवावतार – 5 3 20।
* भरत के नाम पर भारत हुआ। येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठ· श्रेष्ठगुण आसीद्येनेद वर्ष भारतमिद व्यपदिशन्ति – 5 4 9।

ऋषभ के विशेषणो मे आत्मतन्त्र, केवलानन्दानुभव, ईश्वर आदि शब्द आये है। ऋषभ संज्ञा को स्पष्ट करते हुए वहाँ लिखा है –

इद शरीर मम दुर्विभाव्यं सत्त्व हि मे हृदय यत्र धर्म।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आगद् अतो हि मामृषभ प्राहुरार्या
1 5 5 19

एवमनुशास्यात्मजान स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थ महानुभाव परमसुहृदभगवानृषभापदेश उपशमशीला-नामुपरतकर्मणा महामुनीना भक्ति ज्ञान वैराग्यलक्षणं परमहस धर्ममुपशिक्षमाण स्वतनयशत ज्येष्ठ परमभागवत भगवज्जनपरायण भरत धरणिपालनायाभिषिच्य स्वय भवन एवावचरित शरीर मात्र परिग्रह उन्मत्त इव गगन परिधान प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीया ब्रह्मावर्तात्प्रव्राज (28)। जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषो ऽ भिभाष्यमाणो ऽ पि जनाना गृहीतमौनव्रतस्तूष्णी बभूव (5 5 28-29)। यही नानायोगचर्याचरणो भगवान कैवल्यपति ऋषभो ऽ विरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषा भूताना आत्मभूते (5 35) कहा है। कुटिलजटिलकर्कशकेश भूरिभारो ऽ वधूत मलिननिजशरीरण ग्रहगृहीत इवादृश्यत (5 5 31)। यहाँ वस्त्रो का त्यागकर दिगम्बर व्रत धारण करने का स्पष्ट उल्लेख है आत्मविद्या के प्रवर्तक जटाजूट को धारण करने वाले तीर्थकर ऋषभ द्वारा।

इसी तरह ग्यारहवे स्कन्ध मे राजा निमि के प्रसग मे पुन ऋषभ को अवतार मानकर कहा गया है –

प्रियव्रतो नाम मनो मनो स्वायम्भुवस्य य।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभि ऋषभस्तत्सुत स्मृत।
तमाहुर्वासुदेवाश मोक्षधर्म विवक्षया
अवतीर्ण सुतशत तस्यासीद् ब्रह्मपारगम्।
तेषा वै भरतो ज्येष्ठो नारायण परायण.।
विख्यात वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमाद्भुतम्॥
स भुक्तभोगा त्यक्त्वेमा निर्गतस्तपसा हरि।
उपासीनस्त-पदवी लेभे वै जन्मभिरित्रभि.॥
तेषा नव नवद्वीप पतयोस्य समन्तत·।
कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीति द्विजातय·॥

नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थ शमित ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्या विशारदा ।

11 2 25 20

सातवे स्कन्ध म ऋषभदेव के दिगम्बरत्व रूप का ऋषियो द्वारा वन्दनीय माना है –

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु-
र्यो वै चचार समदृग जडयोग चर्या।
यत् परम हम्यमृषय पदमामनन्ति
म्वस्थ प्रशान्तकरण परियुक्तसङ्ग ॥

7 2 10

ऋषभदेव के ये उल्लेख मूल जैन परम्परा को सही सिद्ध करन के लिए पयाप्त है।

श्रीमद्भागवत पुराण क इन उद्धरणो से यह स्पष्ट पता चलता है कि पुराणकाल तक आत आत तीर्थकर ऋषभदव समृच भारतवष म एक महाधिदेव क रूप मे प्रस्थापित हो चुक थ। यहाँ उन्ह विष्णु क आठवे अवतार के रूप म स्वीकार कर उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया गया है। तदनुसार स्वायम्भुव मनु क पत्र पियव्रत निरासक्त हाकर प्रजापालन करन लग। उन वीतराग जितेन्द्रिय आर कर्मबन्धन मे मुक्त महाराज प्रियव्रत का प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती मे दस पुत्र हुए। उनम ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र थ जिस जम्बूद्वीप का शासन सूत्र द दिया।

अग्नीध्र को पूर्वचित्ति स नौ पुत्र हुए जिनम नाभि सबस बडे थ। उन्होन जम्बूद्वीप को नौ खण्डो म विभाजित कर अपन सार पुत्रो को बाँट दिया। नाभि को उनम स अजनाभ खण्ड मिला जिसे आज भारतवर्ष कहा जाता है। नाभि का विवाह मेरु की पुत्री मरुदेवी स हुआ।

पुत्र कामना की दृष्टि से नाभि न पुत्रेष्टि यज्ञ किया। फलत महारानी मरुदेवी के गर्भ स दिगम्बर सन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियो का धर्म प्रगट करन क लिए विष्णु भगवान न ऋषभदेव का रूप ग्रहण किया (5 3 20)। यहाँ प्रयुक्त वातरशना श्रमण ऋषियो का उल्लेख विशष महत्त्वपूर्ण है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के ऋषभदेव और वातरशना ऋषि समुदाय जैन परम्परा मे ही सम्बद्ध थ। उन्हे यहाँ श्रमण धर्मप्रवर्तक दिगम्बर सन्यासी तथा ऊर्ध्वरेता भी कहा गया है। ऊर्ध्वरेता का तात्पर्य है पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करन वाला।

ऋषभदेव न अजनाभ खण्ड को कर्मभूमि बनाया और जनकल्याण की दृष्टि स इन्द्रकन्या जयन्ती से विवाह किया जिससे उन्हे 100 पुत्र प्राप्त हुए। उनम स दस पुत्र ऋषभदेव के पदचिन्हो पर चलन वाल थ नौ पुत्र भागवत धर्म का प्रचार करने वाल थे और शेष इक्यासी पुत्र वेदज्ञ और यज्ञ करने वाले ब्राह्मण हो गय। ऋषभ की समता शान्ति वैराग्य और ऐश्वर्य आदि विभूतियो ने समाज का बहुत आकर्षित किया। ऋषभदेव बाद म तपस्या मे लीन हो गय और अजनाभ (भारत) का राज्यभार ज्येष्ठ पुत्र भरत के कन्धो पर आया। इन्ही भरत के नाम स भारतवर्ष नाम पडा।

ऋषभदेव को भागवत पुराण म भगवान और परमहंस कहा गया है। व परमर्षि समदर्शी और योगी थ। उन्होन ब्राह्मणो के प्रति पूरा सम्मान व्यक्त किया दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया और अन्त म निर्वाण प्राप्त किया।

क्या वृषभ और शिव एक है?

पिछले पृष्ठो म हमने वृषभदेव और पशुपतिनाथ शिव के एकाकार होने की सभावना की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। शिवपुराण (7 2 9) भी ऋषभ को अवतार के रूप म उपस्थित करता है। यहाँ इस अवतार का उद्देश्य बताया है – वातरशना श्रमण ऋषियो के धर्म को प्रगट करना तथा रजोगुणी जन समुदाय को कैवल्य की शिक्षा देना (अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थम्)।

ऋषभदेव को अग्निदेव भी कहा गया है। ऋग्वेद मे प्रयुक्त जातवेदस्, रत्नधारक, विश्ववेदस्, ऋत्विज (धर्म संस्थापक) होता हव्य यज्ञ सत्य यशवल आदि शब्द प्रतीक रूप मे ऋषभदेव ही हैं। रुद्र शिव पशुपति उग्र, अशनि, भव, महादेव, ईशान, कुमार ये 9 नाम रुद्र के है जो अग्निदेव सूर्य क विशेषण है (शतपथ ब्राह्मण, 6 1 3 18)। अथर्ववेद (9 4 3) मे ऋषभ के लिए जातवेदस् विशेषण का प्रयोग हुआ है। उपास्यदेवो मे अग्र होने के कारण अग्नि स अग्नि संज्ञा आयी। सयदस्य सर्वस्याग्र-मसृज्यत तस्मादग्निरग्रिह वै नामाग्निरित्याचक्षते परोक्षय-शतपथ (6 1 1 11)। यह अग्नि या अग्नि शब्द प्राकृत अग्गि शब्द से बना है।

खारवेल शिलालेख मे ऋषभ जिन को अग्गजिन कहा गया है जो उपर्युक्त अग्गि या अग्ग शब्द से सबद्ध होना चाहिए। अग्नि सज्ञा से अभिहित ऋषभ की उपासना करने वाली यदु, तुर्वसा, पुरु, द्रुह्यु, अनु आदि क्षत्रिय जातियाँ, कुरु, पाचाल आदि देशो मे रह रही थी। ये जातियाँ ऋषभदेव को पूज्य मानती थी।

ऋग्वेद का रुद्रदेव भी ऋषभदव हो सकता है। वैदिक परम्परा म रुद्र का मध्यम श्रेणी का दव माना गया है। रुद्र और शिव दोनो मूल रूप से अवैदिक देवता है जिन्हे बाद मे वैदिक सीमा मे लाया गया। रामायण तक आते-आत रुद्र ही शिव बन जाते है। तब ऐसे कथन अधिक महत्वपूर्ण हो जात ह जहाँ कहा गया है कि व्रात्य महादेव बन गया, व्रात्य ईशान बन गया (अथर्ववेद, 15 1 4-5)। व्रात्य ने अपने पर्यटन मे प्रजापति का शिक्षा और प्रेरणा दी (15 1)।

ये सब प्रमग यह कहने को बाध्य करते है कि तीर्थंकर ऋषभदेव ही रुद्र और महादेव से गुजरते हुए शिव बन गये। यही कारण है कि विमलसूरि ने पउमचरिय के मगलाचरण म एक जिनेन्द्र रुद्राष्टक को प्रस्तुत किया है जहाँ जिनेन्द्र को रुद्र के रूप मे प्रस्तुत कर उन्हे वृषभ और शिव की सज्ञा दी गई है। आचार्य वीरसेन ने भी धवला टीका मे अर्हन्तो का वर्णन पौराणिक शिव के रूप मे किया है। दोनो जटा-जूटधारी और वृषभ चिन्ह मे चिन्हित महायागा रह है जिन्होने कैलाश पर्वत को अपनी साधना स्थली बनाया था।

अत रुद्र, शिव और वृषभ एक ही व्यक्ति के विभिन्न रूप हा सकते है। पुराणो मे वृषभ, पुराण वृषभ, वृषभध्वज, वृषाक, दिगम्बर दिग्वस्त्र, दिग्वास, जटी, कपर्दी, चारुकेश, जटाभारभास्वर ऊर्ध्वरतस्, ऊर्ध्वरेन्द्र, तपोमय, शान्त, दान्त, इन्द्रियपति, अक्षोभ्य, अहिस, चैकतान, ज्ञानी, वज्रमहनन, पिच्छिकास्त्र आदि शब्दो का प्रयोग शिवस्तुति में किया गया है जिनका सम्बन्ध वैदिक सस्कृति से कम और श्रमण सस्कृति से अधिक है। जैन सस्कृति मे तो य शब्द पारिभाषिक बने हुए है।

शिव और वृषभ के अनेक और भी इसी प्रकार के प्रसग है जो समान हैं। कामदहन, महौषधिदान, कैलाशवास आदि अनेक ऐसे प्रसंग है जिनसे ऐसा लगता है शिव और वृषभ तथा रुद्र एक ही है। महावीर पूर्व करकण्डु नरेश द्वारा बनाई गई धारा शिव (तेरपुर, जिला उस्मानाबाद) गुफा पार्श्वनाथ की प्रधान गुफा है जिसमे शैव और जैन गुफाये साथ हैं। विष्णुपुराण (3 1 30-34), लिगपुराण (47), वायुपुराण (3), भागवतपुराण (8 4) आदि पुराणा मे ऋषभ का चरित्र मिलता है जिसमे प्रियव्रत मनु के ज्येष्ठ पुत्र अग्निध्र को जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त हुआ। अग्निध्र ने जम्बूद्वीप के विभाजन मे प्राप्त हिमवर्ष राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र नाभि को दे दिया और स्वय तप करने निकल पडे। भागवत पुराण (5 3 20) मे तो वृषभदेव को विष्णु क अवतार क रूप मे माना ही गया है।

इसी तरह कशी और रुद्र भी समान व्यक्तित्व दिखाई देते है। कशी मुनि वायुसखा और देवो के लिए प्रिय थ। वे वायु की तरह स्वच्छन्द विचरण करते है। पीतवर्ण और मलधारी है, समस्त श्रेय के ज्ञाता और आनन्ददायी है। केशी सूत्र की अन्तिम ऋचा मे कहा गया है कि केशी द्वारा रुद्र क साथ जल (विष) पीने की घटना से वातरशना मुनि कम्पित हुए।

वायुरश्वा उपामथत् पिनष्टिरूपा कुनन्नया।
केशी विषस्य पात्रेण यद रुद्रणा पिवत् सह॥

कशी के सम्पर्क से, लगता है, रुद्र शान्त हो गये और आगे शायद कशी और हिरण्यगर्भ के समान रुद्र को भी उनके साथ समन्वित कर दिया गया। यह रुद्र डॉ चाटुर्ज्यो के मत से अनार्य (द्रविड) दव है जिन्हे 'चम्पू' कहा जाता है। आर्यो ने इसी 'चम्पू' का शम्भू ओर शिव बना दिया। रुद्र देव भी निर्विवाद रूप से एकमतेन स्वीकृत नहीं हो पाये वैदिक सस्कृति मे, क्योकि रुद्र अनार्य दव थे ओर तमिल रुधिर स रुद्र हो गये थे। अत केशी, रुद्र ओर शिव एक ही व्यक्तित्व होना चाहिए।

पूजा शब्द भी द्रविड शब्द ह। वैदिक विधि मे पुराडाशपशु मास अर्पित किया जाता था, जिस बलि कहा जाता है। परन्तु शिवपूजा सदैव से अहिसात्मक रही है इसमे पू = पुष्प, ज = कर्म = पुष्पकर्म होता हे जबकि होम मे पशु कर्म होता है। समन्वय भावना से बाद म इसमे यजनकर्म समाविष्ट कर दिया गया। जैन सस्कृति मे भी पूजा ही की जाती रही हैं। जिनसेन ने होम शब्द का प्रयोग नहीं किया। उन्होने पूजा का ही निर्देश दिया है (18 60)।

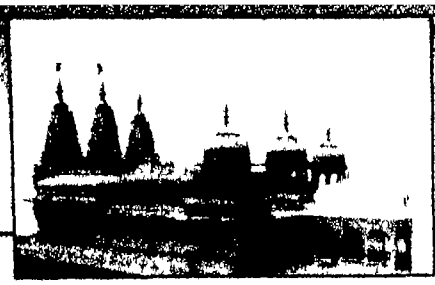

सिन्धु घाटी के उत्खनन मे प्राप्त नग्न, पद्मासनस्थ, सिर पर सीग की आकृति तथा घुटनो पर ऊर्ध्वरेतस् प्रतीक ऊपर करती लिगाकृति किसी द्रविड योगी की होना चाहिए। और वह योगी हो सकते है वृषभ जिन। यहाँ जिसे शिव कहा गया है वह वातरशना मुनियो का चित्रण सभव है। सर जान मार्शल ने "वैदिक राज" (पृ 203) मे इसी तथ्य की ओर सकेत किया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मुद्गल ग्राम्यश्व सूक्त मे ऋषभ को केशी का विशेषण बनाया गया है और मुद्गल द्वारा उन्हे रथ मे जोता और उसे सारथी बनाया। यहाँ प्रतीक रूप से वृषभ का प्रयोग हुआ है। रुद्र को अर्हत् कहना भी यही सूचित करता है कि रुद्र और वृषभ मूलत एक थे ऋग्वेदकाल मे।

अर्हत् विभर्षि सायकानि धन्व अर्हत् निष्क यजत विश्वरूपम् ।
अर्हन् इद दयसे विश्वमध्व न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥

इस प्रकार वैदिक साहित्य मे जैन परम्परा के उद्धरण बडे महत्वपूर्ण सिद्ध होते है। कहा जाता है, वेद के अनेक रूप अज्ञान के कारण बन गये – एकवेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवो ऽभवन् (महाभारत सनत्सुजातीय पर्व)। जैन और बौद्ध आगमो के समान वेदो का भी अनेक बार लोप हुआ है – वेदश्चैकश्चतुर्धातु कथ्यते द्वापरादिषु (मत्स्य पु 144 11)। उसका प्रथम सपादन मारीच ऋषि ने किया था जिसे मधुकैटभ असुरो ने अपहृत कर लिया। फिर हयग्रीव ने उसका उद्धार किया (शान्तिपर्व, 34856)। इसी तरह सारस्वत दत्तात्रेय आदि ऋषियो का नाम भी लिया जाता है उद्धारकर्ताओ मे। वर्तमान वेद का सकलन कृष्ण द्वैपायन पाराशर्य व्यास ने किया। यह सकलन 28वी बार हुआ है लगभग 5000 वर्ष पहले। आज भी इसमे पाठान्तर और शाखाये मिलती है।

वेदो का अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि महाश्रमण ऋषभदेव सभी के लिए पूज्य थे। ब्राह्मण भी उन्हे विष्णु या शिव के रूप मे सम्मान देते थे। ऋग्वेद मे "ऋषभ" शब्द का प्रयोग श्रेष्ठपुरुष, बैल, शब्द, गतिमान आदि अनेक अर्थो मे हुआ है। हम जानते है, वेदो मे प्रतीक पद्धति का प्रयोग बहुत हुआ है। इसलिए ऋषभ और उनकी परम्परा को उसमे उसी रूप से खोजना पडेगा।

वातरशना मुनि ऋषभदेव के अनुयायी थे। ऋग्वेद (15 136) मे सात मत्रो के दृष्टा सात वातरशना मुनियो का उल्लेख आता है – जूति वातजूति, विप्रजूति वृषाणक, करिक्रत, एतश और ऋष्यशृग। इनमे ऋष्यशृग मुनि कदाचित वही हो जिन्होने राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। ये वैदिक ऋष्यशृग पूर्व वनवासी थे और ब्रह्मचारी थे। कदाचित जैन श्रमण का यह प्रथम लक्षण था। जूति भी यति हो सकते है जो जैन परम्परा से मेल खाता है।

वातरशना मुनियो को तपस्वी और ज्ञान के समुद्र के रूप मे पहचाना जाता था (केशी केतस्य विद्वान – ऋ 90 136)।

तैत्तिरीयारण्यक मे श्रमण मुनियो के केतु, अरुण और वातरशना सज्ञक सघो का उल्लेख हुआ है और इन सघो के मुनियो को अप्रमादी तथा ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वरेता) माना है –

केतवो अरुणासश्च ऋषयो वातरशना प्रतिष्ठा शतधा हि समाहितासो सहस्त्रधायसम् (तै आ 1 21 3 1 24) अप्रमादी (तै आ 1 31 6) ते सर्वेऽपि ऊर्ध्वमन्था समाहिता (तै आ सायणभाष्य 1 21 3 2 7 1)।

अधिक सभव है, ये वातरशना तीर्थकर ऋषभदेव के सघ के मुनि होगे। तै आ मे ही किसी प्राचीन "सवतश्रुति" का उद्धरण दिया है जिसमे निर्ग्रन्थो को कन्था, कौपीन आसनादि से विरहित नग्न दिगम्बर बताया गया है (10 63)। मुण्डकोपनिषद् (1 1 10) मे अविद्याग्रन्थि का छेदन करने वाले को निर्ग्रन्थ माना है –

भिद्यते हृदय ग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसशया ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परापरे॥

1 2 8

रामायण (3 6 2 4) मे इन्ही वातरशना मुनियो को "वायुभक्षा" कहा जाता था और ये ही ऋष्यशृग भी थे (रामा 1 9 4 5, 1 10 9) ऋग्वेद (3 53 14) के जिस मत्र मे कीकट (मगध) के राजा प्रमगन्द का उल्लेख है वह प्रमगन्द या मगन्द शब्द ही सभवत मगध बन गया हो। यह कीकट-मगध प्रदेश प्रारम्भ मे ही अनार्य निवासी माना गया है (निरुक्त 6.32)। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विदेह माधव ने इसे स्थापित किया था (1 4 1 14)।

अथर्ववेद का समूचा व्रात्यकाण्ड व्रात्य की प्रशस्ति मे लिखा गया है। वहाँ यह भी लिखा है कि व्रतशील व्रात्य की प्रेरणा से प्रजापति ने हिरण्य (सुवर्ण) को बनाया और वही व्रात्य महादेव हो गया। वह पूरा अहिंसक था –

व्रात्य असीदियमान एव स प्रजापति समैरयत आदि। मुण्डकोपनिषद् मे प्रयुक्त यज्ञनिन्दा, सम्यक्ज्ञान, निर्ग्रन्थ, वीतशोक (3 12), आत्मरति (3 1 4), सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य, वीतराग, परिमोक्ष, यति आदि शब्द उस समय के दिगम्बर यति मुनियो का आभास दे रहे है।

रामायण मे श्रमण शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है जो स्पष्ट रूप से जैनो के लिए दिखाई देता है (रामा 4 18 33, 2 63 48, 2 63 5)। रामायण (शान्तिपर्व 34 17) म ही शालावृक नामक जैन यति क 66000 अनुयायियो का इन्द्र द्वारा मार जाने का उल्लेख है। उस सघ म से मात्र तीन यति बच गय थ – पृथुरश्मि, बृहद्गिरि और रायोवाज। उसी समय एक लोक्य बृहस्पति जिन यति का भी उल्लेख है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस काल तक वातरशना जैन मुनियो का उल्लेख "यति" रूप मे भी होने लगा था।

पुराणो मे कहा गया है कि बारहवे देवासुर सग्राम क बाद "नहुषानुज" रजि देवेन्द्र हुआ। इन्द्र रजि को पितृतुल्य मानता था। रजिपुत्रो को यह सह्य नही हुआ। दोनो क बीच सघष चला। इन्द्र ने लोक्य बृहस्पति के माध्यम से रजि को जिनधर्म मे दीक्षित किया। इस घटना का उल्लेख हरिवश पुराण (1 28 30 32), मत्स्यपुराण (24 42 48), विष्णुपुराण (3 17 41-42, 3 18 7 12) और देवी भागवत पुराण (4 13 52-56) मे भी आया है। विष्णुपुराण मे अर्हत् को महामोह और नग्न बताया गया है।

रामायण के कपिलस्यूयरश्मि सवाद (शान्तिपर्व, 268-270) मे उक्त घटना की पुष्टि होती है। यहाँ कपिल सज्ञक विद्वान जैन धर्म के निवृत्ति मार्ग का उपदेश देते हुए दिखाई देते है। वही इन्द्र के हिंसामय यज्ञ की चर्चा हुई और वसु द्वारा उसके समर्थन का उल्लेख मिला। बाद मे अहिंसा धर्म का प्रचारक भी विष्णु माना गया। इसी सदर्भ म बृहस्पति अगिरस वसु का अहिंसामय यज्ञ (रामायण, 337 शान्तिपर्व) का उल्लेख मिलता है[1]।

इस तरह ऋषभदेव के विषय मे निष्कर्ष रूप म कह सकते है –

1 ऋषभ के पौत्र मरीचि (भरत क पुत्र) का पुराण म वैदिक धर्म का प्रवर्तक माना गया है।

2 प्रवृत्ति म निवृत्ति की ओर दृष्टि थी। निवृत्ति लक्ष्य रहता था। जैनो न निवृत्ति प्रधान बना लिया और वैदिको न प्रवृत्ति मे अधिक समरसता दिखाई।

3 निवृत्ति का चरम लक्ष्य वातरागत्व था जिस दिगम्बरो ने बनाये रखा। श्व प्रवृत्ति क प्रति उन्मुख रहे।

4 जीवन के ये दो मार्ग है जो वैदिक और श्रमण सस्कृति के प्रतीक है। ये दोनो एक दूसर के परिपूरक है।

5 दोनो परम्पराओ म आदान-प्रदान भी बना रहा। जैन पुराणो म वर्णित क्षत्रिय वसु (उपरिचर) क आख्यान मे स्पष्ट है कि उसन हिंसामय यज्ञ का समर्थन किया और उसी तरह वैदिक ब्राह्मण नारद ने हिंसा का विरोध किया तथा अन्य ब्राह्मण ऋषि पर्वत न हिंसा का समर्थन किया।

6 आर्य वस्तुत किसी जाति का नाम नही था। वह तो एक विशेषण था।

---

1 तीर्थंकरो का इतिहास – डॉ कुंवरलाल जैन, दिल्ली 1993।

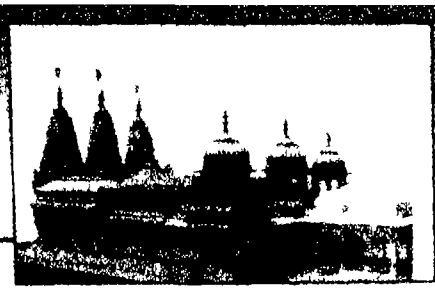

भारतीय संस्कृति में श्रमण संस्कृति की भूमिका

• कलानाथ शास्त्री

हमारी सस्कृति म जैन दर्शन और आचार का प्रमुख स्थान है। माटे रूप मे सास्कृतिक इतिहास का समग्र आकलन किया जाय तो दो धाराएँ हमारी सस्कृति म प्रमुख भूमिका निभाती रही है। एक तो आर्ष सस्कृति की, दूसरी श्रमण सस्कृति की। एक ऋषियो की सस्कृति थी एव मुनियो की। इनम परस्पर आदान प्रदान भी हुआ है विवाद भी, सवाद भी।

– लेखक

भारत की चिरतन सस्कृति सहस्राब्दियो स एक अजस्र और अविच्छिन्न किन्तु वैविध्यपूर्ण एव समिश्र महाधारा के रूप म इस देश मे प्रवाहित हो रही है। इसका धर्म, दर्शन साहित्य तथा अन्य ज्ञान शाखाओ का वाड्मय अनन्त है और इसका इतिहास भी विराट् एव अपरिमय है। इस विराट समुद्र की थाह पाने का पयत्न समय समय पर मनीषी करते रहते है। आज के जिज्ञासुओ को भारतीय सस्कृति का इतिहास बतलाने के लिए जितन प्रयत्न हुए है उन्हे प्रारभिक प्रयास कहना ही उचित होगा। उनके फलस्वरूप हमारी सास्कृतिक धारा का एक सामान्य आकलन पिछली सदी स अवश्य सामने आया है। पाश्चात्य विद्वानो न भी इस दिशा म बहुत श्रम किया है। उन्ही की सरणि पर चलते हुए आज हम छात्रो को पढाते है कि किस प्रकार इस भू भाग मे ईसा स कुछ हजार वर्ष पूर्व सिधु घाटी की सभ्यता पनपी, किस प्रकार उनकी नगर सस्कृति बहुत विकसित थी, किस प्रकार आय भारत आए और उन्होन कृषि प्रधान सस्कृति का प्रारम्भ किया। वैदिक कर्मकाड के साथ-साथ किस प्रकार उपनिषदो का दर्शन विकसित हुआ और किस प्रकार वैदिक कर्मकाड की रूढिवादिता क विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप जैन और बौद्ध दर्शनो का उदय हुआ। किस प्रकार शैव, वैष्णव, शाक्त आदि आचार पनपे और किस प्रकार वेदात की विभिन्न शाखाओ का चिन्तन प्रारम्भ हुआ, किस प्रकार शकर रामानुज वल्लभ आदि की दर्शन शाखाएँ और उनके साथ भक्ति मार्ग की धाराएँ फूट निकली। धार्मिक जडवाद के विरोध म किस प्रकार कबीर नानक आदि सतो ने आत्मा और परमात्मा का तात्विक चिन्तन फैलाया। किस प्रकार विवेकानन्द दयानन्द आदि न इसी सास्कृतिक परम्परा को नए स्वर दिए और किस प्रकार उसमे भारतीयता की भावना को जोडी। इस इतिहास के ताने बाने का गहन विश्लेषण पूरा नही हुआ है।

इस सास्कृतिक इतिहास की निरन्तर प्रवहमान धारा म जो विभिन्न अन्तर्धाराएँ है उन सबका अपना विशिष्ट महत्त्व है और उनका हमारी समूची सास्कृतिक निधि के निर्माण म जो योगदान रहा है वह अत्यन्त बहुमूल्य है। आज हम इन सस्कृतियो को वैदिक सस्कृति श्रमण सस्कृति सत सस्कृति भक्ति मार्ग, निर्गुण या सगुण सत परम्परा सनातन या वर्णाश्रम धर्म वैष्णव भावना आदि अभिधान देकर समझने के लिए उनकी पहचान अलग से बतलाते है किन्तु है ये एक ही धारा के अग। उन्हे चाहे हिन्दुत्व के विभिन्न आयाम कह दे या भारतीय सस्कृति के पडाव कह दे, उन्हे धर्म या दर्शन की दृष्टि स आस्तिक नास्तिक सगुण निर्गुण, जैन बौद्ध सनातनी आर्यसमाजी सूफी साधु-सन्यासी फकीर, सत या लोक देवताओ द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय कह दे, सभी इस धरती की देन है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी पूर्वापरता कुछ भी रही हो हमारे यहाँ के मनीषी, शास्त्रकारो और पुराणवक्ता इतिहासकारो का सदा यह प्रयत्न रहा कि इन सबको एक ही उपवन के विभिन्न वृक्षो के रूप मे महकते दिखाया जाए। इस प्रकार एक तो यह धारा चली कि इस धरती पर पैदा हुए विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायो को तथा विभिन्न महापुरुषो और युगप्रवर्तको को समान रूप से श्रद्धा भाजन मानते हुए उन्हे एक सूत्र मे पिरो कर

इतिहास की थाती बना दिया गया। इसी धारा के कुछ उदाहरण इस बात से समझे जा सकते हैं कि वैदिक कर्मकाड के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे अपना पृथक् धर्म-प्रवर्तन करने वाले बुद्ध को भी पुराणकारो ने विष्णु के दस अवतारो में स्थान देकर एक साम्कृतिक सूत्र मे पिरोया। जयदेव ने लिखा, 'निन्दसि यज्ञविधरहह श्रुतिजातम्' अर्थात् यज्ञ के निन्दक के रूप मे बुद्ध की पहचान की, किन्तु उन्हे विष्णु का अवतार बतलाकर पूज्य मान लिया। बुद्ध का दशावतारो मे एक मानन स ही पुराणकार सतुष्ट नही हुए, श्रीमद्भागवत मे जैनो के आदिनाथ प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को भी चौबीस अवतारो मे मानकर उन्हे वदनीय और युगप्रवर्तक बताया गया। जिन्हे घोर नास्तिक दर्शन कहा जाता है उनके चिन्तन को भी महत्त्वपूर्ण दर्शन शाखा माना गया। वाल्मीकि रामायण के अयाध्या काड म राम के पास जब भरत मिलन आत हैं और ऋषिया का विचार- विमर्श होता है तो जाबालि ऋषि का घिस-पीटे कर्मकाड के विरुद्ध कटु शब्दो मे रूढियो की आलोचना करते हुए बताया जाता है। उनका समस्त विवेचन पूर्णत चार्वाक दर्शन का प्रतीक है किन्तु उन्हे अन्य ऋषियो की तरह पूर्ण सम्मान का पात्र माना जाता है। दर्शना क इतिहास लिखन वाल प्राचीन दार्शनिक भी चार्वाक दर्शन का सम्मान से उल्लख करत है। यही स्थिति जैन और बौद्ध दर्शना की भी रही है। माधवाचार्य अपन सर्वदर्शन सग्रह म इन्ह सर्वप्रथम स्थान दते ह।

इस प्रकार पारस्परिक सम्मान और समन्वय की एक धारा चली तो दूसरी ओर विभेद और विघटन के भी प्रयत्न हुए। सप्रदायो म परस्पर निन्दा और विद्वेष की जो बाते सुनने को मिलती है या सनातन धारा के विरुद्ध बोलने वाले सम्प्रदाया को हेय मानन के पयासो के छुटपुट उदाहरण मिलते है वे इसी दूसरी धारा के प्रतीक हैं। व्रात्य या देवाना प्रिय शब्द को पतित या मूख का पर्यायवाची मानना, 'हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमदिरम्' आदि लिखना उसी धारा के कुछ उदाहरण है। यह स्पष्ट है कि हमारी चिरतन सास्कृतिक धारा यही समन्वय और पारस्परिक सम्मान वाली धारा रही है, विघटन के प्रयासो को तात्कालिक उग्रवादी प्रयास ही माना जाता रहा है। यही कारण है कि भारतीय इतिहास में सम्राट और राजा प्रत्येक धर्म और दर्शन शाखाओ के विद्वानो और चिन्तको को सम्मान देता रहा है। हर धर्म के ऋषि-मुनियो को, यतियो, साधुओ का दान दता रहा है और प्रत्यक दर्शन शाखा को पूर्ण विकास क अवसर देता रहा है। अधिकाशत इन सभी सास्कृतिक धाराओ के मनीषियो न अपने आपको एक ही विशाल सास्कृतिक सोध के विभिन्न स्तभो के रूप मे देखा है। पार्थक्य या विघटित होन म गारव नही माना एक महावश म जुड रहना स्वीकार किया।

ऐसे प्रयत्न ता स्वाभाविक ही है कि कोई शाखा या कोई भाषा अपने विशिष्ट महत्त्व का रखाकित करन के लिए कभी अपने आपको सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध करने का प्रयत्न कर और कभी अपने सिद्धान्ता को ही सर्वोत्कृष्ट बताने का। तमिल अथवा पजाबी भाषा यदि अपने व्याकरण या लिपि को वैदिक या सस्कृत से भी पुरानी सिद्ध करने का प्रयत्न करे या विभिन्न धर्मो अथवा दर्शनो के अनुयायी अपनी शाखा का प्राचीनतम सिद्ध करन का प्रयत्न कर तो इस ललक को स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति मानकर सम्मान ही देना चाहिए। हमार यहा तो इस प्रकार के शास्त्रार्थो खण्डन मडनो और पक्ष प्रतिपक्षो की अविच्छिन्न परम्परा रही है और सभी सिद्धान्ता का स्वच्छद प्रतिपादन का अवसर दने का हमारा यह आदर्श ही हमारी चिरतनता का रहस्य रहा है।

जसा ऊपर सकेतित है वैदिक और पौराणिक सस्कृति की भाँति जैन और बौद्ध सस्कृति भी हमारी सास्कृतिक निधि के अत्यन्त मूल्यवान आयाम है। न कवल पाश्चात्य विमर्शको ने बल्कि भारतीय इतिहासकारो न भी इन दोनो को अलग पहचान के लिए इन्हे श्रमण सस्कृति का नाम दिया था। सनातन सस्कृति (आर्य सस्कृति) और जैन बौद्ध सस्कृति मे विभेद स्पष्ट करने के लिए कहा जान लगा कि एक आर्ष सस्कृति थी, एक श्रमण सस्कृति। एक ऋषियो की थी, दूसरी मुनियो की। ये दोनो कब कब, कहाँ कहाँ पनपी इस पर भी बहुत लिखा गया है। वैस तो जैन धर्म को अनादि और अनन्त माना गया है और पारपरिक मान्यता के अनुसार समय-समय पर जो तीर्थकर होत रहे है उनका भी क्रम अनादि अनन्त है। अभी तो अवसर्पिणी काल के तीर्थकर हुए है फिर उत्सर्पिणी काल के होगे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म भी अनादि अनन्त परम्परा की मान्यता रखता है किन्तु इतिहास दृष्टि

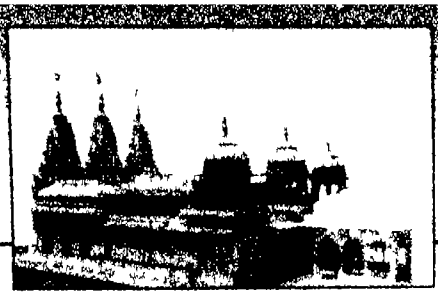

से भी इनके काल निर्धारण का प्रयत्न हुआ है। जिस काल में इनका वाङ्मय उपलब्ध हुआ है उस काल में इनके विकास का आकलन किया गया है। यह बात अलग है कि वेदों में वातरशना मुनियों के उल्लेख या श्रमण शब्द को लेकर कभी इस संस्कृति को प्राग्वैदिक बताने का प्रयास भी किया जाता है और कभी वैदिक और पौराणिक वाङ्मय में श्रमण संस्कृति के प्रभाव का आकलन किया जाता है। यह तो निर्विवाद है कि वैदिक और श्रमण दोनों सांस्कृतिक धाराओं का परस्पर समन्वय या आदान-प्रदान अवश्य रहा है। न केवल हमारे दर्शन में बल्कि आचार और परम्पराओं में भी इस प्रभाव को सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा खोजा जा सकता है। मैं तो अपने बाल्यकाल से ऐसा अनुभव करता रहा हूँ कि कुछ सनातन परम्पराओं में श्रमण परम्पराओं का परोक्ष प्रभाव अवश्य रहा होगा। जब जब पुराणों को पढ़ता था तो यह पाता था कि उन सबमें जिस प्रकार वीणा बजाते नारदजी को देवलोक में और भूलोक में हर जगह कहीं भी प्रकट होने वाला बतलाया जाता है उसी प्रकार चार मुनियों को (सनत, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार) श्वेत वस्त्र पहने सदा पाँच वर्ष के बालक जैसे तथा निर्द्वन्द्व बतलाया जाता था। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाता था कि किसी भी लोक में किसी भी देवता के यहाँ उन्हें कभी नहीं रोका जाता था। वे बेरोकटोक प्रवेश कर सकते थे और सर्वोच्च सम्मान पाते थे। तब यह लगता था कि ये चार मुनि अवश्य ही किसी अलौकिक और भिन्न परम्परा के प्रतीक हैं क्योंकि किसी ऋषिवंश में ये जुड़े नहीं पाये गये अतः इन्हें पुराणों ने ब्रह्मा के मानस पुत्र बताया। इनका उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। उपनिषद्काल में ही सनत्कुमार (छांदोग्य) की जानकारी शुरू होती है। आज श्रमण संस्कृति के मूर्धन्य विचारक यदि इन्हें श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि मानने लगे हैं तो बात समझ में आती-सी लगती है। इसी प्रकार जब भाद्रपद मास में अपने परिवार में अनन्त चतुर्दशी का व्रत विधि विधान से किये जाते देखता था और उसमें वर्णित विष्णु को अनन्त या निर्गुण निराकार वर्णित देखता था तो उसमें लगता था कि भाद्रपद मास में जो जैनाचार वैपुल्य के साथ प्रचलित है उन्हीं के अनुरूप वैष्णव आचार में भी एक अनन्त और अक्षय निराकार आराध्य की पूजा की परंपरा स्थापित की गई होगी। इस प्रकार के सांस्कृतिक प्रभावों का आकलन सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन को दिशा दे सकता है। क्या इस प्रकार के परस्पर प्रभावों का क्रम पुराणकाल में चला या वेदकाल में ही था?

श्रमण संस्कृति के अवदान के इसी प्रकार के आकलन के प्रयत्न होते रहें तो यह मूल्यवान् अध्ययन होगा। कुछ वर्ष पूर्व बापूनगर स्थित उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान, जयपुर की ओर से राजस्थान संस्कृत अकादमी के तत्त्वावधान में एक उपनिषद आयोजित की गई थी जिसमें विद्वानों ने श्रमण संस्कृति की प्राचीनता और भारत में उसके योगदान पर गंभीर विचार मंथन किया था तथा विद्वत्तापूर्ण आलेख पढ़े थे। इसमें श्रमण संस्कृति की प्राचीनता पर विचार विमर्श हुआ और विभिन्न पक्षों से सप्रमाण वैदुष्यपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया गया जो संस्कृत अकादमी द्वारा ग्रन्थाकार में भी प्रकाशित किया जा चुका है। आशा है इस प्रकार के अध्ययन निरन्तर किये जाते रहेंगे।

अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी
सी ८ पृथ्वीराज रोड, जयपुर

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाण॥

– धर्म वह है जो दयासहित है, सन्यास वह है जो समस्त आसक्ति से रहित है, देव वह है जिसने मूर्च्छा नष्ट की है और जो भव्य जीवों का उत्थान करनेवाला है।

जैनधर्म और अन्तिम तीर्थंकर महावीर

• डॉ. रमेशचन्द जैन

जैन शब्द 'जिन' से बना है। जो रागादि कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, वे जिन कहलाते हैं[1]। 'जिन' के द्वारा प्रणीत धर्म जैनधर्म[2] कहलाता है[3]। जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकर माने गए हैं[4]। इनमें से प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे। भागवत पुराण में ऋषभदेव को विष्णु का आठवाँ अवतार स्वीकार किया गया है[5]। भागवत के अनुसार उनका जीवन महान था तथा उन्होंने बड़ा तप किया। श्रमणों को उपदेश देने के लिए उन्होंने अवतार लिया था। अन्त में ऋषभदेव कर्मों से निवृत्त होकर महामुनियों को भक्ति, ज्ञान, वैराग्यमय परमहंस धर्म की शिक्षा देने के लिए सब त्याग कर नग्न तथा बाल खुले हुए ब्रह्मावर्त से चल दिए थे। राह में कोई टोकता था तो वे मौन रहते थे। लोग उन्हें सताते थे पर वे उससे विचलित नहीं होते थे। वे 'मैं और मेरे' के अभिमान से दूर रहते थे। परम रूपवान् होते हुए भी वे अवधूत की तरह एकाकी विचरण करते थे[6]।

अग्नि पुराण में कहा गया है कि उस हिमवत् प्रदेश (भारत वर्ष) में बुढ़ापा और मरण का कोई भय नहीं था, धर्म और अधर्म भी नहीं था। प्राणियों में मध्यमभाव (समभाव) था। ऋषभ ने राजश्री भरत को प्रदान कर सन्यास ले लिया। भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ। भरत के पुत्र का नाम सुमति था[7]।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रमाणों से ऋषभदेव की मान्यता का समर्थन होता है[8]। ऋषभदेव के पश्चात् अन्य तेईस तीर्थंकर और हुए, इनमें अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान या महावीर थे। यजुर्वेद में तीन तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख है – ऋषभदेव, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि[9]। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ऐतिहासिक व्यक्ति थे और उन्होंने महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले इस देश को अपने जन्म से अलङ्कृत किया था। इनके पिता काशी के राजा अश्वसेन तथा माता महारानी वामादेवी थी। काशी नगरी में 874 विक्रम पूर्व - 817 ई. पूर्व में इनका जन्म हुआ था[10]। तीस वर्ष के पश्चात् इन्होंने प्रव्रज्या अङ्गीकार की तथा कैवल्य को प्राप्त कर सारे भारतवर्ष में अपने उपदेशों द्वारा धर्म प्रचार कर अन्त में बिहार के सम्मेद शिखर नामक स्थान से मुक्ति प्राप्त की[11]।

वर्द्धमान महावीर का जन्म 599 ई. पू. में बिहार के कुण्डपुर नामक ग्राम में महाराजा सिद्धार्थ की पत्नी प्रियकारिणी त्रिशलादेवी की कुक्षि से हुआ था[12]। लगभग तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने गृहत्याग किया और 12 वर्ष 5 मास 15 दिन तक घोर तपस्या करने के पश्चात् उन्हें केवलज्ञान की उपलब्धि हुई[13]। इसके पश्चात् वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी और जिन हुए। प्रव्रज्या काल से ही उन्होंने नग्न रहना प्रारम्भ किया। इसी कारण उनका धर्म 'अचेलक धर्म' कहलाया[14]। उन्होंने अंग, बंग, मगध, काशी, कोशल आदि अनेक देशों में भ्रमण कर सम्पूर्ण भारत वर्ष में धर्म पताका फहराई। उनका निर्वाण 527 ई. पूर्व में पावानगरी[15] में हुआ।

जैनधर्म के सिद्धान्त — जैनधर्म में पाँच प्रकार के व्रतों को धारण करने का उपदेश दिया गया है - 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय (चोरी नहीं करना) 4. ब्रह्मचर्य और 5. अपरिग्रह (सांसारिक पदार्थों में आसक्ति न रखना)। जैन मुनि इन व्रतों का सम्पूर्ण रूप से पालन करते हैं, अतः वे महाव्रती कहलाते हैं और गृहस्थ इन व्रतों का आंशिक पालन करते हैं, अतः वे अणुव्रती कहलाते हैं[16]। जैन आचार का मूल अहिंसा है। संसार के समस्त प्राणी सुख चाहते हैं, दुःख से दूर भागते हैं, सभी को अपना वध अप्रिय है तथा सभी जीवन से प्यार करते हैं, अतः किसी भी प्राणी का न तो वध करना चाहिए और न किसी को कष्ट पहुँचाना चाहिए। प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण-धर्म हैं, अतः हम वस्तु का वर्णन भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से ही कर पाते हैं, अतः हमें दूसरे के अभिप्रायों को समझकर दूसरे के दृष्टिकोण को भी पर्याप्त महत्त्व देना चाहिए, यह अनेकान्त दृष्टि जैनधर्म की विशेषता है।

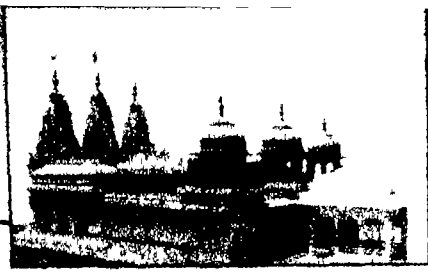

यद्यपि भगवान् महावीर ने मुनियो का पूर्णरूप से अपरिग्रही होने का उपदेश दिया था, किन्तु आचार्य भद्रबाहु के समय मगध मे जब द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे मुनिचर्या का ठीक तरह से निर्वाह न होते देखकर बारह हजार मुनियो का समुदाय भद्रबाहु के नेतृत्व मे दक्षिण भारत की ओर विहार कर गया। जो मुनि उत्तर भारत मे अवशिष्ट रहे उनमे से कुछ ने वस्त्र को परिग्रह न मानकर वस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिया। जो साधु अपरिग्रह के अन्तर्गत नग्नत्व का आदेश मानते रहे वे दिगम्बर और जो साधु शिथिल आचार को स्वीकार कर श्वेत वस्त्र धारण करने लगे वे श्वेताम्बर कहलाए। दिगम्बर मुनियो के अनुयायी गृहस्थ भी दिगम्बर और श्वेताम्बर साधुओ के अनुयायी गृहस्थ भी श्वेताम्बर कहे जाने लगे। इस प्रकार भद्रबाहु के समय तक अविभाजित जैनसंघ दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भागो मे विभाजित हो गया।

जैनधर्म मे ऊँच नीच राजा रंक सभी को स्थान था। आचार्य समन्तभद्र ने महावीर के तीर्थ को सर्वोदय तीर्थ कहा है। जिसमे सबका उदय हो उसे सर्वोदय कहते है। तीर्थंकरो की धर्मसभा समवसरण कही जाती थी, उसमे देव दानव मानव पशु सभी उपदेश सुनने के लिए उपस्थित होते थे। सभी अपनी अपनी भाषा मे उपदेश सुनते थे। जैनधर्म मे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो को त्रिरत्न की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इन तीनो की एकता ही मोक्ष का मार्ग है। प्रत्येक आत्मा अपने मे इन तीनो गुणो का विकास कर परमात्मा बन सकता है।

जैन गृहस्थो को असि कृषि सेवा वाणिज्य शिल्प आदि द्वारा जीविकोपार्जन करने का उपदेश दिया गया है क्योंकि गृहस्थ पूर्ण हिंसा का परित्यागी न होकर संकल्पपूर्वक की गई हिंसा का ही त्यागी होता है। अतः हिंसाकार्य से बचते हुए गृहस्थ सब प्रकार के कार्यो से आजीविकोपार्जन करते हुए देखे जाते है।

जैनधर्म का प्रसार हरिवंश पुराण के अनुसार भगवान महावीर ने काशी कोशल कौशल्य कुसन्ध्य अश्वष्ट साल्व त्रिगर्त पंचाल, भद्रकार पटच्चर, मोक मत्स्य, कनीय, सूरसेन वृकार्थ कलिंग, कुरुजांगल, कैकय, आत्रेय, काम्बोज, बाल्हीक, यवन, सिन्धु गान्धार, सौवीर सूर भीरू, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज क्वाथतोय और समुद्रवर्ती देश उत्तर के तार्ण, कार्ण और पृच्छाल नामक देशो मे विहार किया था, जैसा कि तीर्थंकर आदिनाथ धर्मवत्सल ने किया था[25]। उनकी धर्मदेशना को तत्कालीन प्रमुख राजाओ और जनसाधारण ने सुना। इस प्रकार जैनधर्म का सारे भारत मे व्यापक प्रसार हुआ। अनेक राजाओ राजवंशो, सेनापतियो मंत्रियो श्रेष्ठियो एवं व्यापारियो ने इसे प्रश्रय दिया। महावीर के समय से पश्चात्काल तक श्रेणिक चेटक, प्रसेनजित, उदयन नन्दवंशीय राजा चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्प्रति, कलिंग चक्रवर्ती खारवेल कलचुरि नरेश गुजरात के चालुक्य नरेश, राष्ट्रकूट नरेश, दक्षिण के चालुक्य और होयसल राजवंश, गंगवंश, आन्ध्रवंशी राजा नहपान, गुर्जर प्रतिहार कदम्ब वंश विजयनगर के राजा, सेनापति चामुण्ड राय, गंगराज हुल्ल वस्तुपाल और तेजपाल भामाशाह तथा राजस्थान के जैन दीवानो के संरक्षण मे जैनधर्म खूब फला फूला। किसी समय दक्षिण मे तो जैनधर्म की राजधर्म की स्थिति रही।

साहित्य के क्षेत्र पर हम ध्यान देते तो ज्ञात होता है कि महावीर निर्वाण के 980 वर्ष बाद वल्लभीनगर मे क्षमाश्रमण देवर्द्धिगणि के सान्निध्य मे श्वेताम्बर परम्परा के प्रमाणभूत आगम ग्रन्थो का संकलन किया गया। दिगम्बर परम्परा के सिद्धान्त ग्रन्थो मे 'षट्खण्डागम' के लेखक पुष्पदन्त तथा भूतबलि एवं 'कषाय प्राभृत' के रचयिता आचार्य गुणधर बहुत प्राचीन हुए। इस परम्परा मे आचार्य सिद्धसेन, आचार्य कुन्दकुन्द समन्तभद्र, पात्रकेशरी, विद्यानन्द, जिनसेन गुणभद्र वादीभसिंह, सोमदेवसूरि, प्रभाचन्द्र वादिराज अमृतचन्द्र जैसे समर्थ आचार्य हुए। श्वेताम्बर परम्परा मे आचार्य हरिभद्र, मल्लिषेण सूरि, हेमचन्द्र, यशोविजय आदि अनेक आचार्य हुए, जिन्होने प्रभूत मात्रा मे साहित्य सृजन किया। जैनाचार्यो ने संस्कृत के साथ तत्कालीन समय मे प्रचलित प्राकृत, अपभ्रंश तमिल कन्नड, गुजराती, मराठी, राजस्थानी आदि अनेक लोकभाषाओ को अपनाया[26]। कला[27] के क्षेत्र मे भी मन्दिरो, मूर्तियो स्तूपो, चैत्यगृहो और गुहाचित्रो के रूप मे जैन कलाकारो ने प्रचुर योग दिया। बक्सर, सिंहभूमि, राजगृह, उड़ीसा, बुन्देलखण्ड और मथुरा मे प्राप्त मूर्तियो के अतिरिक्त दक्षिण के श्रमणबेलगोला, वेणूर, कारकल, धर्मस्थल आदि स्थानो पर विराजमान भगवान बाहुबली की प्रतिमाये अपने ढंग की अनूठी

हैं। उडीसा की हाथी गुफा के भित्तिचित्र जहाँ ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी के माने जाते है, वहाँ ग्वालियर के पास चट्टानो पर जैनमूर्तियो के नमूने 15वी सदी तक के उपलब्ध हैं। भारतीय चित्रकला का मध्य एव उत्तरमध्यकालीन इतिहास जैन चित्रकला का इतिहास है। दमवीं-ग्यारहवीं शती से पन्द्रहवी शती तक जैन हस्तलिखित ग्रन्थो मे स्थान पानेवाले चित्र व पटलियाँ भी चित्रसामग्री के रूप मे चित्र-इतिहास के कोष को भरते है। मोहनजोदडो और हडप्पा के बाद भारत की प्राचीन मूर्तियाँ जैन मूर्तियाँ ही हैं। शिलालेखो मे भी कलिगजिनकी मूर्ति का उल्लेख सबसे प्राचीन है। मोहनजोदडो ओर हडप्पा की योगी की मूर्तियो म भी विद्वानो न कायोत्सर्ग मुद्रा को ढूँढ निकाला है, जो कि जैन मूर्तियो की विशेष मुद्रा है। इस प्रकार कला और स्थापत्य क क्षत्र म भी जैनो का अमूल्य योगदान है।

सन्दर्भ तालिका

1 जिदकोहमाणमाया जिदलोहा तेण त जिणा हाति॥

मूलाचार - 561।

अनक जन्माटवी प्रापणहतून समस्त माहरागद्वेषादान् जयतीति जिन । नियमसार - तात्पयवृत्ति।1

2 जिनस्य सम्बन्धीद जिनेन प्रोक्त वा जैनम्॥ प्रवचनसार-तात्पर्यवृत्ति - 206।

3 'जैन' शब्द 'जिन' से निकला है और 'जिन' शब्द (✔ जि) का अथ है जता, यानी जिसन अपन मनोवेगा का सफलता क साथ दमन करके अपने को वश मे कर लिया हा।

एम हिरियन्ना भारतीय दर्शन, पृ 156

4 वर्द्धमान, जिन्हे महावीर भी कहा जाता है, इस (जैनधम) की आचार्य परम्परा मे सबसे अन्तिम थे। उनसे पहल तेईस आचार्यों के हो चुकने की बात कही जाती है, जा जैनधर्म क प्रारम्भ का बहुत पीछे काल्पनिक अतीत म पहुँचा देती है।

एम हिरियन्ना भारतीय दर्शन,पृ 156

वर्द्धमान से पूर्व (अर्थात् 23वें तीर्थंकर) पार्श्वनाथ थे। इनका समय ईसा से लगभग 9 सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। अन्य 22 तीर्थंकर प्रागैतिहासिक युग के हैं।

श्री सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एव धीरेन्द्रमोहन दत्त, भारतीय दर्शन, पृष्ठ 46

5 जैन लोग अपने धर्म के प्रचारक सिद्धो को 'तीर्थंकर' कहते हैं, जिनमे आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव थ। इनकी ऐतिहासिकता के विषय मे पुराणो के आधार पर सशय नही किया जा सकता। श्रीमद्‌भागवत क कई अध्याय (स्कन्ध 5, अध्याय 4-6) ऋषभनाथ क वर्णन म लगाए गए है। ये मनुवशी महीपति नाभि तथा मरुदेवी के पुत्र थ। इनकी विजय-वैजयन्ती अखिल महीमण्डल क ऊपर फहराती थी। इनके सौ पुत्रो मे सबसे ज्येष्ठ थे महाराज भरत जो जडभरत के नाम से अपनी अलौकिक आध्यात्मिकता के कारण प्रसिद्ध थ और जिनके नाम से प्रथम अधीश्वर होने के हेतु हमारा देश भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। ऋषभनाथ को जैन लोग ही आद्य तीर्थंकर होने से आदर नही करते प्रत्युत ब्राह्मण धर्म मे भी विष्णु के 24 अवतारो म इनकी गणना की गई है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ 90

भागवत के पचम स्कन्ध म ऋषभ नामक राजा का उपाख्यान है। वे राज्य त्यागकर सर्वत्यागी महायोगी बन गए थे। वे सर्वभूतो पर आत्मवत दृष्टि रखते थ और कैवल्य प्राप्त किए हुए थे तथा गगन परिधान (अर्थात् नग्न) थे। सभव है कि ये ही आदि तीर्थकर ऋषभदेव हो।

श्री सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा धीरेन्द्र मोहन दत्त भारतीय दर्शन पृष्ठ 46

6 बैरिस्टर चम्पतराय आदि ब्रह्म ऋषभदेव (अनुवादक की ओर स)

7 जरामृत्यु भय नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम्।
नाधर्म मध्यम तुल्या हिमदेशात्तु नाभित ॥
ऋषभो मरुदेव्या च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
ऋषभोऽदात् श्रीपुत्रे शाल्यग्रामे हरिर्गत ।
भरताद् भारत वर्ष भरतात् सुमतिस्त्वभूत्॥

अग्निपुराण 10-10-11

8 खण्डगिरि उदयगिरि शिलालेख म कलिङ्गराज खारवेल द्वारा अग्रजिन की मूर्ति को वापस लाने का उल्लेख है। यहाँ पर अग्रजिन शब्द का प्रयोग भगवान ऋषभदेव के लिए ही हुआ है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि भगवान महावीर के निर्वाण के बाद ऋषभदेव की पूजा भगवान महावीर की तरह ही की जाती थी। मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाई मे खडी अवस्था मे अंकित मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो कायोत्सर्ग मुद्रा को प्रकट करती है। मथुरा सग्रहालय मे दूसरी शती की कायोत्सर्ग म स्थित ऋषभदेव जिन की एक मूर्ति है। इस मूर्ति की शैली सिन्धु से

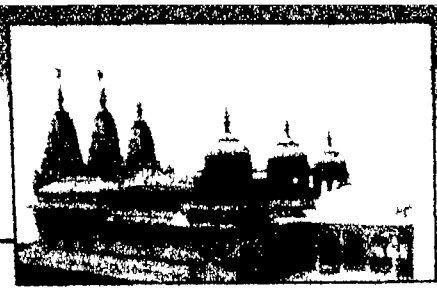

प्राप्त मोहरों पर अङ्कित खडी देवमूर्तियों की शैली में बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। इन मूर्तियों के नीचे बैल भी अङ्कित है जिसे भगवान ऋषभदेव के चिन्ह के रूप में माना जा सकता है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक नग्न योगी की मूर्ति को श्री रामप्रसाद चन्दा ने ऋषभदेव की मूर्ति बतलाया है। कुछ विद्वान् इस शिव की मूर्ति भी मानते हैं। हड़प्पा से प्राप्त नग्न कबन्ध को श्री रामचन्द्रन ने ऋषभदेव की मूर्ति बतलाया है। इस पर राधाकुमुद मुकर्जी जैसे विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि ये मूर्तियाँ ऋषभ का ही पूर्व रूप है तो शैवधर्म की तरह जैनधर्म का मूल भी ताम्रयुगीन शैव सभ्यता तक चला जाता है। इससे सिन्धु सभ्यता एवं ऐतिहासिक भारतीय सभ्यता के बीच खोई हुई कड़ी का उभयसाधारण सांस्कृतिक परम्परा के रूप में उद्धार हो जाता है।

आदि ब्रह्मा ऋषभदेव (अनुवादक की ओर से)

9 डॉ. राधाकृष्णन भारतीय दर्शन (भाग-1) पृ. 233

10 आचार्य बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृष्ठ 91

11 वही पृ. 91

12 एक वैशाली मुद्रा जो कि गुप्तकालीन है उसमें एक गाथा है वैशाली नाम कुण्डे कुमारामात्याधिकरण (स्य)। जिसका तात्पर्य है कि कुण्ड ग्राम वैशाली के क्षत्रिय कुण्ड से सम्बन्धित था।

चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जन्म वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ था। मुजफ्फर जिले के हाजीपुर सब डिवीजन में स्थित बसाढ़ ही प्राचीन वैशाली है। कुण्ड ग्राम को आजकल वासुकुण्ड कहते हैं। लिच्छुआड क्षत्रिय कुण्ड या कुण्डपुर ही महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है। प्राचीन लिच्छवियों की राजधानी वैशाली को ही आजकल बसाढ़ कहते हैं और महावीर को विदेह विदेहदत्त विदेह सुकुमार और वैशालिक भी कहा गया है। विद्यानन्द मुनि तीर्थंकर वर्द्धमान पृष्ठ 33

अथ देशोऽस्ति विस्तारी जम्बूद्वीपस्य भारते
विदेह इति विख्यात स्वर्गखण्डसम श्रिय ।
तत्राखण्डलनेत्राली पद्मिनी खण्डमण्डनम्
सुखाभ कुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुर पुरम्॥

आचार्य जिनसेन हरिवंश पुराण 1-211 5

सिद्धार्थ नृपति तनयो भारतवास्ये विदेह कुण्डपुरे
देव्या प्रियकारिण्या सुस्वप्नान्संप्रदर्श्य विभु ॥

निर्वाण भक्ति - 4

13 **गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाणि पंच मासे य।**
पण्णरसाणि दिणाणि य तिरयण सुद्धो महावीरो॥

जयधवला, भाग 1, पृष्ठ 81

वैशाखसितदशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे।
क्षपक श्रेण्यारूढस्योत्पन्न केवलज्ञान॥

निर्वाण भक्ति 12

14 'आचलक्को धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स' अर्थात् पूर्व के ऋषभदेव और बाद के महावीर का धर्म अचेलक (निर्ग्रन्थ) था।

(श्वेताम्बर) पंचाशक मूल - 17 प्रकाशक - ऋषभदेव केसरीमल श्वेताम्बर संस्था रतलाम 1928।

प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् डॉ. मोहनलाल मेहता ने लिखा है - चाहे कुछ भी हुआ हो इतना निश्चित है कि महावीर प्रव्रज्या लेने के साथ ही अचेल अर्थात् नग्न हो गए और अन्त समय तक नग्न ही रहे एवं किसी भी रूप में अपने शरीर के लिए वस्त्र का उपयोग नहीं किया। जैन आचार पृष्ठ 153

15 **पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।**
श्री वर्द्धमान जिनदेव इति प्रतीतो निर्वाणमाप भगवान् प्रविधूतपाप्मा॥ निर्वाण भक्ति 25

16 **हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥ देशसर्वतोऽणुमहती॥** तत्त्वार्थसूत्र 7.1.2

17 The Jains are divided into two great parties Digambaras & Swetambaras. The latter have only as yet been traced & that doubtfully as far back as 5th century A.D. after Christ the former are almost certainly the same as Nirgranthas who are referred in numerous passages of Buddhist pali pitakas & must therefore be as old as 6th century B.C. The Nirganthas are also referred to in one of the Ashoka's edicts (corpus inscription plate xx)

The most distinguishing outward peculiarity of Mahavira & his earliest followers was their practice of going naked hence the term Digambara

Against this custom Gautama Buddha especially warned his followers and it is referred in the well-known Greek phrase Gymnosophist used already by Megasthenes which applies aptly to Nirganthas.'

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खण्ड 25
ग्यारहवाँ संस्करण, सन् 1911

The Jains are divided in to two principal divisions Digambaras and Swetambars The former of which appears to have the best pretensions to antiquity and to have been most widely diffused All the Deccan Jains appear to belong to the Digambara division So it is said to be the Majority of Jains in western India In early Philosophical writings of the Hindus the Jains are usually termed Digambaras or Naganas (Naked)

H H Wilson — Essays and lectures on the religion of Jains

18 **सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्य कल्प,**
सर्वान्त शून्यं च मिथोऽनपेक्ष।
सर्वापदामन्तकर निरन्तम्,
सर्वोदय तीर्थमिद तवैव॥

– आचार्य समन्तभद्र युक्त्यनुशासन – 61

19 **ऋषिकल्पजयनितार्या ज्योतिर्वनभवन्युवतिभावनजा।**
ज्योतिष्ककल्पदेवा नरतिर्यंचो वसन्ति तेष्वनुपूर्वम॥

समवशरण एक विशिष्ट धर्मसभा है। इसका अर्थ है समताभावी तीर्थंकर भगवान के चरण की शरण मे जाना। तीर्थंकरो के समवशरण में क्रम से श्रमण-ऋषिगण स्वर्गवासी देवी श्रमणा, ज्योतिषियो की देवी, व्यतर देवियाँ स्वर्गवासी देव, मनुष्य और तिर्यञ्च बैठते हैं।

विद्यानन्द मुनि तीर्थंकर वर्द्धमान पृष्ठ 60

20 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ॥तत्त्वार्थ सूत्र 1 1

21 **प्रजापतिर्य प्रथम जिजीविषु शशास कृष्यादिषु कर्मस प्रजा**
प्रबुद्धतत्त्व पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदावर॥

स्वयम्भूस्तोत्र

22 **इम सत्व हिनस्मीति हिन्धि हिन्स्येष साध्विमम्।**
हिनस्तीति वधं नाभिसन्दध्यान्मनसागिरा॥
वर्तेत न जीववधे करादिना दृष्टिमुष्टिसन्धाने।
न च वर्तयेत्पर तत्पर नखच्छोटिकादि न च रचयेत्॥

सागार धर्मामृत 4/8 9

गृहवासे विनाऽऽरम्भान्न चारम्भो विनावधात्।
त्याज्य स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषंगिक॥

सागारधर्मामृत 4/12

दु खमुत्पद्यते जन्तोर्मन संक्लिश्यतेऽस्यते।
तत्पर्यायश्च यस्यां सा हिंसा हेया प्रयत्नत॥

सागारधर्मामृत 4/13

23 काशिकौशलकौशल्यकुसन्ध्याम्बष्टनामकान्।
साल्वत्रिगर्तपञ्चालभद्रकारपटच्चरान्॥
मौकमत्स्यकनीयाश्च सूरसेनवृकार्थपान्।
मध्यदेशानिमान् मान्यान् कलिङ्ग, कुरुजाङ्गलान्॥
कैकेयाऽऽत्रेयकाम्बोजबाह्लीकयवनश्रुतीन्।
सिन्धुगान्धारसौवीरसूरभीरुदशेरुकान्॥
वाडवानभरद्वाजक्वाथतोयान् समुद्रजान्।
उत्तरांस्तार्णकार्णांश्च देशान् प्रच्छालनामकान्॥
धर्मेणायोजद् वीरो विहरन् विभवान्वित।
यथैव भगवान पूर्व वृषभो भव्यवत्सल॥

जिनसेन हरिवंशपुराण 3/3-7

24 'वर्द्धमान' पत्रिका मे लिखित डा रमेशचन्द जैन का लेख – जैनधर्म के प्रमुख प्रश्रयदाता पृ 65 71

25 प्रो रामस्वामी आयगर अपनी 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म' पुस्तक मे लिखते है – 'सुशिक्षित जैन साधु छोटे-छोटे समूह बनाकर समस्त दक्षिण भारत मे फैल गए और दक्षिण की भाषाओ मे अपने धार्मिक साहित्य का निर्माण करके उसके द्वारा अपने धार्मिक विचारो को धीरे धीरे किन्तु स्थायी रूप मे जनता मे फैलाने लगे। किन्तु यह कल्पना करना कि ये साधु साधारणतया लौकिक कार्यो मे उदास रहते थे, गलत है। एक सीमा तक यह सत्य है कि ये ससार मे सम्बद्ध नही होते थे, किन्तु मेगस्थनीज के विवरण से हम जानते है कि ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी तक राजा लोग अपने दूतो द्वारा बनवासी जैन श्रमणो से राजकीय मामलो मे स्वतत्रतापूर्वक सलाह-मशविरा करते थे। जैन गुरुओ ने राज्यो की स्थापना की थी और वे राज्य शताब्दियो तक जैनधर्म के प्रति सहिष्णु बने रहे। किन्तु जैन धर्मग्रन्थो मे रक्षणात के विरोध पर जो अत्यधिक जोर दिया गया, उसके कारण समस्त जैन जाति राजनैतिक अधोगति को प्राप्त हुई।' (प कैलाशचन्द्र शास्त्री जैनधर्म, पृ 47)

26 जैनो का साहित्य के क्षेत्र मे योगदान हेतु देखिए डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री कृत 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' एव पार्श्वनाथ शोध सस्थान वाराणसी से कई भागो में प्रकाशित जैन साहित्य का वृहद् इतिहास।

27 कला के क्षेत्र मे जैनो के योगदान हेतु भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित ग्रन्थ – 'जैन कला और स्थापत्य' भाग 1-3।

जैन मंदिर के पास बिजनौर (उ प्र)

राष्ट्र की 50वीं स्वतन्त्रता वर्ष के सन्दर्भ में

जब तिलक ने अपने गले का दुपट्टा उनके गले में डाल दिया

° डॉ. कपूरचन्द जैन
खतौली

क्रान्तिकारी देशभक्त सुधारवादी, समाजसेवी, स्वतंत्रचेता अध्यापक लेखक कवि पत्रकार वक्ता बहुभाषाविद् दारिद्र्यव्रती, जैनधर्म गीता और इस्लाम के उद्भट विद्वान स्व. पण्डित अर्जुनलाल सेठी का जन्म 9 सितम्बर 1880 ई. को जयपुर (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जवाहरलाल सेठी और पितामह का नाम श्री भवानीदास सेठी था। भवानीदास सेठी दिल्ली (वैद्यवाडा) में रहते थे। अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के शहजादों के साथ उनके मैत्री सम्बन्ध थे। सेठीजी का कारोबार गुमाश्ते देखते थे फिर भी उनका कारोबार उनके प्रभाव और परिचय के बल पर अच्छा चलता था। पत्नी और बच्चे के निधन के बाद 1845 ई. में आपको एकायक स्वप्न दिखाई देने लगे। स्वप्न में कोई बार बार दिल्ली छोड़ने का आग्रह करने लगा। पहले तो कोई ध्यान नहीं दिया गया किन्तु बार बार जब यही वाक्य दुहराया जाने लगा तो इसे आने वाली आपत्ति का संकेत समझ सेठीजी दिल्ली छोड़कर जयपुर चले गये।

जयपुर में भवानीदासजी ने अपना दूसरा विवाह किया और उससे श्री जवाहरलाल सेठी का जन्म हुआ। जवाहरलालजी ने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की और जयपुर राज्य के चौमूँ ठिकाने के कामदार (दीवान) और कौन्सिल के सेक्रेटरी पद पर नियुक्त हुए। उनका विवाह जयपुर राज्य के प्रतिष्ठित और सम्मानित श्री मोहनलाल नाजिम की पुत्री पाँचो देवी से हुआ। इनकी कोख से श्री अर्जुनलाल सेठी का जन्म हुआ।

छह फीट लम्बा कद चौड़ा वक्ष गेहुआँ रंग, चिपके हुए गाल, सतुवाँ नाक, चमकीली आँखें ऊँचा माथा, सुन्दर चश्मा, खद्दर का ढीला-ढाला कुर्ता, सिर पर टोपी यही पहचान थी उन दिनों श्री अर्जुनलाल सेठी की।

सेठीजी में बाल्यावस्था से ही लोकसेवा के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। घर आया भिक्षु कभी खाली हाथ नहीं जाता था। सभाओं में व्याख्यान, नाटकों में भाग, जैनप्रदीप का प्रकाशन, विद्याप्रचारिणी सभा की स्थापना साथी बालकों पर अनुशासन हिन्दी जैन गजट में लेखों का प्रकाशन आदि कार्य आपने लगभग 13-14 वर्ष की उम्र में ही प्रारम्भ कर डाले थे।

संस्कृत की शिक्षा आपको घर पर ही प्राप्त हुई थी। जैनधर्म की शिक्षा के सन्दर्भ में पं. चिमनलालजी वक्ता को वे अपना गुरु मानते थे। संस्कृत, प्राकृत अंग्रेजी, फारसी, हिन्दी अरबी, पाली, उर्दू आदि भाषाओं पर आपका समान अधिकार था।

सेठीजी ने 1898 ई. में मैट्रिक और 1902 में बी.ए. पास किया। उन दिनों बी.ए. पास बड़ी मुश्किल से मिलते थे। आपकी जयपुर राज्य में निजामत (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट) पद पर नियुक्ति होने वाली थी कि 1902 में ही पिताजी की मृत्यु हो जाने से चौमूँ ठिकाने की कामदारी का पद सम्भालना पड़ा। अभी आप पूरी तरह से काम संभाल भी नहीं पाये थे कि चौमूँ ठिकाने में ए.जी.जी. का पदार्पण हुआ। स्टेट ने औकात से भी ज्यादा इसका स्वागत किया फिर भी उसने कह दिया These are Rustics (ये गंवार है)। सेठीजी के हृदय पर अंग्रेजी राज्य का यह पहला आघात था।

सेठीजी का विवाह 1903 के आसपास श्री हमनाम की पुत्री गुलाबदेवी से हुआ। 1904 में उनका पहला पुत्र 'प्रकाश' हुआ जो 1924 में अचानक स्वर्ग सिधार गया। उनकी 6 संतानें और हुईं जिनमें 4 पुत्रियाँ और 2 पुत्र हैं।

सेठीजी के सहपाठियों में सुप्रसिद्ध लेखक श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी भी थे। 1904 में सेठीजी दिगम्बर जैन महासभा द्वारा सञ्चालित मथुरा (उ.प्र.) के विद्यालय में शिक्षक हो गये। 1905 में उन्होंने बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया। वे सूरत की तूफानी कांग्रेस में भी शामिल हुए।

1907 में सेठीजी ने जयपुर में जैन विद्यालय की स्थापना की। कहने को तो यह विद्यालय था पर वास्तव में यह क्रान्तिकारियों

की टकसाल थी। स्वतत्र राष्ट्र के उपासक जैन-अजैन इसमे अध्ययन करते थे। अमर शहीद मोतीचन्द, माणिकचन्द, जयचन्द्र, देवचद (आचार्य समन्तभद्र) जोरावरसिह आदि इसी विद्यालय मे थे। इस विद्यालय का महत्त्व इसलिए और बढ जाता है कि उस समय काशी विद्यापीठ या काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न विद्यालयो की स्थापना नही हुई थी।

1905 से 1912 तक के सभी क्रान्तिकारी आन्दोलनो मे सेठीजी ने भाग लिया। आरा मन्दिर के महन्त की हत्या मे आप प्रमुख अभियुक्त थे। उत्तर भारत का सबसे बडा काण्ड, जो दिल्ली षडयन्त्र के नाम से जाना जाता है और जिसमे भारत के वाइसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेका गया था, उसके मुख्य सूत्रधारो मे आपका नाम था।

1914 मे सेठीजी को जयपुर मे नजरबन्द कर दिया गया। जब उनकी नजरबदी से सारे भारत मे तहलका मचा तो उन्हे मद्रास प्रेसीडेन्सी के वेलूर जेल मे भेज दिया गया जहाँ जिनदर्शन न होने पर वे 70 दिन निराहार रहे। 1920 मे आप जेल से छूटे और अजमेर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। वही से काग्रेस तथा क्रान्तिकारी गतिविधियो का सचालन किया। 1921 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे अजमेर मे हिन्दू-मुस्लिम एकता का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर को अजमेर मे सेठीजी ने ही छिपाया था। (घटना का विशेष विवरण आगे है।)

5 जुलाई 1934 को स्वय महात्मा गाँधी अजमेर मे सेठीजी के घर गये। सितम्बर 1934 मे आप राजपूताना व मध्यभारत प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के प्रान्तपति चुने गये।

1935 मे प्रान्तीय झगडो से बचने की दृष्टि से आपने अफ्रीका जाने का विचार किया किन्तु पासपोर्ट बनने के बाद भी नही जा सके। 1937 मे ब्यावर मे मिल मजदूरो की हडताल के अवसर पर आप पुन: अति सक्रिय राजनीति मे आये पर अपनी असन्तुष्ट वृत्ति मे मानसिक असन्तुलन के कारण मजदूरो का अधिक हित न कर सके।

1937 मे खण्डवा (म प्र) मे हुई 'जैन परिषद्' के सम्मेलन मे आप सम्मिलित हुए थे। 1939 मे नैरीमन के साथ काग्रेस कमान्ड के विरुद्ध मोर्चा लेने का साहस सेठीजी ने ही किया था। सेठीजी जितने क्रान्तिकारी थे उससे कही अधिक धार्मिक और दार्शनिक भी थे। उनका अन्तिम भाषण 13 अगस्त, 1939 का 'जैनिज्म तथा सोशलिज्म' पर ब्यावर मे हुआ था। उन्होने जैनधर्म पर अनेक लेख एव पुस्तके लिखी जिनमे 'महेन्द्र कुमार नाटक', 'मदन पराजय नाटक', 'पारस यज्ञ पूजा' आदि अति प्रसिद्ध रही है। अनेक स्तोत्रो आदि की भी रचनाएँ उन्होने की थी। वे अपने अन्तिम समय तक धर्म और राष्ट्र हित की साधना करते रहे। सेठीजी का निधन 22 दिसम्बर, 1941 को अजमेर मे हुआ।

सेठीजी स्वय लेखक थे। राजनीति एव धर्म पर अनेक लेख उन्होने लिखे पर अपने बारे मे कही कुछ नही लिखा। सेठीजी के जीवन के सन्दर्भ मे श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय द्वारा लिखित 'जैन जागरण के अग्रदूत' प्रमुख है। गोयलीयजी सेठीजी के साथ काफी समय रहे थे। उन्होने सेठीजी का जीवन-चरित उनसे पूछकर लिखना भी चाहा पर सफल नही हुए। गोयलीयजी ने सस्मरणात्मक शैली मे जो लिखा वह सेठीजी के पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करने मे सक्षम नही है। फिर भी वह सामग्री प्रामाणिक है और आगे सेठीजी के जीवन के सन्दर्भ मे हम जो घटनाएँ दे रहे हैं उनका प्रमुख आधार गोयलीयजी की उक्त पुस्तक ही है। यद्यपि अन्य जगहो से जितना सम्भव हुआ घटनाओ की प्रामाणिकता जाँच ली गई है। यहाँ केवल राजनैतिक घटनाओ का ही उल्लेख है।

1912 मे चाँदनी चौक मे जब लार्ड हार्डिंग पर बम फेका गया तो दिल्ली के मास्टर अमीरचन्द को उनके घर मे ही नजरबन्द कर लिया गया। उनके मकान के आसपास छद्मवेष मे पुलिस लगा दी गई ताकि अन्य क्रान्तिकारियो को भी पकडा जा सके। सेठीजी अमीरचन्दजी से मिलने दिल्ली आये। स्टेशन पर ही अमीरचन्दजी की नजरबन्दी की सूचना गुप्तचरो से उन्हे मिल गई। पर मिलना आवश्यक था। सेठीजी साहूकार के वेष मे अमीरचदजी के दरवाजे पर पहुँचे और वैसी ही आवाज लगाने लगे जैसी साहूकार कर्जदार को लगाता है। पुलिस ने पूछा तो सेठीजी ने कहा – "हजरत पर एक डेढ वर्ष से रुपया पावना है लेकिन देने का नाम नही लेते, रोजाना कोई न कोई घिस्सा देते रहते हैं। मै आज नावा वसूल करके ही जाऊँगा।" पुलिस ने और भी शह दे दी – "बडा बदमाश है, जो लिया जा सके वसूल कर लो। इसे तो फासी लगने वाली है।" मास्टरजी ने सेठीजी की आवाज पहचान ली, वे ऊपर से ही बोले – "तुम नीचे से ही शोर क्यो मचा रहे हो, भले आदमियो की तरह चाहो तो ऊपर आकर बात कर सकते हो।" दोनो भले आदमियो ने जो विचार-विमर्श करना था कर लिया।

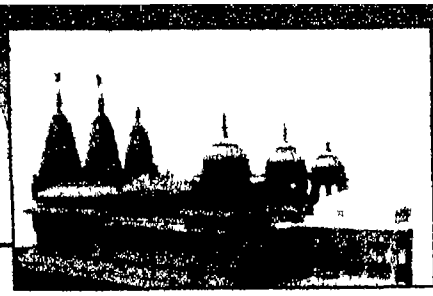

1916-17 मे अम्बाला मे जैन वेदी प्रतिष्ठा थी। बाबू अजित प्रसाद लखनऊ वाले वहाँ पधारे थ। वे सेठीजी के छुटकारे के लिए प्रयत्न कर रहे थे, पाण्डाल मे उनका प्रभावशाली भाषण हुआ। आर्थिक सहायतार्थ उन्होने सेठीजी के छपे चित्र बेचे, जनता ने अपनी शक्ति के अनुसार मूल्य देकर उन्हे खरीदा था। जब 'सेठीजी को मुक्त करो' आन्दोलन प्रबल हुआ तो कुछ शर्तो के साथ भारत सरकार उन्हे छोडने को तैयार हो गई, किन्तु सेठीजी ने सशर्त रिहा होना ठुकरा दिया। सेठीजी राजनैतिक चिन्तन मे इतने तल्लीन रहते थे कि उन्हे मुश्किल से 2-1 घन्टे ही नीद आती थी। उन्हे तपोमूर्ति कहा जाय तो कोई आश्चर्य की बात नही।

सेठीजी जिनदर्शन किये बगैर भोजन नहीं करते थे। वैलूर जेल मे जिनदर्शन की सुविधा न होने के कारण उन्होंने भोजन का त्याग कर दिया और इतने दृढ रहे कि 70 दिन तक निराहार रहे। अन्त मे सरकार को झुकना पडा और प्रसिद्ध शिक्षाविद् स्वतन्त्रता सेनानी महात्मा भगवानदीन ने जेल मे जिन प्रतिबिम्ब विराजमान कराया तब उनका उपवास समाप्त हुआ। इस सन्दर्भ मे 'वीर निकलक' (अक्टूबर 1993) को दिये अपने एक साक्षात्कार मे सेठीजी की पुत्री 80 वर्षीया सरस्वती देवी ने बताया कि - "हम मूर्ति जयपुर से ले गये थे।" भारत के राजनैतिक बन्दियो मे यह प्रथम उदाहरण था।

जयपुर अढाई शती समारोह (1978) के अवसर पर प्रकाशित 'जयपुर-दर्शन' ग्रन्थ (पृष्ठ 110) लिखता है कि राजस्थान के (बाद मे) मुख्यमंत्री श्री हीरालालजी शास्त्री ने सेठीजी के यह कहने पर कि - "ऑख बन्द कर आजादी की लडाई के समुद्र मे कूद जाओ तो तुम तिर जाओगे।" 7 दिसम्बर 1927 को अपना सरकारी महत्वपूर्ण पद त्याग दिया था।

1920 मे छह वर्षो की जेल के बाद सेठीजी मुक्त होकर पूना होते हुए बम्बई जा रहे थे। पूना स्टेशन पर श्री बाल गगाधर राव तिलक द्वारा सेठीजी का अभूतपूर्व स्वागत किया गया। तिलकजी इतने भाव-विभोर हुए कि उन्होने अपने गले का रेशमी दुपट्टा सेठीजी के गले मे डाल दिया और अभिनन्दन करते हुए कहा - "आज महाराष्ट्रवासी सेठीजी को अपने बीच देखकर फूले नही समाते। ऐसे महान् त्यागी, देशभक्त और कठोर तपस्वी का स्वागत करते हुए महाराष्ट्र आज अपने को धन्य समझता है।"

वैलूर जेल से मुक्त होने के बाद जब सेठीजी इन्दौर पहुँचे तो उनके सम्मान मे छात्रो ने बग्घी के घोडे खोल दिये और खुद गाडी मे घोडो की जगह जुतकर बग्घी को खीचा। उन जोशीले नौजवानो मे श्री हरिभाऊ उपाध्याय भी थे।

देशबन्धु चितरजनदासजी ने कहा था - "आप (सेठीजी) के जन्म का उपयुक्त स्थान राजस्थान नहीं था। आप बंगाल मे जन्म लेते तो देखते कि बगाल आपका कितना सम्मान करता है।"

1922 मे सेठीजी को भेट की गई गाधी टोपी नीलाम करने पर 1500 रुपये मे बिकी थी।

1925 के कानपुर काग्रेस अधिवेशन मे सेठीजी के अनुयायियो का बहुमत हो गया। वहाँ हुए चुनाव को जब वर्किंग कमेटी ने रद्द कर दिया तो सेठीजी के नेतृत्व मे लोग सत्याग्रह पर बैठ गये। स्वयसेवको ने सेठीजी को लाठियो से मारा, वे घायल हो गए। उन्हे देखने गॉधीजी पं. मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, पं. जवाहरलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, शौकत अली आदि के साथ उनके निवास पर पहुँचे और सेठीजी से कहा - "मुझे आपको चोट लगने का भारी दुःख है। उसके प्रायश्चितस्वरूप मैं उपवास करना चाहता हूँ।" सेठीजी के समझाने पर गॉधीजी ने उपवास के सकल्प का त्याग करते हुए कहा - "आप धर्मशास्त्र के ज्ञान मे मेरे गुरुतुल्य है।"

सेठीजी शायरी का भी अच्छा शौक रखते थे। बातचीत के बीच मुँह का जायका बदलने और वातावरण नीरस न होने देने के लिए गालिब, जौक आदि के शेर सुनाते थे। गोयलीयजी ने एक सस्मरण मे उनके इस व्यक्तित्व को उजागर किया है। गोयलीयजी ने लिखा है - (सेठीजी) एक दिन जो मौज मे आए तो बोले -

"बेटा हम भी तुकबन्दी कर लेते हैं।"

तुकबन्दी कैसी आप तो अच्छी-खासी कविता कह लेते है। मैंने बचपन मे आपकी बनायी कई कवितायें पढी है। 'कब आएगा वोह दिन कि बनूँ साधु बिहारी' मुझे खास तौर से पसन्द थी।

वे हसकर बोले - "अच्छा तो बदमाश तू बचपन से मेरा आशिक रहा है।"

"यह तो आपकी महती कृपा है, जो आप इस सम्बोधन से मुझे कृतकृत्य कर रहे हैं। हाँ, एक अकिचन भक्त मै आपका अवश्य रहा हूँ।"

''अच्छा तो बच्चू यह बात है जो दौड-दौडकर तुम जयपुर और अजमेर जाते रहे हो और हजार ठिकाने छोडकर मै तुम्हारे पास ठहरने को मजबूर हुआ हूँ।''

''जी, आप शायद अपना कोई ताजा कलाम सुनाना चाह रह थे।''

''ताजा तो नहीं है, 5 6 वर्ष पूर्व कही गई, एक तुकबन्दी है। कुछ दोस्तो ने इस समस्या को - ''देख कहाँ-कहाँ पै हथेली लगायेगे'' पूर्ति करने को मजबूर कर दिया। 10-50 मिनट तबीयत पे जोर दिया तो ये पंक्तियाँ मुँह से निकल पडी -

''मन्दिर में कैद करते है ताले ठुका दिये,
मस्जिद मे उस हबीब के परदे लगा दिये,
पूछा सबब तो ऐठ के पोथे दिखा दिये,
वाइजने चीख-चीख सिपारे सुना दिये।

महफिल मे बेहिजाब हम आँखे लड़ायेंगे।
देखे कहाँ-कहाँ पै हथैली लगायेगे॥

वाइज से जाके पूछा कि मय है हराम क्यो,
बोला कि ''मेरे सामने लेते हो नाम क्यो'',
जन्नत की तलाश मे है बूढा इमाम क्यो,
खुल जाये राजेमक्फी पीले न जाम क्यो?''

मयख्वार, उस खुदा को भी एक्शा पिलायेगे।
''देखें कहाँ-कहाँ पै हथेली लगायेगे॥

अर्थात् मेरे प्यारे को किसी ने ताले मे बन्द कर दिया है तो किसी ने उसे परदो मे छिपा दिया है। कारण पूछने पर धर्मशास्त्रो के पौथे दिखा दिये कि इनके वारण्ट पर इन्हे बन्दी बनाया है किन्तु इन भूखो ने यह नहीं समझा कि उसका हुस्न हजार पर्दो मे भी छिपा नहीं रह सकता। न जाने दे मुझे मन्दिरो और मस्जिदो मे। मै तो खुले आकाश के नीचे खडा होकर उसको निहारूँगा, देखूँ कहाँ-कहाँ पर ये लोग बन्दिशे लगायेगे।'

'देव-दर्शन और शास्त्र-श्रवण का अधिकार मानव मात्र को क्यों नहीं? क्यो चन्द आदमी इस अमृत सुरा के ठेकेदार बने हुए हैं। अध्यात्म-सुरा पीकर तू मैं का भेद भूल जाने का सभी को अधिकार है। यह सुधा पीते ही आत्मा और परमात्मा के बीच का व्यवधान मिट जाएगा। हम तो स्वय भी पीएँगे, अपने प्यारे को भी पिलायेगे और एकाकार हो जायेगे। ओ, धर्म के ठेकेदारो, तुम कहाँ-कहाँ पर अपनी टाँग अडाते फिरोगे?'

उक्त कविता न हिन्दी है न उर्दू, न इसे कोई शायराना अहमियत ही दी जा सकती है। सचमुच तुकबन्दी है। मगर यह तुकबन्दी किस वातावरण मे कही गई और क्यो कही गई, यह पमेमजर मुझे मालूम था। उसका तसव्वुर मस्तिष्क मे था ही, बस कुछ न पूछिए - एक एक पक्ति पर तडप-तडप गया। बात यह थी कि सेठीजी के एक शिष्य मोतीचन्द जैन को फाँसी दे दी गयी थी। वह महाराष्ट्रीय जैन था। सेठीजी को उससे बहुत स्नेह था। अपने वफादार और जाँबाज शिष्य की मौत पर उन्हे बहुत सदमा पहुँचा। मगर कर भी क्या सकते थ?

5-७ वर्ष बाद जब व जेल से मुक्त होकर आये तो मोतीचन्द की पवित्र स्मृति मे सेठीजी ने अपनी कन्या का विवाह महाराष्ट्र के एक युवक से इस पवित्र भावना स कर दिया कि मैंने जिस प्रान्त और जिस समाज का सपूत दश को बलि चढाया है, उस प्रान्त को अपनी कन्या अर्पण कर दूँ। सम्भव है उससे भी कोई मोती जैसा पुत्ररत्न उत्पन्न होकर दश पर न्योछावर हो सके।

यह सम्बन्ध उक्त पवित्र भावना के साथ-साथ अन्तर्जातीय और अन्तप्रान्तीय भी था। जनो मे यह नया उदाहरण था। और हर नए कार्य स रूढिवादियो को चिढ होता है। अत सेठीजी जाति से बहिष्कृत भी किये गय और मन्दिर प्रवेश पर भी रोक लगा दी गई।

इसी वातावरण के आस-पास कुछ मनचलो ने तत्काल उक्त मजाकिया समस्यापूर्ति करन का मजबूर कर दिया। हृदय के भावो का जो आग्रह की हवा लगी तो भडक उठे और उक्त पक्तियाँ मुँह स निकल पडी।

सेठीजी प्रखर देशभक्त होने के साथ-साथ उग्र समाज सुधारक भी थे। केवल व्याख्यान देकर या लेख लिखकर उनकी पिपासा शान्त नही होती थी, वे अपन प्रत्येक विचार को साकार देखना चाहते थे। जयपुर और इन्दौर के गुरुकुल इसका उदाहरण हैं। सेठीजी हरिजन मन्दिर प्रवेश के समर्थक थे।

एक दिन सेठीजी और श्री गोयलीयजी साथ सो रहे थे। प्रात: उठकर गोयलीयजी ने जब सेठीजी को नही पाया तो बडे उद्विग्न हुए। तीन-चार दिन बाद सेठीजी लौटकर आए तो गोयलीयजी ने कहा - ''आप भी खूब हैं। कोई मर या जिए आपको क्या?''

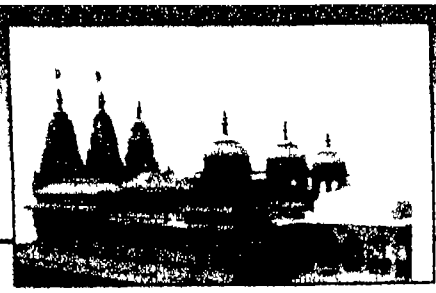

सेठीजी ने हँसकर कहा – ''पहले पूरी बात तो सुनो'', फिर उन्होने कहना प्रारभ किया – (उस दिन) ''सुबह बाहर जाकर जो अखबार पढा तो मेरे हाथो के तोते उड़ गये। तुमने भी चन्द्रशेखर आजाद का अजमेर म गिरफ्तार होने का सवाद पढा होगा। सवाद क्या था, मेरे लिए तो मृत्यु-सदेश था। आजाद को मैने ही एक गुप्त स्थान पर ठहराया हुआ था, उसका मेरे यहाँ से गिरफ्तार हो जाने का अथ मेरी नैतिक मृत्यु थी, मेरी सारी तपस्या निष्फल हो जाती। दुनिया क्या कहती कि सेठीजी भी उसकी सुरक्षा का यथोचित प्रबन्ध न कर सका।''

''बस इसी न्यूज को पढकर मै अपने आपको भूल गया और तुमको बगैर सूचित किए ही छद्मरूप म वास्तविक बात जाँचने को अजमेर पहुँचा। शुक्र है कि उसको सही सलामत पाया। पुलिस ने उसके धोखे म किसी और को मेरे यहाँ से पकड लिया था। अब उसको स्थानान्तर करके आया हूँ।''

जोधपुर के स्थानकवासी जैन समाज ने मुनि धनीरामजी की प्रेरणा से पचकूला मे एक गुरुकुल की स्थापना की। उसके सचालको की इच्छा थी कि गुरुकुल का भार सेठीजी ले ले। किसी तरह सेठीजी राजी हुए। वे चाहते थे पचकूला को क्रान्तिकारी कार्यो का केन्द्र बनाया जाय और फरार देशभक्तो को उसके पहाडी इलाको म छिपाने का प्रबन्ध किया जाय। तदनुरूप कुछ कार्य भी किया गया परिणामत इस गुरुकुल से भी सेठीजी का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

सेठीजी दारिद्र्यव्रती थे। वे तमाम जीवन गरीबी से जूझते रहे और अपने परिवार को भी इस गरीबी मे रहने को मजबूर किया। वे चाहते तो अन्य नेताओ की तरह सुख चैन से रह सकते थे, पर उनके पास तो किसी का दिया हुआ भी जो कुछ आता था, वह देश सेवा के यज्ञ म होम हो जाता था। उनके इस दारिद्र्यव्रत का एक सस्मरण जो श्री गोयलीयजी ने लिखा है यहाँ द्रष्टव्य है –

''मै सन् '32 म कारागार से मुक्त होने के बाद सेठीजी की चरण रज लेने अजमेर पहुँचा। वहाँ जाकर जो उनकी स्थिति देखी उससे कई घण्टे सुबक-सुबक कर रोता रहा। सर्वस्व होम देने के बाद जिन्दगीभर स्वय भी देश-सेवा मे जूझते रहने के कारण घरेलू स्थिति भयावह हो उठी। आर्थिक स्रोत सब सूखे हुए और 8-10 प्राणियो के भरण-पोषण की समस्या। मौत के सामने भी घुटने न टेकने वाला सेठी स्वय तो न झुका, पर उसकी कमर झुक गयी। उसमे वह तनाव और बाँकपन देखने मे न आया। घर का वातावरण मुझसे आझल नहीं रह सका। तभी बर्फ बेचने वाले ने रबडी मलाई की, बर्फ की चटखारेदार आवाज दी तो बच्चो के मुँह मे पानी भर आया, और सेठीजी से बर्फ दिलवाने की जिद करते रहे। वे चुपचाप थोडी देर तो बच्चो का रोना बिलखना देखते-सुनते रहे। जब न रहा गया तो मुझसे बोले – ''गोयलीय! तुम बहुत अच्छा व्याख्यान दे लेते हो, आज इन बच्चो को बर्फ की अनुपयोगिता पर एक स्पीच दो।''

मैने कहा – ''सेठीजी, कोई बच्चे भी इस तरह की सीख मानते है। खासकर बर्फ, चूरन और मिठाई के सम्बन्ध म।''

सेठीजी के अब तेवर बदल चुके थे। बोले – ''तो इन्हे यह समझाओ कि तुम्हारे नालायक पिता कुछ कमाते-धमाते नही है, और जो तुम्हारे बाबा छोड गये थे उसे भी ये स्वाहा कर चुके है।''

मै सहमकर बोला – ''सेठीजी अभी इनमे इतनी समझ ही कहाँ है जो समझाने से मान सके।''

बोले – ''नालायक यह भी नही समझेगे, वह भी नही समझेगे तो फिर मै क्या करूँ? सरकारी नौकरी को 20 वर्ष मे पेशन मिल जाती है, और वह अपने बच्चो का निश्चिन्त होकर भरण पोषण करता है। मैने अपनी एक एक हड्डी गलाकर रख दी तब भी क्या मुझे इनके भरण-पोषण की चिन्ता से मुक्ति नही मिलेगी?''

मै क्या जवाब देता। हिचकी बँध गई – मुझे रोता देखकर बोले – ''गधे, मेरी हालतजार से कुछ नसीहत ले। अन्धो की तरह कुएँ मे मत कूद। वरना जिन्दगीभर रोता रहेगा। मेरा क्या है मै तो मिट चुका –

मेरे बच्चो पर जो गुजरेगी, उससे मै वाकिफ हूँ, उनकी आँखो के आँसू पोछने का भी किसी को अहसास न होगा।

लेकिन मै नही चाहता कि तू इस तरह की गलतियाँ दोहराये। देश और समाज की सेवा जितनी बन पडे, उतनी कर, मगर सेवा करते-करते एक दिन निरा सेवक बनकर न रह जाना पडे इसके लिए सदैव सावधान रहना।''

सेठीजी राजनैतिक क्षेत्र मे ही पीडित नही रहे, वे पारिवारिक भरण-पोषण की चिन्ता मे भी जीवन के अन्तिम श्वास तक गलते

रह। यौवनकाल में ही देश सेवा मे कूद पडे। पूर्वजो का जो सचित था वह स्वराज्य के दाव पर लगा दिया। बुढापे मे सहायता तो दूर 30/ रु मासिक वेतन पर भी वे महगे समझे गये। उनकी इस दयनीय स्थिति का पता श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय को लिखे निम्न पत्र से चलता है –

अजमेर

17 अगस्त, 1937

बन्धुवर,

मे कल यहाँ आया, जयपुर मे बीमार हो गया था। मेरी तन्दरुस्ती खराब हो ही गई। दरअसल मैं दिलोदिमाग खो ही चुका। यहाँ आपका पत्र रखा हुआ मिला। आपने जो कुछ लिखा है – वाकई वह वैसा ही है, जो मैं समझ चुका था। ठीक ही है श्रद्धा और प्रेम भावना असमर्थ और अशक्त के प्रति कभी किसी की न रही और न रहेगी। भूल इतनी-सी मेरी है कि मैंने अपने को 30/ रु का नौकर न समझा।

गोयलीयजी, सच है रुपय का दासत्व नरक मे बढकर है, और रुपया तो दास भी बनाता ह।

एक व्यक्ति के सहारे रहना न मेरे लिए इष्ट है न उपादय। नोकरी तो 30/- रु की यहाँ भी मिल ही जाएगा। मुझ ता एक उद्देश्य सताता है और यह वही है जा शायद शपथ खाकर मेन आपस उभय पक्ष के वचनो के साथ जयपुर मे प्रकट किया था। मरे बच्चे आनासागर मे डुबो दिए जाये, कुछ परवाह नही। मेरा कतल कर दिया जाए फबहा। अन्न कष्ट, जल कष्ट वायु कष्ट, आवे।

मैं तो जैनधर्म और उस राजनीति का प्रचार करूँगा जो आपसे कई बार स्पष्ट हो चुके है। जो बडवानी पर ले गय, वे ही आगे का रास्ता खोलेगे।

– अ सेठी

1937-40 के आसपास सेठीजी राजनैतिक घात-प्रतिघातो मे इतने क्षत-विक्षत हो चुके थे कि सचमुच अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे थे। वे राजस्थान प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष थे। काग्रेस हाई कमाण्ड नहीं चाहता था कि राजपूताने की बागडोर सेठीजी के हाथ में रहे। काग्रेस-चुनाव मे खद्दर के कपडे कुली-कबाड़ियो को पहनाकर सेठीजी क प्रतिद्वन्द्वी को वोट दिलवाये गये, फिर भी सेठीजी विजयी हुए। जब वे बन्दी बनाकर रेल द्वारा ले जाए जाने लगे तो जनता इजन के आगे लेट गई। महात्मा गाँधी अजमेर आए तो सेठीजो उनके यहाँ नही गए, महात्माजी ही उनके घर आये। इतनी दृढ स्थिति को हाई कमाण्ड कैसे बर्दाश्त करता। सेठीजी का राजनैतिक जीवन समाप्त करने क लिए कई लाख रुपये व्यय किये गये अनेक दाँव पच खले गए और इस प्रकार इस क्रान्तिकारी की राजनैतिक हत्या कर दी गई।

जीवन के अन्तिम समय मे राजनैतिक और आर्थिक दुश्चिन्ताओ क कारण सेठीजी का मानसिक सन्तुलन खराब हो गया। जब कही आश्रय नही मिला तो 30/- रुपये मासिक पर अजमेर मे मुस्लिम बच्चो को पढाने पर मजबूर हो गये। अपने ही लागो के तिरस्कार का उनके हृदय पर एसा आघात लगा कि उन्होन घर आना-जाना भी बन्द कर दिया। 22 दिसम्बर 1941 को वे इस स्वार्थी ससार स प्रयाण कर गय। मजहबी दीवानो ने सेठीजी का दफना दिया। उनक परिवार वालो को तीन दिन बाद उनकी मृत्यु का सवाद मिला। प्रसिद्ध क्रान्तकारी और धर्मज्ञ महात्मा भगवानदीन न लिखा है – ' अर्जुनलाल सठी का हम आदमी कहे या देश की आजादी का दीवाना कह, हम अर्जुनलाल सेठी को हिन्दुस्तानी कह या आजादी के दीपक का परवाना कह, जो अपने 25 वर्ष के इकलौत बेट का मौत क बिस्तर पर छोडकर प सुन्दरलाल क एक मामूली तार पर दौडा हुआ बम्बई पहुँचता है और बेट के मर जान के बाद भी उस देश का काम छोडकर घर लौटन की जल्दी नहा होती।''

– जैन जागरण के अग्रदूत, पृष्ठ 374

''भारत मे अग्रेजी राज्य के लेखक प सुन्दरलालजी तथा महात्मा भगवानदीनजी ने एक सयुक्त वक्तव्य मे 26 अक्टूबर, 1948 (विश्वामित्र दैनिक, दिल्ली सस्करण) को कहा था – हम दोनो सठीजी को उनके पब्लिक जीवन के करीब-करीब शुरू होने से जानते थे। हममे व उनमे घनिष्ट सम्बन्ध था। हम उन्हे देश की महान् से महान् आत्माओ मे से एक गिनते है। जिनकी लगन, जिनका त्याग, जिनकी तपस्या और जिनके बलिदान की बदौलत ही देश को आज यह दिन देखना नसीब हुआ।''

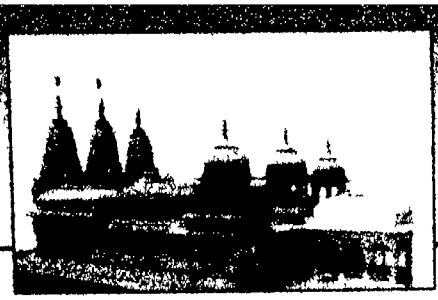

राष्ट्र की 50वीं स्वतन्त्रता वर्ष के सदर्भ मे

आजाद हिन्द फौज में भी थे जैन

• डॉ (श्रीमती) ज्योति जैन

भारतीय स्वातन्त्र्य समर की गाथा तब तक अपूर्ण ही कही जायेगी जब तक उसमे नताजी सुभाषचन्द बोस और उनकी आजाद हिन्द फोज का जिक्र न हो। 1942 के भारत छोडो आन्दोलन मे ब्रिटिश हुकूमत डर गई थी और उस लगने लगा था कि हमे भारत छोडना पडेगा, किन्तु फिर भी किसी तरह वह लडखडाते पर जमान की कोशिश कर रही थी। इधर आजाद हिन्द फौज की क्रान्तिकारी गतिविधिया से भी वह पूरी तरह घबरा गइ। इन सबका परिणति 1947 मे देश की आजादी के रूप मे हुई।

1942 क आन्दोलन के समय भारत मे क्रान्तिकारिया का जिस तरह की क्रूर सजाये दी जा रही थी उन्ह दखत हुए कई क्रातिकारी जापान चीन, मलाया बर्मा आदि देशा की ओर चले गये थे और वही से अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियो का सचालन कर रहे थ। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राम विहारी बोस न जापान मे शरण ली थी। द्वितीय विश्वयुद्ध क दौरान जब जापान ने मित्र राष्ट्रो के विरुद्ध युद्ध का घोषण की तब टोकिया मे एक सम्मेलन मे राम बिहारी बोस की अध्यक्षता म एक कमटी बनाइ गई और निर्णय लिया गया कि बर्मा, मलाया, थाईलण्ड आदि देशो मे भी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दालन चलाया जाय।

जापानी फाज जब मलाया की आर बढी और सिगापुर म अगज हार गय तब विजेता जापानी मजर फूजीवारा न भारतीय फोजा का सम्बोधित करत हुए कहा था कि जापान भारत क विरुद्ध नहीं है, अत भारतीय सैनिक हमार युद्ध बन्दी नही है। तब केप्टन माहन सिह और ज्ञानी प्रीतम सिह भारतीय फौजो के कमाण्डर बना दिय गय आर उन्हान जापान की सहायता से भारत को आजाद करान का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। तभी मलाया मे रहने वाले भारतीया न भी ''इण्डिया इडिपेडेस लीग'' नामक सस्था की स्थापना की। इसी लीग के नियन्त्रण मे ''आजाद हिन्द सना'' सगठित करन का निर्णय लिया गया। केप्टन मोहन सिह इसक कमाण्डर बनाय गये और बीस हजार सैनिक इसमें शमिल हो गये। इसी समय सुभाष चन्द्र बोस गुप्त रीति से भारत से जर्मनी व रूस होत हुय टोकियो पहुँच। रासबिहारी बोस ने सिगापुर मे घोषणा कर दी कि अब आगे भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का नेतृत्व सुभाषचन्द्र बोस करेग।

2० जून 1943 को सुभाष चन्द्र बोस ने टोकियो रेडिया से प्रवासी भारतीया क नाम अपना पहला भाषण प्रसारित किया। बीस हजार भारतीय सैनिका की शानदार परेड म उन्ह सलामी दी गई। इस समारोह मे जापानी प्रधान मन्त्री भी उपस्थित हुए थे। सुभाष चन्द्र बोस न ''आजाद हिन्द फौज'' क नाम की प्रसिद्ध अपील प्रकाशित की, जिसक अन्त म उन्होन कहा था – ''तुम मुझे खून दो, मै तुम्ह आजादी दूँगा।'' इसी के बाद सभी न सुभाष चन्द्र बोस को ''नताजी'' उपनाम स पुकारना प्रारम्भ कर दिया था। जो लोग सेना म नही थ उन्होन धन स व अन्य प्रकार स फौज की सहायता करना प्रारम्भ कर दिया। आजाद हिन्द फौज मे जैनियो ने भी बढ-चढकर सहयाग दिया था। धन धान्य की अपरिमित सहायता इस समाज ने की थी। नताजी सुभाष चन्द्र बोस के निजी चिकित्सक रह कनल डॉ राजमल कासलीवाल अग्रज सेना का कर्नल-पद छोडकर आजाद हिन्द फौज म सम्मिलित हो गये थे।

Who's Who In the World म उल्लिखित तथा देश मे चिकित्सा के उत्कृष्ट पुरस्कार बी सी राय अवार्ड से सम्मानित डा राजमल कासलीवाल का जन्म 20 नवम्बर 1906 को जयपुर (राजस्थान) म श्री मुशी प्यारलाल कासलीवाल के यहाँ हुआ था। श्री मुशी प्यारलाल कासलीवाल तत्कालीन जयपुर रियासत में रवेन्यू मिनिस्टर थ। मुशी साहब दि जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभापति पद पर प्रारम्भ से ही आसीन रहे। डॉ राजमलजी 1929 में लखनऊ वि वि स एम बी बी ए पास करने के बाद उच्च शिक्षार्थ इगलैण्ड

चले गये जहाँ से 1931 मे डी टी एम एण्ड एच तथा 1932 मे लन्दन से एम आर सी पी की उपाधियाँ प्राप्त की। 1935 मे 'इन्डियन मेडीकल सर्विसेज' के अन्तर्गत आप भारतीय सेना मे सम्मिलित हुए, जहाँ लेफ्टिनेट कर्नल तक के विभिन्न पदो पर कार्य किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध मे आपको मलाया भजा गया, जहाँ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से आपकी भेट हुई। नेताजी के त्याग व देशभक्ति से आप मे देशभक्ति की भावना हिलारे लेने लगी। इधर नेताजी भी आपकी सेवाओ से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपनी "आजाद हिन्द फौज" मे सम्मिलित होने का आग्रह किया। कामलीवालजी तत्काल "आजाद हिन्द फौज" म सम्मिलित हो गये, जहाँ 1945 तक आप 'निदेशक, चिकित्सा एव स्वास्थ्य सेवा' के पद पर रहे। आप नेताजो के निजी चिकित्सक भी थे। कामलीवालजो के सन्दर्भ म 'जैन सन्देश' राष्ट्रीय अक (जनवरी 1947) लिखता है – "आप डॉक्टरी की सर्वोच्च डिग्री पास करने क बाद सरकार द्वारा फौज को डॉक्टरी सहायता देने के लिए विशष पद पर भज गय थे। किन्तु स्वतन्त्रता का दीवाना कब तक इस प्रकार गुलाम फौजा की चिकित्सा करता रह सकता था। आजाद हिन्द फोज का निर्माण होते ही आप सरकारी नौकरी छाडकर उसम जा मिल और नताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ उनके एक विश्वस्त सहयागी क रूप म भारत की मुक्ति के लिए अनवरत प्रयत्न करते रह। आप आजाद हिन्द फौज सरकार के मन्त्रि मण्डल के एक सदस्य डायरक्टर ऑफ मेडीकल्स तथा नेताजी के पर्सनल डॉक्टर की हैसियत मे सम्मानपूर्ण और दायित्वपूर्ण पदो पर रहे।" द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् लाल किले म चल आजाद हिन्द फौज क ऐतिहासिक मुकदमे से ससम्मान रिहाई क बाद आप आगरा मेडीकल कॉलेज के प्राचार्य, जयपुर मेडीकल कॉलेज के सस्थापक प्राचार्य,अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष, अ भा कांग्रेस कमेटी के सदस्य आदि अनेक पदों पर रहे। श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी के भी आप अनेक वर्षों तक अध्यक्ष रहे।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि जा प्रवासी भारतीय फौज में शामिल नहीं हो सके उन्होंने धनादि देकर आजाद हिन्द फौज की सहायता की थी। ऐसे व्यक्तियो मे बर्मा मे व्यापार के लिए गये एक प्रख्यात जैन उद्योगपति श्री चतुर्भुज सुन्दरजो दोशी के युवा छोटे भाई श्री मणिलाल दोशी का नाम अग्रगण्य है। मणिलालजी नेताजी के चरणो म अपना सर्वस्व समर्पण कर आजाद हिन्द फौज मे शामिल हो गये। वे फौज मे एक दायित्वपूर्ण विभाग के मन्त्री रहे। जब बर्मा जापान क अधिकार से निकलकर पुन अग्रेजो के अधिकार म आया तो बर्मा सरकार ने आपको गिरफ्तार करके रगून जेल म डाल दिया। आजाद हिन्द फौज के तमाम कैदी रिहा हो जाने के बाद भी बर्मा की अडियल सरकार न दोशीजी को रिहा नहीं किया। फलत· श्री शरदचन्द बोस क नेतृत्व म एक जोरदार आन्दोलन हुआ और भारत मे उनकी पैरवी करने के लिए प्रसिद्ध वकील श्री क एम मुन्शी और मि क एफ नरीमन गये। अन्त मे बर्मा सरकार ने दोशीजी का रिहा किया।

9 जुलाई 1943 को नताजी न एक विशाल जनसभा में महिलाओ को भी आजादी की लडाइ मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया, फलत "रानी झाँसी रजीमन्ट" की स्थापना हुई। 23 अक्टूबर 1943 को सिगापुर मे महिला कैम्प लगा, फिर मलाया व बर्मा क अन्य भागो मे भी कैम्प लगे। इनमे महिलाओ को चिकित्सा नर्सिंग ड्रिल, नक्शे देखना, युद्ध-तकनीक, शस्त्र-सचालन आदि सेना के सभी क्षत्रो का प्रशिक्षण दिया जाता था। आजाद हिन्द फौज की अस्थाई सरकार के नौ विभागो मे नारी कल्याण भी एक विभाग रखा गया था। यह विभाग लेफ्टिनेन्ट कर्नल व रानी झाँसी रजीमन्ट की कमान्डेन्ट लक्ष्मी स्वामीनाथन् (सम्प्रति श्रीमती लक्ष्मी सहगल) को दिया गया था। तत्कालीन लोकप्रिय और प्रसिद्ध चिकित्सक डा प्राणजीवन मेहता की पुत्री रमा बहन और पुत्रवधू श्रीमती लीलावती बहन आजाद हिन्द फौज की "रानी झाँसी रजीमेन्ट" मे सम्मिलित हो गयी थी। 'जैन सन्देश' राष्ट्रीय अक (जनवरी 1947) ने श्रीमती लीलावती बहन और रमा बहन की कहानी उन्हीं के शब्दो मे प्रकाशित की थी, जिसे हम यथावत साभार यहाँ दे रहे हैं।

श्रीमती लीलावती बहन – "जब ब्रिटिशों ने रंगून छोड दिया और जापानियो ने रगून पर अधिकार जमा लिया तब कुछ समय के लिए अन्धाधुन्धी मच गयी थी। कई मास तक भारतीय स्त्रियाँ घर से बाहर नही निकल सकी थी। हमने अपने मकान पर एक

बोर्ड लगा दिया था जिस पर लिखा था – 'इस घर मे महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य भारतीय नेता आकर उतरे थे। इस घर मे नेशनलिस्ट भारतीय रहते है।' इसे पढकर जापानी सोल्जर हमें कभी किसी भी तरह से हैरान नही करते थे।

श्री सुभाष बाबू ने मलाया और बर्मा मे 'आजाद हिन्द फौज' और 'झाँसी की रानी रेजीमेन्ट' स्थापित करने के लिए भाषण दिये। तब हमारा सारा परिवार उनके भारतीय स्वातन्त्र्य संघ मे सम्मिलित हो गया। 21 अक्टूबर 1943 को बर्मा और मलाया मे ''झाँसी की रानी रेजीमेन्ट'' स्थापित करने का कार्य पूरा हुआ। रंगून मे 10 बालको को लेकर मेरे हाथ से कैम्प का उद्घाटन हुआ था। जब रात दिन बम वर्षा होती थी तब भी आवश्यकता होने पर हम खुले मैदान मे हथियारो के साथ सुसज्जित होकर खडी रहती थी। हम घायलो की सेवा सुश्रुषा करने और अस्पताल ले जाने का काम करती थी। मेरा मुख्य काम सबेरे 11 बजे से शाम 5 बजे तक घर-घर जाकर स्त्रियो, लडकियो और पुरुषो को आजाद हिन्द फौज मे सम्मिलित होने के लिए समझाना था।''

रमा बहन – ''हमारा कैम्प मिलिट्री कैम्प था, उसमे हमे प्रत्येक प्रकार का शस्त्र-सचालन और अनुशासन पालन सिखाया जाता था। झाँसी की रानी रेजीमेन्ट मे दो विभाग थे। एक युद्ध विभाग और दूसरा नर्सिंग विभाग। युद्ध विभाग मे हमे मिलिट्री ड्रिल, रायफल की प्रेक्टिस, पिस्तोल चलाना, टोमीगन चलाना तथा मशीनगन चलाना सिखाया जाता था। मोर्चे पर आक्रमण करना और आत्मरक्षा करना भी सिखाया जाता था। नर्सिंग विभाग मे उक्त शिक्षा प्राप्त बालको को रखा जाता था।

हमे घायलो की दवा दारू और सेवा-सुश्रुषा करना सिखाया जाता था। हमे घन्टो खडे रहकर घायलो की सेवा करनी होती थी। प्राय सभी बहिने कैम्प मे रहकर काम करने की अपेक्षा युद्ध क्षेत्र मे जाकर लडने को अधिक आतुर रहती थीं। वे सब प्रसन्न थी इस आशा को लेकर कि उनके द्वारा भारत स्वतन्त्र होगा।''

इन देशभक्तो के प्रति हम भारतवासियो का कृतज्ञतापूर्वक नमन।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
श्री कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय
खतौली (उ.प्र.)

चरखे का चक्र बनाकर अहिंसा रथ मे विराजमान कर महात्मा गांधी ने सारथी बनकर देश की जनता का नेतृत्व किया और अंग्रेजो को भारत छोडने पर मजबूर कर दिया। स्वतत्रता शब्द का अर्थ जैनधर्म व सस्कृति मे आत्मसात् है। अन्य किसी भी धर्म या सस्कृति मे स्वतत्रता के अर्थ का कोई भी समायोजन नही बैठता। दुनिया के सारे धर्म ईश्वरवाद को मानते हुये गुलामी या आजादी का नियन्ता ईश्वर को मानते है। जैनधर्म में आत्मा अपना मालिक है उसके द्वारा किये गये कार्यो (कर्मो) का प्रतिफल आत्मा को ही भोगना पडता है। परतत्रता या स्वतंत्रता की परिस्थिति स्वय हमारी, हमारे कार्यो (कर्मो) के कारण बनाई गई है। जनतन्त्र मे जनता से जुडा हुआ व्यक्ति ही राज्य कर सकता है, लोकप्रिय हो सकता है। कर्त्तव्य-पालन मे धर्म रहता है।

अशिक्षा के कारण, ज्ञान के अभाव मे स्वतत्रता का पूरा लाभ नहीं मिलता है। स्वतत्रता के लाभ बताते हुये उन्होने कहा कि शिक्षित अथवा ज्ञानी पुरुष ही स्वतन्त्रता के सुख को भोग सकता है। अपने दु:ख को दूर कर सकता है। स्वतंत्रतापूर्वक अपने धर्म का पालन कर सकता है। स्वतंत्रता के उपभोग के लिए, सुखी एव समृद्ध जीवन के लिए साक्षरता आवश्यक शर्त है।

– आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

खण्ड : V

भाषा, साहित्य एवं अन्य

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पेज नं
1	अपभ्रंश साहित्य का पुनरावलोकन	डॉ सकलदेव शर्मा	V/1
2.	जिनागम का रहस्य	आचार्य सन्मतिसागरजी	V/13
3	जैन पाण्डुलिपियों की वर्तमान दशा, दिशा और समाधान	डॉ कस्तूरचन्द 'सुमन'	V/14
4.	जैन साधना पद्धति में आराधना : भगवती आराधना के परिप्रेक्ष्य मे	डॉ अशोक कुमार जैन	V/19
5	श्री वीर सेवक मण्डल एवं श्री महावीरजी	अरुण सोनी	V/24

अपभ्रंश साहित्य का पुनरावलोकन

• डॉ सकलदेव शर्मा

अपभ्रश को अधिकाश आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ की जननी होने का श्रेय प्राप्त है। अपभ्रश की कुक्षि से उत्पन्न होने के कारण हिन्दी का उसमे अत्यन्त आन्तरिक और गहरा सम्बन्ध है। अत· राष्ट्रभाषा हिन्दी की मूल प्रकृति और प्रवृत्ति से परिचित होने के लिए अपभ्रश भाषा और साहित्य के अध्ययन अध्यापन की अनिवार्यता सुधी अध्येताओ और अनुसधित्सुओ के लिए हमेशा बनी रहेगी। डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार – ''हिन्दी साहित्य मे अपभ्रश की प्राय पूरी परम्पराएँ ज्यो की त्यो सुरक्षित है।'' कहना नही होगा कि अपभ्रश के कालजयी कवियो ने अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओ के द्वारा अपभ्रश के यशस्वी साहित्य और उसके महत्त्व को शताब्दियो के बाद भी अक्षुण्ण रखने मे पूर्ण सफलता अर्जित की है। प्रस्तुत आलेख द्वारा अपभ्रश के उद्भव-विकास, उसके अमर रचनाकारो, उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओ, साहित्यिक अवदानो और हिन्दी साहित्य पर पडे प्रभावो आदि से पाठको को परिचित कराना हमे अभीष्ट है।

'अपभ्रश' शब्द 'भ्रश' धातु मे 'अप' उपसर्ग और 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। 'वाचस्पत्य' मे अपभ्रश के विषय मे कहा गया है – ''अप+भ्रश+घञ् अप क्षरणे अध तन। अपभ्रशति स्वभावात्प्रच्यवते। अप+भ्रश कर्तरि अच्। साधु शब्दस्य शक्ति-वैफल्यप्रयुक्तान्यथोच्चारणयुक्ते अपशब्द त एव शक्तिवफल्य प्रमादालस्यातादिभि अन्यथाऽच्चरिता शब्दा अपशब्दा इतीरिता। अप शब्द अपवैपरीत्ये।''

'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार – ''अप+भ्रश+घञ् ग्राम्य-भाषा। अपभाषा तत्पर्याय अपशब्द इत्यमर:। पतनम्। अध पतनम। ध्वस.। अधोगति।'' 'अप' अपसर्ग और 'भ्रश' धातु दोनो का प्रयोग अध·पतन गिरना, पतित या विकृत होना आदि के अर्थ मे होता है।

अत· अपभ्रश का शाब्दिक अर्थ है – च्युत, भ्रष्ट, स्खलित, पतित, अशुद्ध, विकृत। डॉ नामवर सिह के शब्दो मे – ''भाषा के सामान्य मानदण्ड से जो शब्द-रूप च्युत हो, वे अपभ्रश है।''

प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो मे 'अपभ्रश' और 'अपभ्रष्ट' दोनो नाम मिलते है। प्राकृत और अपभ्रश की रचनाओ मे अपभ्रश के लिए अवहस, अवब्भस अवहत्थ, अवहट अवहट्ट, अवहठ, अवहटठ का प्रयोग किया गया है। मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति ने अपभ्रश को अवहरठा की सज्ञा दी है–

देसिल बअना सब जन मिटठा। ते तैसन जपओ अवहट्ठा।

'पउमचरिउ' मे महाकवि स्वयम्भू अत्यन्त गर्वीले स्वाभिमान दीप्त स्वर मे अपनी देशी भाषा अपभ्रश को 'सामण्णभासा' (सामान्यजन की भाषा) और ''गामिल्लभासा' (ग्राम्य भाषा) कहते है –

सामण्ण भास छुडु सावडउ। छडु आगम-जुत्ति का वि घडउ।
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइ। गामिल्लभास परिहरणाइ॥
1 3 10-11

इन सभी अपभ्रशमूलक शब्दो के अर्थ समान है पर भाषा के लिए 'अपभ्रश' सज्ञा ही सर्वस्वीकृत है। तिरस्कारसूचक यह नाम सस्कृत के आचार्यो ने इस भाषा को दिया है। सस्कृत शब्द के 'साधु' रूपो के अतिरिक्त लोक तथा साहित्य मे प्रचलित भिन्न शब्द-रूपो को महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि ने 'अपशब्द' या 'अपभ्रश' सज्ञा दी और महर्षि प्रदत्त इस सज्ञा को बिना आपत्ति के सबो ने अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया। श्री रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – 'प्राकृत से बिगडकर जो रूप बोलचाल की भाषा ने ग्रहण किया वह भी आगे चलकर कुछ पुराना पड गया और काव्य रचना के लिए रूढ हो गया। अपभ्रश नाम उसी समय से चला। जबतक भाषा बोलचाल मे थी तबतक वह भाषा या देशभाषा कहलाती रही, जब वह भी साहित्य की भाषा हो गयी तब उसके लिए अपभ्रश शब्द का व्यवहार होने लगा।''

सग्रहकार व्याडि 'अपभ्रश' शब्द से भलीभाँति परिचित थे। पतञ्जलि (दूसरी शताब्दी ई पू) और भर्तृहरि (पाँचवी शताब्दी) दोनो ने आचार्य व्याडि का नामोल्लेख किया है। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य मे अपभ्रश का स्पष्ट उल्लेख करते हुए लिखा है - ''भूयासोऽपशब्दा , अल्पीयास शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रशा तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रशा ।'' अर्थात् अपशब्द बहुत है और शब्द थोड है। एक एक शब्द के बहुत से अपभ्रश मिलते है जैसे - 'गा ' शब्द के गावी, गोणी गोता, गोपातलिका आदि इसी प्रकार के अन्य शब्द अपभ्रश है। स्पष्ट है कि पतञ्जलि ने अपभ्रश का प्रयोग किसी भाषा के लिए नही किया है।

भाषा वैज्ञानिको ने भरत के नाट्यसूत्र के इस अश पर विचार करते हुए अपभ्रश का सम्बन्ध आभीरो की भाषा से जोडा है-

हिमवत्सिन्धु सौवीरान्ये च देशा समाश्रिता।
उकारबहुला तज्ज्ञस्तेषु भाषा प्रयोजयत्॥

दण्डी ने भी अपभ्रश का सम्बन्ध आभीरो से बतलाया है। आचार्य भरत ने बिना अपभ्रश का नाम लिये उसकी विशेषता उकारबहुलता का रेखाकित किया है। भाषा विशेष के अर्थ मे अपभ्रश शब्द का प्रयोग प्राय छठी शती ई के आसपास मिलता है। प्राकृत वैयाकरणो मे चण्ड और सस्कृत के आलकारिको मे भामह को अपभ्रश के प्रथम नामोल्लेख का श्रेय प्राप्त है -

शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्यपद्य च तद्विधा।
सस्कृत प्राकृत चान्यदपभ्रश इति त्रिधा॥

- काव्यालकार, 1 16

अपभ्रश भाषा के विषय मे वलभी (सौराष्ट्र) के राजा धरसेन द्वितीय का शिलालेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमे उसने अपने पिता गुहसेन (वि स 650 के पहले) को सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश तीनो मे प्रबन्ध-रचना मे निपुण बतलाया है -

''सस्कृत प्राकृतापभ्रशभाषात्रयप्रतिबद्ध प्रबन्धरचनानिपुण-तरान्त करण ।'' स्पष्ट है कि गुहसेन के समय मे 'अपभ्रश' भाषा के रूप मे पर्याप्त समादृत हो चुकी थी। महाकवि राजशेखर (880 920) के समय तक अपभ्रश का राजदरबारो मे प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। सम्राट हर्षवर्द्धन का दरबार सस्कृत कवियो और पण्डितो से भरा रहता था। अपभ्रश और जनभाषा के कवियो को उस समय कोई प्रोत्साहन नही मिलता था। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त राजपूत राजाओ की राजधानियाँ स्थापित होने लगी और लोकभाषा का आदर क्रमश बढने लगा। आभीरो और गुर्जरो ने अपभ्रश मे सृजनात्मक साहित्य रचकर इसे साहित्यिक महिमा से मण्डित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। पाल और राष्ट्रकूट राजाओ ने देशभाषा को सरक्षण देने मे विशेष रुचि दिखलायी। चौरासी सिद्ध कवि पाला के शासन काल मे ही हुए। स्वयम्भू और पुष्पदन्त जैसे महाकवियो की प्रतिभा का प्रस्फुटन भी राष्ट्रकूटो की छत्रछाया मे ही हुआ। राष्ट्रकूट राजा जैन थे और उनकी प्रजा का अधिकाश सम्पन्न समाज जैन वैश्य था। अत उन्होने जैनो द्वारा बोली और लिखी जानेवाली भाषा अपभ्रश को सरक्षण दिया तो इसमे कोई आश्चर्य नही होना चाहिए। मान्यखेट के राष्ट्रकूटो के पश्चात् पाटण के सोलकी राजाओ ने अपभ्रश भाषा और साहित्य के उत्थान मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

'विष्णुधर्मोत्तर' मे देशभेद से अपभ्रश के अनन्त भेद माने गये है। रुद्रट ने - 'भूरिभेदो देशविशेषात्पभ्रश ' के द्वारा अपभ्रश के अनेक भेदो की बात कही थी। नमिसाधु (उपनागर, आभीर, ग्राम्य) और मार्कण्डेय (नागर उपनागर ब्राचड) ने अपभ्रश के तीन से लेकर सत्ताइस भेदो का नामोल्लेख करते है। डॉ जी वी तगारे पूर्वी अपभ्रश दक्षिणी अपभ्रश और पश्चिमी अपभ्रश के रूप मे अपभ्रश का वर्गीकरण करते है।

अपभ्रश के सम्पूर्ण विकासक्रम को डॉ शिवसहाय पाठक तीन काल खण्डो मे विभाजित करते है -

1 आदिकाल (ई सन् के आसपास से 550 ई तक)

2 मध्यकाल (550 ई स 1200 ई तक) और

3 मध्योत्तर काल (1200 ई से 1700 ई तक)।

आठवी से तेरहवी शताब्दी तक अपभ्रश सम्पूर्ण उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा थी। अपभ्रश के वैयाकरणो मे चण्ड, पुरुषोत्तमदेव, क्रमदीश्वर, हेमचन्द्र, सिंहराज, लक्ष्मीधर, रामशर्मा

तर्कवागीश और मार्कण्डेय के नाम विशेष उल्लेखनीय है। जर्मन विद्वान् रिचर्ड पिशेल को आदर के साथ अपभ्रंश का पाणिनी कहा जाता है।

अपभ्रंश के कवियो में स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, कनकामर अब्दुल रहमान, धाहिल, जिनदत्त सूरि, जोइन्दु, रामसिंह लक्ष्मीचन्द या देवसेन, लुईपा, सिद्धकवि भुसुक, दीपकर, श्रीज्ञान, किलपाद कृष्णाचार्य, धर्मपाद, टेटया, महीधर, आचार्य हेमचन्द्र सूरि और कम्बलावरपाद आदि के नाम विशेष उल्लखनीय हैं। इनके अतिरिक्त बौद्ध तान्त्रिको, वज्रयानियो, चौरासी सिद्धो नाथपथियो - आदिनाथ, मत्स्यन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गनीनाथ, निवृत्तिनाथ, भीमनाथ, सत्यनाथ हरिशचन्द्र और ज्ञानेश्वरनाथ आदि न भी अपभ्रंश मे अपनी रचनाएँ जनसामान्य के सम्मुख रखी। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इन सिद्धो ने - ''उसी सर्वमान्य व्यापक काव्यभाषा म लिखा है जा उस समय गुजगत राजपूताने और ब्रजमण्डल म लकर बिहार तक लिखने पढने की शिष्ट भाषा थी। पर मगध मे रहन के कारण सिद्धा की भाषा मे कुछ पूरबी पयोग भी (जैस भइल, बूडिलि) मिले हुए है। पुरानी हिन्दी की व्यापक काव्यभाषा का ढाचा शोरसेनी प्रसूत अपभ्रंश अर्थात् ब्रज और खडी बोली (पश्चिमी हिन्दी) का था।''

सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य को चार प्रमुख धाराओ मे विभाजित विश्लेषित किया जा सकता है -

1 जैन अपभ्रंश साहित्य,
2 बौद्ध सिद्ध अपभ्रंश साहित्य,
3 शैव अपभ्रंश साहित्य
4 ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य।

जैन अपभ्रंश साहित्य की धारा हमे विक्रम की आठवी सदी से सोलहवी सदी तक प्राप्त होती है। प्राकृत की तरह इसमे भी मुक्तक और प्रबन्ध दो तरह की रचनाएँ मिलती है। मुक्तक शाखा की एक उपशाखा 'रहस्यवादी धारा' कही जा सकती है। महाकवि जोइन्दु (योगीन्दु), रामसिंह और सुप्रभाचार्य इस धारा के महत्त्वपूर्ण कवि है।

महाकवि जोइन्दु अपभ्रंश के अत्याधिक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक कवि है। अपभ्रंश साहित्य के रहस्यमय निरूपण में इनका नाम सर्वोपरि है। इनके माता पिता, स्थान और काल आदि के विषय मे अबतक प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नही हो सका है। अधिकतर इतिहासकारो के अनुसार विक्रम की सातवी शताब्दी क आसपास इनका जन्म हुआ था। ये जैनधर्म के दिगम्बर आम्नाय के आचार्य और उच्चकोटि के रहस्यवादी साधक थ।

'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' इनकी दो विशिष्ट उल्लेखनीय कृतियाँ है। इनम आत्मा परमात्मा और मोक्ष सम्बन्धी प्रश्नोत्तर तथा नैतिक उपदश है। जोइन्दु न 'परमात्मप्रकाश' की रचना अपने शिष्य प्रभाकर भट्ट के कुछ प्रश्नो का उत्तर देने क लिए की थी। इसम आत्मा का त्रिविध रूप - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - वर्णित है। जैनदर्शन पर आधारित इस आध्यात्मिक ग्रथ का अपभ्रंश क मुक्तक काव्यो मे गर्वोच्च स्थान है।

महाकवि जोइन्दु की दूसरी रचना 'योगसार' म आध्यात्मिक गूढताओ को अत्यन्त सरलता स विवेचित किया गया है। इसम योग द्वारा मुक्ति क उपायो का वर्णन किया गया है। अपभ्रंश के विशिष्ट छन्द 'दोहा' म इन दोनो ग्रन्थो का रचना की गयी है। साम्प्रदायिकता से अलिप्त होन के कारण ये दोनो रचनाएँ काफी लोकप्रिय हुई। लोकोक्तियो और मुहावरो क प्रयोग से आध्यात्मिक तत्त्वो को बोधगम्य बनान म जोइन्दु काफी सफल हुए है। परवर्ती अपभ्रंश कवियो क साथ ही हिन्दी के सन्त कवियों पर भी इन दोनो रचनाओ का प्रचुर प्रभाव पडा है।

'पाहुड दोहा' रामसिंह का एकमात्र ग्रन्थ है। इनक विषय म भी हम काइ विशेष जानकारी नही है। इनका समय दसवी शताब्दी के आसपास है। राहुलजी क अनुसार मुनि रामसिंह राजस्थान क निवासी थ। आप साम्प्रदायिकता और सकीर्णताओ क विरोधी उदारमना चिन्तक थे। अपन समय म इन्होन निरक्षर जनसामान्य क लिए ज्ञान का सहज द्वार खोलकर अपनी क्रान्तिकारी प्रगतिशीलता का परिचय दिया था।

'पाहुड दोहा' मे गुरु, आत्मसुख, शरीर, आत्मा समरसी भाव और मोक्ष आदि का वर्णन है। नारी निदा तथा नीति सम्बन्धी बाते भी इसमे देखने को मिलती हैं। 'पाहुड' यहाँ 'उपहार' के अर्थ मे प्रयुक्त है। इसमे आत्मानुभूतियो का सग्रह है, जिसे उपहार के रूप

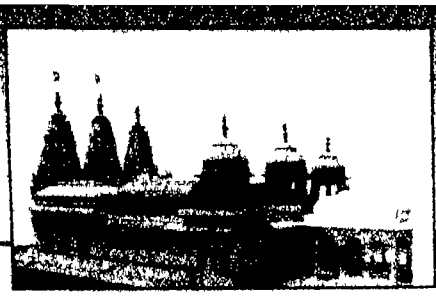

मे कवि ने पाठको के समक्ष रखा है। इसकी भाषा शौरसेनी अपभ्रंश है जो अत्यन्त सरल, सहज और पैनी है। अपनी सक्षिप्त सटीक और भावपूर्ण आकर्षक अभिव्यजना के लिए कवि रामसिंह सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य मे सदा अविस्मरणीय बन रहेंगे।

सुप्रभाचार्य की रचना का नाम 'वैराग्यसार' है। इसमे माया-ममता और सासारिक सुखो से दूर रहकर वैराग्य भाव अपनाने पर बल दिया गया है। महाणदि (1000 ई से 1400 ई के मध्य) का 'आणन्दा' और महचन्द (1600 ई) का 'दोहा पाहुड' भी इस धारा की उल्लेखनीय कृतियाँ है। दूसरे सम्प्रदायो के प्रति उदारता विचारो मे प्रगतिशीलता और चारित्रिक शुद्धता आदि इस धारा की रचनाओ की मुख्य विशेषताएँ है।

मुक्तक शाखा की दूसरी उपशाखा 'उपदेशात्मक धारा' है। देवसेन जिनदत्त सूरि और महेश्वर सूरि इस धारा के मुख्य कवि है। देवसेन (सवत् 990) रचित 'सावयधम्म दोहा' इस धारा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। 'चच्चरी' 'उपदेश रसायन' और 'कालस्वरूप कुलक' जिनदत्त सूरि (सवत् 1132 से 1210) की उल्लेखनीय कृतियाँ है। इनमे मानव जीवन आत्माद्धार लौकिक पारलौकिक शिक्षाओ, गुरु प्रशसा और कुटुम्ब सगठन आदि पर विशेष बल दिया गया है। 'सयम मजरी' महेश्वर सूरि की रचना है जिसमे सयम को जीवन के सर्वोत्तम साधन के रूप मे चित्रित किया गया है। इसमे साहित्यिकता का अभाव परिलक्षित होता है।

इस धारा के कवि परलोक की अपेक्षा 'लोक' पर विशेष बल देते है। नैतिकता निर्लिप्तता लोक और परिवार कल्याण आदि इनकी चिन्ता के प्रधान विषय है। जयदेव मुनि (सवत् 1054) की 'भावना सधि प्रकरण' और विनयचन्द्र मुनि की 'कल्याणकरास' एव 'चूनडी' आदि इसी धारा के अन्तर्गत परिगणनीय है।

जैन अपभ्रंश साहित्य मे प्रबन्ध काव्य पर्याप्त मात्रा मे लिखे गये। महाकवि स्वयम्भू, पुष्पदन्त पद्मकीर्ति धवल, हरिषेण वीरकवि, नयनन्दि धनपाल रइधु आचार्य हेमचन्द्र श्रीचन्द देवसेनगणि, हरिभद्र, लक्खण लक्खणदेव, जयमित्रहल्ल और हरिदेव आदि इस धारा के महत्त्वपूर्ण ज्योतिर्मय नक्षत्र है।

महाकवि स्वयम्भू अपभ्रंश की अनामिका पर अधिष्ठित कालिदास है। अपभ्रंश मे रामकाव्य के प्रथम प्रणेता होने के कारण हम इन्हे अपभ्रंश का वाल्मीकि भी कह सकते है। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ ही वे काव्य, व्याकरण अलकार और छन्दशास्त्र के निष्णात विद्वान् थे। विक्रम की सातवी आठवी शताब्दी मे इनका जन्म कर्नाटक मे हुआ था। इनके पिता का नाम मरुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था।

'पउमचरिउ' 'रिट्ठणेमिचरिउ' और 'स्वयम्भूछन्द' स्वयम्भू की सख्यात कृतियाँ है। 'पउमचरिउ' रामकथा पर आधारित है और इसमे पाँच काण्ड है। गुरु-वन्दना से कथा आरम्भ होती है। इसके सभी पात्र जिनभक्त है। कथा के अन्त मे राम निर्वाण प्राप्त करते है और मुनीन्द्र उपदेश देते हुए कहते है कि राग से दूर रहकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

'रिट्ठणेमिचरिउ' का सम्बन्ध हरिवश तथा महाभारत की कथा से है। इसमे जैनो के बाईसवे तीर्थकर नेमिनाथ श्रीकृष्ण एव पाण्डवो का चित्रण किया गया है। 'स्वयम्भूछन्द' छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इसे अगर हम अपभ्रंश का 'अष्टाध्यायी' कह ले तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इसके प्रथम तीन अध्यायो मे प्राकृत के वर्णवृत्तो का तथा शेष पाँच अध्यायो मे अपभ्रंश के छन्दो का विशद विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

लोकभाषा मे काव्य रचनाकर स्वयम्भू ने अपभ्रंश को साहित्यिक गरिमा प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य किया और सदा के लिए अमर हो गये। महाकवि तुलसीदास से शताब्दियो पूर्व उन्होने लोकभाषा मे काव्य सृजन की प्राथमिकता ली थी। महाकवि बाणभट्ट की तरह इनकी अधूरी कृतियो को भी पूरा करने का श्रेय इनके पुत्र त्रिभुवन को प्राप्त है। वस्तुत महाकवि स्वयम्भू अपभ्रंश के प्रथम आचार्य और कालजयी रचनाकार है। 'पउमचरिउ' मे उनकी मौलिक उद्भावनाएँ अत्यन्त आकर्षक और मनोहारी है। इस दृष्टि से 'पउमचरिउ' के प्रारम्भ मे कचुकी द्वारा वृद्धावस्था का यथातथ्य वर्णन और उसपर राजा दशरथ की प्रतिक्रिया आदि दर्शनीय है।

अपभ्रंश साहित्य मे महाकवि स्वयम्भू के बाद महाकवि पुष्पदन्त का नाम आता है। कर्नाटक प्रदेशान्तर्गत बरार निवासी पुष्पदन्त कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट

और माता का नाम मुग्धादेवी था। पुष्पदन्त पहले शैव मतावलम्बी थे। बाद मे अपने आश्रयदाता के अनुरोध पर जैन धर्मावलम्बी होकर कविकर्म मे प्रवृत्त हो गये थे।

'तिसट्ठि महापुरिसगुणालकार' अथवा 'महापुराण', 'णायकुमारचरिउ' और 'जसहरचरिउ' पुष्पदन्त की तीन महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है। 'महापुराण' आदिपुराण और उत्तरपुराण नामक दो खण्डो मे विभक्त है। इसमे चौबीस तीर्थकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेवो की कथाएँ वर्णित हैं। भाषा और साहित्य दोनो ही दृष्टियों से यह एक प्रशसनीय रचना है।

'णायकुमारचरिउ' खण्डकाव्य है जिसमे श्रुतपचमी का माहात्म्य-वर्णन और नागकुमार का चरित्राकन किया गया है। 'जसहरचरिउ' भी चरित्रप्रधान काव्य है। इसमे यशोधर की जीवन कथा वर्णित है। अपभ्रश भाषा की महत्त्वपूर्ण रचना होने के साथ ही इसे महाकवि पुष्पदन्त की सर्वाधिक प्रशसित कृति होने का सौभाग्य प्राप्त है। प्रकृति और उसके सौन्दर्य से अत्यन्त निकटतर परिचय होने के कारण पुष्पदन्त के वर्णन अत्यन्त जीवन्त और कलात्मक है। वे आत्म-सम्मानी और स्वाभिमानी पुरुष थे। 'महापुराण' के अनुसार व्यक्ति के स्वाभिमान का खण्डन उन्हे कतई स्वीकार नही था – ''णउ पुरिसहु अहिमाणविहडणु।''

महाकवि पुष्पदन्त ने विशुद्ध धार्मिक भाव से साहित्य सृजन का कार्य किया है। 'महापुराण' के प्रथम अध्याय मे उन्होने स्पष्ट लिखा है – ''भरव राजा की स्तुति मे काव्य बनाने से जिस 'मिथ्यात्व' ने जन्म लिया था, उसे दूर करने के लिए ही मैने 'महापुराण' की रचना की है।' शुद्ध धार्मिक भाव से साहित्य सृजन की यह प्रवृति अपभ्रश से हिन्दी मे भी आयी। फलस्वरूप आदिकाल मे धार्मिक साहित्य की एक स्वतत्र धारा प्रवाहित होती रही, जिसका विकास मध्यकालीन भक्तिकाव्य के रूप मे हुआ। इस भक्तिधारा के आविर्भाव मे महाकवि स्वयम्भू का उल्लेखनीय योगदान था और इसे पल्लवित-पुष्पित करने मे महाकवि पुष्पदन्त ने अपनी समस्त काव्यात्मक प्रतिभा अर्पित कर दी थी। इनका जन्म विक्रम की दसवी शताब्दी मे दक्षिण भारत में हुआ था।

पद्मकीर्ति की प्रसिद्ध रचना 'पासचरिउ' है जिसमे पार्श्वनाथ का सम्पूर्ण चरित्र वर्णित है। इनका समय सवत् 992 के आसपास है। धवल ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' नामक विशाल ग्रथ की रचना की थी। इनका समय विक्रम की दसवी-ग्यारहवी सदी है। अपभ्रश के प्रमुख कवि धनपाल ने दसवीं सदी मे 'भविसयत्तकहा' की रचना की थी। इसमे सज्जन-दुर्जन-स्मरण तथा श्रुतपचमी-फल की व्याख्या करते हुए कथा का श्रीगणेश किया गया है। धर्मभावना इस कथा का भी मेरुदण्ड है तथापि लोकहृदय की विभिन्न स्थितियो से इसका निकटतर सम्बन्ध है। इसमे स्वाभाविक घटनाओ के सयोजन द्वारा एक वणिक की कथा वर्णित है। धनपाल की यह काव्यकृति चरित काव्यो की एक नयी कडी है, जिसका प्रभाव आदिकालीन हिन्दी रचनाओ पर भी स्पष्टत परिलक्षित होता है। हरिषेण की रचना 'धम्मपरीक्षा' कर्मकाण्ड पर करारा व्यग्य करती है। पुराण कथाओ पर भी इसमे कटु प्रहार किया गया है। इसमे विभिन्न छन्दो का प्रयोग कवि के विस्तृत छन्दज्ञान का परिचायक है। इनका समय विक्रम सवत् 1040 के आसपास है।

महाकवि वीर की गणना अपभ्रश के यशस्वी कवियो मे होती है। इनके पिता देवदत्त भी महाकवि थे। इनका जन्म मालवा के गुलखेड नामक गाँव मे एक जैन धर्मावलम्बी परिवार मे ग्यारहवी शताब्दी मे हुआ था। इनका जीवनकाल विक्रम सवत् 1010 1085 तक माना गया है। इनकी माँ का नाम श्री सन्तुवा था। महाकवि वीर प्रारम्भ मे सस्कृत मे काव्य-रचना करते थे परन्तु बाद मे वे अपभ्रश मे रचना करने लगे।

अपनी एकमात्र कृति 'जबूसामिचरिउ' के कारण इन्हे अपभ्रश साहित्य मे अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसमे जैनधर्म के अन्तिम केवलि 'जबूस्वामी' का जीवन चरित ग्यारह सन्धियो मे वर्णित है। जबूस्वामी भगवान महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामी के शिष्य थे। भगवान महावीर के निर्वाण के चौसठ वर्ष बाद इन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ था। जबूस्वामी के कथानक को महाकाव्योचित महिमा से मण्डित कर महाकवि वीर ने अपभ्रश साहित्य को अलकृत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जबूस्वामी मे मनुष्य जन्म को रत्न के समान – ''इय मणुयजम्मु माणिक्कसमु'' – बताया गया है और कहा गया है कि जो मूढ व्यक्ति रति-सुख और विषय-

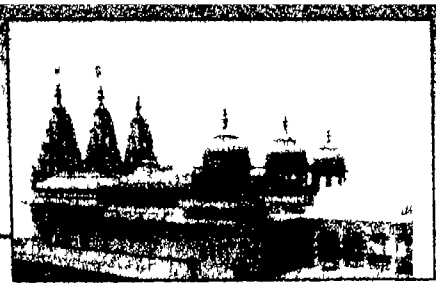

वासनाओ मे अन्धा बना रहता है, वह नाश को प्राप्त होता है –
"इय विसयधु मूढु जो अच्छइ/कवणभति मो पलयहो गच्छइ।"

कवि नयनन्दि मुनि जैन आचार्य श्री कुन्दकुन्द की परम्परा मे आते है। आप संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के उच्चकोटि के विद्वान् तथा छन्दशास्त्र और काव्यशास्त्र के निष्णात आचार्य थे।

'सुदंसणचरिउ' और 'सयल विहिविहाणकव्व' नयनन्दि मुनि रचित दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है। 'सुदंसणचरिउ' मे सुदर्शन केवलि का चरित्रांकन किया गया है – 'हे पुत्री ! तुम्हारे द्वारा स्वप्न मे श्रेष्ठ ऊँचा और सुन्दर पर्वत देखा गया अत इसका नाम सुदर्शन रखा जाए।' इसकी रचना अवन्ति देश की धारानगरी के जिनमन्दिर मे राजा भोज के शासनकाल मे हुई थी। छन्दो की विविधता और विचित्रता की दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्त्व है। इसमे लगभग 85 छन्दो का प्रयोग किया गया है। नयनन्दि मुनि की दूसरी रचना 'सयलविहिविहाणकव्व' सम्प्रति अप्रकाशित है। नयनन्दि का समय विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी है।

कई भाषाओ के ज्ञाता कवि कनकामर का जन्म ब्राह्मण वंश मे हुआ था। जैनधर्म से प्रभावित होकर आपने जैनधर्म अंगीकार किया और फिर बाद मे दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की। मुनि दीक्षा के उपरान्त ही आप 'मुनि कनकामर' के नाम से लोक विख्यात हुए। ग्यारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध को आपका समय माना जाता है। आपके गुरु का नाम पंडित मंगलदेव था।

'करकण्डुचरिउ' आपकी एकमात्र रचना है जिसका अपभ्रंश काव्य परम्परा मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'करकण्डु' इस चरित प्रधान काव्य का नायक है। सम्पूर्ण रचना मे विस्तार से उसका चरित्रांकन किया गया है – "हे पुत्र ! यह उच्च पुरुष की कहानी जो गुणो की परम्परावाली है तेरे लिए कही गयी है, इसको तू हृदय मे समझ" –

एह उच्चकहाणी कहिय तुज्झ, गुणमारणि पुत्तय हियइँ बुज्झ। 2.18

जैन साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य मे भी करकण्डु को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है और दोनो ही साहित्यो मे उसे 'प्रत्येक बुद्ध' माना गया है।

इस सन्धियो के इस काव्य मे वीर, शृंगार और शान्त रस की अद्भुत त्रिवेणी हमे देखने को मिलती है। इसमे श्रुतपंचमी फल और पंचकल्याणक विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है। धर्म और संस्कृति के तत्कालीन स्वरूप चित्रण के साथ ही इसमे मन्दिरो की स्थापत्य कला और शिल्पांकन का चित्रण कर इस कवि ने ऐतिहासिक वैशिष्ट्य प्रदान किया है।

महाकवि रइधू को अपभ्रंश साहित्य मे सर्वाधिक साहित्य सृजन का श्रेय प्राप्त है। इनके पिता का नाम साहू हरिसिंह तथा माता का नाम विजयश्री था। साहित्य सृजन की प्रेरणा और प्रतिभा इन्हे अपने पिता से उत्तराधिकार मे मिली थी। मूर्तिनिर्माण मे भी उनकी विशेष अभिरुचि थी। अपनी रचनाओ मे गोपाचलनगर-ग्वालियर का जैसा विश्वसनीय वर्णन इन्होने किया है उससे लगता है कि इनका जन्म संभवत ग्वालियर या उसके आसपास हुआ होगा। विक्रम संवत 1439 से 1530 तक इनका समय माना जाता है।

महाकवि रइधू ने कुल कितने ग्रंथो का प्रणयन किया था यह निश्चित प्रामाणिक रूप से ज्ञात नही हो सका है। सम्प्रति उनके निम्नलिखित 28 ग्रंथ बताये जाते है – 1 बलभद्दचरिउ 2 महेसरचरिउ 3 कामकहारयणकंडु 4 जसहरचरिउ 5 पुण्णासवकहा 6 अप्पसंबोहकव्व 7 सावयचरिउ 8 सुकोसलचरिउ 9 पासणाहचरिउ 10 सम्मइजिणचरिउ, 11 सिद्धचक्कमाहप्प, 12 वित्तसार 13 सिद्धन्तत्थसार 14 धण्णकुमारचरिउ 15 अरिट्ठणेमिचरिउ, 16 जीवंधरचरिउ, 17 सोलहकारणजयमाल, 18 दहलक्खणजयमाल 19 सम्मत्तगुणणिहाणकव्व 20 संतिणाहचरिउ, 21 बारहभावना 22 संबोहपंचासिका 23 महापुराण, 24 पज्जुण्णचरिउ 25 करकंडुचरिउ 26 सुदंसणचरिउ 27 रत्नत्रयी और 28 भावसंग्रहकहा।

'धण्णकुमारचरिउ' मे एक श्रेष्ठिपुत्र धन्यकुमार का जीवनचरित वर्णित है। यह एक पौराणिक चरितकाव्य है। अनगिन आपदाओ के बाद भी वह अपना धैर्य और साहस बनाये रखता है। अन्तत अपने साले शालिभद्र के वैराग्य से प्रभावित होकर वह भी वैरागी बन जाता है। अपनी दु ख-दग्धा माता से वह कहता

है – "तू मन में ससार को अनित्य जान। व्यक्ति मोह से जकडा हुआ मेरा-मेरा करता है, आयु के समाप्त होने पर कोई भी किसी को पकड नही सकता। अत हे माता ! अब और विलम्ब मत करो। तुम जिनधर्म को ग्रहण करो " (3-21)।

आचार्य हेमचन्द्र सूरि अपभ्रश के पाणिनी है। सस्कृत प्राकृत अपभ्रश आदि कई भाषाओ के वे प्रकाण्ड पण्डित थे। पाणिनी व्याकरण की व्याख्या और टीका तक ही इन्होने अपने को सीमित नही रखा बल्कि अपने समय तक की भाषाओ के व्याकरण बनाये। इस दृष्टि से इनके 'शब्दानुशासन' को आज भी विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है। उन्होने इस ग्रथ को अपने आश्रयदाता गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिंह को समर्पित किया था। इसलिए इसे 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' के नाम से भी जाना जाता है।

आचार्य सूरि का जन्म ई सन् 1088 मे गुजरात के चक्कलपुर, धधूका नामक गॉव मे हुआ था। इनके पिता का नाम चाचिग तथा माता का नाम पाहिणी था। बचपन मे इन्हे चगदेव के नाम से पुकारा जाता था। सन् 1109 ई मे अन्हिलवाड जैन मठ की गुरु गद्दी पर आसीन होने के पश्चात ये 'आचार्य सूरि' पद से विभूषित हुए और आचार्य हेमचन्द्र सूरि कहलाने लगे। इनका अधिकाश साहित्य सृजन इसी मठ मे हुआ था।

आचार्य सूरि को राज्याश्रय देनेवालो मे गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराजा जयसिंह (सवत् 1150 1199) और उनके भतीजे कुमारपाल (स 1199 1230) प्रमुख थे। आचार्य सूरि की प्रेरणा और प्रभाव से ही कुमारपाल ने अन्त मे जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। आचार्य की रचनाओ मे 'अभिधान चिन्तामणि' 'योगशास्त्र', 'छन्दोऽनुशासन', 'देशी नाममाला' 'द्वयाश्रय काव्य' 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष' और 'शब्दानुशासन' के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

आचार्य सूरि बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। अपभ्रश भाषा और साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य इन्होने किया। ये अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और प्रशसित जैन आचार्य थे। अपने शब्दानुशासन और छन्दोऽनुशासन में इन्होने अपभ्रश के अनेक दोहे उद्धृत किये है जो सयोग वियोग, वीर उत्साह, हास्य नीति अन्योक्ति आदि से सम्बद्ध है। इन दोहो का साहित्यिक सौन्दर्य सम्पूर्ण अपभ्रश साहित्य मे सबसे अलग है। उदाहरण के लिए 'शब्दानुशासन' मे उद्धृत कुछ दोहे द्रष्टव्य है –

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज तु वयमिअहु जइ भग्गा घरु एतु॥

अर्थात् भला हुआ, हे बहिन ! जो हमारा कान्त मारा गया। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मै अपनी समवयस्काओ से लज्जित होती।

हेमचन्द्र के दोहे मणियो की मजूषा के समान है।

दिअहा जन्ति झडप्पडहिं पडहिं मणोरह पच्छि।
ज अच्छइ त माणिअ इ होसइ करतु म अच्छि॥

– दिन झटपट व्यतीत हो जाते है मनोरथ पीछे रह जाते है, जो होना है वह होगा ही ऐसा मानकर सोचता हुआ हो मत बैठ।

सरिहिं न सरहिं न सरवरहिं न वि उज्जाण-वणहिं।
देस रवण्णा होन्ति वढ ! निवसन्तेहिं सु अणेहिं॥

– हे मूर्ख ! न नदियो से न झीलो से न तालाबो से न ही उद्यानो और वनो से देश सुन्दर होते है। वे तो सज्जनो द्वारा बसे हुए होने के कारण ही सुन्दर होते है।

अपनी तलस्पर्शी प्रतिभा और अपभ्रश के सचयन-सरक्षण के लिए आचार्य सूरि अपभ्रश साहित्य मे सदा सम्मान के साथ स्मरण किये जाते रहेगे।

इस भाग के अन्य प्रसिद्ध कवियो मे श्रीचन्द्र हरिभद्र रत्नसगणि लक्खण लक्खमदेव सोमप्रभ सूरि शार्ङ्गधर, जयमित्रहल्ल और हरिदेव आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इस तरह जैन अपभ्रश साहित्य सभी दृष्टियो से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धर्मप्रधान काव्य होते हुए भी इनमे चरित्रो का अतिमानवीय रूप नही दिया गया है। जगत् और जीवन के प्रति इन कवियो का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ और सन्तुलित रहा है। परलोक के सम्मुख लोक को तिरस्करणीय या उपेक्षणीय इन्होने कभी नही समझा। अच्छे कर्म करनेवाले को हमेशा अच्छा फल

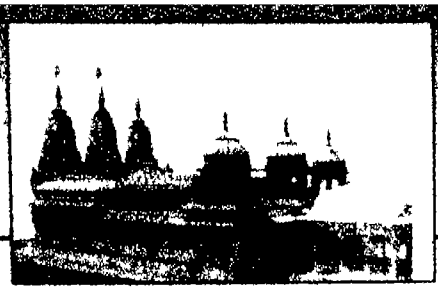

मिलता है, यही इनका सबसे बड़ा सन्देश है। जैनधर्म में सत्य, अहिंसा, तप एवं संयम को मानवीय शक्तियों के समुचित विकास के लिए अनिवार्य बताया गया है। अतः जैन अपभ्रंश साहित्य में भी सत्य, अहिंसा, सदाचरण और आत्मसाधना आदि पर विशेष बल दिया गया है।

शिल्प की दृष्टि से इन प्रबन्ध काव्यों में खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों मिलते हैं। कडवकबद्ध शैली का प्रयोग लगभग सभी रचनाओं में किया गया है। अलंकार परम्परा के पालन के साथ ही इन्होंने तत्कालीन जीवन से नये उपमान भी लिये हैं। तत्कालीन इतिहास के अध्ययन और अनुसंधान की दृष्टि से भी जैन अपभ्रंश साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ – बौद्ध धर्म की महायान शाखा की परिणति वज्रयान, मंत्रयान, कालचक्रयान, सहजयान तथा तंत्रयान आदि के रूप में सामने आयी। आचार्यों ने इनके सिद्धान्त विवेचन के लिए अपभ्रंश भाषा को ही माध्यम बनाया। विद्वानों ने इन ग्रन्थों का हार्दिक अभिनन्दन कर आलोचना और अनुसंधान का पथ प्रशस्त किया। श्री हरप्रसाद शास्त्री ने 'बौद्ध गान ओ दोहा' नाम से सिद्धों की रचनाओं को प्रकाशित कराया। डॉ. चटर्जी, डॉ. शहीदुल्ला, डॉ. बागची और सुकुमार सेन प्रभृति विद्वानों ने प्रणयन, प्रकाशन की इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

सिद्धों की इन रचनाओं में दो प्रकार की भावधारा मिलती है – पहली सिद्धान्त विवेचन की और दूसरी उपदेश तथा खण्डन मण्डन की। वज्रयान की पहली विशेषता शून्यवाद और दूसरी सर्ववाद की भावना है। बाद में इनमें और भी कई आचारों का समावेश हुआ जिनमें पंचमकार मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा और मैथुन प्रधान हैं।

चौरासी सिद्धों की रचनाओं में प्रायः मिलती जुलती बातें कही गयी हैं। अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अन्तस में रहनेवाले सहजानन्द की उपलब्धि इनका परम लक्ष्य है। अन्य मार्गों को टेढ़ा बताकर सहज मार्ग को सीधा कहा गया है और गुरु की आवश्यकता को अनिवार्य बताया गया है। इन सिद्धों की रचनाओं में छन्दों की विविधता नहीं के बराबर है। 'चर्यागीत' में गेय पद हैं और 'दोहा कोश' का प्रधान छन्द दोहा है। कुछ सोरठे तथा अन्य छन्द भी हैं। सिद्धों की भाषा के दो रूप हैं – पूर्वी अपभ्रंश और शौरसेनी अपभ्रंश। इनका समय सन् 800 से 1000 तक है। इन्हीं चौरासी सिद्धों में सबसे वरिष्ठ सरहपा या सरहपाद को कतिपय विद्वान् हिन्दी का प्रथम कवि मानते हैं।

तंत्रशास्त्र से सम्बद्ध एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश रचना 'डाकार्णव तंत्र' है। इसमें वज्रयान के सिद्धान्तों का विवेचन है। गुरु को इसमें अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भाषा शौरसेनी अपभ्रंश पर आधारित पूर्वी से प्रभावित अपभ्रंश है। इसमें चौपाई आदि प्रमुख छन्द हैं। इनका रचना काल ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास है।

शैवों की अपभ्रंश रचनाएँ – कश्मीरी शैव सम्प्रदाय की भी कतिपय रचनाएँ अंशतः अपभ्रंश में उपलब्ध होती हैं। अभिनव गुप्त का 'तंत्रसार' इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति को परम शिव मानकर इसमें शैव मत का विवेचन, विश्लेषण किया गया है। यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है पर इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में प्राकृत, अपभ्रंश में सम्पूर्ण अध्याय का सार दिया गया है। इसका रचनाकाल 1014 ई. के आसपास है।

भट्ट वामदेव महेश्वराचार्य की रचना 'जन्म मरण विचार' में परम शिव की शक्ति और उसके प्रसार का विवेचन है। इसमें एक दोहा अपभ्रंश में है। इसका रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ज्ञात होता है। गोरखनाथ के 'अमरौधशासन' में भी अपभ्रंश का एक पद्य मिलता है। कश्मीरी भाषा का प्राचीनतम उदाहरण लल्ला के 'लल्ला वाक्यानि' में देखने को मिलता है। शितिकण्ठाचार्य की रचना 'महानयप्रकाश' में अपभ्रंश के चौरानवे पद्य हैं। इसका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

शैव सम्प्रदाय की इन रचनाओं में साहित्यिकता का अभाव है, पर भाषा और भावधारा की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। मध्ययुगीन साधकों की भावधारा की पृष्ठभूमि इनकी सहायता से स्पष्टतर होती है।

ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे पद्य आते हैं जो अलंकार,

छन्द और व्याकरण की पुस्तका मे उदधृत है और दूसर वर्ग म प्रबन्धात्मक कृतियाँ आती है।

पथम वर्ग मे महाकवि कालिदास क 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अक के अपभ्रश पद्य आते है जो प्रकृति वर्णन आदि की दृष्टि म अत्यन्त सुन्दर और सजीव है। चण्ड के 'प्राकृत लक्षण' के दो दोहे, आनन्दवर्द्धन के 'ध्वन्यालाक' मे प्राप्त एक दाहा, भोज क 'सरस्वती कठाभरण' के अठराह अपभ्रश पद्य हमचन्द्र के अपभ्रश व्याकरण' मे उदधृत नीति, शृगार, प्रेम तथा नायक नायिकाआ के रूप-वर्णन आदि अनेक विषयो क छन्द, प्राकृत पगल के कुछ पद्य तथा 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे प्राप्त छन्द भी इस दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण है। य मुक्तक छन्द सख्या मे अधिक नही है और शृगार, धम वैराग्य नीति एव मुक्ति आदि की विविधता एव आलकारिक छटा से पूर्ण है। यही मुक्तक धारा रीतिकाल तक चली आती है और आध्यात्मिक स्वर क मन्द हो जाने क कारण केवल शृगारपूर्ण रह जाती है।

प्रबन्धात्मक कृतिया क दूसर वर्ग म उपलब्ध गथा की सख्या भी अपक्षाकृत कम है। 'सन्देशरासक' 223 पद्या मे समाप्त एक सन्देशकाव्य है। इसम विजयपुर की एक वियोगिनी नायिका एक पथिक द्वारा अपने प्रियतम तक अपना सन्देश भेजती है। इसम ऋतु वर्णन और नायिका क भावो का अत्यन्त आकर्षक चित्रण दखन को मिलता है। सवत् 1465 के पूर्व रचित अब्दुल रहमान की इस रचना की भाषा साहित्यिक अपभ्रश है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' एक ऐतिहासिक चरितकाव्य है जिसम कीर्तिसिह क वश, विजय, वीरता और अभिषेक आदि का चित्रण है। इसम काव्य वैभव का अभाव है और भाषा मैथिली मे पभावित है। विद्यापति का समय चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी है। इनकी दूसरी रचना 'कीर्ति पताका' म भी अपभ्रश के कतिपय पद्य है।

हिन्दी साहित्य पर अपभ्रश का प्रभाव – हिन्दी पर अपभ्रश के प्रभाव को रेखाकित करनेवालो मे पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलरी डॉ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ हीरालाल जैन, महापडित राहुल साकृत्यायन, डॉ हरिवश कोछड़, लालचन्द गाँधी हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी, चन्द्रमोहन घोष, हरप्रसाद शास्त्री, जगदीशचन्द्र जैन, डॉ प्रबोधचन्द्र बागची, बाबूराम सक्सेना, डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ नामवर सिह, डॉ देवेन्द्रकुमार जैन, सुकुमार सेन, रामसिह तोमर, पी डी गुण, डॉ शहीदुल्ला, सी डी दलाल, जी वी तगार, डॉ वीरेन्द्र श्रीवास्तव, कस्तूरचद कासलीवाल एव डॉ कमलचन्द सागाणी आदि क नाम विशेष उल्लखनीय है। सबस पहल नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग-2 मे लिखते हुए गुलरीजी न कहा कि अपभ्रश का पुरानी हिन्दी ही कहना चाहिए – "विक्रम की सातवी से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी मे परिणत हो गयी।" इसी तरह स्वयम्भू तथा पुष्पदन्त की रचनाओ को अपने ग्रथ 'हिन्दी काव्यधारा' म सकलित करते हुए महापडित राहुलजी ने कहा कि यह अपभ्रश पुरानी हिन्दी ही है और स्वयम्भू इस हिन्दी का सर्वोत्तम कवि।

शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रश मे विकसित होने के कारण हिन्दी साहित्य का अपभ्रश स प्रभावित होना अत्यन्त स्वाभाविक है। विकासोन्मुख अपभ्रश क प्रभाव म हिन्दी साहित्य क विभिन्न अग कथा साहित्य काव्य छन्द और काव्यरूप सभी प्रभावित और पल्लवित हुए तो इसम किसी को कोई आश्चर्य नही होना चाहिए।

हिन्दी क आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासा' पर अपभ्रश का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चरित काव्य होने के साथ वह रासक काव्य भी है, अत उस पर अपभ्रश के चरित काव्यो एवं रासक काव्या का प्रभाव पडा है। निजन्धरी कथाओ का प्रयोग, कथानक रूढिया, सयोग-वियोग के मार्मिक चित्र, ऋतु वर्णन एवं उनका उद्दीपनकारी प्रभाव ये सभी बाते अपभ्रश काव्या की तरह हम 'पृथ्वीराज रासा' म भी मिलती है। 'सदेशरासक' और 'पृथ्वीराज रासो' दोना का प्रारम्भ एक जैसा है और दोनो की प्रारम्भिक आयाएँ मिलती जुलती है। अपभ्रश काव्यो की प्रेम सम्बन्धी लगभग सभी काव्यरूढिया का योजनापूर्वक समावेश हम रासो म देखन को मिलता है। ऋतुवर्णन और विरहानुभूति का चित्रण भी 'सदेशरासक' या 'ढोला मारू रा दोहा' मे हू-ब-हू मिलता है।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यो पर अपभ्रश के प्रबन्ध काव्यो का प्रभाव – जैन अपभ्रश साहित्य मे रास नामक अनेक रचनाएँ

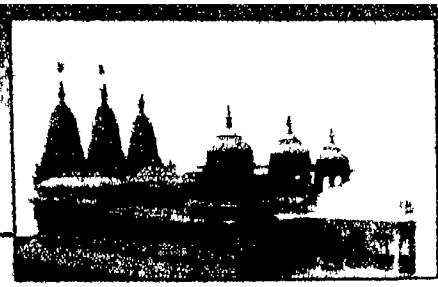

लिखी गयी, जैसे – 'उपदेश रसायन रास' (जिनदत्त सूरि, संवत 1295), 'पंचकल्याणक रास' (विनयचन्द), पंचपंडवचरित रास भरतेश्वर बाहुबलि रासउ और बुद्धिरास (शालिभद्र सूरि) रेवन्तगिरि रास (विजयसेन सूरि), गय सुकुमार रास (देवेन्द्र सूरि), जंबूसामि रासु (धर्मसूरि), योगी रासु (जोइन्दु) समाधि रास (मुनि चरितसेन) सन्देश रासक (अब्दुल रहमान) आदि। अपभ्रंश के ये प्रबन्ध काव्य हिन्दी काव्यों के मेरुदण्ड हैं। हिन्दी के प्रेमाख्यानक कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों को अपभ्रंश के इन्हीं चरितकाव्यों के आधार पर लिखा है। अतः अपभ्रंश के इन काव्यों और प्रेमाख्यानक काव्यों में अद्भुत समानता है। उदाहरण के लिए अपभ्रंश के 'भविसयत्तकहा' 'जयहरचरिउ' 'करकंडचरिउ' तथा हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों यथा पदमावत, मधुमालती, मृगावती आदि में अनेक समानताएँ देखी जा सकती हैं।

सिद्धों और नाथपंथियों के अपभ्रंश भाषा में लिखित काव्य का हिन्दी सन्त काव्य पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। हिन्दी के सन्त कवियों ने लगभग उन्हीं रूढ़ियों, मान्यताओं एवं छन्दों को अपने काव्यों में प्रयुक्त किया है जो सिद्धों और नाथों के काव्यों में पाया जाता है। सदगुरु की जो महिमा सन्त काव्य में मिलती है उसे हम सहजयानियों, वज्रयानियों और नाथपंथियों के अपभ्रंश साहित्य में भी पाते हैं। इसी तरह बौद्ध चर्यागीतों में जैसी पद रचना है वह कालान्तर में कबीर आदि सन्तों की रचनाओं में भी देखने को मिलती है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "वे ही पद, वे ही राग रागनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के माननेवाले उनके पूर्ववर्ती सन्तों ने की थीं।"

डिंगल काव्य परम्परा के माध्यम से भी कबीर आदि सन्तों पर अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव पड़ा है। कबीर की साखियों में विरह की जो मार्मिक अभिव्यंजना देखने को मिलती है उसे अपभ्रंश साहित्य के अध्येता डिंगल काव्य विशेषकर 'ढोला मारू रा दोहा' से अत्यधिक प्रभावित मानते हैं। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं – "कबीर के अनेक दोहे जो भावप्रवण और मार्मिक होते हैं वे 'ढोला मारू रा दोहा' में भी मिलते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोक प्रचलित दोहों को कबीर ने भक्तिपरक बाना देकर अपना लिया।"

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' पर स्वयम्भूरचित 'पउमचरिउ' का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा है। महाकवि स्वयम्भू की तरह तुलसीदास ने भी प्रारम्भ में गुरु-वन्दना के बाद दुर्जनों और सज्जनों के सम्बन्ध में लिखकर रामकथा की तुलना सरोवर से की है। कथान्तर रूप में पूर्वकथा की योजना तथा श्रोता वक्ता के कई कई जोड़े उपस्थित करना भी अपभ्रंश काव्यों जैसा ही है।

केशवदास की 'रामचन्द्रिका' अपभ्रंश काव्य 'जिनदत्तचरित' से प्रभावित है और सूरदास के गेय पदों में 'गाथा सप्तशती' की झलक मिलती है। उनका एक दोहा हेमचन्द्र के दोहा से हू ब हू मिलता है, जैसे –

बाँह बिछोडवि जाहि तहुँ, हउ तवइ को दोसु।
हिअअट्ठिअ जइ नीसरहि, जाणउ मुंज सरोसु ॥
– हेमचन्द्र

बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानि के मोहि।
हिरदय से जब जाहु तो, सबल बदौगा तोहि॥
– सूर

मीरा की वाणी अपभ्रंश लोकगीत परम्परा के अत्यन्त निकट है। महाकवि विद्यापति के अलंकार ही नहीं, नायक नायिका भेद तथा अन्य परम्परागत विशेषताएँ भी अपभ्रंश काव्य से प्रभावित हैं। उनकी 'कीर्तिलता' में अपभ्रंश चरितकाव्यों के अनेक लक्षण सहज ही देखे जा सकते हैं। इसतरह महाकवि चन्दवरदाई से लेकर मीरा तक अधिकांश हिन्दी कवि अपभ्रंश काव्य से भलीभाँति परिचित और प्रभावित हैं।

मध्यकालीन हिन्दी कविता और रीतिकालीन शृंगारी काव्य भी अपभ्रंश के शृंगार काव्य से अत्यधिक प्रभावित है। बिहारी, देव, मतिराम आदि अनेक रीतिकालीन कवियों की शृंगारिक भावनाओं तथा तत्कालीन लक्षण ग्रंथों पर 'गाथा सप्तशती' का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बिहारी सतसई में 'गाथा सप्तशती' से अनेक स्थलों पर भावसाम्य है। बिहारी का सुप्रसिद्ध निम्न दोहा गाथा सप्तशती के मूल भाव पर ही रचित है –

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सौं बिध्यौ आगे कौन हवाल॥

संक्षेप में, हिन्दी काव्य का विषय ही नहीं उसकी रचनाशैली और छन्दों पर भी अपभ्रंश साहित्य का स्पष्ट प्रभाव है। अलंकारों के लिए भी हिन्दी अपभ्रंश की ऋणी है। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग भी हिन्दी में अपभ्रंश से आया। अपभ्रंश की अनेक लोकोक्तियाँ, मुहावरों और कथानक रूढ़ियों को भी हिन्दी ने सहर्ष अपना लिया है। इसतरह भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी साहित्य अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित है। यही कारण है कि अपभ्रंश की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और अध्येता आज भी अपभ्रंश भाषा और साहित्य के अध्ययन की अनिवार्यता को शिद्दत के साथ महसूस करते हैं।

अपभ्रंश भाषा साहित्य और हिन्दी अनुसन्धान – अपभ्रंश के विशाल और विलुप्त साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रथम श्रेय जर्मनी के सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री रिचर्ड पिशेल और डॉ हर्मन याकोबी को प्राप्त है। इन दोनों विद्वानों के अपभ्रंश साहित्य सम्बन्धी अध्ययन अनुसंधान और प्रकाशन का परिणाम इतना उत्साहवर्द्धक और विस्मयकारी सिद्ध हुआ कि हिन्दी, गुजराती मराठी और बंगला में अपभ्रंश भाषा और साहित्य सम्बन्धी अध्ययन अनुसंधान, सम्पादन और प्रकाशन का पथ अनायास रातोरात, प्रशस्त हो उठा और अपभ्रंश की शताधिक रचनाएँ विनष्ट और विलुप्त होने से बचा ली गयीं। इनके अतिरिक्त जार्ज ग्रियर्सन, भाण्डारकर, मुनि जिनविजय, प्रो हरिवल्लभ चन्नीलाल भायाणी प्रो हरि दामोदर वेलणकर, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डॉ, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ शिवप्रसाद सिंह, डॉ नामवर सिंह, डॉ वीरेन्द्र श्रीवास्तव और डॉ रामसिंह तोमर आदि विद्वानों के अपभ्रंश सम्बन्धी अध्ययन और अनुसंधान ने पाठकों और अनुसंधित्सुओं के मन में अपभ्रंश के प्रति दुर्निवार आकर्षण उत्पन्न कर दिया।

भारतीय विश्वविद्यालयों में अबतक अपभ्रंश सम्बन्धी जो अध्ययन और अनुसंधान कार्य सम्पन्न हो चुके हैं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

1	हरिवंश कोछड	अपभ्रंश साहित्य	दिल्ली 1952
2	देवेन्द्रकुमार जैन	अपभ्रंश साहित्य	आगरा, 1957
3	परममित्र	हेमचन्द्र के अपभ्रंश सूत्रों की पृष्ठभूमि और उनका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	बिहार 1960
4	देवेन्द्रकुमार जैन	हिन्दी भाषा और साहित्य पर जैन अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव	
5	नामवर सिंह	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	इलाहाबाद, 1961
6	राजनारायण पाण्डेय	महाकवि पुष्पदन्त दशवीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि	आगरा, 1963
7	देवेन्द्रकुमार जैन	भविसयत्त कहा और अपभ्रंश कथाकाव्य	आगरा 1964
8	वीरेन्द्र श्रीवास्तव	अपभ्रंश भाषा का अध्ययन ध्वन्यात्मक, रूपात्मक अर्थात्मक	पटना 1965
9	चंचलकुमारी	अपभ्रंश कथा साहित्य का अध्ययन	विश्वभारती, 1965
10	वासुदेव सिंह	अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद	वाराणसी 1996
11	इन्द्रपाल सिंह	अपभ्रंश साहित्य में शृंगार (डी लिट)	लखनऊ 1967
12	एन पी वर्मा	अपभ्रंश के अस्फुट साहित्यिक मुक्तक पद	बिहार 1967
13	परममित्र शास्त्री	सूत्र शैली और अपभ्रंश व्याकरण	वाराणसी, 1967
14	सिद्धनाथ पाण्डेय	अपभ्रंश के आख्यानक काव्यों (1700 ई तक) का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव	इलाहाबाद, 1969

15	मकटा प्र उपाध्याय	महाकवि स्वयम्भु अपभ्रंश भाषा के महान् कवि के जीवनवृत्त और उनके काव्य गुणों का समीक्षात्मक अध्ययन	आगरा 1969
16	प्रेमचन्द जैन	अपभ्रंश कथाकाव्यों का हिन्दी प्रेमकाव्यों के शिल्प पर प्रभाव	वाराणसी 1969
17	कैलाशनाथ टण्डन	पुष्पदन्त की भाषा	लखनऊ 1969
18	अम्बादत्त पन्त	अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति	आगरा 1969
19	राजवंश सहाय 'हीरा'	अपभ्रंश साहित्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ	वाराणसी 1970
20	नथुनीसिंह	अपभ्रंश और हिन्दी काव्य रूपों का तुलनात्मक अध्ययन	मगध 1971
21	प्रमोदकुमार सिंह	अपभ्रंश के हेम मुक्तकों की अर्थयात्रियाँ (डी लिट)	बिहार 1971
22	मदन पाण्डेय	अपभ्रंश के काव्यरूप और हिन्दी पर उनका प्रभाव	वाराणसी 1972
23	ओमप्रकाश शर्मा	अपभ्रंश के चरित काव्य एक अनुशीलन	विक्रम वि वि 1972
24	सूर्य ना पाण्डेय	चौदहवीं शताब्दी के अपभ्रंश हिन्दी साहित्य में वर्णित भारत	इलाहाबाद 1974
25	रामकिशोर	अपभ्रंश मुक्तक काव्य का हिन्दी मुक्तक काव्य पर प्रभाव	इलाहाबाद 1974
26	सुकुमारी चतुर्वेदी	सिद्ध हेम शब्दानुशासनगत अपभ्रंश का समग्र अनुशीलन और उसका हिन्दी पर प्रभाव	विक्रम वि वि 1975
27	श्यामला मरियम मलिक	पुष्पदन्त का रामकाव्य और कृष्णकाव्य एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	इन्दौर 1976
28	शिवसहाय पाठक	अपभ्रंश भाषा और साहित्य व्याकरण	भोपाल 1976
29	कैलाशनाथ टण्डन	अपभ्रंश के कवि (डी लिट)	लखनऊ 1983
30	सुरेन्द्र बहादुर सिंह	अपभ्रंश मुक्तक काव्य परम्परा का हिन्दी मुक्तक काव्य पर प्रभाव	लखनऊ 1984
31	प्रभाकर पाठक	हिन्दी साहित्य के विकास में अपभ्रंश साहित्य का योगदान	मिथिला 1984
32	योगेन्द्रनाथ मिश्र	सन्देश रासक का भाषावैज्ञानिक अध्ययन	वाराणसी, 1986
33	[illegible]	सन्देशरासक में प्रयुक्त शब्दों का व्युत्पत्तिपरक अध्ययन	रविशंकर, 1990

अपभ्रंश साहित्य के इस पुनरवलोकन से उसकी ऐतिहासिक महत्ता और साहित्यिक श्रेष्ठता का हमें परिचय और प्रमाण मिलता है। अपनी जीवन्त परम्पराओं और समृद्धशाली सृजनात्मक साहित्य के कारण यह आज भी अध्येताओं और अनुसंधाताओं के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। महान् वैयाकरणों और महाकवियों ने लोक जीवन के इस भव्यतम दर्पण को अलंकृत करने में अपनी प्रतिभा का नैवेद्य सहर्ष अर्पित किया। यही कारण है कि अपभ्रंश भाषा और साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान का सिलसिला आज भी जारी है। अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर की स्थापना का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

1 स्वशक्ति परापदर्शनिमित्तज्ञानभेदात् प्रत्येक बुद्ध बोधित विकल्प ।

– अपनी शक्तिरूप निमित्त से होनेवाले ज्ञान के भेद से प्रत्येक बुद्ध होते हैं।

– सर्वार्थसिद्धि, आचार्यपूज्यपाद, 10 9 937, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल वि स 2018।

2 हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्र द्विवेदी, 1961 ई ।

3 हिन्दी साहित्य कोश भाग – 1 ज्ञानमण्डल लि , म 2020।

4 हिन्दी साहित्य का इतिहास, नगेन्द्र 1973 इ ।

5 हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योग, नामवर सिह, 1971 ई ।

6 अपभ्रश भाषा और व्याकरण, शिवसहाय पाठक, 1976 ई ।

7 अपभ्रश काव्य सौरभ, डॉ कमलचन्द सोगाणी, 1992।

8 आलोचना, वर्ष 2, अक 4, जुलाई 1953।

9 शोध सदर्भ – 1,2 3 गिरिराज शरण अग्रवाल।

बलवागज, लहेरियासराय
दरभगा 846001 (बिहार)

जिनागम का रहस्य

''आप्तवचादि निबधनमर्थज्ञानमागम ''

भगवान महावीर स्वामी हमारे आप्त है तीर्थकर है। अत उनके वचनादि से होने वाले ज्ञान को आगम कहते है। इसको सिद्धात, शास्त्र तत्वार्थ, शासन के नाम से कहा जा सकता है। इसके विपरीत रागाद्वेषी और अज्ञानी मनुष्यो के वचनो को आगमाभास कहा जाता है। गुरुपरपरा अर्थात् सर्वज्ञदेव, गणधर देव प्रतिगणधर देव आरातीय आचार्य अर्वाचीन आचार्य एव आचार्य शृखलाबद्ध रूप आगत ज्ञान पापो का नाशक और पुण्य वर्द्धक होता है। वह आगम द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार से होता है। भाव आगम महत्वपूर्ण है। आप्त वचनो को सुनकर जो श्रावण प्रत्यक्ष होता है उसमे ज्ञान के लक्षण की अतिव्यप्ति है। अत अर्थपद तात्पर्य मे रूढ है प्रयोजनार्थक है। अर्थ ही तात्पर्य रूप से वचनो मे है। परन्तु द्रव्य आगम भी व्यर्थ नही होता है। कारण मे कार्य का उपचार करने से शब्द या श्रुत अथवा द्रव्य आगम कहना उचित है।

प्रत्येक आत्मा ज्ञानात्मक है। आत्मा के प्रमाण से ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान के प्रमाण से आत्मा प्रमाण है। जिन आत्माओ का ज्ञान प्रकट हो गया है वे केवलज्ञानी है। इतर ससारी आत्माये क्षायोपशमिक ज्ञानी होने से भेदयुक्त है यथा मन पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मतिज्ञानी। पूर्णज्ञानी समस्त त्रिकालवर्ती, द्रव्य गुणपर्यायो को जानता देखता है। उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए क्षायोपशमिक ज्ञानी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार पुरुषार्थ करते है। विपुलमति मन पर्ययज्ञानी, परमावधि, सर्वावधि वाले नियम से उसी पर्याय मे पूर्णज्ञानी हो जाते है। शेष अपनी केवल अवस्था को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उन्हे तदनुकूल पुरुषार्थ की आवश्यकता है। चारित्र मोहनीय कर्म का जितना अधिक क्षयोपशम होगा उतना ज्ञान भी प्रशस्त होता है। ज्ञान का स्वभाव ही स्व पर प्रकाशक है। यही पूर्ण ज्ञानी रूप परिणमन कर सकलज्ञ हो जाता है। परम्परागत सम्यक्ज्ञान, शुद्धात्मोपलब्धि मे सही कारण कहा जा सकता है। कषाय की मद दशा मे किये गये आगम के अध्ययन से उत्पन्न सम्यग्ज्ञान अवश्य ही उपयोगी है। द्रव्यसग्रह के टीकाकार कहते है कि ''अन्यद्वापरमागमविराधन विचारणीय किन्तु विवादो न कर्तव्य''। परमागम के अविरोध पूर्वक विचारना चाहिए, किन्तु कथन मे विवाद नही करना चाहिए। परम पूज्य मुनिकुजर समाधि सम्राट् दिगम्बराचार्य आदिसागर अकलीकर बार-बार अपने उपदेश मे कहते थे कि विवाद करने से अशुभ कर्मों का आस्रव होता है, आत्मा नाना कुयोनियो मे दुखी होती है, दीर्घ ससारी हो जाती है। अतएव सपूर्ण आगम अध्यात्म से अविरोध रूप से जानना चाहिए।

– आ सन्मतिसागरजी, महावीर जयन्ती स्मारिका 1995

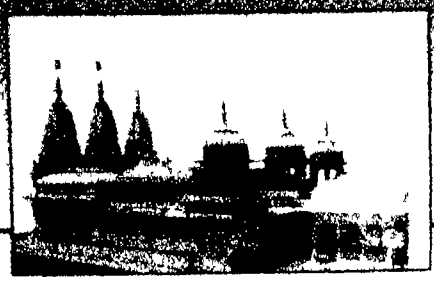

जैन·पाण्डुलिपियों की वर्तमान दशा, दिशा और समाधान

• डॉ कस्तूरचन्द 'सुमन'

जैन पाण्डुलिपियाँ भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। ये ऐसी स्रोत हैं जिनसे भारतीय संस्कृति की जानकारी ही नहीं साहित्य की विविध विधाओं का परिज्ञान भी होता है। आध्यात्मिक विकास की ये सोपान हैं। कतिपय पाण्डुलिपियों की तो देश में मात्र एक प्रति ही है, तो भी वे सम्पादित होकर प्रकाशित नहीं हो सकी हैं।

जैन दर्शन में स्वाध्याय को तप कहा गया है। अतः जैन मुनि नये नये शास्त्रों की रचनाओं में अपना कालयापन करते रहे हैं। कभी उन्होंने स्वान्तः सुखाय रचनाएँ कीं और कभी उन्होंने किसी अन्य की प्रेरणा से ग्रन्थ लिखे। अनेक ग्रन्थ कर्मक्षयार्थ भी रचे गये। ऐसी अनेक पाण्डुलिपियाँ देश के विभिन्न भण्डारों में संग्रहीत हैं।

पाण्डुलिपियों की दशा और दिशा जानने समझने के लिए इस विषय पर चिन्तन करने के पूर्व 'पाण्डुलिपि' क्या है? यह समझ लेना आवश्यक है। 'पाण्डुलिपि' शब्द पाण्डु और लिपि इन दो पदों के मेल से निर्मित हुआ है। इनमें 'पाण्डु' का अर्थ है खड़िया मिट्टी अथवा चाक तथा लिपि का अर्थ है विभिन्न भाषाओं के अक्षर। इस प्रकार पाण्डुलिपि उस हस्तलेख को कहा गया है जिसके प्रारूप को पहले लकड़ी के पट या जमीन पर खड़िया (पाण्डु) मिट्टी या चाक से लिखा जाता और फिर उसे शुद्ध करके उतार लिया जाता तथा उसी को पक्का कर लिया जाता था[1]। सामान्यतः अब प्रत्येक हस्तलिखित ग्रन्थ को पाण्डुलिपि कहा जाने लगा है।

पाण्डुलिपि के अंगों को उपादान संज्ञा दी जा सकती है। जो पाण्डुलिपि का नियोजक होता है वह पाण्डुलिपि तैयार करने के लिए विभिन्न उपादानों को एकत्रित करता है। नियोजक कोई भी हो सकता है। वह पाण्डुलिपि का स्वयं कर्ता भी हो सकता है और पाण्डुलिपि का प्रतिलिपिकार भी या वह व्यक्ति भी हो सकता है जिसे पाण्डुलिपियों की संरक्षात्मक देखरेख के लिए नियुक्त किया गया हो।

पाण्डुलिपियों के जो उपादान माने गये हैं वे हैं – लिप्यासन, लेखनी, मसि, लिपि, भाषा, डोरा, काष्ठ पट्टिकाएँ, वेष्टन, ग्रन्थि, हस्तनाल, रचयिता, लिपिकार एवं पाण्डुलिपि व्यवस्थापक तथा भाण्डागार।

उक्त उपादानों की दशा, दिशा और समाधान सम्बन्धी चिन्तन को प्रस्तुति ही प्रस्तुत आलेख का विषय है। अतः आइए अब हम पाण्डुलिपियों के उपादानों की वर्तमान दशा का विचार।

लिप्यासन

लेखन क्रिया के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग में लाया गया है उन्हें लिप्यासन (लिपि आसन) कहा गया है। इन वस्तुओं में पाषाणखण्ड, ईंट, सिक्के, मृण्मय पात्र, सीप, लौह, चमड़ा, कपड़ा, पत्र, छाल, कागज आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनमें जैन पाण्डुलिपियों के लिए पवित्रता एवं आवश्यक स्थान की दृष्टि से पत्र (ताड़पत्र, छाल, भूर्जपत्र), धातुपत्र, कपड़ा और कागज लिप्यासन के रूप में प्रयुक्त हुए। सर्वप्रथम ताड़पत्र और भोजपत्रों का प्रयोग हुआ। भोजपत्र हिमालय की तराइयों में उत्पन्न भूर्जवृक्षों की छाल से तैयार किये जाते थे। इसी प्रकार आदि में ताड़वृक्षों के पत्र भी प्रयोग में आये। ये दक्षिण भारत में सुलभ रहे। मूडबिद्री (कर्नाटक) के मठ में आज भी षट्खण्डागम की ताड़पत्रीय प्रति विद्यमान है। ऐसी पाण्डुलिपियों की सुरक्षा बहुत कठिन है। ताड़पत्र कागज के समान लचीले नहीं होते। वे चटक जाते हैं। भोजपत्र कागज के समान लचीला होता है किन्तु सहज उपलब्धता के अभाव में संभवतः इसका प्रयोग पाण्डुलिपियों में नहीं हो सका। भोजपत्र पर लिखी गयी जैन पाण्डुलिपियाँ अब तक देखने में नहीं आयी हैं। कागज का आविष्कार होने के पूर्व ये पत्र ही लिप्यासन के रूप में प्रयुक्त होते

---

1 डॉ सत्येन्द्र, पाण्डुलिपि विज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रकाशन, पृष्ठ ८।

रहे किन्तु कागज का आविष्कार होते ही सुरक्षात्मकता और सुलभता की दृष्टि से उसका प्रयोग किया जाने लगा।

कागज मे गलनशीलता होने के कारण उसे नमी से बचाया जाना आवश्यक था। जहाँ ऐसी पाण्डुलिपियो को नमी से नही बचाया गया, उनकी स्याही भ्रमिल हो गयी। स्याही मे गोद होने से पाण्डुलिपियो के पृष्ठ परस्पर मे चिपक गये और पृष्ठ अलग किये जाने पर चिपका हुआ अश भ्रष्ट हो गया। दीमक भी पाण्डुलिपियो की सुरक्षा मे बाधक हुई। अनेक पाण्डुलिपियाँ दीमक द्वारा खा ली गयीं। कागज भी अच्छा नही रहा, ताडपत्र के समान मोडने पर चटक गया। इस प्रकार पाण्डुलिपियाँ यथास्थिति मे सुरक्षित न रह सकी।

लेखनी

पाण्डुलिपियो की लेखनी विशेष प्रकार की होती थी। एक ही लेखनी का प्रयोग जिसमे हुआ है वह तो सुवाच्य रही किन्तु लेखनी बदलने ही सुवाच्यता मे अन्तर आया, सम्पादन मे कठिनाई हुई। पाण्डुलिपि के लिखने मे लेखनी के शुभाशुभ का भी ध्यान रखा जाता था। लेखनी के वर्ण को चातुर्वर्ण्य व्यवस्था मे जोडा गया है। कहा गया है कि श्वेत लेखनी ब्राह्मणी लाल वर्ण की क्षत्राणी पीत वर्ण की वैश्यवी और श्याम वर्ण की आसुरी होती है। इनका फल क्रमश. सुख, दरिद्रता, पुष्कल धन और धन-नाश बताया गया है। कहा भी है –

ब्राह्मणी श्वेतवर्णा च, रक्तवर्णा च क्षत्रिणी ।
वैश्यवी पीतवर्णा च, आसुरी श्यामलेखिनी ॥ १॥

श्वेते सुख विजानीयात् रक्ते दरिद्रता भवेत् ।
पीते च पुष्कला लक्ष्मी आसुरी क्षयकारिणी ॥ २॥

जैन पाण्डुलिपियो मे पाण्डु (पीत) वर्ण की (बास या नड-बरू से निर्मित) लेखनी का प्रयोग होता रहा है। वर्तमान मे ऐसा शुभाशुभ विचार नहीं किया जा रहा है।[1]

मसि

कर्मभूमि के आरम्भ मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने प्रजा की आजीविका के लिए असि मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह साधन बताये थे।[2] इस उल्लेख के आलोक मे कहा जा सकता है कि लेखन कार्य आजीविका का प्राचीन साधन है। प्राचीनतम सस्कृत मे काली स्याही को 'मसि' शब्द से व्यक्त किया गया है। मसि का अर्थ काजल होता है।

जैनाचार्य लिखने के लिए काली स्याही का प्रयोग करते थे। उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे प्रयुक्त काली स्याही इसका सफल प्रमाण है। मसि का निर्माण जल और काजल के मिश्रण से किया जाता था। इसमे नीम या खैर का गोद भी मिलाया जाता था। काजल-तिलो के तेल से तैयार होता था। कहा भी है –

जितना काजल उतना बोल तेथी दूणा गूद अकोल ।
जे रस भागगनो पडे, तो अक्षरे अक्षर दीवा जले ॥

मसि मे गोद का प्रयोग पाण्डुलिपि को नमी से बचाने को कहता है। जहाँ नमी से बचाव नही किया गया पाण्डुलिपियो के पृष्ठ चिपक हुए देखे गये है। रुपहरी, सुनहरी लाल, हरी, पीली स्याहियाँ भी प्रयुक्त हुई है।

लिपि

लिपि का कर्मभूमि के आरम्भ मे उदय हो गया था। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को ब्राह्मीलिपि सिखाई थी (मपु 16.108)। कालान्तर मे लिपियाँ बदलती गयीं। जैन पाण्डुलिपियाँ ब्राह्मी लिपि मे लिखी प्राप्त नही हुई किन्तु नागरी लिपि का प्रचुर प्रयोग हुआ। इस लिपि मे स्वरो को आकर्षक ढग से जोडना आरम्भ हुआ। अहार का शान्तिनाथ लेख इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है। इस लिपि पर ब्राह्मी का प्रभाव दिखाई देता है। सयुक्त अक्षरो का प्रयोग आज पढने मे कष्टप्रद-सा प्रतीत होता है।

भाषा

जैन पाण्डुलिपियो मे प्राकृत, सस्कृत अपभ्रश हिन्दी, कन्नड आदि भाषाओ का व्यवहार हुआ है। इन भाषाओ के विशेषज्ञो की अब कमी होती जा रही है जिससे पाण्डुलिपियो का सम्पादन यथेष्ट रूप मे नही हो पा रहा है।

डोरा

पाण्डुलिपियो के पत्र अस्त व्यस्त होकर खराब न हों इसके लिए प्रत्येक पत्र के बीचो-बीच एक निश्चित अलिखित स्थान

१ डॉ सत्येन्द्र, पाण्डुलिपि विज्ञान, पृष्ठ 50।
२ महापुराण पर्व 16, श्लोक 179।

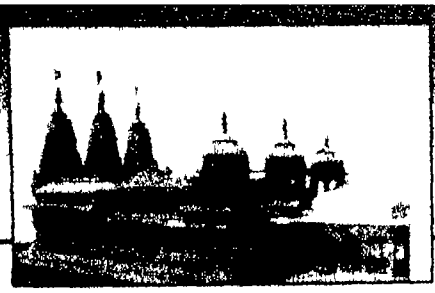

रखा जाता रहा है। इसमे एक छेद रहता था जिसम एक डोरी पिराई जाती थी। इसका प्रयोग ताडपत्रीय पाण्डुलिपिया म होता था। यह रीति कागज की पाण्डुलिपिया मे भी प्रयक्त हुइ किन्तु डोर का प्रयोग नही हुआ। पत्रो का न मिलना या पत्रो का खराब हो जाना डोरी के प्रयोग का न होने का परिणाम है।

काष्ठ-पट्टिकाएँ

पाण्डुलिपियो क पत्रा की सुरक्षा क लिए पाण्डुलिपि क ऊपर-नीचे एक काष्ठ पट्टिका रखी जाती थी। इनम नियत स्थान पर छेद रहता था। पाण्डुलिपि क पत्रो का डोरी काष्ठ-पट्टिका क छेद म पिराई जाती थी तथा काष्ठ पट्टिका सहित उस डोरी स पाण्डुलिपि को बाँधकर रखा जाता था। काष्ट पट्टिकाएँ पाण्डुलिपि क आकार की होती थी। इसम वष्टन का प्रभाव काष्ठ पट्टिका पर पडता था। पाण्डुलिपि बाँधन म खराब नहा होती था। वतमान मे काष्ठ पट्टिकाआ का स्थान पट्ठ का पट्टिया न ल लिया है। इनम अब छेद नही रहत। इनक काण खराब हो जान स पाण्डुलिपिया के पत्र खराब होने लागत ह।

ग्रन्थि

पाण्डुलिपिया क ऊपर नीच काष्ठ पट्टिकाआ का रखा जाता और पृष्ठो का सूत्रबद्ध करके धाग को काष्ठ पट्टिकाआ क छिद्र स निकाल कर उसे नारियल-खोपडी की चकरी म पिराया जाता और कस कर ग्रन्थि दी जाती थी। वतमान म यह व्यवस्था नहा रहा।

हडताल

पाण्डुलिपियो मे अशुद्ध स्थान पर हडताल का प्रयाग किया जाता था। इसम अशुद्ध शब्द आच्छल नही होत थ। आज शब्द काटन का प्रथा चल पडी है। इसम कभी कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

वेष्टन

सामान्यत पाण्डुलिपियाँ ऊपर नीच पाण्डुलिपि क आकार म कड पुट्ठ का रखकर वष्टना स कसकर बाँधा जाता था। वतमान म वष्टना स पाण्डुलिपि आच्छादित की जाती है कसकर नही बाँधी जाती और न स्वाध्याय क बाद यथास्थान रखा जाती है। फलस्वरूप पाण्डुलिपियो क पत्र नष्ट भष्ट होत रहते है।

रचयिता एव प्रतिलिपिकार

इन दोना की सेवाएँ आदरणीय रही है। सस्कृति की सुरक्षा मे इनका अपूर्व यागदान रहा है। अतीत मे जेसा सम्मान इन्ह मिला है वसा आज नहीं रहा। यही कारण है कि वर्तमान मे सम्पादन कार्य नही हो रहे। पाण्डुलिपियाँ आज भी अलमारियो मे बन्द हैं। समाज का इस ओर ध्यान कम ह।

1 पाण्डुलिपियो की सुरक्षा दिशा और समाधान

पाण्डुलिपियाँ बडे कष्ट से तैयार की जाती है। यत्नपूर्वक इनका जल वाय अग्नि मूषक और चोरो स रक्षा की जावे। कहा भी गया है –

कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेन परिपालयेत् ।
उदकानिल चौरेभ्यो, मूषकेभ्यो हुताशनात् ॥

एक अन्य नीतिकार न तो पाण्डुलिपि या पुस्तक का किसी को भी दन का निषध किया है। उसकी मान्यता ह कि दी हुइ पाण्डुलिपि या पस्तक लौटकर नही आती और यदि आती है तो वह भष्ट होकर आती है। नीतिकार न लिखा है –

लेखनी पुस्तिका नारी परहस्ते न दीयते ।
कदाचित् पुनरायाति नष्टा, भ्रष्टा च मर्दिता ॥

इन नीतियो क आलाक म कहा जा सकता है कि पाण्डुलिपिया का आदान प्रदान तो हो किन्तु दोनो पक्ष सरक्षात्मक दृष्टि स इमानदारी का परिचय द।

पाण्डुलिपिया की सुरक्षा – इस विषय के अन्तर्गत पाण्डुलिपिया का शिथिलबन्धन स बचाया जाना आवश्यक ह। उन्ह कसकर बाँधना चाहिए ताकि शीत और धूप मे वह सरलतापूवक प्रभावित न हो। वेष्टन न इतना बडा हो कि अनावश्यक रूप पाण्डुलिपि म लपेटना पडे और न इतना छोटा हो कि पाण्डुलिपि आच्छादित भी न हो सके।

पाण्डुलिपि मूख के हाथ म न दे। यह इसलिए, क्योकि मूर्ख को उसका महत्त्व ज्ञात नही होता। महत्त्व ज्ञात न होने से वह उसका दुरुपयाग भी कर सकता है। कहा भी है –

तैलाद् रक्षेज्जलाद् रक्षेद् रक्षेच्छिथिलबन्धनात् ।
मूर्खहस्ते न दातव्यमेव वदति पुस्तकम् ॥

2 पाण्डुलिपि-भण्डारागार

जहाँ पाण्डुलिपियाँ सगृहीत की गयी हो वहाँ खाने-पीने की वस्तुएँ नही रखी जाव अन्यथा वस्तुओ की गध पाकर कीटाणुओं

का आवागमन होगा। मूषक भी आ सकते हैं और पाण्डुलिपियो को खाकर-काटकर हानि पहुँचा सकते हैं। धूम्रादि भी पाण्डुलिपियो के पास वर्जनीय है। धुएँ से पत्र धूमिल होंगे।

जहाँ पाण्डुलिपियाँ रखी जावे वहाँ नमी/सीलन न हो। स्थान पक्का हो। दीवालो मे रन्ध्र न हो ताकि कीटाणुओ को बैठने को जगह न मिले, लू और धूलि का सहज प्रवेश न हो। खिडकियो मे, नालियो मे जालियाँ हो ताकि चूहे न आ सके। दरवाज मजबूत हो तथा उनमे बडे मजबूत ताले लगाये जाव, अग्नि के बचाव का भी पूर्ण ध्यान रखा जावे। धूम्रपान पूर्णत वर्जनीय रह।

तहखाने सुरक्षित कहे जा सकते है। यह पढने मे आया है कि आमेर, नागोर, मौजमाबाद, अजमेर, जैसलमेर, फतहपुर, दूनी, मालपुरा सागानेर आदि म आज भी भू गर्भित कक्ष है जिनमे मूर्तियाँ भी रखी जाती है।

3 पाण्डुलिपियो को रखने की अलमारियाँ

पाण्डुलिपियो को रखने की अलमारियाँ काष्ट की उपयोग म न लेकर लोह निर्मित अलमारियाँ उपयोग म लाई जावे। काष्ट की अलमारियो म दीमक प्रवेश कर जाती है और पाण्डुलिपिया को खा लेती है। केवल यह ही नही गर्म और ठण्डी हवाएँ भी प्रवश कर जाती है। सीलन का भी ऐसी अलमारियो पर प्रभाव पडता है और पत्रा के चिपकने का भय रहता है।

लोह निर्मित अलमारियाँ भी भू-सतह से कुछ ऊँचाइ पर रखनी चाहिए। उनमे परस्पर मे अन्तर रखना भी उपयुक्त माना गया है। दीवाला से सटाकर रखना भी वर्जनीय है।

4 पाण्डुलिपियो का पठन-पाठन

पाण्डुलिपिया का स्पर्श हाथ धोकर किया जाव। उन्ह पढने के लिए या सम्पादनादि कार्य के लिए नीच न रखकर चोक को साफ करके उस पर रखना चाहिए। पक्तियो पर अँगुली न रखकर काइ स्केल या पटरी रखी जावे। कोई निशानादि न लगाव। उपयोग करन क पश्चात् वेष्टन से कसकर बाँधे और सुरक्षित स्थान म रखे।

5. चिपके पृष्ठ

पाण्डुलिपियो के चिपके पृष्ठो को अलग-अलग करने मे उतावली न की जावे। पहले नमी सचरित करें। जब नमी पहुँच जावे तब चाकू से धीर-धीरे उन पृष्ठो को अलग-अलग कर। पृष्ठो पर हल्का गुलाबजल छिडकने से फिर पृष्ठ नही चिपकते।

6 अधिकारी और पाण्डुलिपियाँ

जैन पाण्डुलिपियो का नियोजन दो प्रकार स हो रहा है व्यक्तिगत एवं सामाजिक। जिन पाण्डुलिपियो पर व्यक्तिगत अधिकार है, वे दो प्रकार क हैं – शिक्षित और अशिक्षित। शिक्षित व्यक्ति शिक्षित होकर भी पाण्डुलिपिया को पढन मे असमर्थ दख गये है। उनकी इस असमर्थता का कारण होता है पाण्डुलिपि सम्बन्धी ज्ञान का अभाव। एस व्यक्ति पाण्डुलिपियो को सुरक्षित तो रखते है किन्तु सम्पादनार्थ दूसर योग्य व्यक्ति को देने म घबरात हैं। उन्हे पाण्डुलिपि के गुम जाने या नष्ट भ्रष्ट हो जाने का भय बना रहता है। व केवल अपनी उपस्थिति मे पाण्डुलिपियो को दखने की अनमति दत है। इस विधि मे पाण्डुलिपि क दर्शन मात्र होते है। सम्पादनादि कार्य सभव नहीं है।

वतमान म फोटोस्टेट करान के यत्र आ गय है। पाण्डुलिपियो की मूल प्रति अधिकारी व्यक्ति रखे और फोटोस्टेट कराकर इच्छुक व्यक्ति को सम्पादन के लिए देकर उसका उत्साह बढाया जाव तो उपयुक्त होगा।

व्यक्तिगत अधिकारियो मे कुछ एस भी अधिकारी है जो अशिक्षित है। व पाण्डुलिपियाँ अपने अधिकार मे ही रखना चाहते है। इच्छुक व्यक्ति क खर्च पर भी पाण्डुलिपि की फोटोस्टेट कापी दन म उन्ह सकोच होता है। एस व्यक्तियो की जिनवाणी क प्रति भक्ति नही भक्ति का दिखावा है। उन्ह पाण्डुलिपियो क सम्पादन-प्रकाशन म सहयोग करना चाहिए।

सामाजिक अधिकारी

पाण्डुलिपियाँ जन मन्दिरो म रहन स उनक अधिकारी समाज क व लोग होत है जो जन मदिरो क अध्यक्ष होत है। य दो प्रकार क होत है – शिक्षित और अशिक्षित। जो शिक्षित होते है वे पाण्डुलिपिया का महत्त्व समझत है तथा उनक सम्पादन-प्रकाशन मे सहयोग भी करत है। उन्ह अब पाण्डुलिपिया की फोटोस्टेट प्रति देन म सकोच नही होता। यह बात अवश्य है कि ऐसे अधिकारी शासकीय-अर्द्धशासकीय सवाओ म लग होते है। उनके पास समयाभाव होता है। व बाहर से आनेवाले पाण्डुलिपिया क इच्छुको की समय पर इच्छापूर्ति नही कर पात और ऐस जिनवाणी सेवको को निराश होकर लौटना पडता है। अच्छा हो ऐस लोगो की सेवाएँ उनके अवकाश ग्रहण कर लेने पर प्राप्त की जावे।

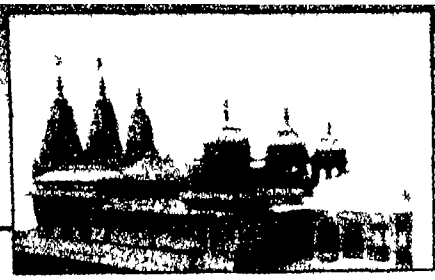

दूसरे वे अधिकारी होते हैं जो समाज के अध्यक्ष होते हैं। ये समाज में सर्वाधिक धनाढ्य होते हैं और इसी कारण समाज इन्हें अपना अध्यक्ष मनोनीत कर लेती है। ऐसे लोग सामान्यतः व्यापारी होते हैं। उनका व्यापारिक दृष्टिकोण रहता है। हर विषय में वे हानि लाभ का विचार किया करते हैं। सम्पादकों के उनके पास पहुँचने पर वे उन्हें समुचित आदर नहीं देते। उन्हें पाण्डुलिपियाँ उनके खर्च पर ही दी जाती हैं। सम्पादकों के समय को वे कीमती नहीं समझते। अपने समय का अवश्य वे पूरा ध्यान रखते हैं।

समयाभाववश वे पाण्डुलिपियों की उचित देखभाल नहीं कर पाते। फलतः वे मुनीम और पुजारियों को यह काम सौंप देते हैं। ऐसे लोग उतना ही काम करते हैं जितना उन्हें बताया जाता है। इसमें उनका दोष नहीं, दोष है उनकी अशिक्षा और समुचित वेतन के अभाव का।

कुछ भण्डार ऐसे भी हैं जहाँ वेतनभोगी कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। अनुकूल वेतन न होने से वे समर्पण भाव से काम नहीं करते। ... आवश्यक ... और ... पुजारियों ... जैसे ... प्राप्त होता है। पाण्डुलिपियों का सामान्य जानकार भी ... प्राप्त नहीं होता। पाण्डुलिपि या उसकी फोटोस्टेट प्रति की ... करा दिया करें।

ऐसे स्थानों पर जैन मनीषियों को ... व्यक्तियों की जाँच ... एक ... पाण्डुलिपियों का सम्पादन कार्य किया हो, जिन्हें जिनवाणी की सेवा में विशेष रुचि हो तथा समर्पण भाव से काम करने की जिनकी प्रवृत्ति हो। वेतन भी उन्हें उनकी शिक्षा एवं कार्य के अनुसार दिया जाये। समाज इन्हें ... करे ... समुचित सम्मान।

पाण्डुलिपियों का सम्पादन कार्य जितना ही महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण और पुण्य कल्याणक महोत्सव है। अतः सम्पादन के क्षेत्र का विकास किया जावे। सम्पादकों को यथासंभव अधिक से अधिक हर प्रकार का सहयोग दिया जाना आवश्यक है।

7 पाण्डुलिपियों का आदान प्रदान

यह तो पहले भी कहा जा चुका है कि पाण्डुलिपियाँ तो क्या सामान्य पुस्तकें भी किसी को नहीं देनी चाहिए। कम से कम मूल तो नहीं ही दी जावे।

सम्पादन कार्यकाल में ऐसी पाण्डुलिपियाँ देखी गयी हैं जिनके प्रारम्भिक दो पृष्ठ नहीं हैं और अन्त के पृष्ठ भी नहीं हैं। सामान्यतः इन पृष्ठों में लेखक और प्रेरक का परिचय रहता है। प्रायः पाण्डुलिपि का समय भी इन्हीं पृष्ठों में होता है। अतः प्रतीत होता है कि कभी ये पृष्ठ प्रशस्ति संग्रह करनेवाले मनीषियों को दिये गये होंगे जो लौटकर नहीं आये।

पाण्डुलिपियों के व्यवस्थापकों को सम्पादनादि कार्य के लिए पाण्डुलिपियाँ देनी तो पड़ती हैं, और दी भी जाती हैं तथा दी भी गयी हैं किन्तु देते समय लेनेवाले का रिकार्ड नहीं रखा गया। यदि रखा गया तो कागज के टुकड़ों पर, जो टुकड़े बहुत समय तक सुरक्षित नहीं रखे जा सके या जब व्यवस्थापकों ने काम छोड़ा तो आदान प्रदान के रिकार्ड की फाइलें आनेवाले व्यवस्थापक को नहीं सौंपी गयीं। फलतः पाण्डुलिपियाँ वापिस नहीं बुलाई जा सकीं। अथवा यदि पाण्डुलिपियाँ लौटकर आईं भी तो उन्हें देखा नहीं गया और उन्हें अलमारियों में रख दिया गया।

पाण्डुलिपियों का रिकार्ड रखा जाना आवश्यक है। अवाध गति से ... पर पाण्डुलिपि लौटाने हेतु पत्र लिखा जाना भी अपेक्षित है। फोटोस्टेट प्रति ही दी जावे।

8 वर्ष में एक बार पाण्डुलिपियों को धूप में अवश्य रखा जावे।

9 समय-समय पर महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपि को ... कराया जावे।

10 पाण्डुलिपि भण्डार में कीटनाशक दवाई का छिड़काव किया जावे।

11 अलमारियों में कीटनाशक गोलियाँ रखी जावें।

12 अलमारियाँ समय-समय पर खोलते रहना चाहिए।

13 ... के अभाव में नाले ... में ... भी ... का उपयोग हो।

14 सम्पादकों को पाण्डुलिपियों की जानकारी प्राप्त करने में व्यर्थ समय खर्च न करना पड़े इसके लिए एक राष्ट्रीय जैन पाण्डुलिपि रिकार्ड संग्रहालय की स्थापना की जावे। इस संग्रहालय में पाण्डुलिपियों की एक-एक प्रति भी संगृहीत की जाए ताकि असमय में होनेवाली हानि से पाण्डुलिपियों को बचाया जा सके।

15 पाण्डुलिपियों का सूचीकरण अवश्य किया जावे।

दिगम्बर जैन भट्टारकजी की नसियाँ, नारायण सिंह चौराहा, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर में पाण्डुलिपियों को आदर्श रूप में रखा गया है। जिज्ञासुजन एक बार व्यवस्था का अवश्य अवलोकन करें।

जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी (राज.)

जैन साधना पद्धति में आराधना : भगवती आराधना के परिप्रेक्ष्य में

• डॉ अशोक कुमार जैन

जैन साधना पद्धति में आराधना और आराधक ये दो महत्त्वपूर्ण शब्द है। इनका सम्बन्ध वर्तमान और आगामी दोनो जन्मो के साथ जुड़ा है। जो मनुष्य वर्तमान जीवन मे ज्ञान दर्शन और चारित्र की सम्यक् आराधना करता है वह आराधक होकर मरता है और अगले जन्म मे पूर्व जीवन से अधिक विकास करता है। जो मनुष्य ज्ञान दर्शन और चारित्र की विराधना कर विराधक के रूप म मरता है, उसका अगला जीवन विकासशील नही होता। इसलिए हर धार्मिक मृत्यु का वरण आराधक अवस्था म ही करना चाहता है।

जीवन का लम्बा अवधि म प्रमाद भी हो जाता है मूच्छा मूढता पैदा कर देती है। इस स्थिति म आराधना के क्रम म स्खलना होना भी सभव है। इस सभावना को ध्यान म रखकर प्रायश्चित का विधान किया गया है। जहाँ कही भी प्रमाद, मूच्छा आदि के द्वारा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विराधना हो, वहाँ उसका प्रायश्चित किया जाए, मृत्यु के आसन्नकाल म इस विषय पर अधिक जागरूकता स ध्यान दिया जाय, यह आराधना का दर्शन है। इस मृत्युदर्शन कहना अधिक सगत लगता है। मृत्यु के समय चित्त की वृत्तियाँ जितनी निर्मल होती है उतना ही भावी जीवन विकासशील होता है। उस समय चित्त का निर्मलता बनाय रखने म आराधना शास्त्र का बहुत बड़ा योग है। मरण सन्न मरणासन्न व्यक्ति को आराधना सुनाने की पद्धति जैन परम्परा म बहुत काल से चल रही है।[1] आराधना विषय पर समय समय पर आचार्यों ने अनेक ग्रथ लिखे। जिनरत्नकोष मे आराधना से सम्बन्धित लगभग 27 ग्रथो का उल्लेख है, इससे आराधना की महत्ता का पता लगता है।

निश्चय व्यवहार दृष्टि से आराध्य, आराधना, आराधक और आराधना फल

निश्चय नय की दृष्टि स समस्त विकल्पो स रहित शुद्ध और बाह्य आलम्बन स रहित आत्मा ही आराधना है। आचार्य देवसेन ने लिखा है

सुद्धणये चउरविध उत्त आराहणाइ एरिसय ।
सव्व वियप्पविमुक्को सुद्धो अप्पा णिरालबो ॥[2]

अर्थात् व्यवहारनय म गुण गुणी का भेद रहता है इसलिए आत्मा के सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र और सम्यक्तप ये चार गुण है तथा आत्मा गुणी है इस प्रकार का कथन होता है। परन्तु निश्चय नय म गुण गुणी का भेद नही रहता इसलिए कर्ता कर्म, करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण आदि समस्त विकल्पो स रहित शुद्ध अर्थात् कर्म कलक स रहित और निरालम्ब अर्थात् पचेन्द्रिया के विषय सम्बन्धी सुख आदि के आलबन स रहित चैतन्य चमत्कार स युक्त शुद्ध परमात्मस्वरूप आत्मा ही आराधना है ऐसा कथन होता है।

चैतन्य स्वरूप यह आत्मा ही आराध्य है सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति म उपायस्वरूप यह आत्मा ही आराधना है उसी आत्मस्वरूप मे अनुचरण करनेवाला यह आत्मा ही स्पष्ट रूप स आराधक है और कर्म क्षय के कारण मोक्ष पद को प्राप्त हुआ यह आत्मा ही आराधना का अभीष्ट फल है। इस तरह निश्चय मे आराध्य आराधना, आराधक और आराधना का फल सब-कुछ एक आत्मा ही कहा गया है।[3]

व्यवहारदृष्टि स रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आराध्य है। भव्य जीव अर्थात गृहस्थ व मुनिवर्य

1 तुलसी प्रज्ञा अक 1, अप्रैल-जुलाई 1980 मे प्रकाशित युवाचार्य महाप्रज्ञ का 'श्री मज्जयाचार्यकृत आराधना लेख, पृ 19
2 आचार्य देवसन आराधनासार गाथा 8
3 आराधनासार, गाथा 11 की रत्नदेवकृत टीका, पृ 43

जिनके परिणाम निर्मल हैं वे इस रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं अतः वे आराधक हैं। जिन उपायों से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है उन उपायों को आराधना कहते हैं। आराधना का फल मोक्ष की प्राप्ति है।

आराधना का स्वरूप

'आराधना' पद आङ् उपसर्गपूर्वक राध् धातु से युच् (ल्यु) प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ पूजा, उपासना या अर्चना है। संसिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित ये शब्द एकार्थ हैं इसलिए जो आत्मा राध से रहित है वह अपराध है। जो चेतयिता आत्मा अपराधी नहीं है, वह शंका रहित है और अपने को 'मैं हूँ' ऐसा जानता हुआ आराधना कर हमेशा वर्तता है।[4] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चारों का यथायोग्य रीति से उद्योतन करना, उनमें परिणति करना, इनको दृढ़तापूर्वक धारण करना, उसके मन्द पड़ जाने पर पुनः जागृत करना, उनका आमरण पालन करना आराधना है।[5] समता तथा माध्यस्थता, शुद्धभाव तथा वीतरागता, चारित्र तथा धर्म यह सब ही स्वभाव की आराधना कहलाते हैं।[6] जिसके सम्यग्दर्शनादिक परिणाम उत्पन्न हो चुके हैं ऐसे पुरुष का उन सम्यग्दर्शनादिक में रहने वाले अतिशयों अथवा उद्योतादिक विशेषों में जो वृत्ति उसे दर्शनादिक की भक्ति कहते हैं और इस भक्ति का नाम ही आराधना है।[7]

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप और पंचपरमेष्ठियों की स्तुति इनकी अतिशय भक्ति से जो पवित्र सेवा करना वह भव्य जीव की दृढ़ आराधना है।

आराधना के भेद

सामान्य रूप से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप से आराधना चार प्रकार की कही गयी है। स्थानांगसूत्र में तीन प्रकार की आराधना का उल्लेख मिलता है। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना[9]। भगवती आराधना[10] में संक्षेप से आराधना का वर्णन दो प्रकार का कहा है। श्रद्धान विषयक प्रथम आराधना सम्यक्त्वाराधना है और दूसरी चारित्राराधना है। दर्शन की आराधना करनेवाले के द्वारा नियम से ज्ञान की आराधना होती है किन्तु ज्ञान की आराधना करनेवाले के द्वारा दर्शन की आराधना भजनीय है अर्थात् होती भी है और नहीं भी होती है।[11] श्रद्धान या रुचि की आराधना करने से सम्यग्ज्ञान आराधित होता है। जिसकी जिस विषय में श्रद्धा होती है उस विषय में अज्ञान होने पर किसी भी तरह वह श्रद्धा नहीं होती। रुचि विषय के बिना नहीं होती। बुद्धि के द्वारा ग्रहण की गयी वस्तु में श्रद्धा होती है अतः श्रद्धा का ज्ञान के साथ अविनाभाव है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए अपराजितसूरि कहते हैं कि आत्मा के विषयाकार परिणमन को ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान ज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, जैसे भूमिरूप आवरण को हटा देने पर पृथ्वी से पानी का जन्म होता है। उस ज्ञान में जो निर्मलता होती है उसे प्रसन्नता या स्वच्छता कहते हैं और उसमें अभिरुचि को श्रद्धा कहते हैं। शास्त्र में निरूपित अर्थ के विषय में सत्य भावना श्रद्धा है वही दर्शन है। यह दर्शन मोह के उपशम या क्षयोपशम से होता है जैसे पानी में मिश्रित कीचड़ के अभाव में जल निर्मल होता है। उस दर्शन की आराधना करने पर ज्ञान की सिद्धि अवश्य होती है क्योंकि जिस धर्म का कोई आश्रय नहीं है उसकी सिद्धि एकाकी नहीं होती। ज्ञानरूप परिणमन करनेवाला आत्मा नियम से तत्त्व श्रद्धानरूप परिणमन करता ही है ऐसा नियम नहीं है अतः ज्ञानाराधना कहने से दर्शनाराधना का ग्रहण शक्य नहीं है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान सम्यक् नहीं होता अतः ज्ञान का प्राधान्य

5 संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥ समयसार, गाथा 304
जो पुण णिरवराधो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ।
आराहणाए णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥ वही, गाथा 305

6 उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसणणाणचरित्ततवाणमाराहणा भणिया ॥ भगवती आराधना, गाथा 2

7 समदा तह मज्झत्थं सुद्धो भावो य वीयरायत्तं।
तह चारित्तं धम्मो सहाव आराहणा भणिया ॥ न. च. वृ. 356

8 वृत्तिर्जातसुदृष्ट्यादेस्तद्गतातिशयेषु या।
उद्योतादिषु सा तेषां भक्तिराराधनोच्यते ॥ अन. धर्मामृत 1/98

9 तिविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा णाणाराहणा, दंसणाराहणा, चारित्ताराहणा ॥ ठाण 13 434

10 दुविहा पुण जिणवयणे भणिया आराहणा समासेण।
सम्मत्तम्मि य पढमा बिदिया य हवे चरित्तम्मि ॥ भ. आ. गाथा 3

11 सम्मत्तस्साराहणाए णाणमाराहियं हवे णियमा।
णाणं आराहंतेण दंसणं होइ भयणिज्जं ॥ वही, गाथा 4

नही है।[12] सम्यक्त्व रूप आराधना के उपाय में पंडित प्रवर आशाधरजी लिखते है –

मैं इस अनुपचरित ज्ञान का विषयभूत आत्मा अनादिकाल से वैसा मिथ्यादृष्टि होकर जन्म-मरण करता आया हूँ। इसलिए मुमुक्षु को यह प्रतीयमान निर्ग्रन्थ रत्नत्रय ही सकल आगम का सार है, सकल जगत मे उत्कृष्ट है, अत्यन्त शुद्ध है, अमृत का, जीवन्मुक्ति और परममुक्ति का मार्ग है, इस प्रकार की तत्त्व श्रद्धा को अन्तःकरण में समाविष्ट करके उसे दोषो के त्याग और दोषो से विपरीत गुणो तथा विनय की प्राप्ति के द्वारा खूब पुष्ट करना चाहिए अर्थात् उसे क्षायिक सम्यक्त्वरूप करना चाहिए।[13]

आचार्य शिवार्य ने कहा है निर्ग्रन्थ रत्नत्रय ही प्रवचन का सार है, वही लोकोत्तर और अत्यन्त विशुद्ध है, वही मोक्ष का मार्ग है, इसलिए इस प्रकार की श्रद्धा करना चाहिए।[14]

चारित्राराधना का वर्णन करते हुए आचार्य देवसेन कहते है – भावो की शुद्धिपूर्वक पञ्चमहाव्रत, पाच समिति तथा तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण करना, पालन करना और दो प्रकार के असंयम का त्याग करना चारित्राराधना है।[15]

आचार्य शिवार्य कहते है कि संयम की आराधना करनेवाले के द्वारा तप नियम से आराधित होता है किन्तु तप की आराधना करनेवाले के द्वारा चारित्र भजनीय होता है।[16] संयम शब्द से चारित्र का अभिप्राय है। कर्मो के ग्रहण में निमित्त क्रियाओ के त्याग को संयम कहते हैं और वह चारित्र है।[17] संयम शब्द में 'सं' का अर्थ है सम्यक् अर्थात् मन, वचन, काय के द्वारा पाप को लानेवाली क्रियाओ का 'यमन' त्याग संयम है। अतः संयम का अर्थ चारित्र है। तप बाह्य अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश और आभ्यन्तर प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान के भेद से बारह प्रकार का है।[18] उस तप की आराधना चारित्राराधना मे आती है क्योंकि उसमे भी अविरति, प्रमाद और कषाय का त्याग होता है किन्तु तपाराधना मे चारित्राराधना नही आती क्योंकि तपस्वी असंयम का त्यागी होता भी है और नही भी होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि का तप महान उपकारी नही होता। उसका वह तप हाथी के स्नान की और मथन चर्मपालिका मथानी की रस्सी की तरह होता है।[19] तप के द्वारा जितना कर्मनिर्जरा होता है, असंयम के निमित्त से उससे बहुत अधिक कर्मो का बन्ध होता है। यह बतलाने के लिए हस्तिस्नान का दृष्टान्त दिया है क्योंकि स्नान के पश्चात् शरीर के गीला होने से बहुत सी धूल उस पर जम जाती है। बन्धरहित निर्जरा मोक्ष प्राप्त कराती है, बन्ध के साथ होनेवाली निर्जरा नही जैसे मन्थन चर्मपालिका। वह तो बन्ध सहित मुक्ति देती है अर्थात् मथानी चलाते समय एक ओर से रस्सी खुलती जाती है किन्तु साथ ही दूसरी ओर से लिपटती जाती है।

चारित्र की आराधना में ज्ञान, दर्शन, तप सब आराधित होता है। ज्ञान, दर्शन और तप में से किसी की आराधना मे चारित्र की आराधना भाज्य होती है। क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि ज्ञान और दर्शन का ही आराधक होता है, चारित्र और तप का नही, और मिथ्यादृष्टि अनशन आदि में तत्पर रहते हुए भी चारित्र की आराधना नही करता है। इस प्रकार अन्य आराधनाओ के साथ चारित्र की आराधना का अविनाभाव नही है अर्थात चारित्राराधना के बिना भी अन्य आराधना होता है। इसलिए उनको मुख्यता से आराधना का एक प्रकार नही कहा है। चारित्राराधना के साथ ज्ञान और दर्शन का अविनाभाव है अतः उसमें उनका अन्तर्भाव होता है।[20] 'यह कर्त्तव्य है' इस प्रकार जानकर जब त्याग होता है वही चैतन्य ज्ञान है और वही सम्यक्त्व है।[21] चैतन्य ज्ञानरूप है और

---

12 विजयोदया टीका पृ 14 16
13 अनगारधर्मामृत 2/99
14 भगवती आराधना, गाथा 43
15 आराधनासार गाथा 6
16 भगवती आराधना गाथा 4
17 कर्मादाननिमित्त क्रियोपरमाज्ञानवतश्चारित्रमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि 1 1
18 अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग विविक्तशय्यासन ।
कायक्लेशा बाह्य तप । तत्त्वार्थ सूत्र 9/19
प्रायश्चित्त विनयवैयावृत्त्य स्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ वही 9/20
19 सम्मादिट्ठिस्स वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि ।
होदि हु हत्थिण्हाणं चुदच्छिदकम्म तं तस्स ॥ भ आ गा 7
20 अहवा चारित्ताराहणाए आराहियं हवइ सव्वं ।
आराहणाए सेसस्स चारित्ताराहणा भज्जा ॥ भ आ गा 8
21 विजयोदया टीका पृ 21 ।
22 कायव्वमिणमकायव्वयत्ति णाऊण होइ परिहारो ।
तं चेव हवइ णाणं तं चेव य होइ सम्मत्तं ॥ भ आ गा 9

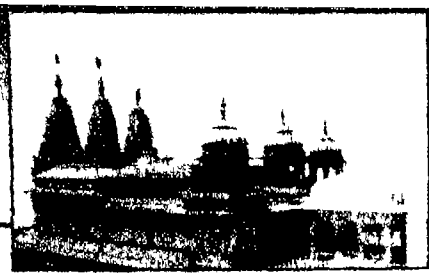

सम्यक्त्वरूप भी, अतः चैतन्यरूप द्रव्य से अभिन्न होने से ज्ञान और दर्शन की एकता बतलाई है और चारित्र का ज्ञान के साथ अविनाभाविता कही गई है। ज्ञान और दर्शनपूर्वक हित के प्राप्ति रूप तथा अहित के परिहाररूप से परिणत चैतन्य ही ज्ञान और दर्शन रूप है, अतः चारित्र का ज्ञान और दर्शन के साथ अविनाभाव होने से चारित्र में दोनों का अन्तर्भाव होता है।

चारित्र के दो प्रकार हैं - कर्तव्य का स्वीकार करना और अकर्तव्य को त्यागना। अकर्तव्य के त्यागरूप चारित्र में जो उद्योग और उपयोग होता है उस उद्योग और उपयोग को तो छल कपट त्याग करने वालों को जिनेन्द्रदेव ने तप कहा है। जो सुख को त्यागता है वही चारित्र में प्रयत्नशील होता है। अतः बाह्य तप चारित्र को प्रारम्भ करने में सहायक होते हैं। अनशन आदि तप चारित्र के परिकर हैं। सदोष चारित्र अचारित्र ही है ऐसा बुद्धि के द्वारा निश्चित करके आत्मा में पूर्णता को लाना, खड़े होना, वन्दना आदि क्रियाओं में असंयम का परिहार करते हुए प्रवृत्त होना ये सब चारित्र का परिकर है। दोष लगने पर पुनः दीक्षा ग्रहण करना भी चारित्र में उपयोगी ही है। विनय के पांच भेद हैं। उनमें से ज्ञान विनय और दर्शन विनय ज्ञान और दर्शन के परिकर होने से तथा उसमें उपयोग रूप होने से ज्ञान और दर्शन में आते हैं अतः ज्ञान और दर्शन की तरह उनका अन्तर्भाव चारित्राराधना में होता है।[24]

इस प्रकार आराधना के चार, दो और एक भेद हैं।

आराधना का प्रयोजन

मोक्ष के सुख के इच्छुकजनों को आराधना उपयोगी है। आचार्य शिवार्य कहते हैं - ज्ञान और दर्शन का सार यथाख्यात चारित्र होता है। उस यथाख्यात चारित्र का सार निर्वाण कहा है।[25] यहाँ प्रश्न है कि जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं। यदि तीनों मोक्ष के उपाय हैं तो परार्थ (पर के लिए) होने से तीनों गौण हो जाते हैं तब चारित्र की प्रधानता कैसे? यदि यह माना जाये कि ज्ञान और दर्शन चारित्र के लिए हैं, चारित्रज्ञान और दर्शन के लिए नहीं है तो ऐसा मानना भी उचित नहीं है क्योंकि साध्य ज्ञान और दर्शन है। उसकी सिद्धि का उपाय चारित्र है। **चारित्र के बिना न तो क्षायिक ज्ञान होता है और न क्षायिक वीतराग सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।** उक्त श्रद्धान और ज्ञान का फल दुःख की कारण क्रियाओं का त्याग है। इस त्याग रूप फल में उसके हेतु ज्ञान और दर्शन समाविष्ट हैं। अतः चारित्राराधना में अन्य आराधनाओं का अन्तर्भाव है। ज्ञान और दर्शन का सार यथाख्यात चारित्र है और यथाख्यात चारित्र का सार सर्वोत्कृष्ट निर्वाण है। निर्वाण का सार बाधारहित उपमा रहित सुख है। अतः आत्महित के अन्वेषक को उस अव्याबाध सुख की प्राप्ति के लिए चेष्टा करना चाहिए अर्थात् निरतिचार ज्ञानदर्शनचारित्र की परिणतिरूप आराधना को अपनाना चाहिए।[26] प्रवचन में चारित्र का फल आराधना कहा है इसलिए समस्त प्रवचन का सार आराधना ही है।[27] रत्नत्रय के आराधक अनादि मिथ्यादृष्टि क्षणमात्र में द्रव्यकर्म, भावकर्म से रहित देखे जाते हैं इसलिए आराधना सार है।[28] मरण समय जो रत्नत्रय की विराधना है वह संसार को बहुत दीर्घ करता है किन्तु अन्यकाल में विराधना होने पर भी मरते समय रत्नत्रय धारण करने पर संसार का उच्छेद होता ही है। अतः मरणकाल में प्रयत्न करना चाहिए। अन्य कालों में धारण किया गया रत्नत्रय संवर, निर्जरा और घातिया कर्मों के क्षय करने में निमित्त होता है।[29] तत्वार्थसूत्र में कहा है सम्यग्दृष्टि, श्रावक, मुनि, अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करनेवाला, दर्शन मोह का क्षय करनेवाला, उपशम श्रेणी वाला उपशान्तमोह, क्षपक श्रेणीवाला क्षीणमोह और जिन इनके क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।[30]

23 चरणम्मि तम्मि जो उज्जमो आउंजणा य जो होइ।
सो चेव जिणेहिं तवो भणिदो असढं चरंतस्स ॥ भ आ गा 10

24 विजयोदया टीका पृ 30

25 णाणस्स दंसणस्स सारो चरणं हवे जहाक्खादं।
चरणस्स तस्स सारो णिव्वाणमणुत्तरं भणियं ॥ भ आ गा 11

26 णिव्वाणस्स य सारो अव्वाबाहं सुहं अणोवमियं।
कादव्वा हु तदट्ठं आदहिदगवेसिणा चेट्ठा ॥ वही गाथा 13

27 जम्हा चरित्तसारो भणिया आराहणा पवयणम्मि।
सव्वस्स पवयणस्स य सारो आराहणा तम्हा ॥ वही गाथा 14

28 दिट्ठा अणादि मिच्छादिट्ठी जम्हा खणेण सिद्धा य।
आराहया चरित्तस्स तेण आराहणा सारो ॥ वही गाथा 17

29 विजयोदया टीका पृ 40।

30 सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोप
शान्तमोहक्षपक क्षीणमोह जिना क्रमशोऽसंख्येय गुणनिर्जरा तत्त्वार्थसूत्र 9/45

आराधना का काल

आराधना के कार्य के लिए परिकर्म सभी काल मे करना चाहिए, क्योंकि परिकर्म करनेवाले के ही आराधना सुखपूर्वक साध्य होती है।[31] जैसे राजपुत्र योग्य शस्त्र प्रहार का अभ्यास युद्धकाल मे पहले प्रतिदिन भी करता है पश्चात् शस्त्रप्रहाररूप क्रिया को अपने अधीन करके युद्ध करने मे समर्थ होता है।[32] इसी प्रकार साधु भी ध्यान का परिकर्म जो श्रामण्य है उसे नित्य भी करता है कि इसके पश्चात् मन को वश मे करके मै मरते समय ध्यान मे समर्थ होऊँगा।[33] जिसने समता की भावना नही भायी है और न वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जाना है वह ध्यान नही कर सकता। निरन्तर शुभ ध्यान का अभ्यास करना होता है जिससे मरण समय भी जीव धर्म और शुक्लध्यान धारण करने मे समर्थ हो सकता है।[34] जैसे अभ्यास के द्वारा बार बार लक्ष्यभेद शस्त्रप्रहार आदि मे दक्ष वह योद्धा राजपुत्र युद्धभूमि मे शत्रु को जीतकर राज्य के ध्वज को बलपूर्वक हरता है। उसकी ही तरह पूर्व मे समानभाव का अभ्यासी साधु मिथ्यात्व आदि शत्रुओ को पूरी तरह से जीतकर शोभनीय संस्तररूपी रंगभूमि मे आराधना रूपी पताका को ग्रहण करता है।

संसार मे सभी धर्म जीने की कला सिखाते है परन्तु जैनधर्म मे व्यक्ति को मरण की भी कला सिखाई गई और उसे भी महामहोत्सव की संज्ञा से विभूषित किया गया। लोक मे भी कहा जाता है 'अन्त भला तो सब भला' अर्थात् यदि कोई व्यक्ति समाधिमरणपूर्वक प्राणो का विसर्जन करने मे सफल हो जाता है तो उसका जीवन यथार्थ मे सफल है। आचार्य शिवार्य ने आराधना के प्रति परम आदरभाव व्यक्त करने के लिए आराधना नाम के आगे भगवती विशेषण का प्रयोग किया जैसे तीर्थंकरो और महान आचार्यो के नामो के साथ भगवान विशेषण लगाया जाता है।

इस प्रकार आराधना को जैन साधना परम्परा मे विशिष्ट स्थान दिया गया है। हमे भगवती आराधना, आराधना सार जैसे विशिष्ट ग्रंथो का सम्यक् अनुशीलन कर दृष्टि को निर्मल बनाकर जीवन को सार्थक करना चाहिए।

प्राध्यापक
जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं नागौर (राज.)

31 आराहणाए कज्जे परियम्मं सव्वदा हि कायव्वं।
परियम्मभाविदस्स हु सुहसज्झाराहणा होइ॥ भ. आ. गा. 19
32 जह रायकुलपसूओ जोग्गं णिच्चमवि कुणइ परिकम्मं।
तो जिदकरणो जुद्धे कम्मसमत्थो भविस्सदि हिदीदि॥ वही गाथा 20
33 इय सामण्णं साधू वि कुणदि णिच्चमवि जोगपरियम्मं।
तो जिदकरणो मरणे झाणे समत्थो भविस्सदि॥ वही गाथा 21
34 विजयोदया टीका प. 41
35 जोगाभाविदकरणो सत्तू जेण जहरंगम्मि।
जह सो कुमारमल्लो रज्जपडाय बला हरदि॥
तह भाविदसामण्णो मिच्छत्तादी रिऊ विजेऊण।
आराहणापडायं हरदि सुसंथाररंगम्मि॥ भगवती आरा. गाथा 22 23

मंगल पद

भज चतुर्विंशति नाम।
जे भजे ते उतरि भवदधि लयो शिवसुख-धाम॥

ऋषभ, अजित, संभव स्वामी, अभिनन्दन अभिराम।
सुमति, पद्म, सुपास, चन्दा, पुष्पदन्त प्रणाम॥

शीत, श्रेयान्, वासुपूजा, विमल, अनन्त, सुठाम।
धर्म, शान्ति जु कुन्थु, अरहा, मल्लि राखे माम॥

मुनिसुव्रत, नमि, नेमिनाथा, पास, सन्मति स्वाम।
राखि निश्चय जपो 'बुधजन' पूरे सबके काम॥

– महाकवि बुधजन

श्री वीर सेवक मण्डल एवं श्री महावीरजी

◦ अरुण सोनी

श्री वीर सेवक मण्डल का यह गौरव है कि इसका विकास श्री महावीरजी क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। मण्डल का यह पुण्य है कि अपने प्रारम्भिक काल से ही अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में आयोजित होनेवाले कार्यक्रमों में जैसे – वार्षिक मेला, निर्वाण महोत्सव आदि में व्यवस्था कार्य करता रहा है।

श्री वीर सेवक मण्डल की स्थापना 1920 में उस समय हुई जब देश में आजादी का आन्दोलन अपने चरम स्तर पर चल रहा था। स्वराज्य की भावना और चेतना [illegible] विस्तार [illegible] था। भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का प्रवेश नई दिशा लेकर आया [illegible] पहली बार गाँधीजी ने अहिंसात्मक क्रांति का [illegible] लिया। [illegible] आत्मा जैन आचार विचार और व्यवहार के [illegible] थी। [illegible] जैन समाज में गाँधीजी के इस प्रयोग के प्रति [illegible] और [illegible] समाज गाँधीजी के उद्देश्यों के साथ जुड़ता चला गया। जयपुर में स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी [illegible] सेठी प्रमुख थे। उनकी प्रेरणा से जयपुर [illegible] समाज को जगाने और उसमें चेतना पैदा करने के लिए [illegible] आगे आये। उस समय तक सेठीजी का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानजनक स्थान बन चुका था। सेठीजी अपनी धार्मिक मान्यता व आचरण के अनुसार देव दर्शन करके भोजन करने के आग्रह को लेकर वेल्लूर जेल में 70 दिन का अनशन करके धर्म ध्वजा फहरा चुके थे। वेल्लूर जेल से आने के बाद जयपुर में युवाओं की टोली बनायी। उन्हें राजनीति में काम करने की दीक्षा दी। साथ ही उन्होंने उन्हें समाज सुधार के साथ समाज में चेतना पैदा करने की प्रेरणा दी। उन्होंने बाल विवाह, मृत्युभोज [illegible] तथा ऐसी अनेक सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आन्दोलन चलाये। इसी आन्दोलन को दिशा देने का रचनात्मक [illegible] करने के लिए श्री वीर सेवक मण्डल बनाया गया। मण्डल के संस्थापक सदस्यों में दिवंगत नेता कपूरचन्दजी पाटनी (कोटा) [illegible] मण्डल के मंत्री रहे। पाटनीजी को गाँधीजी के [illegible] कार्यक्रमों में खादी अपनाने में विशेष ध्यान रहा। [illegible] और [illegible] में [illegible] गया।

श्री वीर सेवक मण्डल के मंच से समाज में चेतना तथा सुधार [illegible] आगे बढ़ता रहा। मण्डल का यह सौभाग्य रहा कि इसे [illegible] मिला। [illegible] में ही मण्डल जयपुर के [illegible] हो गया। 1930 में मण्डल अपना एक [illegible]

सेवा में तत्पर श्री वीर सेवक मण्डल के सदस्यगण

पूरा कर चुका था। समाज मे वह मान्य होने लगा था। इसी समय चांदनपुर के श्री महावीरजी क्षेत्र की व्यवस्था के लिये जयपुर रियासत ने एक विशेष आदेश जारी कर क्षेत्र में कोर्ट ऑफ वार्ड्स को हटा दिया तथा जयपुर की दिगम्बर जैन समाज की पंचायत को प्रभारी बनाया। इससे पूर्व क्षेत्र की व्यवस्था भट्टारकजी देखते थे। 1930 में क्षेत्र की व्यवस्था दिगम्बर जैन समाज की पंचायत को सौंप दिया गया। यह अनुपम संयोग रहा कि जिन हाथों में व्यवस्था सौंपी गयी उनमें से अधिकांश वीर सेवक मण्डल के संस्थापक सदस्य थे। इस तरह नयी व्यवस्था के साथ श्री वीर सेवक मण्डल भी श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र के प्रबन्ध में जुड़ गया। सात दशक से श्री महावीरजी क्षेत्र के साथ मण्डल का सम्बन्ध आत्मीयता का रहा है। मण्डल का वैभव, उसका गौरव श्री महावीरजी क्षेत्र है। यही उसकी पहिचान है कि वह क्षेत्र से जुड़ा है। क्षेत्र ने भी मण्डल का अपना मान रखा है।

स्वयंसेवकों द्वारा सम्मान [illegible]

मा। इसके लिए मण्डल के पुण्य का प्रबल उदय है कि वह वीर प्रभु को अपने हाथ पर उठाकर पालकी में विराजमान करता रहा है। [illegible] वीर प्रभु की प्रतिमाजी को सुरक्षा तथा समारोह [illegible] में विराजमान करना वहीं से उठाना आदि सब कार्यों का निर्वहन [illegible] करता रहा है। वीर-प्रभु की असीम कृपा है कि मण्डल के स्वयंसेवक ही उनकी सेवा कर सकते हैं। यह अधिकार [illegible] मण्डल को ही प्राप्त रहा है। [illegible] अतिशय क्षेत्र की प्रबन्ध समिति का मण्डल में विश्वास और अपनापन है। यह अपनत्व सात दशक से [illegible] यथावत है। सात दशक की अवधि में मण्डल का सम्मान बढ़ता रहा है। श्री महावीरजी क्षेत्र के वार्षिक लक्खी मेले और रथ-यात्रा की समूची व्यवस्था भी मण्डल करता रहा है। मण्डल का यह सौभाग्य रहा कि क्षेत्र की प्रबन्ध समिति के प्रथम अध्यक्ष मुंशी प्यारेलालजी मण्डल के संरक्षक में रहे। उनके बाद मालीलालजी

सुरक्षा गृह

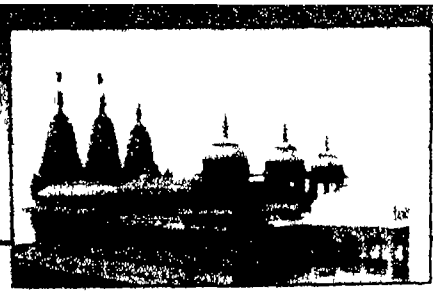

कासलीवाल, डॉ राजमलजी कासलावाल ज्ञानचन्दजी खिन्दूका तथा वर्तमान अध्यक्ष श्री एन के सेठी का वही अपनापन कायम है। प्रबन्ध समिति के मत्री रामचन्दजी खिन्दूका, बधाचन्दजी गगवाल का मण्डल के प्रति ऐसा वात्सल्य भाव रहा, जिसकी स्मृतियाँ आज भी रोमाचित करती है। श्री सुभद्रकुमारजी पाटनी, श्री गैंदीलालजी साह, श्री कपूरचन्दजी पाटनी तथा वर्तमान मत्री श्री बलभद्रकुमारजी आदि का व्यवहार वात्सल्यपूर्ण रहा है।

श्री वीर सेवक मण्डल का यही गौरव है कि वह महावीरजी अतिशय क्षेत्र का अभिन्न अग है। इस क्षेत्र के लिये व्यवस्था कार्य करने मे इसकी ख्याति देशभर मे फैल गयी। यही कारण रहा है कि आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज ने मण्डल को श्रमणबेलगोला मे भगवान बाहुबली के सहस्राब्दी समारोह मे व्यवस्था के लिये दायित्व सौपा। उनके आशीर्वाद से मण्डल ने सफलतापूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वहन किया। इसके बाद मण्डल ने सन् 1993 मे श्रमणबेलगोला के महामस्तकाभिषेक, बावनगजाजी, बड़वानी, हस्तिनापुर अयोध्या टिकैत नगर, दिल्ली व राजस्थान के विभिन्न जिलो मे आयोजित पचकल्याणक एव सामाजिक कार्यक्रमो की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न किया। पदमपुरा तीर्थ क्षेत्र, जयपुर मे राजस्थान जनसभा एव अन्य सामाजिक सस्थाओ के आमत्रण पर भी मण्डल अपनी सेवाये अर्पित करता रहा है।

मत्री श्री वीर सेवक मण्डल
बधाचन्दजी का मदिर, घीवाला का रास्ता जयपुर

देव तुम्हे पा धन्य हो गई,
जगती माँ और त्रिशला रानी।
विपुलाचल पर्वत से छलकी,
जन मन मे करुणा कल्याणी॥

हर दुखियारे का दुख बाटा
हर आँसू को मुक्ति दिलाई।
स्वय जियो जीने दो सबको,
ये सत्पथ की राह दिखाई॥

धर्म के साधक कर्म विजेता,
पुरुषारथ कर्तव्य सिखाया।
मिल कर चलो – बाँट के खाओ,
परिग्रह दुख का मर्म बताया॥

चाँदनपुर की माटी चंदन
पुण्य धरा को सौ-सौ वन्दन।
महावीर के दिव्य दरश से
करते जन्म-जन्म के बँधन॥

• ताराचन्द प्रेमी

खण्ड : VI

MAHAVIR : LIFE AND PHILOSOPHY

CONTENTS

Title	Author	Page No
1. Bhagwan Mahavir — Life & Philosophy	Satish Kumar Jain	VI/1
2. Social Importance of Ahimsa	Dr. Vilas Sangave	VI/7
3. Samyak-Charitra and its two Levels	T.G Kalghatgi	VI/10

BHAGWAN MAHAVIR — LIFE & PHILOSOPHY

• **Satish Kumar Jain**
Secretary General
Ahimsa International

The life of Bhagwan Mahavir the 24th Tirthankar is not merely an apotheosis or a deified ideal his teachings epitomise quintessence of the culture of compassion non-violence equanimity and understanding the viewpoint of others The theory of Anekant and Syadvad on which he laid great stress reinforced the intellectual and philosophical foundation of relativism mutual understanding and tolerance

Born in a Kshatriya family on March 30 B C 599 (Chaitra Shukla 13) at Kundgram (Kundapur) in the republic of Vaishali (present Basukh in Muzzafarpur District of Bihar) he received all care training and affection which the son of a chief could have His father Siddhartha a Kashyap Gotri was a Kshatriya chief The mother Trishla Devi was the daughter of Chetak the emperor of the republic of Vaishali Trishala s five other sisters were married to powerful rulers of the time, the other two sisters Jyestha and Chandana did not marry and became the Aryka (Nun) under the organisation of Bhagwan Mahavir Siddhartha and Trishala were the followers of 23rd Tirthankar Parsvanath

Birth name of Mahavir was Vardhman The different names Ativir Sanmati, Mahavir were the epithets conferred upon him for his acts of boldness and bravery at different occasions The universality of the application of the name Mahavir has rendered it functionally equivalent to a personal name

Born in a princely family all the comforts of life were available to him but child Mahavir did not evince interest in worldly pleasures Having strong spiritual inclination and desire to do good of the people he had a strong urge of renunciation of worldly attachments Deep affection and persuasion of his parents and relatives could not keep him confined to the family bonds Spiritualism and renunciation so much prevailed over him that ultimately on November 11 B C 570 (Marga sirshi Krishna dasmi) at the age of 30 years, he left the palace and proceeded to the park Jnatrikhanda vana close to Kundapur, and relinquished his ornaments and clothes He pulled out his hair by his hands and initiated himself as a Digmber Jain monk He observed fast for three days and then plunged himself into meditation After sometime he started touring various parts of the country He lived in gardens and park but as required by the rules of his vows and fasts he entered a town or a village once in a day and accepted the food offered to him according to the norms laid down for Jain ascetics In a standing or squatting posture and with his eyes fixed on the tip of nose he spent his time in meditation and in reflecting on the Atman (soul) and in cultivating the attitude of equanimity towards one and all Strictly observing his five great vows and other principles he got himself habituated to endure with peace and patience all physical tortures known as parishaha like hunger, thirst, cold heat mosquito bites etc

Mahavir spent twelve years as an ascetic practising various austerities One day on Baisakh-Shukla-Dasmi April 26 B C 557 at the age of 42 years while he was seated beneath a sal tree plunged in meditation close to the village Jrmbhaka by name on the bank of river Rijukula omniscience or all knowledge-infinite knowledge (Ananta-Jnana) 'knowledge free from Karmic

month of Kartika i e in the early hours of Amavasya on October 15 B C 527 at Pavapuri in Bihar at the age of 72 years The occasion was celebrated as the Dipavali festival and Vir Nirvan Samvat commenced from that date

At the time of his Nirvana two Ganadharas Indrabhuti Gautam and Sudharma still lived whereas the other 9 Gandharas attained Nirvana during lifetime of Mahavir

During his lifetime Bhagwan Mahavir had over 5 lakh disciples in the Chaturvidh Sangh viz 14 000 monks 36 000 nuns 1 59 000 laymen and 3 18 000 lay women The larger number of women followers appears due to the fact that many men had more than one wife and that these wives became nuns when their husbands became Jain monks

The Muni sangh of Mahavir was organised into 9 Ganas under the leadership of the 11 Gandharas Indrabhuti Gautam being the chief among them

Among his followers were not only the people of India but they belonged also to Gandhar Kapisha and Parsika

Bhagwan Mahavir was elder to Bhagwan Gautam Buddha as the later was born in circa B C 563

The 23rd Tirthankar Bhagwan Parsvanath preceded Mahavir by about 250 years and his period was circa B C 9-8th century Parsvanath laid emphasis on four great vows viz Ahimsa (non-violence) Satya (truth) Asteya (non stealing) Aparigraha (non-possessiveness) Bhagwan Mahavir added to it Brahmacharya (celebacy) He felt that a strong moral control on sensuality (passion for sex) and on all other passions and vices was essential for soul purification to attain salvation He stressed on the practice of five great vows particularly by the Jain ascetics and the Anuvratas by the laity

Buddhist texts refer to the existence of large numbers of Niganthas (unattached ones) who followed the chaturyama samvara the fourfold restraints of Parsvanath which German scholar Hermann Jacobi and others have convincingly identified with the teachings of the 23rd Tirthankar Parsvanath Such references suggest a Jaina community older than that of the Buddhists hence predating Mahavir as well

Bhagwan Mahavir's contribution is though in all fields of learning and spiritualism but his contribution to practice of Ahimsa (non violence) compassion equanimity understanding the viewpoint of others i e Syadvad and Anekant and Aparigraha (non possessiveness) is of paramount importance

NON-VIOLENCE (AHIMSA)

The most distinctive contribution of Tirthankara Mahavir and Jaina Acharyas consists in their great emphasis on the observance of Ahimsa i e non injury to living beings by all persons to the maximum extent possible In fact Ahimsa in its full significance was realised and preached even by the preceding 23 Tirthankaras In fact the philosophy and rules of conduct laid down in Jain religion have been based on the sole foundation of Ahimsa which has throughout and consistently been followed to its logical conclusion

Mahavir gave every minute meaning to non-violence non injury (whether physical or mental) to any living being His purview of non violence covered not only the human beings alone but equally so also the animals birds and even those which possessed one sense organ (sparsa) like trees water fire mountains earth etc He firmly believed in the right of living of every living being and that upon the existence of one living being depended the welfare and existence of other living beings — Parasparopgrahojivanam (परस्परोपग्रहोजीवानाम्) A great believer in coexistence

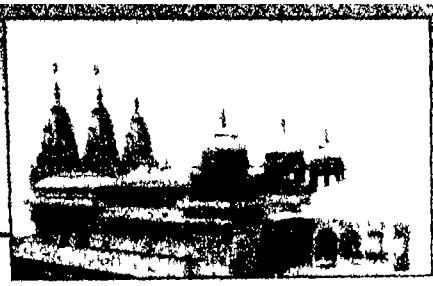

interference — Keval Jnana which has no limitations of time and space dawned on him. He got satisfactory solutions for all those problems and questions connected with the life and the universe which occur to any inquisitive soul. He fully comprehended the Six Substances [illegible] and Seven Principles (tattva) whereby [illegible] explained the nature of all the objects and their activities. It was [illegible] basic principle of life [illegible] Jiva or the [illegible] which is distinct from [illegible]

During the period of 12 years [illegible] any disciples nor gave any [illegible] concentrated on his inner self [illegible] to pave the way for attaining the [illegible] salvation Nirvana elimination of [illegible] karmas which cause the cycle of birth and death.

After attaining Keval Jnana Mahavir [illegible] mount Vipulachal outside [illegible] five mountains [illegible] then the capital of [illegible] Magadha present Rajgir [illegible] Shravan Krishna Pratipada [illegible] the dialect of Ardhamagadhi [illegible] started his Dharma Chakra Pravartan.

For another 30 years Bhagwan Mahavir wandered extensively with his [illegible] and [illegible] various [illegible] and more particularly [illegible] West Bengal. He held his religious assemblies in the capitals of the important rulers [illegible] following. These rulers and their subjects were highly impressed by his deep knowledge and critical analysis of various matters.

Mahavir knew that the Brahmans of that time were highly learned and could understand [illegible] and propagate his doctrines. Accordingly he made Indrabhuti Gautam, Agnibhuti, Vayubhuti, Aryavyakta, Sudharma, Manadkputra, Mauryaputra, Akampit, Achal, Maitreya and Prabhas, all these highly learned Brahmins his Ganadharas or main disciples under whose leadership the Ganas or Sanghas of the Jain saints were placed. Mahasati Chandana was the chief of Jain nuns and Chelna, empress of Magadha, was the chief of the householders organisation. Thus, Bhagwan Mahavir organised his Chaturvidh Sangh into monks (Munis), Aryikas (nuns), Layman (male householders) and lay women (she householders).

Bhagwan Mahavir attained such a big popularity and fame for his deep real knowledge of spiritual and worldly matters that many rulers had deep faith in him. Bimbasar Srenik, emperor of Magadha, was the most important listener at his religious assemblies. He raised 60,000 questions which Ganadhara Gautam replied and which became important part of Agam.

The royalty and the subjects flocked to him to hear Mahavir's religious sermons. He propounded to the audience the five great vows to strictly adhere to by the Jain monks and the Anuvratas for the laity.

The eleven Ganadharas ([illegible]), his chief disciples, incorporated his teachings in 12 Angas viz. 1. Acharanga 2. Sutrakritanga 3. Sthananga 4. Samavayanga 5. Vyakhya prajnapti 6. Nayadhammakaha 7. Upaskadhyayana 8. Antakriddasa 9. Anuttaraupapatika dasa 10. Prashna vyakarana 11. Vipakasutra 12. Drishtivada.

The entire canonical literature of the Jainas is known variously as Nigrantha pravacana (sermons of the Nirgranthas), gani pidaga (Basket of the [illegible]), suya nana (scriptural knowledge) or merely Siddhanta (doctrine). It consists of some sixty texts divided into three groups of works known as purva (14 texts), anga (12 texts) and angabahya (34 texts), all handed down in the ancient dialect of Ardhamagadhi.

After having attained wide fame and popularity as a great spiritual teacher, Mahavir attained Nirvana (Salvation) in the last quarter of the night of the Chaturdasi of the Krishnapaksa of the

month of Kartika i e in the early hours of Amavasya on October 15 B C 527 at Pavapuri in Bihar at the age of 72 years The occasion was celebrated as the Dipavali festival and Vir Nirvan Samvat commenced from that date

At the time of his Nirvana two Ganadharas Indrabhuti Gautam and Sudharma still lived whereas the other 9 Gandharas attained Nirvana during lifetime of Mahavir

During his lifetime Bhagwan Mahavir had over 3 lakh disciples in the Chaturvidh Sangh viz 14 000 monks 36 000 nuns 1 59 000 laymen and 3 18 000 lay women The larger number of women followers appears due to the fact that many men had more than one wife and that these wives became nuns when their husbands became Jain monks

The Muni sangh of Mahavir was organised into 9 Ganas under the leadership of the 11 Ganadharas Indrabhuti Gautam being the Chief among them

Among his followers were not only the people of India but they belonged also to Ganadhara Kapisha and Parsika

Bhagwan Mahavir was elder to Bhagwan Gautam Buddha as the later was born in circa B C 563

The 23rd Tirthankar Bhagwan Parsvanath preceded Mahavir by about 250 years and his period was circa B C 9-8th century Parsvanath laid emphasis on four great vows viz Ahimsa (non-violence) Satya (truth) Asteya (non stealing) Aparigraha (non possessiveness) Bhagwan Mahavir added to it Brahamcharya (celebacy) He felt that a strong moral control on sensuality (passion for sex) and on all other passions and vices was essential for soul purification to attain salvation He stressed on the practice of five great vows particularly by the Jain ascetics and the Anuvratas by the laity

Buddhist texts refer to the existence of large numbers of Niganthas (unattached ones) who followed the chaturyama-samvara the fourfold restraints of Parsvanath which German scholar Hermann Jacobi and others have convincingly identified with the teachings of the 23rd Tirthankar Parsvanath Such references suggest a Jain community older than that of the Buddhists hence predating Mahavir as well

Bhagwan Mahavir's contribution is though in all fields of learning and spiritualism but his contribution to practice of Ahimsa (non violence) compassion equanimity understanding the viewpoint of others i e syadvad and Anekant and Aparigraha (non possessiveness) is of paramount importance

NON-VIOLENCE (AHIMSA)

The most distinctive contribution of Tirthankar Mahavir and Jain Acharyas consists in their great emphasis on the observance of Ahimsa i e non injury to living beings by all persons to the maximum extent possible In fact Ahimsa in its full significance was realised and preached even by the preceding 23 Tirthankaras In fact the philosophy and rules of conduct laid down in Jain religion have been based on the solid foundation of ahimsa which has throughout and consistently been followed to its logical conclusion

Mahavir gave every minute meaning to non violence non injury (whether physical or mental) to any living being His purview of non violence covered not only the human beings alone but equally so also the animals birds and even those which possessed one sense organ (sparsa) like trees water fire mountains earth etc He firmly believed in the right of living of every living being and that upon the existence of one living being depended the welfare and existence of other living beings – Parasparopgrahojivanam (परस्परोपग्रहोजीवानाम्) A great believer in coexistence

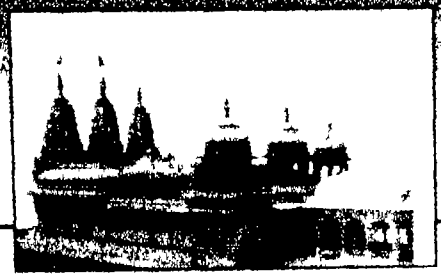

he advised to abjure from any type of injury and cruelty to the living beings whether by word action or even by thought

Mahavir declared over 2500 years ago that 'since all living beings in whatever form of life or existence they are they love desire and like to live happily and detest unhappiness and hate to be killed Non violence is the most sacred covenant for all of humanity

His non violence prohibits destruction of forests and over exploitation of all renewable and non renewable natural resources and implies their use on the basis of perpetual sustainability to ensure the balanced ecological conditions Had his teachings been followed by the rulers and the ruled the governments and the people the conservationists and ecologists would not had to worry about the deteriorating conditions for living of all forms of life due to environmental and ecological imbalance and degradation caused by over exploitation of natural resources

Jainism has become synonymous with Ahimsa Ahimsa (non violence) occupies the supreme place in Jainism Ahimsa Parmo dharma (non violence is the great religion)

COMPASSION

Compassion (Daya) is the guiding force of non violence It is the positive way of life It has been assigned an equally high place in Jainism Daya Dharma ka mool (Compassion is the basis of religion)

Mahavir was born at a time when ritual like sacrificing animals before the deities prompted by the Brahmin priests was common Bloodshed in wars and greed to usurp others territories resulting in frequent bloody large scale encounters were common Animals and slaves were given inhuman treatment He had great compassion in his heart both as a prince and as an ascetic Pain or misery of anyone particularly of the diseased old and poor ones much moved his heart Taking note of the atmosphere of violence he preached vehemently to have kindness for all living beings not to injure or kill them but to treat even the insects birds and animals with care and compassion

EQUANIMITY

Mahavir did not like castism or the high and low in the society For him all human beings were equal His treatment for the ruler and the ruled rich and the poor have and have nots was alike None was untouchable for him as the soul element in every one was common

He did not like slavery which was rampant in those days Acceptance of food (Ahara) from Chandana in her captivity as a slave at the house of a wealthy householder indicates that he wished to give equal respectable social status to the slaves He preached against the cruelties and inhuman behaviour being meted out to the slaves poor and the downtrodden

SYADVAD AND ANEKANT

Advocacy of the principle of religious tolerance has been the characteristic contribution of Tirthankar Mahavir and the Jaina Acharyas Syadvad and Anekant are the two great principles of mutual understanding

Syadvad consists of two words Syat (Syad) and Vad Syat suggests the existence of infinite attributes although the expression asserts about a particular attribute Syat suggests that from a particular stand point the truth reveals itself in a particular form From other viewpoints the same substratum appears to possess other attributes Thus Syadvad deals with truth having manifold aspects With regard to the description of the substratum or its attributes, it deals with particular aspects but does not deny the existence of other attributes or qualities Therefore, this doctrine is known as the philosophy of non-absolutism or relative pluralism

In the world of philosophy this doctrine adopts the policy of co-existence

Some writers erroneously explain Syadvad as Perhaps Philosophy But really speaking this doctrine banishes all confusion and gives a definite precise clear and correct perspective of truth It is indispensable to acquire full knowledge of Truth It is wrong to think of this doctrine as a form of scepticism because it gives us most precise exact and definite guidance and there is not an iota of doubt or suspicion In suspicion the mind oscillates moves to and fro and no definite decision is arrived at In Syadvad we have a definite predication from a particular viewpoint e g a substance is perishable from the point of view of its changing modifications This assertion is definite The same object is without change and is also permanent if observed from the standpoint of the material out of which it is composed This view also is definite A piece of paper catches fire From the viewpoint of paper it is destroyed for we do not see its existence but the particles rather the matter which was present in the form of paper is not all destroyed It has changed its form and it exists in another form

Syadvad is also known as Saptabhangi Nyaya (7 sided logic) i e an object can be viewed from 7 angles A common example about this logic is of an elephant having been touched by 7 blind persons at its different parts and describing that part similar to some object In fact one defines the object as he sees it but in totality the object is as it is in its reality and fullness

Albert Einstein's theory of Relativity comprehends the rationality and soundness of this philosophy of Syadvad

Truth is not one sided therefore one sided view is sure to go against truth and reality You cannot describe that your pen five inches long is small or big Compared to other pens it can equally be predicated big as well as small

Different predications are not made from one and the same point of view Truth perceived from different angles appears contradictory but in reality those partial visions are complimentary

The doctrine of Syadvad always adopts a friendly and rational approach to reality

Syadvad (the Jain Theory of Non Absolutism) is a connecting link between the various Schools of Indian philosophy and is the nucleus of Jain philosophy

ANEKANT

Anekant is composed of two words Aneka and Anta i e many sidedness Mahavir propounded Anekantavada and showed that a thing can be considered from many point of views According to Anekant Vada every object has innumberable rather infinite aspects The same object seen in different relationships or viewed with different perspectives may exhibit different properties Even contradictory properties may find a place in the same object from different standpoints To say of any object or substance that it does possess this very property and not that is dogmatic exclusivism which represents a mistaken metaphysical stand point The truth about any object or substance consists in the recognition that it contains various properties from various standpoints and that its characterisation in terms of some of them does not exclude or contradict its characterisation in terms of others

Anekantvada establishes the truth not by rejecting the partial views about reality but by taking all of them into consideration

Anekant logic is the doctrine which means to examine the very foundations of knowledge and also to explain the ontological problems that have beset philosophical speculations in all times It is the logic that guarantees our capacity to know and provides us with criteria by which we should be able to test our knowledge It may be called the

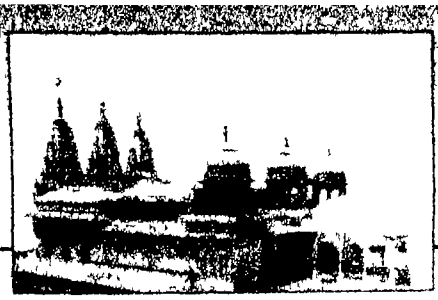

method of philosophy or that instrument of thought by which Tattva-Jnana (or philosophy) is polished

It is a very complicated theory and as such a mind of limited capacity can but grasp only this aspect or that of this many sided system. It confuses moreover by its paradoxes which appear from the ill grounded stand as consisting of diametrically opposed elements. Their connection can only be brought into a comprehensive view of Anekant by one who takes his stand upon a higher platform

Anekant logic is opposed to Ekant Vad (Monism). Monism is according to Anekant as destructive as it ignores one side of the common. Monism renders knowledge impossible by wiping out the difference between subject and its object. Whereas Anekant enables to have all sided views

Anekantvad teaches a lesson of religious tolerance which is essential to remove the present era of religious hatred and conflict prevalent in the national and international scene

Syadvad is the mode of expression. Anekantvad or Nayavad is the mode of cognition. Syadvad is the expression of Anekantvad in language

Mahavir stressed on freedom of expression through his unique doctrine of Anekantvad - the Principle of multiple views - which in effect means respect, tolerance and sympathy for other views on matters of fact and opinion

Anekant means non insistence on one's view point only. It accommodates to listen and regard the views of others as well. It discards absolutism of thought. It propounds mutual understanding. It is of great relevance for the political thought

Had the world leaders adopted the philosophy of Syadvad and Anekant of Bhagwan Mahavir to understand others points of view, the mental reservations, misunderstanding and clashes would have been banished and an era of global peace would have prevailed

NON POSSESSIVENESS

Bhagwan Mahavir stressed on renunciation of worldly objects as much as possible and to limit the needs and requirements. He had a socialistic approach about distribution of wealth

His humanitarian approach to lessen the miseries of living beings was included in the vow of aparigraha i.e. abstention from greed of worldly possessions. Aparigraha involves not desiring more than what is really needed by an individual

This vow of parigraha parimana (to put limits on possessions) is very noteworthy as it indirectly aims at economic equalization by peacefully preventing undue accumulation of wealth in individual hands. It recommends that a householder should first determine the limit of his maximum belongings and should never exceed it. Even if he happens to earn more than that he must spend over it in giving charity (dana) which will reduce the needs of hunger, scarcity and sickness

Mahavir believed that each individual has the full potential and capability of attaining perfect divinity and his own salvation. He stressed on a religion of introspection of inner self, a religion of soul purification - emancipation of soul from bondage of Karma. His religion is therefore known as Atma dharma

Bhagwan Mahavir believed that Karmavad and Purushartha vad go hand in hand. It is wrong to be a fatalist without doing actions

Mahavir was meticulous about pious diet. He gave two important words about diet - Hitahar and Mitahar. He preached that food which is fit for health and lesser food keep the persons healthy and fit. It is why the Jain saints generally take food once in a day and also observe fasts

The life and philosophy of Bhagwan Mahavir are the unique contribution not only for the Jains but for the mankind as a whole

53, Rishabh Vihar
Delhi 110092

SOCIAL IMPORTANCE OF AHIMSA

• **Dr Vilas Sangave**
Hon Director
Sahu Research Institute
Shivaji University Kolhapur

Jainism has laid great stress on the observance by the householders of Right Conduct consisting of twelve vows viz five main vows known as Anuvratas and seven supplementary vows known as Shilavratas Among these twelve vows primacy has been assigned to the first vow of Ahimsa The remaining vows also are manifestations of Ahimsa in one form or another It is enjoined upon the householders to practise these vows in their daily life with utmost care so that even the Aticharas i e the transgressions of these vows can be avoided to a great extent It means that the observance of these vows has to be made as faultless as possible

Obviously these vows are of a great social value as they accord a religious sanction to some of the most important public and private interests and rights which are in modern times safeguarded by the laws of the State It could be seen that these vows merely reproduce the unwritten moral code of the best societies of men though they make transgressions a little more difficult They also cover the entire range of modern society's penal restrictions so that one has merely to adopt them to avoid transgressing of criminal laws of all countries whatsoever For example all offences against persons are banned under the vow of Ahimsa even injuring an animal is covered by the inhibition Similarly offences against property are covered by the vow of Asteya i e non stealing when understood in its true spirit that is in its fullest scope Again perjury forgery counterfeiting coins and all other allied offences fall within the purview of the vow of Satya i e truthfulness and social misbehaviours are warded under the fourth vow of Brahmacharya i e Chastity Lastly the last vow of Aparigraha i e abstention from worldly attachments engenders a contented spirit which is the real guarantor of peacefulness and a thing which acts as a powerful check on crime by crushing out the tendency toward law-breaking at its very inception

So far as conditions in India are concerned it is stressed that a due observance of these five main vows would save a man from the application to him of almost any of the sections of the Indian Penal Code In this connection Shri V B Latthe a well known author and social leader has in his book entitled An Introduction to Jainism (published in 1905 A D) shown in a tabular form as given below that the observance of the five main vows without committing any of the faults or transgressions pertaining to them is practically tantamount to complete conformity with the principles of morality enforced by the Indian Penal Code

The Vows and the Penal Laws

Chapter	Section	Substance of the Sections	The Equivalent Vows etc
I	1	Preamble	Command to take the Shastras as Authority
II	6 52	Definitions	The definitions of sins and the vows
III	53 75	Punishments	Penances

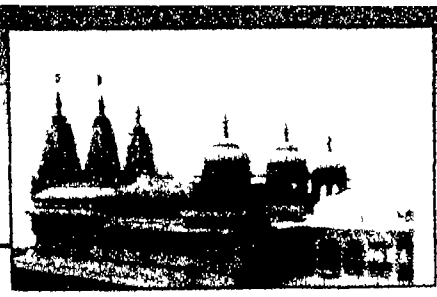

Chapter	Section	Substance of the Sections	The Equivalent Vows etc
IV	76 106	General Exceptions	There is no sin unless an action is actuated by passion
V	107 120	Abetment	The five vows and their faults
VI	121 130	Offences against the State	Fault of the third vow viz Viruddha rajyatikrama
VII	131 140	Offences against the Army & Navy	Fault of the third vow viz Viruddha rajyatikrama
VIII	141 160	Offences against public tranquility	The vow of Ahimsa and its faults
IX	161 171	Offences committed by public servants	The vows of Satya and Asteya with their faults
X	172 190	Contempt of Court etc	Fault of Viruddha rajyatikrama of the third vow
XI	191 229	False statements etc	Faults of Mithyopadesha and Viruddha rajyatikrama of the second and third vow respectively
XII	230 263	False coinage etc	Pratirupaka vyavahara and Viruddha rajyatikrama faults of the third vow
XIII	264 267	Offences regarding weights etc	Hinadhika manonmana fault of third vow
XIV	268 294	Offences against health safety etc	Faults of the first vow
XV	295 298	Offences against religion	Faults of the first two vows
XVI	299 377	Offences against person	The vow of Ahimsa and its faults
XVII	378 462	Offences against property	The complete vow of Asteya
XVIII	463 489	Regarding false documents etc	Faults of Kutalekhakriya and Pratirupaka vyavahara of the 2nd & 3rd vows respectively
XIX	490 492	Regarding failure to perform services	The vow of Satya
XX	493 498	Offences against marriages	Vow of Brahmacharya
XXI	499 502	Defamation	Vow of Satya
XXII	503 510	Intimidation	Vow of Satya
XXIII	511	Attempt to commit offence	The five vows

Thus it is asserted that if a man but observes the five main vows with the avoidance of their respective faults he has no fear from the Indian Penal Code

It is therefore contended that the moral behaviour of persons would definitely improve by the regular observance of these twelve vows with the avoidance of faults attached to them In this regard it is pointed out by Shri A B Latthe that the proportion of Jailgoing population is a good index to the moral condition of a community and has given the following table from the Jail Administration Report for the year 1891 A D for the Mumbai Presidency

Religion	Population in 1891	Total Prisoners in 1891	Proportion of Persons to Prisoners
Hindus	1 46 57 179	9 714	1 509
Mohamedans	35 01 910	5 794	604
Christians	1 58 765	333	477
Parsees	73 945	29	2 549
Jews	9 619	20	481
Jains	2 10 436	39	6 165

From these figures Shri A B Latthe (in his book 'An Introduction to Jainism' published in 1905 A D) has given his conclusion that The last column shows that the Jains stand highest in morality The figures from a later Report re for the year 1901 show an improvement even over this That is out of 7 355 Jains only one man was in prison in that year Such figures based on subsequent decenial Census Reports are not available But in general it can be said that the rate of criminality among the Jains is much less and that this comparatively low frequency of incidence of crime among Jains can be attributed to the rules of Right Conduct based on the principle of Ahimsa as laid down by Jaina religion

Thus it is quite evident from the cultural history of India that the fundamental doctrine of Ahimsa and the actual observance of Ahimsa in all its aspects have been extremely useful from social and other point of views in bringing about many desirable changes like reduction of violence practised in different fields of activities acceptance of the sanctity and dignity of all living beings and improvement in moral behaviour of the people That is why maximum value has been attached to the doctrine of Ahimsa by Acharya Shubhachandra in his famous work Jnanarnava in following terms

श्रूयते सर्वशास्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च।
अहिंसा लक्षणो धर्म तद्विपक्षश्च पातकम॥ ३१॥
तप -श्रुत-यम-ज्ञान-ध्यान दानादिकर्मणा।
सत्य शील-व्रतादीनाम् अहिंसा जननी माता॥ ४२॥

that is 'in all kinds of scriptures Ahimsa is considered as the distinctive mark of religion and its contrary as sin and Ahimsa is regarded as the mother of all good things like austerities learning religious duty knowledge meditation charity and vows of truth good conduct etc

In this way the highest position has been accorded to the doctrine of Ahimsa in Jaina religion and it is pertinent to note that this principle of Ahimsa has been actually put into practice by the Jainas during the last so many centuries As the principle of Ahimsa permeates the life of the Jains the Jaina culture is referred to as the Ahimsa culture If the Jainas are known for anything it is for the evolution of Ahimsa culture since they practised and propagated that culture from ancient times in India The antiquity and continuity of Ahimsa culture is mainly due to the incessant efforts of the Jaina Acharyas re saints Naturally wherever the Jains were in great numbers and wielded some influence they tried to spread Ahimsa culture among the masses That is why we find that the States of Gujarat and Karnatak which were the strongholds of Jainas from the beginning are largely vegetarian In fact it is admitted that as a result of the activities of the Jainas for the last so many centuries Ahimsa still forms the substratum of Indian Character as a whole

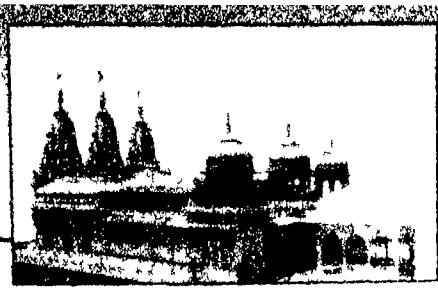

SAMYAK-CHARITRA AND ITS TWO LEVELS

The ultimate ideal of a Jaina is perfection here and here after. It is not the entire negation of the empirical values but only an assertion of the superiority of the spiritual; empirical values are a means to the realisation of the supreme values. *Artha* (economic value) and *Kāma* (desires for empirical good) are to be secured to the realisation of the spiritual value *Dharma*. *Dharma* leads to *Mokṣa*. *Mokṣa* can also be interpreted as self-realisation and the self to be realised is the transcendental self. The ultimate excellence of the spirit could be attained by the gradual process of getting moral excellence. There is no short cut to *mokṣa*. As Schweitzer maintains, the problem of deliverance in the Jaina and the Buddhist thought is not raised beyond ethics. In fact it was the supreme ethic and it was immensely full of significance for the thought of India. In the West the Hellenic ideal was to be a good citizen to attain excellence in this life. The Jainas, as is in other Indian thought except the *Cārvāka*, realised that we have to transcend the empirical to reach perfection. Yet the empirical is not negated; it is the stepping stone for the perfection. *Samyak Cāritra* (moral life) is important as the pathway to perfection. Of the triple pathways, Samyak Darśana (right faith), *Samyak Jñāna* (right knowledge) and *Samyak Cāritra* (right conduct), *Samyak Cāritra* is equally important. Without hunger and thirst for righteousness we shall not enter the kingdom of perfection. Ethics for the Jainas is working in righteousness all the days of one's life. Mathew Arnold said morality is the three-fourth of life. In fact it is the whole of life. Morality has no holidays. And it is not only the conventional morality that the Jainas emphasise but is the moral excellence with conviction. *Samyak Cāritra* presents the canvas for the illumination of one's self towards spiritual strength.

Samyak Cāritra has been distinguished into two levels: *Sakala* (complete) and *Vikala* (partial). *Sakala Cāritra* is the vigorous practice of *dharma* and it is to be adopted by those who renounce the world and become ascetics. It is *munidharma*. It may be considered as individual ethics. But for those who have not renounced the world it is still possible to seek the truth and pursue the path of righteousness though in a convenient and a lesser degree; that would be *vikala cāritra*, the way of the householder. This is social ethics. There are thus two levels of morality. The polarity of the householder and ascetic is one of the most characteristic features of the Jaina social structure. The layman has the obligation to cherish his family; the monk must sever all ties with them. The monks are excessive since their lives are a negation of compromise, while moderation is the keynote of the life of the householder. It is rooted in compromise.

Abstract from
Study of Jainism
by **T G Kalghatgi**

विज्ञापन

हार्दिक शुभकामनाओ सहित :

राष्ट्र और समाज की सेवा में समर्पित

आयात-निर्यात, फाइनान्स, प्रोपर्टीज, रबर, खाद्य-सामग्री, कोयला इत्यादि अनेक व्यापारिक कार्यों मे सलग्न

पूनमचन्द गजराज गंगवाल (झरीयावाले)

मुख्य कार्यालय :

रानी झासी रोड, नई दिल्ली-55

फोन . 3541095, 3553696, 3553697

फैक्स 3541094, 3553698

With Best Compliments From

UNIGEMS

Highest Export Award Winners

Manufacturers, Exporters & Importers of

DIAMONDS, JEWELLERY & CONSULTANTS

H O
2032 A, Street Barafwali,
Kinari Bazar, DELHI-110 006
Tel 3275472, 3273396 • Cable 'TUPAS' DELHI

B O

Le Meridien Hotel
Show Room No 3 Lobbv Level,
Janpath, New Delhi-110 001
Tel (F) 3714163, 3710524, 3321402

Mahavir Bhawan,
9, Hospital Road,
C-Scheme,
Jaipur-302 001
Tel 366438, 364893

B O

403, Dharam Palace
Hughes Road,
Mumbai-400 007
Tel 3614289, (F) 3615548

101, Vardhman,
Johari Bazar,
Jaipur
Tel (F) 565045, 565017

B O

[illegible] Ram & Co.

H O
1201, Maliwara,
Delhi-110 006
Tel 3276924

B O
Gopalji Ka Rasta
Jaipur-302 001
Tel 563246

Santosh Jewellers

H O 2032 A, Street Barafwali, Kinari Bazar, Delhi-110 006 • Tel 3275472

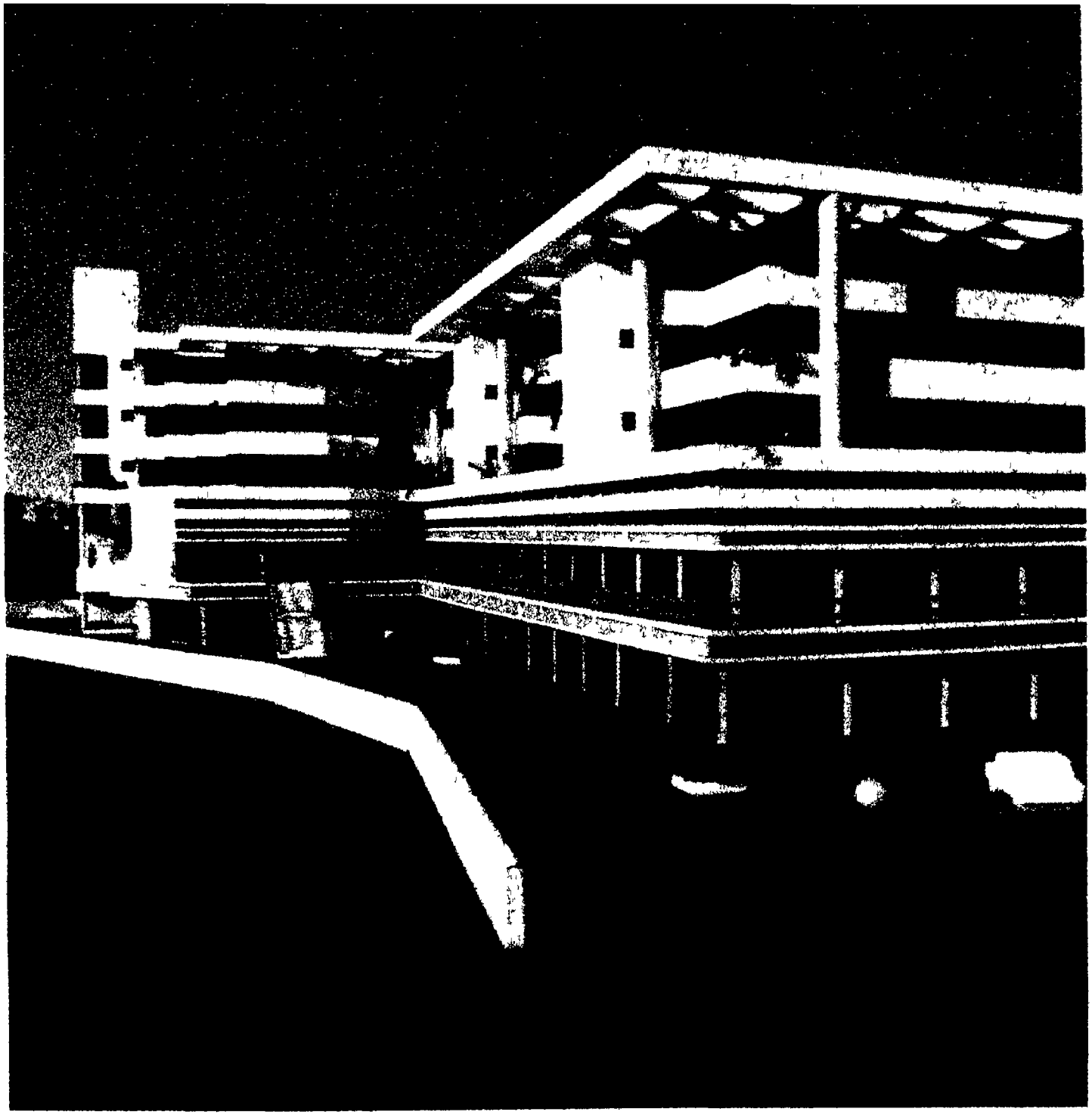

With Best Compliments From :

SOHAN LAL & NARENDRA KUMAR SETHI

PROMOTER-BUILDER-REAL ESTATE DEALER

Block H -8 Sukhijeevan Complex Opp Hotel Jai Mahal Palace Jacob Road JAIPUR - 302 006

Phone 369287 371007

Director
Parasnath Builders (P) Ltd.

Managing Director
Sanchal Constructions (P) Ltd.

Chairman & Managing Director
Padmini Enterprises (P) Ltd.

Partner
Sumeru Enterprises
(Promoter of Laxmi Commercial Complex M I Road Jaipur)

Phone 364133, 364134 365085, 366961-65

शत् शत् वन्दन

श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओ सहित

सेठ बन्जीलाल ठोलिया चेरेटी ट्रस्ट

बन्जी हाउस, घी वालों का रास्ता, जयपुर
द्वारा सचालित

(1) बन्जीलाल ठोलिया धर्मशाला, जयपुर
(2) शान्तीसागर आयुर्वेदिक औषधालय, जयपुर
(3) शान्तीनाथ वाचनालय, जयपुर
(4) बन्जी ठोलिया चैत्यालय (रत्नो की प्रतिमाये), जयपुर
(5) बन्जी ठोलिया धर्मशाला, श्री महावीरजी

फोन - जयपुर · 564932 ◆ श्री महावीरजी . 24514

मत्री
राजेन्द्र कुमार ठोलिया

व्यवस्थापक ·
प्रदीप कुमार ठोलिया

अध्यक्ष
नेम कुमार ठोलिया

The Temple Towers with Golden Kalash Shri Mahavirji

With Best Compliments For
Shri Mahaveerji Millenium Celebration

S. Kumars®

A Trusted Name in Blended Suitings, Shirtings & Sarees

Registered Office
99, Niranjan, Marine Drive, MUMBAI-400 002
Phone 203 8432 / 201 5833
Cable ESKEX Mumbai, Kalbadevi 400 002
Fax 493 1685 / 203 8619

चरण-चिह्न पर दुग्धाभिषेक, श्री महावीरजी

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह पर

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

राजस्थान का नं. १

स्टूडियो • कलर लैब • फोटोशॉप

पोट्रेट स्पेशलाइजेशन

फैमिली ◦ खास मौके ◦ सगाई ◦ चिल्ड्रन ◦ कॉरपोरेट स्टूडियो ◦ वैडिंग कवरज

गोयल कलर लैब

- 158, 159, नेहरू बाजार, जयपुर ◦ फोन • 318333, 314016
- शॉप न 76, जौहरी बाजार, जयपुर ◦ फोन 564116
- नटराज के सामने, एम आई रोड, जयपुर ◦ फोन • 373891

वो पल, जिनसे जुड़ा है आपका कल

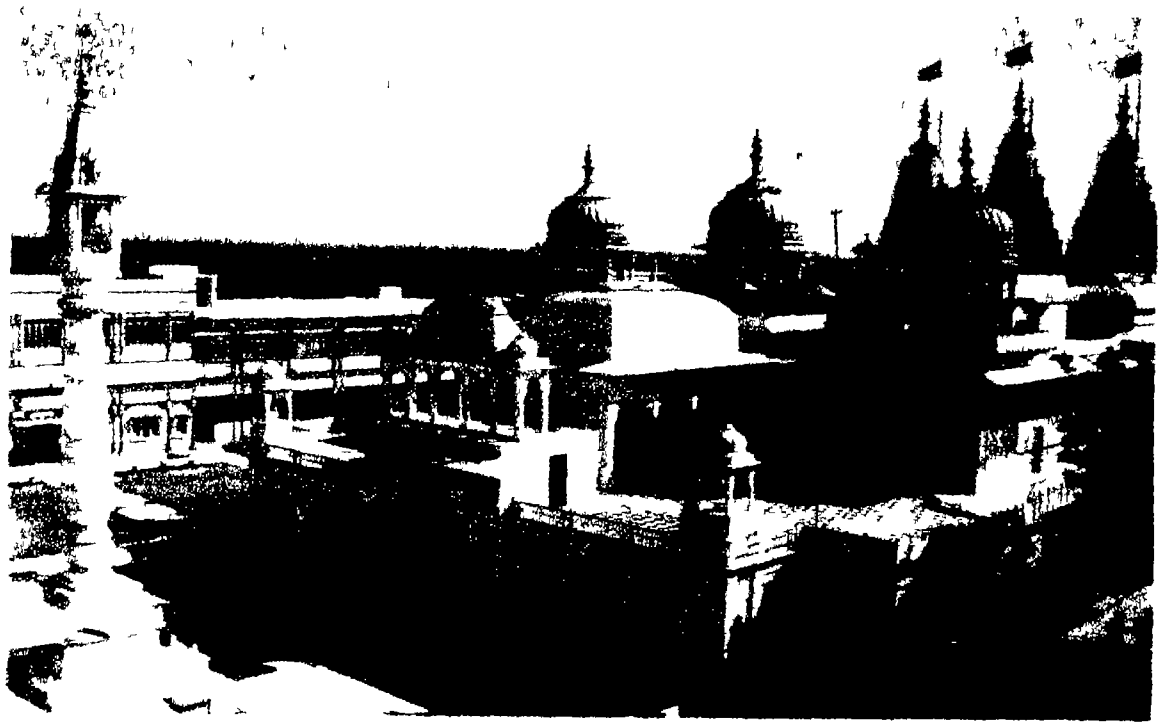

The Panoramic View of Shri Mahavirji Campus

With Best Compliments From

Rishi & Co

Specialists

For Making Water and Sewerage Arrangements in Rallies,
Kathas and Holy Functions

Office 1257, Farash Khana, Fatehpuri, Delhi-110 006
Ph 238804, 236416, 232637
Residence 5C/32, New Rohtak Road, New Delhi-110 005
Ph 571706, 5715709

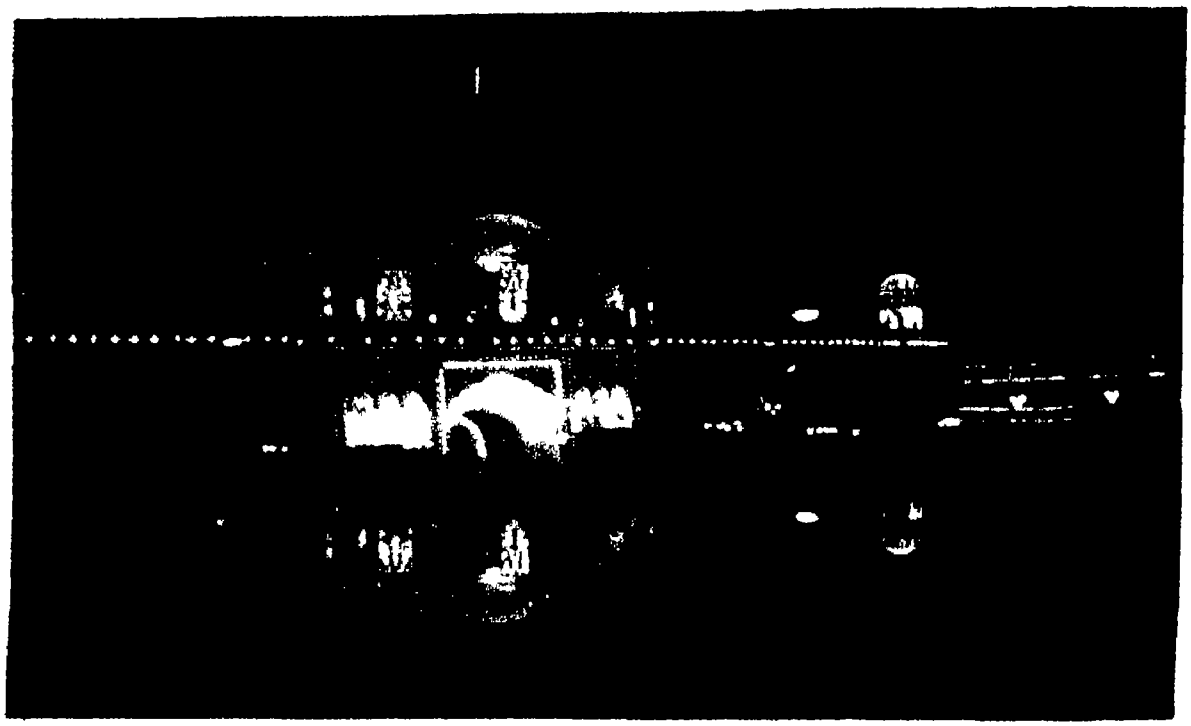

The Illuminated Majestic Temple Shri Mahavirji

With Best Compliments For
Shri Mahaveerji Millenium Celebration

Girdhari Lal Kedar Nath Singhal

Tent Contractor

Hirers & Decorators of

PANDAL, EXHIBITION, FURNITURES, SWISS COTTAGE, E P TENTS,
CHOULDARY, SHAMIYANA & G I C TIN-SHEET WORK

Subhash Bazar, Agra-3 · Phone 360717, 368310, 367255

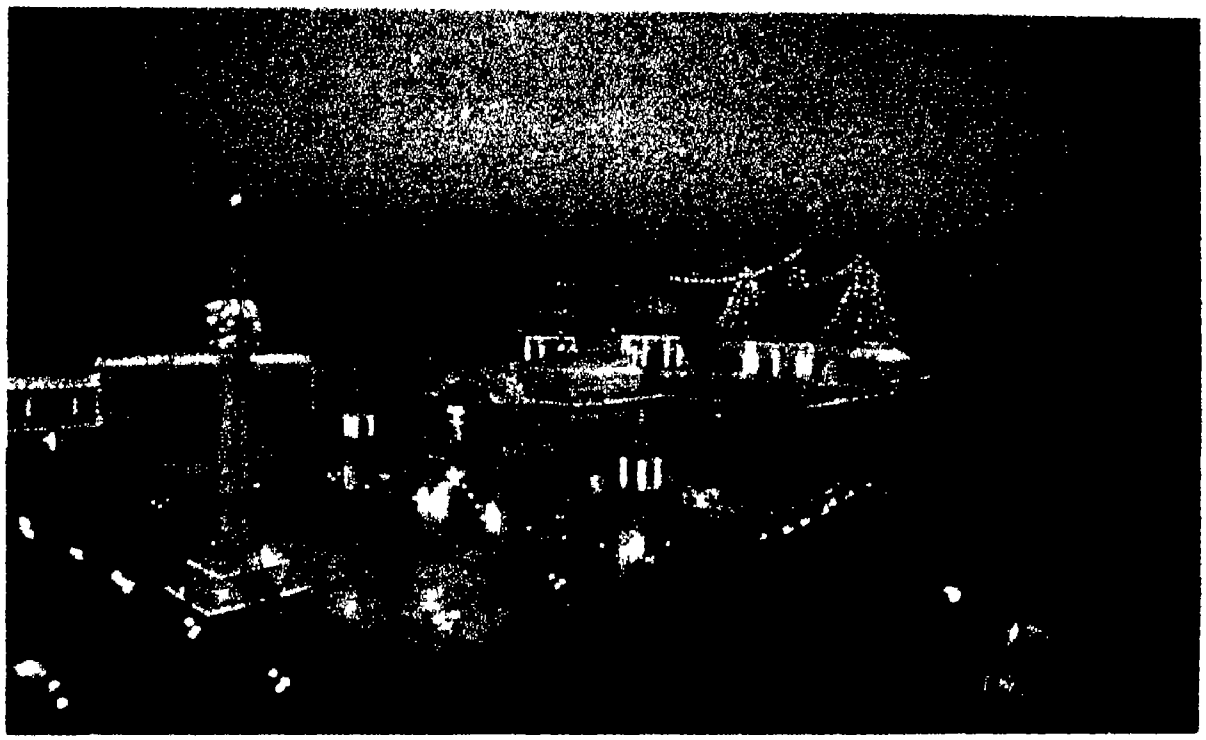

जगमगाता देवालय एव मानस्तम्भ, श्री महावीरजी

श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओ सहित

परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज
के
पावन सान्निध्य में आयोजित
श्री महावीरजी . सहस्त्राब्दी समारोह
मे
सम्पूर्ण आवास, पण्डाल, स्टेज, गेट, प्रदर्शनी एव दुकाने आदि
एव
टेन्ट्स की व्यवस्था करने वाला प्रतिष्ठान

मै. गिरधारी लाल एण्ड सन्स टेन्ट एवं पण्डाल कॉन्ट्रैक्टर्स

(गिरधर लाज) 14, सांठा बाजार, इन्दौर (म प्र.)
फोन · 536026, 541279, फैक्स · (0731) 541279

With Best Compliments From

SHANTI ROADWAYS

Mumbai
Mawani Mansion,
37 Jail Road, Dongri
Ph (O) 3717015, 3759834
(Res) 3501061

Delhi
2770, Qutub Road
Sadar Bazar
Ph 7773602 7517460
UP Border 8768346

Hyderabad
22 7 220, Nizam Bagh
Dewan Devari
Ph (Off) 525237

Bangalore
7/VI Cross
Lal Bagh Road
Ph (O) 2223981

Kanpur
278, Transport Nagar
Ph (Off) 270678
(Res) 312008, 312284

Chennai
122, Wattex Road
Ph (O) 582079, 585019
(Res) 517289

Bareilly
11, Bamlal Mkt ,
Shamatganj
Ph. : (O) 479892
(Res.) 478196, 73797

Bhilwara
125/26
Transport Nagar
Ph (O) 26074

Kota
43, Udyog Marg
Ph (Off) 24864
(Res) 28332

Jaipur
Moti Dungri Road
Ph (O) 49308, 49804

SHANTI ROADWAYS

Transport Contractors, Truck Fleet Owners, Railway Freight Forwarders

HO 5, Nawab Lane
Calcutta 700 007

Off 2395535, 2392474
Res 4735848, 2399555
Gram . ROADVIJAY

With Best Compliments From

Mukul Kala

Quality Printing Press

723, Kala Building, Acharyon Ka Rasta,
Kishanpole Bazar, JAIPUR-302 001
Phone 315720

With Best Compliments From

M/s. PARIDHAN

(Distributor of Moustache Jeans Wear for Rajasthan)

B-13, "SHANTI NIKUNJ", FATEH TIBA MARG
M D ROAD, JAIPUR-302 004
Tel (O) 608994, (R) 48166, 42331 • Fax 563357

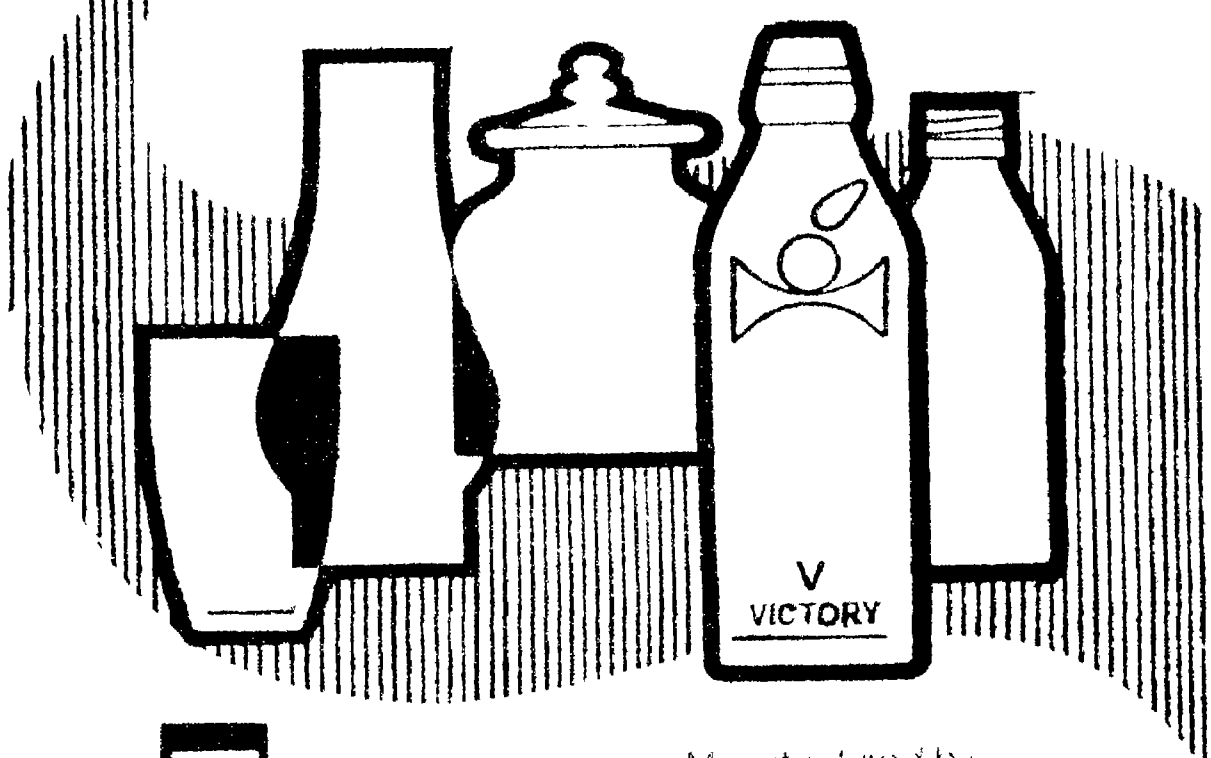

With Best Compliments From
SASNI
The SASNI
PRODUCTS
DESIGNS
TO FIT
EVERY HOME
V
VICTORY
SASNI
Manufactured by -
KHANDELWAL GLASS WORKS (SASNI)
P O Khandelwal Glass Works - 202139
Distt Aligarh, U P
Phone Off (05728) 2226 2316 Res 2227 2317
Fax (05728) 2256

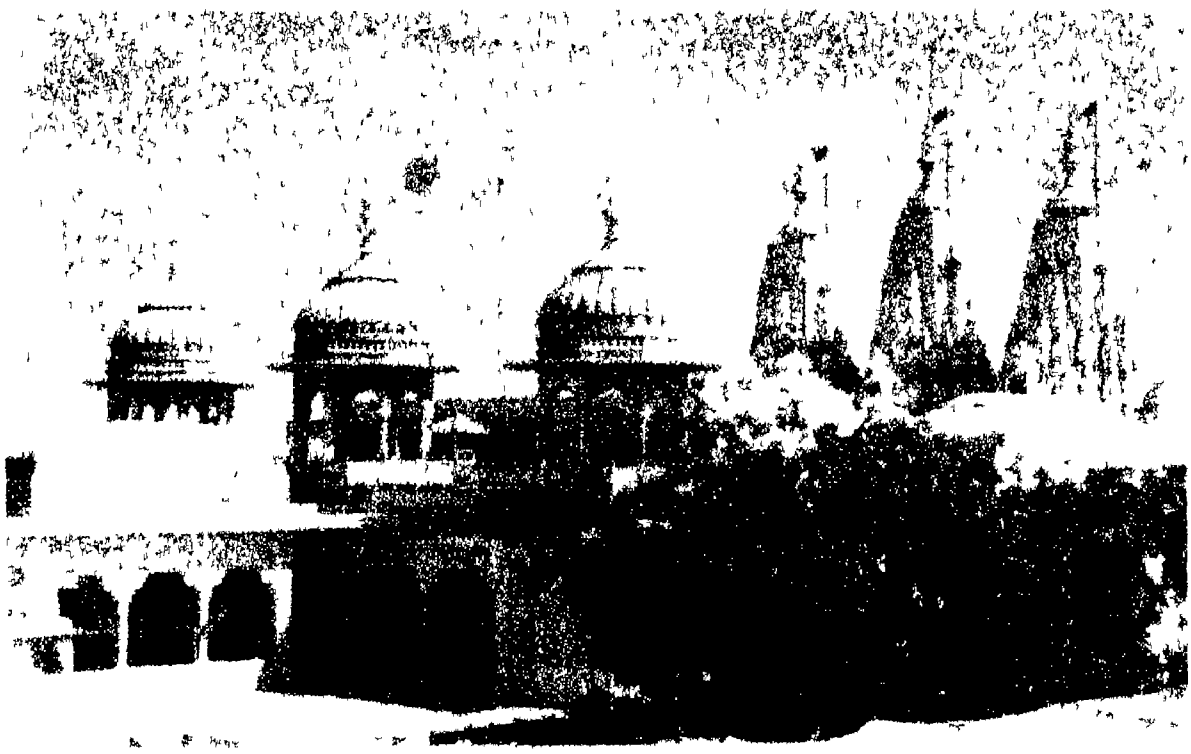

सुन्दर व कलापूर्ण मन्दिर, श्री महावीरजी

श्री महावीरजी · सहस्त्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

मै. मानमल महावीरप्रसाद झांझरी

झुमरी तलैया - 825 409
जिला - कोडरमा (बिहार)

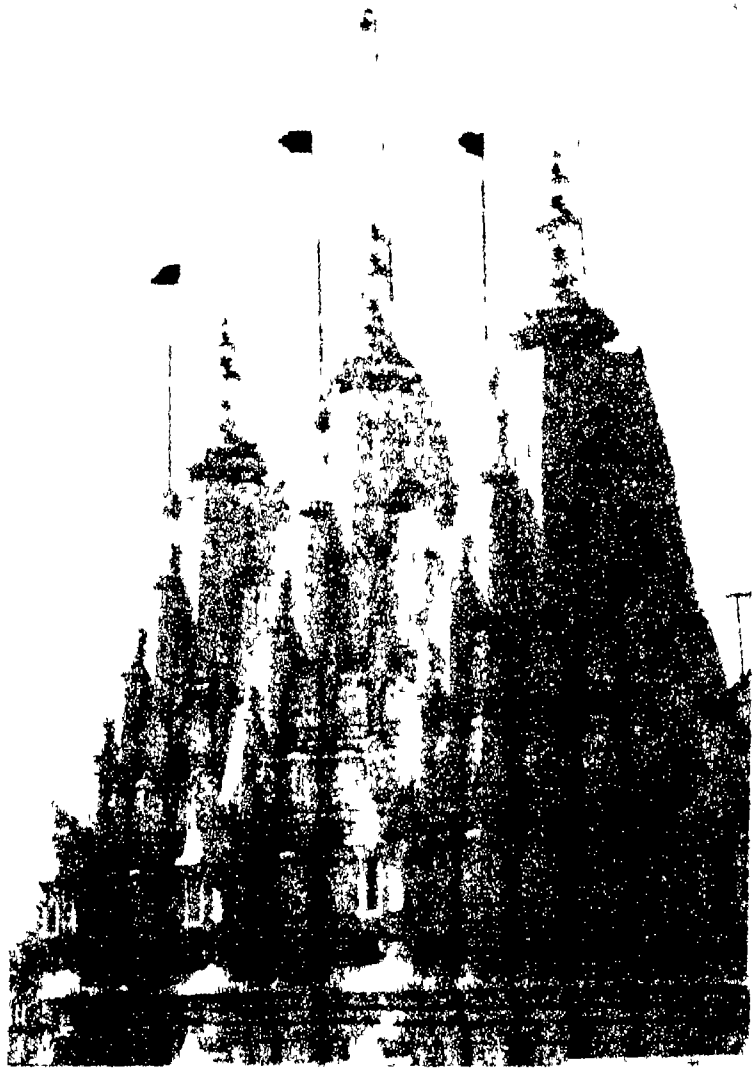

The Temple Towers with Golden Kalash Shri Mahaviraji

With Best Compliments From

FRIENDS ENTERPRISES

LEADER VALVES

B-30, M G D Market, JAIPUR-302002

Phone (Shop) 313187 310796 (Resi) 513093

Authorised Dealer

Leader Valves ISI, Keystone Butterfly Valves

Deals in

All Kinds of Steel Tubes, G I, M S Pipe Fittings, Sanitary Fittings, Hardware and Order Suppliers

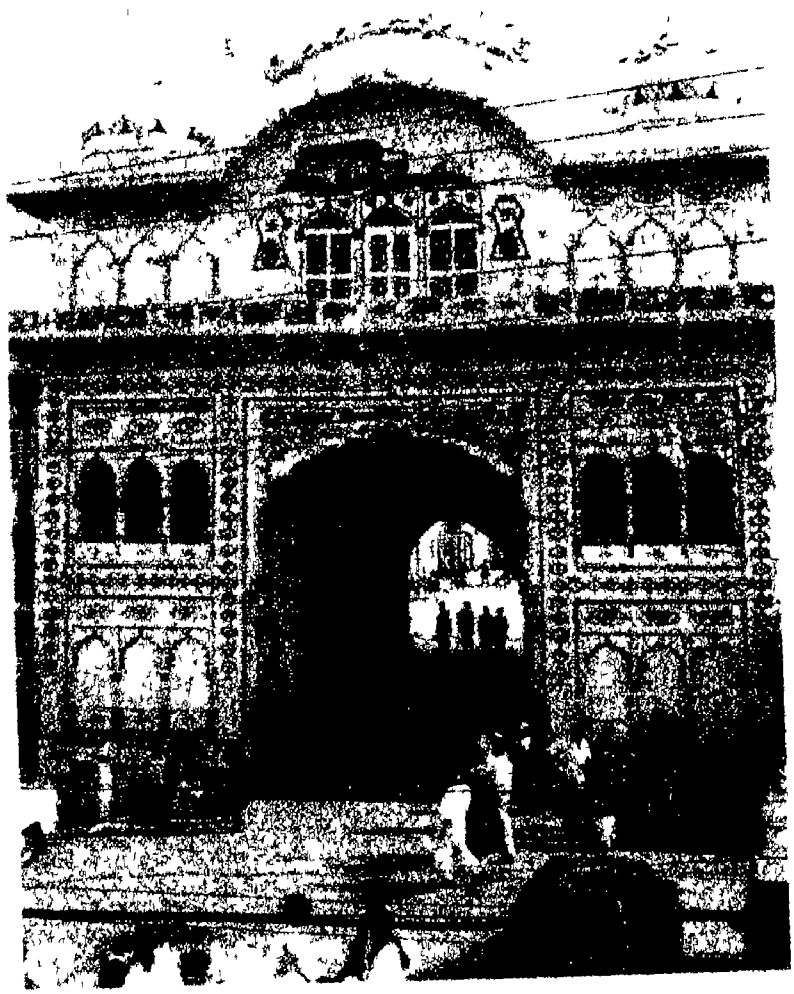

The Main Doorway of the [illegible] Shri Mahavirji

With Best Complements From

SHARMA ELECTRIC CO.

Naya Bazar, GWALIOR-474009 (MP)
Phone 321043

A Class Contractor

Electric Decoration · Exhibition · Marriage & Other Facilities

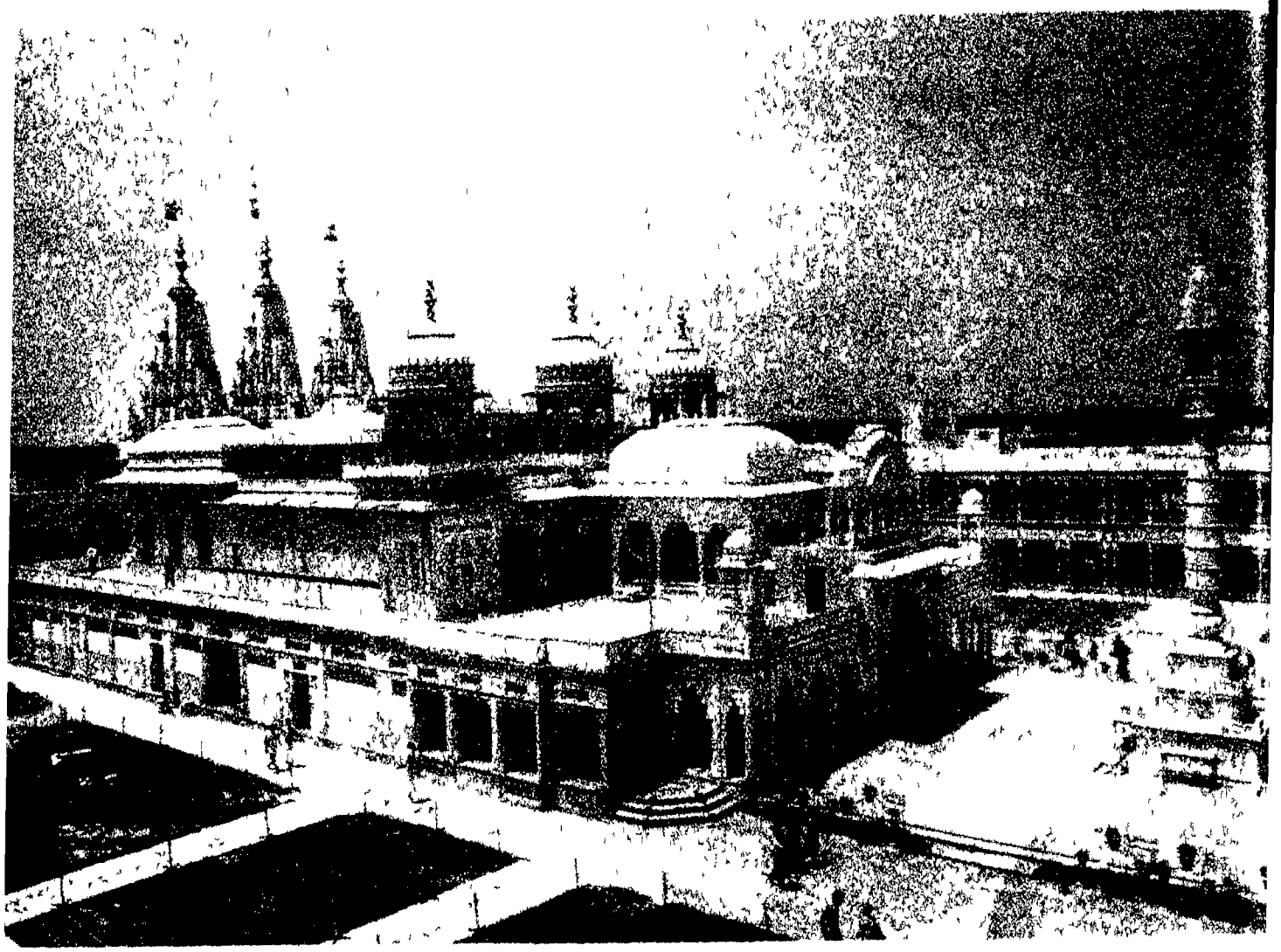

With Best Compliments From

Gyan Chand Jain

Gyanjee Sweet & Caterers

Outside Catering – A Speciality

'Laxmi Niwas', C-22, Bhagwandas Road, Jaipur-302 001

Phone · 374260, 362156

विशिष्ट नवीन योजनाओं के अन्तर्गत और अधिक ऋण सुविधा आपके सपनों को साकार रूप देने में सक्षम

नवीन योजनाएँ

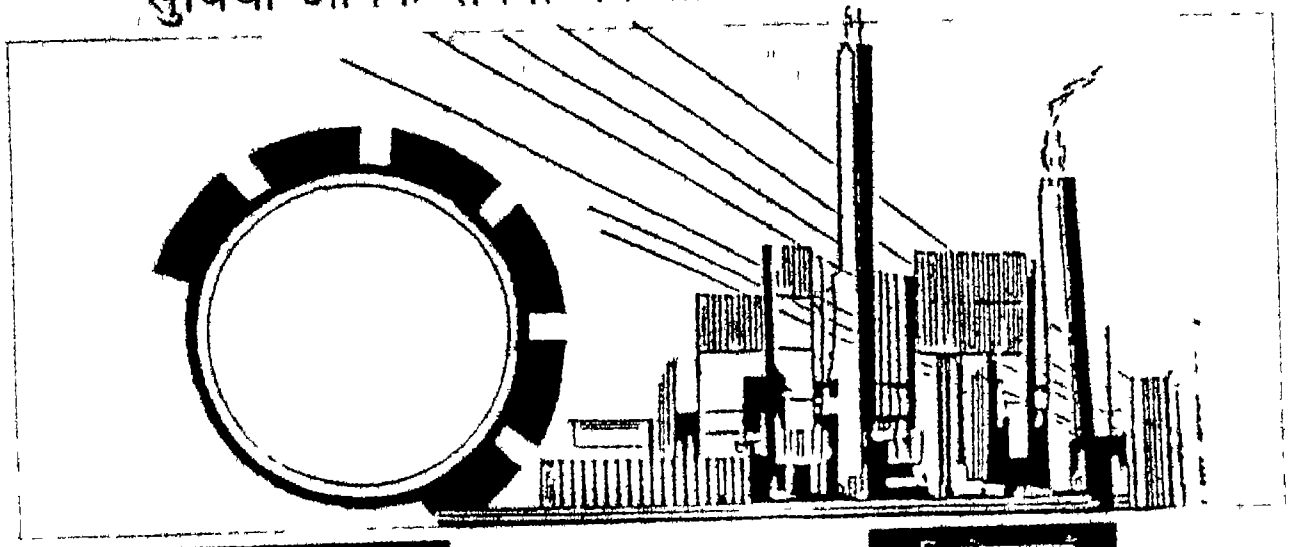

- नवीन योजनाएँ लघु क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के उत्पादनों के विपणन हेतु राज्य में शोरूम की स्थापना हेतु।
- विपणन वाहन (चल विपणन व्यवस्था हेतु)
- स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं के अन्तर्गत छोटे अस्पताल एवं नर्सिंग होम हेतु।
- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं के अन्तर्गत होटल्स, हेरीटेज होटल्स एवं रेस्तरां हेतु।
- सड़क निर्माण, रख रखाव एवं विकास हेतु सिविल ठेकेदारों को उपकरण क्रय करने हेतु।
- आधुनिकीकरण, पुनर्स्थापन एवं इक्विपमेंट रिफाइनेंस योजनाओं के अन्तर्गत विद्यमान उद्योगों को ऋण सुविधाएँ।
- गुड बॉरोअर्स के लिए अल्पावधि ऋण योजना

विशेषताएँ

- अल्प समय में ऋण स्वीकृति
- निगम द्वारा 240 लाख रुपये तक की ऋण सहायता एवं इससे अधिक अन्य वित्तीय संस्थानों के सहयोग से।
- अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उद्यमियों को सामान्य से 2 प्रतिशत कम ब्याज दर पर 5 लाख रुपये तक की ऋण सुविधा।
- समाज के कमजोर वर्गों, विकलांगों, सेवानिवृत्त सैनिकों एवं महिला उद्यमियों के लिए विशिष्ट योजनाएँ।

राजस्थान वित्त निगम पूर्ण तत्परता से राज्य में स्थापित अंचल कार्यालय (पश्चिम) जोधपुर, 7 क्षेत्रीय कार्यालयों एवं 41 शाखा कार्यालयों के सहयोग से औद्योगीकरण को वास्तविक रूप देने में सक्षम।

राजस्थान में उद्योग स्थापित करने वाले उद्यमियों को मार्गदर्शन के लिए निगम ने "उद्यमी मार्गदर्शन प्रकोष्ठ" की स्थापना की है। जहाँ पर इच्छुक उद्यमियों को उद्योग सम्बन्धी जानकारी प्रदान की जाती है। जहाँ पर आपको परामर्श, मार्गदर्शन एवं सभी प्रकार की औपचारिकताओं की पूर्ति हेतु सहायता एवं सलाह दी जाती है।

अधिक जानकारी के लिए निगम के क्षेत्रीय कार्यालय/शाखा कार्यालय/अंचल कार्यालय से सम्पर्क करें।

राजस्थान वित्त निगम

उद्योग भवन, तिलक मार्ग, जयपुर 302 005 टेलीग्राम "राजफिन्को" फोन 380084-87 380231 33 फैक्स 0141-383703

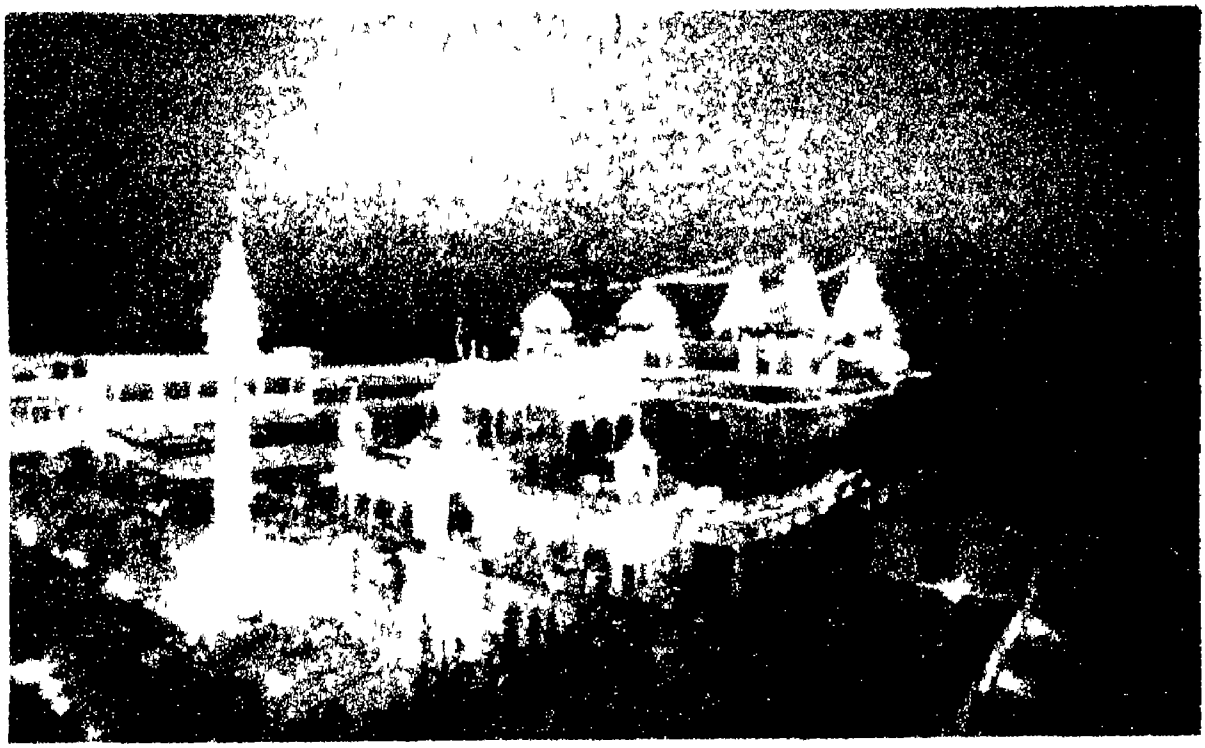

With Best Compliments From

JAIN ELECTRIC & FLOWER DECORATION

209/1 Jawahar Marg (Ray Mohalla)
Indore-452 002

Lighting Decoration, Illumination,
Wall Decoration & Flower Decoration

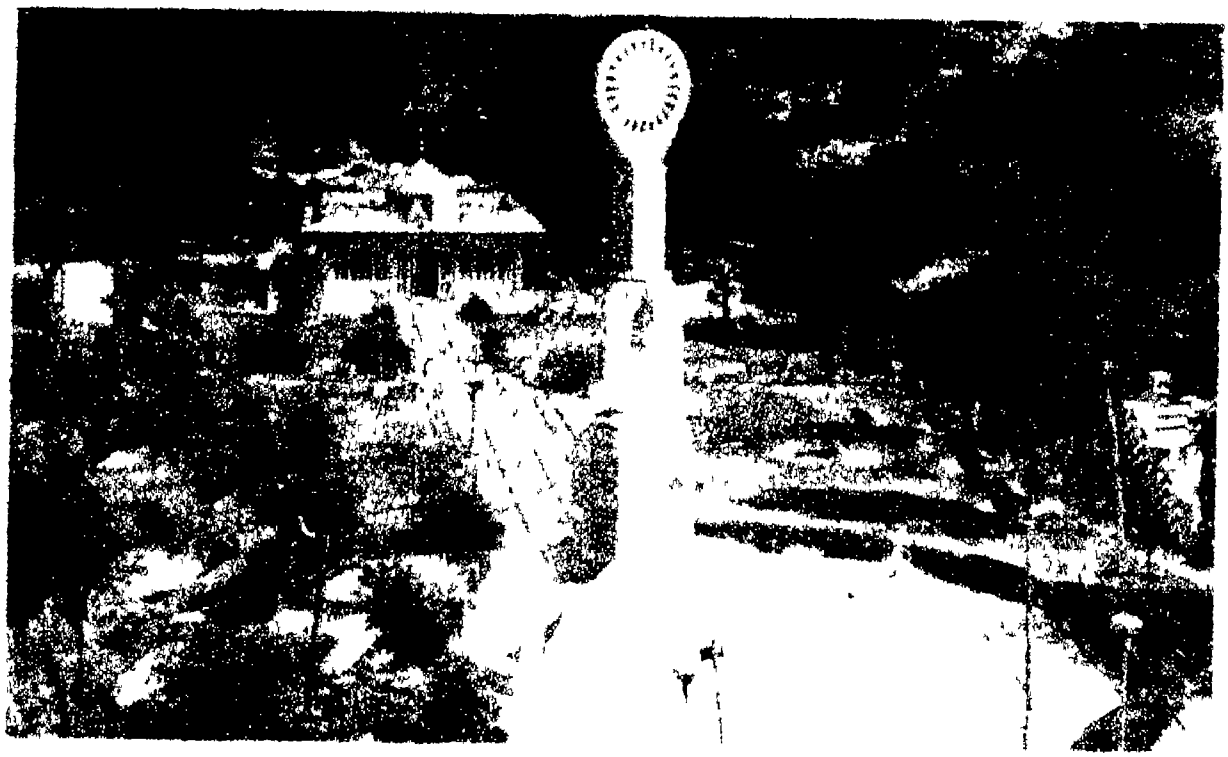

चरण-चिह्न छतरी एवं महावीर स्तूप, श्री महावीरजी

भगवान महावीर के सहस्राब्दी समारोह के पावन अवसर पर
हार्दिक मंगलकामनाओं सहित

विनियावत

ताराचन्द प्रेमी, शेखर जैन, अशोक जैन, मुदित जैन, निर्झर जैन

फोन 01269 7[illegible]

प्रतिष्ठान :

अशोका स्टोन क्रशिंग इन्डस्ट्रीज
जैना कंस्ट्रक्शन एण्ड बिल्डर्स

फिरोजपुर झिरका 122104 (हरियाणा)

With Best Compliments From .

OM TRANSPORT CORPORATION

H O Moti Dungri Road, JAIPUR-302 004 (Rajasthan)
Phone (O) 49605 (R) 600860 605306, Godown 604621

B O G-66 Bulward Road, Bhairu Mandir Compound
Behind Post Mortam House, Delhi-110 054 • Phone 237463

Branch Office 25, Maharshi Devendra Road, Calcutta-700 007
Phone (O) 2398390 2392483 (R) 2312246

Booking Godown 67/28, Strand Bank Road (Cross Road, No 12),
CALCUTTA-700 006 • Phone 2387063

Sister Concern ANANT MARBLE & GRANITES (P) LTD
3rd Phase, Madanganj - Kishangarh, (Raj) Phone 42879

Special Service from
Calcutta to All Rajasthan, Delhi, Punjab, Haryana & Back Also
Full Truck Accepted for All Over India

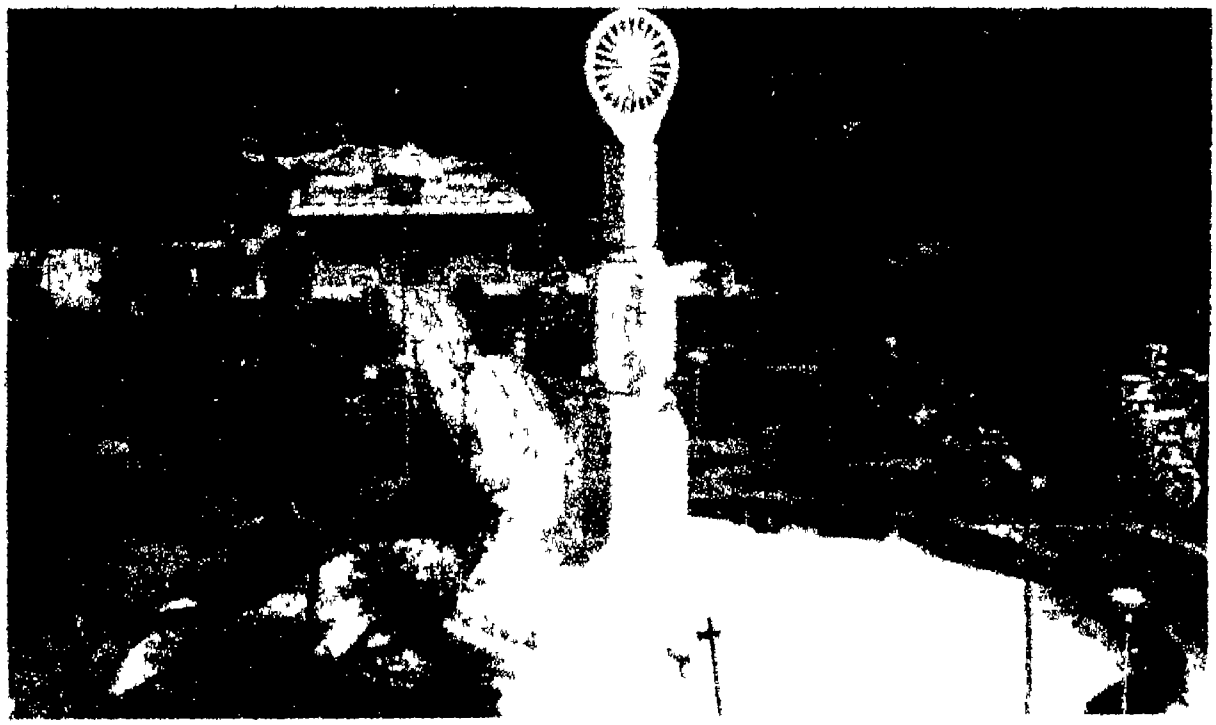

With Best Compliments From

JUNEJA

Manufacturers of Quality Steel Furniture
&
Security Equipments

JUNEJA SAFE CO. PVT LTD
59-60, Chaura Rasta, JAIPUR 302 003
Ph : (Off.) 311517, 314706, (Fac.) 211250 374706 (Res.) 620318, 621362

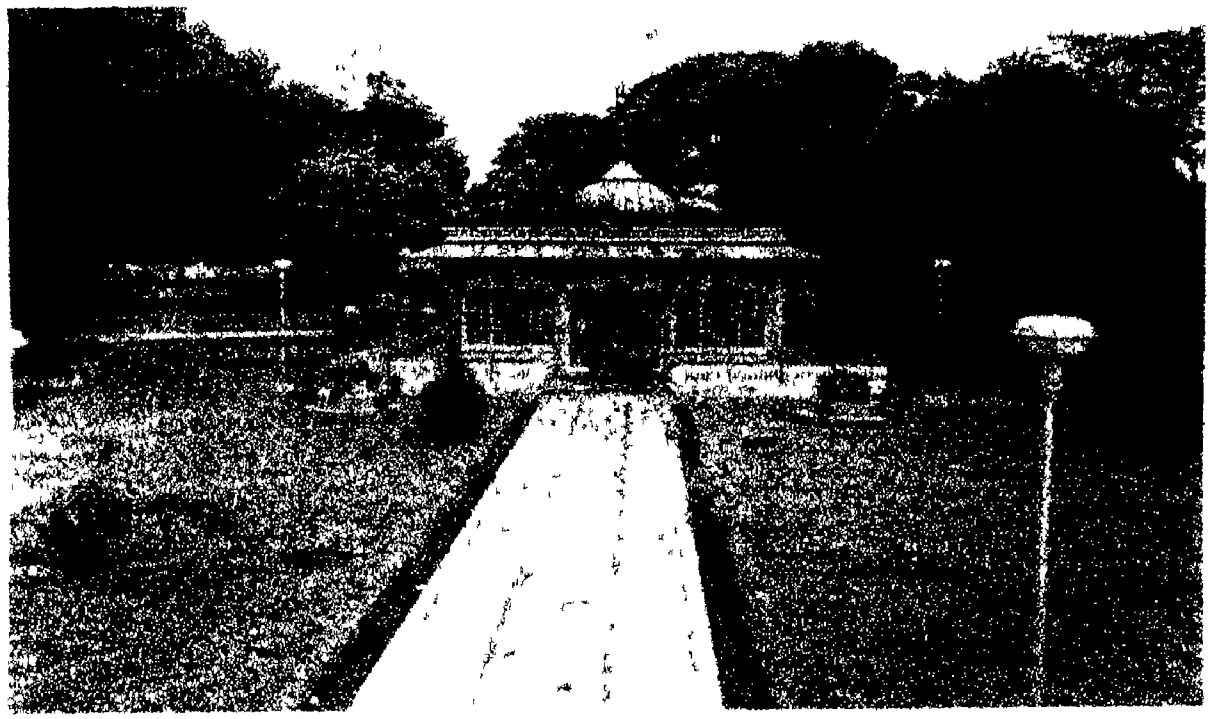

चरण छत्री

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

कटारा एण्ड कम्पनी

गवर्नमैन्ट कॉन्ट्रैक्टर

प्रोपराइटर : **मोहनलाल कुमावत**

19-ए, महादेव नगर, नन्दपुरी चौराहा, बाईस गोदाम, जयपुर • फोन 211707

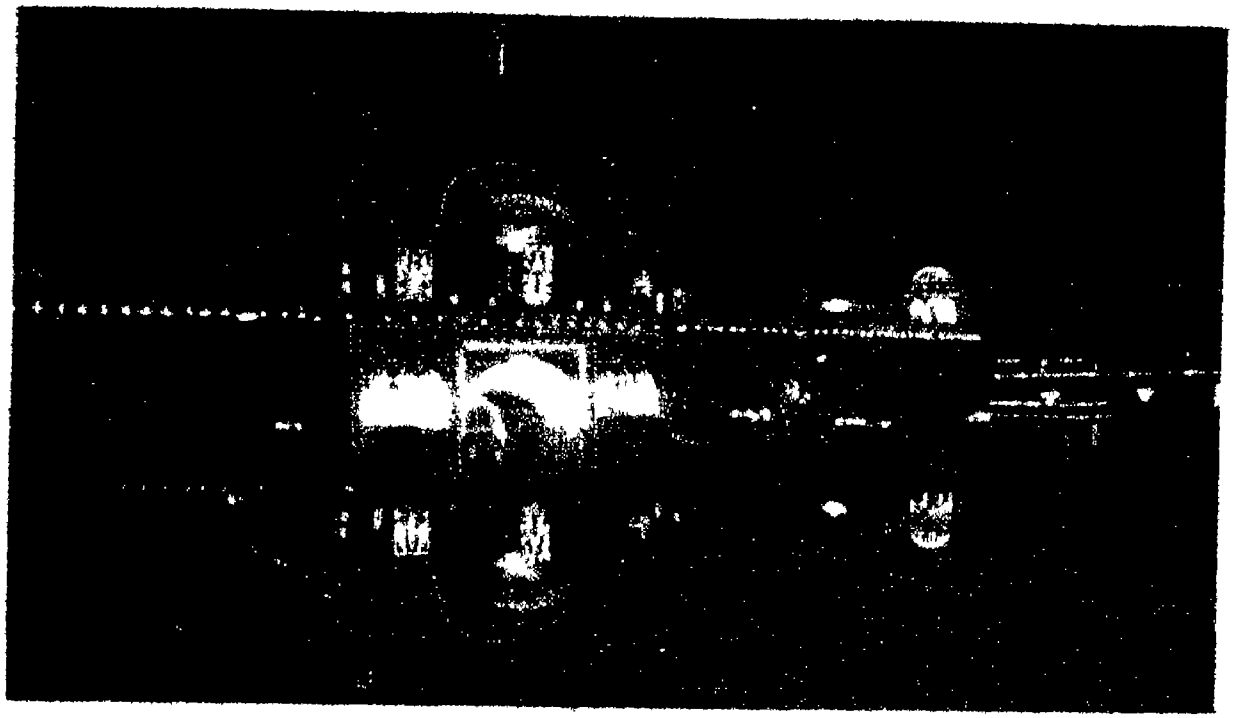

रात्रि प्रकाश में आलोकित भव्य मन्दिर, श्री महावीरजी

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

एस. पी. इलेक्ट्रिक

इलेक्ट्रिक डेकोरेटर एण्ड कॉन्ट्रेक्टर

रायपुर गेट, अहमदाबाद (गुजरात)
फोन 5323003

आचार्य विद्यासागर संस्थान

माणिक शकुन परिसर, वल्लभ नगर, बी.एच.ई.एल., भोपाल-462 021

- संस्थान के प्रथम भवन का मध्यप्रदेश के राज्यपाल महोदय द्वारा दिनांक 16 नवम्बर 1997 को लोकार्पण.
- 20 एकड़ का सुविकसित विशाल परिसर.
- 90 कक्षों का छात्रावास निर्माणाधीन.

संस्थान की प्रमुख इकाई

विद्यासागर इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट (VIM-B)

★ B B A की कक्षाये चल रही हैं

★ M B A की कक्षाय जुलाई '98 से प्रारभ

★ M C A तथा B Com एव B Com कम्प्यूटर की कक्षाये जुलाई '98 से प्रारभ

ज्ञानोदय विकलांग पुनर्वास प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान (ज्ञानोदय लिम्ब्स)

विकलाग व्यक्तियो का कृत्रिम अगो का नि शुल्क वितरण

घुटने से उपर तक के कृत्रिम अग की लागत 4500/- रूपये

घुटने से नीचे तक के कृत्रिम अग की लागत 2500/- रूपये

ज्ञानोदय विद्यापीठ

★ देश की सास्कृतिक धरोहर को प्रचारित प्रसारित करने के लिये प्रतिबद्ध

★ जैन धर्म की पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय

★ जैन धर्म की पुस्तको का प्रकाशन

★ ABC of Jainism का प्रकाशन, यह पुस्तक सम्पूर्ण विश्व में वितरित की जायेगी।

प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति की सुविधा

आपसे निवेदन है कि सस्थान के भवन निर्माण, छात्रावास के एक कक्ष निर्माण हेतु रू 51000/-, एक कृत्रिम अग के वितरण हेतु रू 2500/- या 4500/-, धार्मिक पुस्तको के प्रकाशन और वितरण तथा पुस्तकालय के विस्तार हेतु अपनी इच्छानुसार अधिक से अधिक दान देकर धर्म प्रभावना मे सहभागी बने।

सुरेश जैन, IAS
प्रबध निदेशक

महेन्द्र कुमार सूतवाले
सचिव

मदनलाल बैनाड़ा
अध्यक्ष

ATUL PUBLICITY

रजत पालकी में भगवान श्री महावीर की प्रतिमा को रथयात्रा द्वारा ले जाते हुए श्री महाराजजी

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

उमा टेन्ट हाऊस

डेरे, शामियाने, फर्नीचर, सजावट का सामान आदि
किराए पर मिलने का एक मात्र स्थान

माहेश्वरी मार्केट, चार बाग, शाहगंज, आगरा- 282002

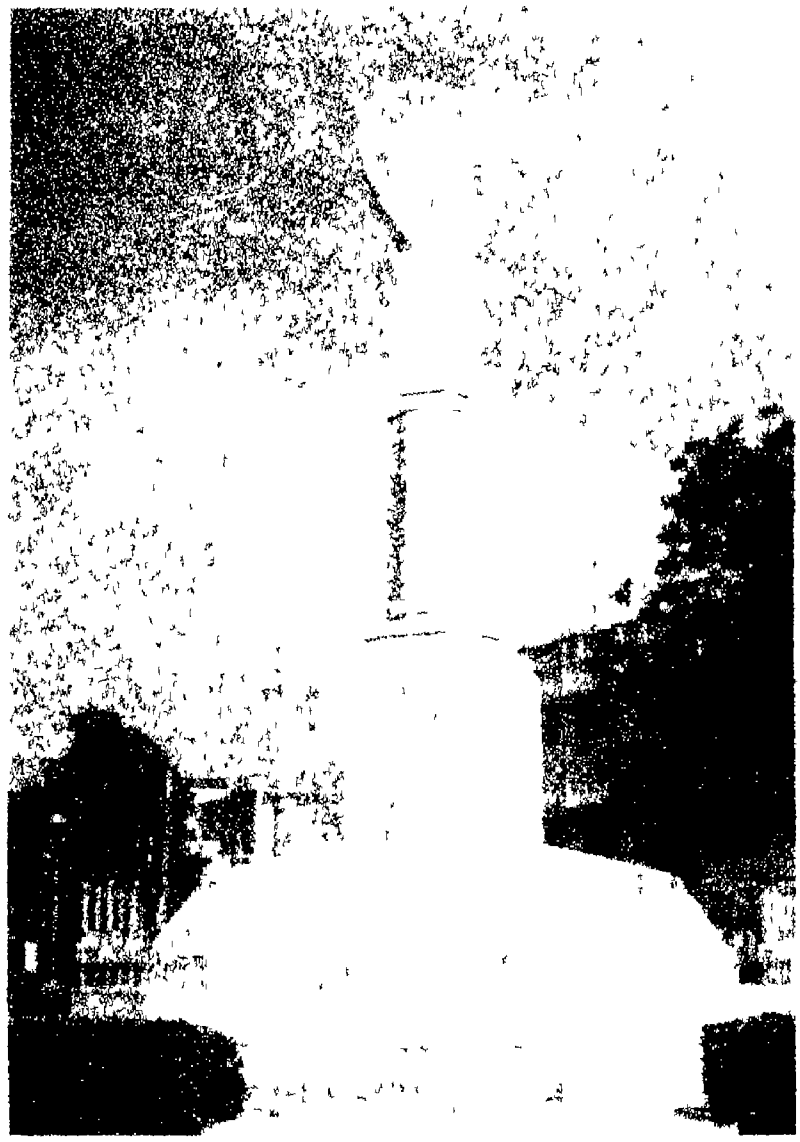

[illegible]

श्री महावीरजी सहस्राब्दी समारोह पर

[illegible] सहित

राज कन्स्ट्रक्शन

ए क्लास गवर्नमैन्ट कॉन्ट्रैक्टर्स

वार्षिक मेले के अन्तिम दिन विशाल रथयात्रा श्री महावीर जी

चाँदनपुर वाले बाबा के सहस्राब्दी समारोह के अवसर पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्रेयास कुमार गोधा
अभय कुमार गोधा
विनय कुमार गोधा
16, लाल निवास जयपुर
फोन 564833, 562178

G. Kartika Enterprises Ltd.

152, Saraogi Mansion , M. I Road, JAIPUR • Phone 562170

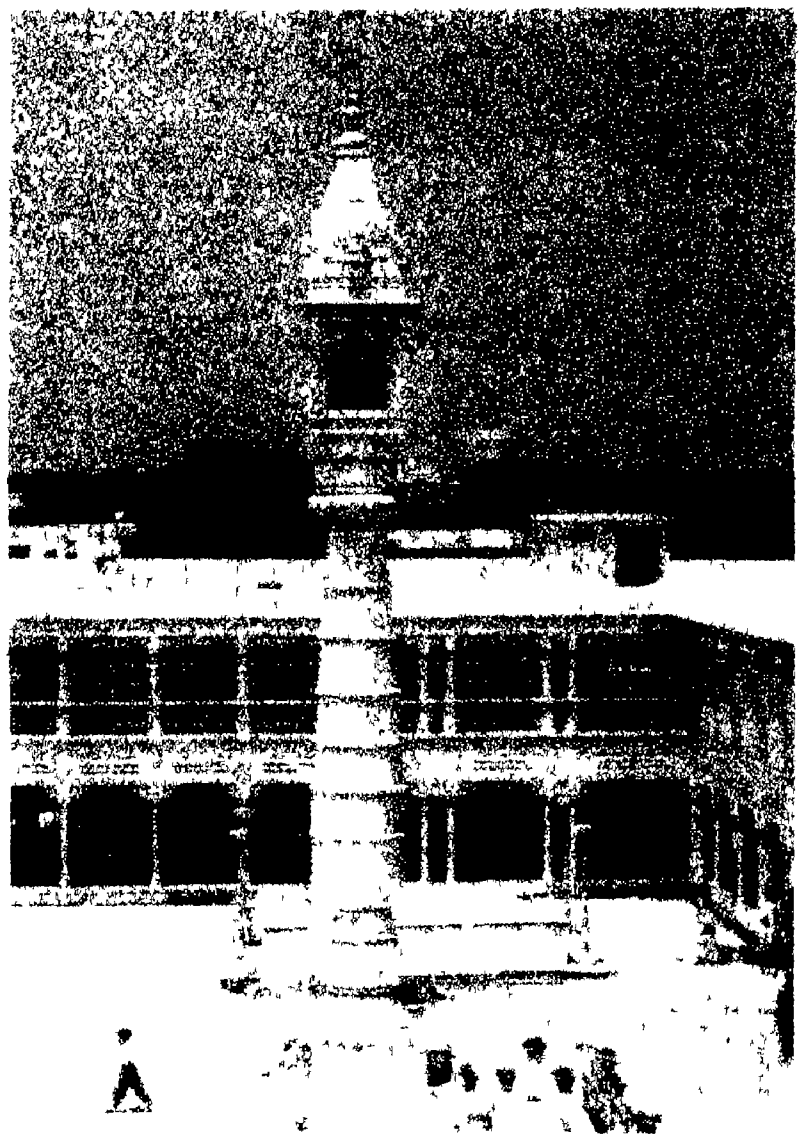

मान स्तंभ

With Best Complements From

SHILPA CONSTRUCTIONS

E-168, Ramesh Marg, C-Scheme, JAIPUR-302 001
Phone 383935, 382510 • Fax 91-141-368037

GOVT. APPROVED 'A' CLASS CONTRACTORS
MEMBER OF BUILDERS ASSOCIATION OF INDIA

We Proudly announce to be the First Industry in this Region to get

ISO 9001 : 1994
CERTIFICATION

25 YEARS of service to the Indian Power Sector

Winner of the NATIONAL PRODUCTIVITY AWARD 1994 1995

FOR DESIGN, DEVELOPMENT, MANUFACTURE & SERVICING OF
POWER & DISTRIBUTION & OTHER ALLIED TRANSFORMERS

DNV
Accredited by the RvA
ISO-9001 REGISTERED FIRM
Det Norske Veritas B.V., NETHERLANDS

This is recognition of our Commitment to Produce Top Class Quality of Transformers for total Customer Satisfaction through adoption of International Quality Standard.

- Over 1,00,000 Transformers are in Service
- Executed successfully various World Bank Aided Contracts.
- Complete range of transformers type tested at CPRI Bhopal

We are indeed grateful to our various customers in Public & Private Sector for continously patronising us

Our Customers include :

❒ State Electricity Boards ❒ NTPC ❒ Power Projects ❒ Railways ❒ Defence/MES
❒ Coal Mines ❒ Cold Storages ❒ Hotels/ Hospitals ❒ Multi Storeyed Buildings
❒ INDUSTRIES : Steel/Paper/ Textile/Chemicals & host of other user

MARSONS ELECTRICAL INDUSTRIES

(Prop. The Marson's Electrical Industries Ltd.)

City Office: 1/189, Delhi Gate, Civil Lines, Agra- 282 002 Phone . (0562) 350811, 350812 Fax: 351306
Works : Mathura Road, Artoni, Agra-282 007 Phone . (0562) 372327, 372328, 371448 Fax : 371435

Avail our Silver Jubilee offer of Extended Warranty & Special Prices

Install [illegible] formers and Drop your Worries forever.

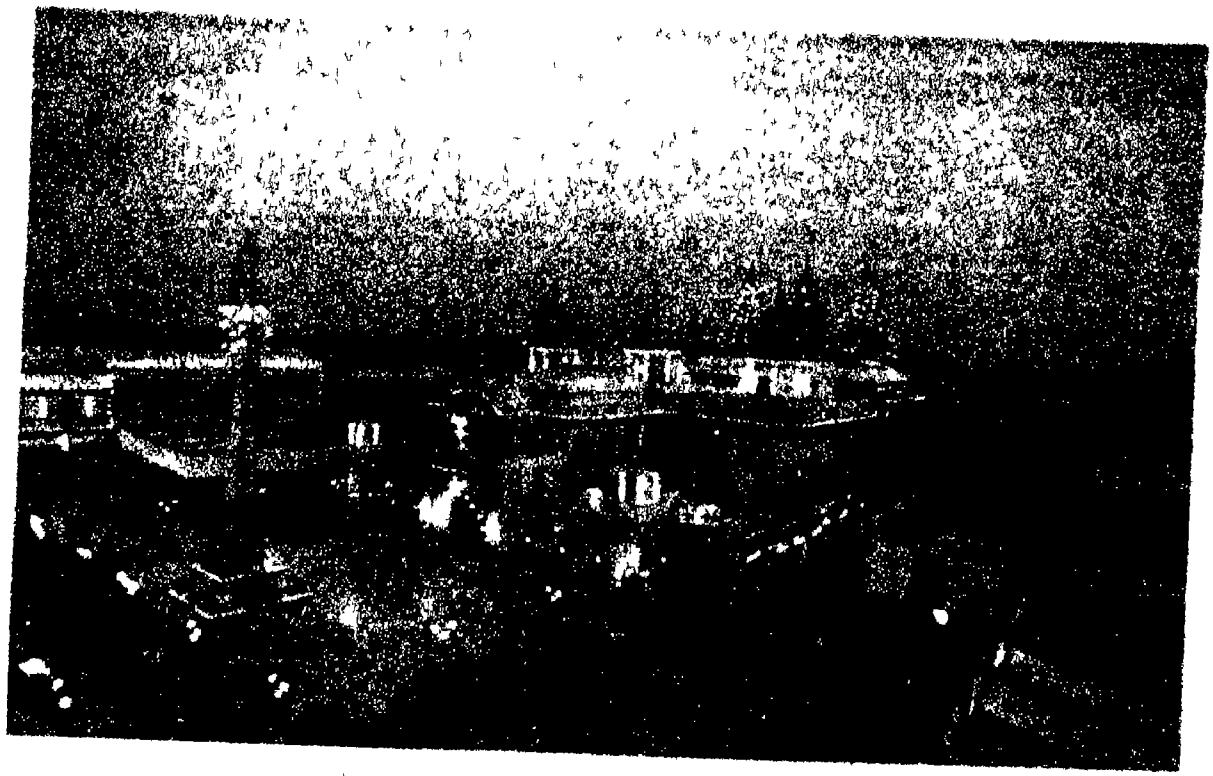

[illegible] महावीर जी

श्री महावीरजी सहस्त्राब्दी समारोह पर

[illegible]

न्यू महावीर लाइट कम्पनी

इलेक्ट्रिक कॉन्ट्रैक्टर - डेकोरेटर

लुहार गली, आगरा (यू. पी.)

मुख्य वेदी मे [illegible]

श्री महावीरजी . सहस्राब्दी समारोह पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

जयपुर में यात्रियों हेतु
आधुनिक सुविधाओं युक्त

श्री दिग. जैन धर्मशाला दीवान अमरचन्दजी

लालजी सांड का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर

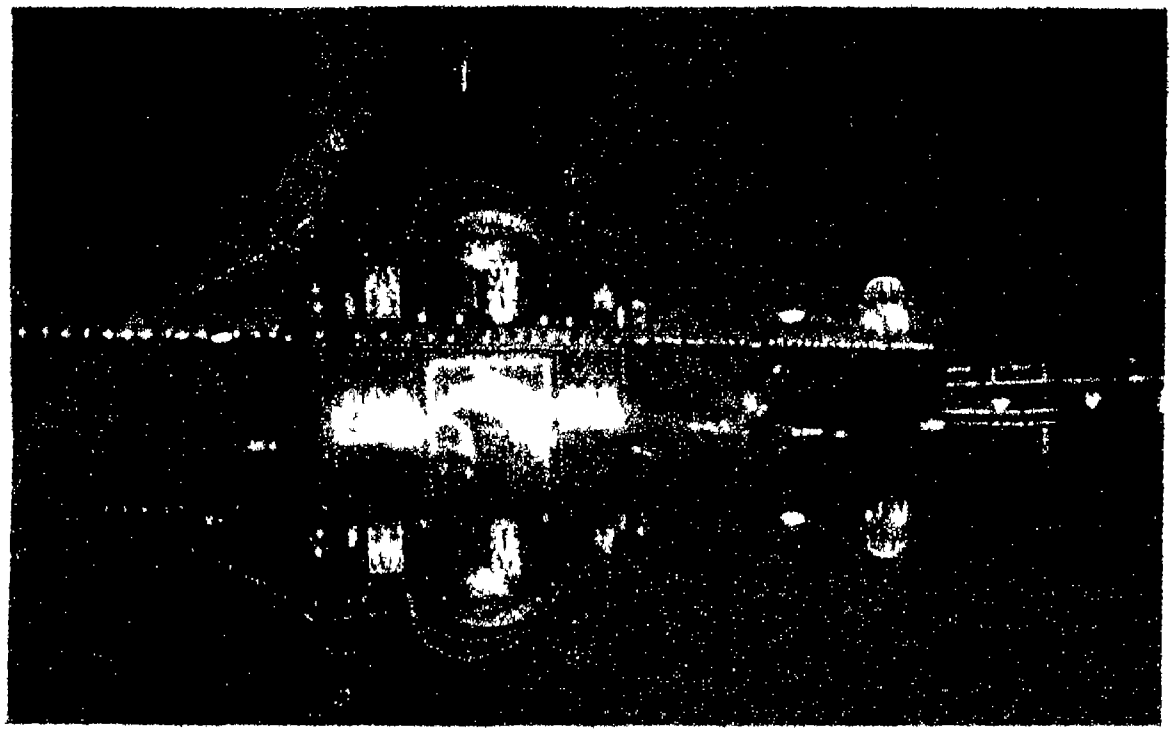

With Best Compliments From

Goyal Electricals

Shri Mahavirji (Distt Karauli)

* * *

Govt. Licenced Electrical Contractors & Suppliers

Specialist of Pumping Set Fittings

श्री महावीरजी
सहस्राब्दी समारोह
1-8 फरवरी '98

पर हार्दिक शुभकामनाएँ

भँवरलाल जांगिड़

लक्ष्मी सिल्वर वर्क्स
कल्पना सिल्वर

चाँदी के बर्तन, सिक्के, चिताई के फैन्सी गंगा जमुना बर्तनों एवं सहस्राब्दी समारोह के स्वर्ण और चाँदी के कलशों के निर्माता

नागो का खुर्रा, किरो की गली, रामगज बाजार, जयपुर-302002

फोन फैक्ट्री 568035 ● निवास 560579